# जातक

[ प्रथम खगड ]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

## प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

## सर्वाधिकार सुरक्षित मूल्य ५)

मुद्रक—जे० के० शर्मा इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस इलाहाबाद प्रथम परिचय के दिन से ही

मेरे

परम श्रद्धाभाजन

वर्तमान

सरकार द्वारा नजरवन्द

राहुल साक्त्यायन

को



## वस्तु कथा

पालि वाङ्मय में तिपिटक (त्रिपिटक) का विस्तार इस प्रकार हैंं-

- १. सुत्तिपटक, निम्नलिखित पाँच निकायों में विभक्त है--
- (१) दीघनिकाय, (२) मिंग्समिकाय, (३) संयुत्तिकाय, (४) स्रंगुत्तरिकाय, (५) खुद्दकिकाय।

खुद्दकनिकाय के १५ ग्रन्थ हैं---

- (१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवृत्तक,
- (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (६) थेरगाथा,
- (६) थेरी गाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) श्रपदान, (१४) बृद्धवंस, (१५) चरियापिटक।
  - २. विनयपिटक निम्नलिखित भागों में विभक्त है-
- (१) महावग्ग, (२) चुल्लवग्ग, (३) पाराजिका, (४) पाचित्ति-यादि, (५) परिचार पाठ।
  - ३. श्रिभधम्मिपटक में सात ग्रन्थ हैं--
- (१) धम्मसंगणि, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गल पञ्जत्ति, (५) कथावत्थ, (६) यमक, (७) पट्टान ।

श्राचार्य्य बुद्धघोप के समय तक श्रयति चौथी पाँचवीं शताब्दी ई० में इन सब प्रन्थों श्रथवा इन प्रन्थों में से लिए गए उद्धरणों के लिए 'पालि' शब्द व्यवहृत होता था। श्राचार्य्य बुद्धघोप ने इन प्रन्थों में से जहाँ कहीं कोई उद्धरण लिया है बहाँ 'ग्रयमेत्थ पालि' (यहाँ यह पालि है) वा 'पालियं वृत्तं' (पालि में कहा गया है) का प्रयोग किया है। जिस प्रकार पाणिनि ने 'छन्दसि' शब्द

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> सुमङ्गल विलासिनी (दीघनिकाय श्रद्धकथा) की निदान कथा।

से देदो का तथा 'भाषायाम्' से तत्कालीन प्रचलित सस्कृत का उल्लेख किया है, उसी प्रकार ग्राचार्य्य बुद्धघोष ने 'पालिय' से तिपिटक वा मूलवचन को तथा 'ग्रटुकथाय' से उनके समय में सिहल द्वीप में विद्यमान सिहल ग्रटुकथाग्रो को याद किया है।

श्रद्धकथा वा श्रर्थंकथा का मतलब है श्रर्थं सहित कथा। तिपिटक को समभने के लिए भाष्य की श्रावश्यकता पड़ती थी। कहा जाता है कि महेन्द्र स्थिवर जब बुद्ध शासन की स्थापना करने के लिए सिहल गए, तब वे तिपिटक के साथ उसकी श्रथंकथाएँ भी ले गए थे। हो सकता है कि श्रद्धकथाशों की रचना तो सिहल में ही हुई हो, लेकिन उनको श्रधिक प्राचीन बनाने के लिए महेन्द्र से उनका सम्बन्ध जोड़ दिया गया हो। श्रारम्भ में तिपिटक के सूत्रों को समभाने के लिए उनके श्रथों को श्रधिक स्पष्ट करने के लिए उनके साथ कथाएँ कहने की भी परिपाटी रही होगी, जिन्हें पीछे लेख-बद्ध कर लिया गया।

सिहल अर्थंकथात्रो का पीछे त्राचार्य्य वृद्धघोप द्वारा पालि रूपान्तर हुआ। सिहल में वे केवल सिहल वासियों के काम की थी, पालि में होने से वह अन्य देशवासियों के लिए भी उपयोगी हुईं। वे रूपान्तर इतने सुन्दर बने कि उनका आदर तिपिटक के समान होने लगा।

'पालि' ग्रसल में किसी भाषा का नाम नहीं रहा है। भाषा का नाम तो रहा है मागधी। पालि तो केवल मूल-वचन का पर्य्यायवाची शब्द रहा है।

जो ग्रर्थंकथाएँ इस समय उपलब्ध है, वे इस प्रकार है-

१. समन्त पासादिका

विनय ग्रहकथा।

२. सुमङ्गलविलासिनी

दीघनिकाय ग्रद्वकथा

<sup>ं</sup> बुद्ध घोष कृत चारों निकायों की श्रट्ठकथाश्रों में श्रारम्भ में ही इस प्रकार श्राता है—

सीहलदीपं पन ग्राभता विसना महामहिन्देन, ठिपता सीहलभासाय दीपवासीनमत्थाय। <sup>२</sup> पालि विय तम्मग्**न**हुं (महावंस)।

३ पपच सुदिनी

मिष्भम निकाय स्रद्रकथा

४. सारत्थ पकासिनी

सय्त्त निकाय श्रद्वकथा

५ मनोरथ परिणी

य्रग्तर निकाय स्रद्रकथा

६. खुदुकनिकाय के प्रन्थों पर भिन्न भिन्न नामो से श्रद्धकथाएँ ७. ग्रद्र सालिनी

धम्मसंगणि पर ग्रद्रकथा

सम्मोह विनोदनी

विभग ग्रद्भकथा

पञ्चप्पकरण ब्रह्मकथा जिसमे निम्नलिखित पाँच ब्रह्मकथाएँ हैं-

- (१) धानुब थापाकरण श्रद्धकथा
- (२) पुग्गल पञ्जिति पकरण अट्टकथा
- (३) कथावत्यु श्रट्टकथा
- (४) यमकापकरण अट्ठकथा
- (५) पट्टानप्पकरण ग्रहकथा।

ऊपर जो तिपिटक का वर्गीकरण दिया है, ग्रहकथाचाय्यों का मत है कि वह राजगृह में हुई प्रथम संगीति के अनुसार है। उनका कहना है कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के वाद मुभद्र भिक्षु ने भिक्षुत्रों को सान्त्वना देते हुए कहा कि ''ग्रावुसो । मत शोक करो । मत रोग्रो । हम मुक्त हो गए । उस महा-श्रमण में पीटिन रहा करने थे कि यह करो और यह न करो । ग्रब हम जो चाहेगे करेंगे, जो नहीं चाहेंगे उसे नहीं करेंगे।" तब महाकरयप स्थविर को भय हुन्ना कि कही सद्धर्म का अन्तर्धान न हो जाय। उसके रक्षार्थ उन्होने पाँच सौ श्चर्हत भिक्षत्रो की एक संगीति बुलाई। उस सगीति में पहले उपालि महास्थविर मे पूछकर विनय का सगायन हुम्रा म्रीर बाद मे म्रानन्द महास्थिवि से सुत्त श्रीर श्रभिधम्म पिटक पूछा गया । एक मत है कि जातक, महानिद्स, चुल्ल निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, सुन्तिपात, धम्मपद, उदान, इतिबुत्तक, विमानवत्यु, पेतवत्थ, थेरगाथा तथा थेरीगाथा प्राभिधम्मापिटक के प्रन्तर्गत सगृठीत हुए। दूसरा मत है ये ग्रन्थ तथा चरिया-पिटर, प्रपदान प्रोर बुढ़वस मिलकर खुद्दक-

<sup>ं</sup>देखो चुल्लवग्ग वंदाजितका स्कन्धक (राहुल मांकृत्यायन द्वार हिन्दी में भ्रन्वित)।

निकाय के नाम से सुत्तन्त पिटक के ग्रन्तर्गत गिने गए।

लेकिन प्रथम संगीति का जो वर्णन चुल्लवग्ग में श्राया है, उस वर्णन में कही तिपिटक का जिकर नहीं। श्रीर तो क्या पिटक शब्द ही नहीं। उस समय 'धम्म श्रीर विनय' का सगायन हुश्रा था। 'धम्म श्रीर विनय' के श्रन्तर्गत टीक कितना वाड्मय रहा, कहना किठन हैं। तो भी जब चुल्लवग्ग में द्वितीय सगीति का विस्तृत वर्णन मिलता हैं तो इतना नो कह ही सकते हैं कि प्रथम सगीति में सारे चुल्लवग्ग का सगायन (=पाठ) नहीं हुश्रा।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्रशोक काल पर्य्यन्त बुद्धवचन के दो ही विभाग रहे—धम्म स्रौर विनय तथा उस समय तक तिपिटक के ग्रन्थो की रचना होती रही। स्रभिधम्मपिटक के एक ग्रन्थ—कथावत्थु—के रचयिता स्पष्ट ही स्रशोकगुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविर थे। र

बुद्धवचन का एक प्राचीन वर्गीकरण स्वय तिपिटक में है। उसके अनुसार बुद्धवचन इन नौ भागो मे विभक्त है—

(१) मुक्त, यह शब्द सूत्र तथा सूक्त दोनो सस्कृत शब्दो का रूपान्तर समभा जाता है। कुछ लोगो ने पालि सुक्त को सूत्र कहा है। दूसरो ने ग्रापित की है—क्योंकि यह पाणिनि के व्याकरण सूत्रों की तरह छोटे ग्राकार के नहीं है, इसलिए इन्हें सूत्र न कह कर सूक्त कहना चाहिए, जैसे वेंद के सूक्त।

संस्कृत बौद्ध साहित्य मे सुत्तो को सूत्र ही कहा गया है। इतर सस्कृत साहित्य मे भी आश्वलायन सूत्र आदि गृह्य सूत्रो से अपेक्षाकृत समान होने के कारण सुत्तो को सूत्र कहना ही ठीक होगा। अगुत्तर निकाय के एकक निपात आदि मे जो छोटे छोटे बुद्ध-वचन है, वे ही वास्तव मे प्राचीन सूत्र हैं। और जिन सूत्रों को सूक्त कहने की अधिक प्रवृत्ति होती है, वह इन सूत्रों पर लिखें गए वेय्याकरण (च्याल्याएँ) है।

यहाँ तो इतना ही अभिप्रेत है कि अशोक के समय से बुद्ध वचन के एक अंश के लिए सुत्त शब्द व्यवहृत होता था।

<sup>ै</sup> सुमङ्गल विलासिनी तथा समन्त पासादिका की निदान कथा। ै श्रद्रसालिनि, कथावत्थु श्रद्रकथा।

- (२) गेय्य—प्रलगदूपम सुत्त (मिष्भिम निकाय २२वाँ सूत्र) की अट्ठकथा में लिखा है कि गुनो में जो गाथायों का हिस्सा है वह गेय्य है, उदाहरण के लिए सयुत्त निकाय का श्रारम्भिक हिस्सा। सभी प्रकार की गाथायों को यदि गेय्य माना गया होता तो, उन गाथायों का कोई पृथक वर्गीकरण रहा होता। प्रतीत होता है कि किसी खास तरह की गाथायों की ही सज्ञा गेय्य रही होगी।
- (३) बेय्याकरण—प्रयं है व्याख्या। किसी सूत्र का विस्तारपूर्वक अर्थं करने को वेध्याकरण कटते हैं। भिवायद्वाणी के प्रथं में जान के व्याकरण शब्द आया है। किन्तु इस शब्द का न तो उस व्याकरण से कुछ सम्बन्ध हैं और न सस्कृत वा पालि के व्याकरण साहित्य से।
- (४) गाथा—बुद्रघोपाचार्य्य ने धम्मपद, थेरगाथा श्रीर थेरीगाथा की गिनती गाथा में की है। इनमें से थेरगाथा में श्रशोक के भाई वीतसोक की गाथाएँ उपलब्ध है। इस से तथा इसकी रचना शैली से सिद्ध है कि इस ग्रन्थ का वर्तमान रूप भगवान के परिनिर्वाण के तीन चार मी वर्ष बाद का है।
- (४) उदान—मृत्य अर्थ है उत्ताग-वाक्य । खुद्दकनिकाय में जो उदान नामक ग्रन्थ है उसके श्रतिरिक्त सुत्तिपटक में जहाँ तहाँ श्रोर भी श्रनेक उदान श्राए है। यह कहना कठिन है कि इनमें से कितने उदान श्रशोक से पूर्व के है।
- (६) इतिवृत्तक—खुटक निकाय का इतिवृत्तक १२४ इतिवृत्तको का सग्रह है। इनमें से कुछ श्रशोक के समय के श्रीर पहले के भी हो सकते हैं।
- (७) जातक—यह कथा-साहित्य सर्व प्रसिद्ध है। श्रनेक दृश्य साँची, भरहुत श्रादि के स्तृपो की वेष्ठनी (रेलिंग) पर खुदै मिलते हैं जो कि १५० ई० पू० के श्रासपास के हैं। इस पर विस्तृत विचार श्रागे किया ही गया है।

<sup>ै</sup> इमिस्मि बुद्धप्पावे श्रद्वारस वस्साविकानं द्विश्लं वस्स सतान मत्थके धम्मासोक रञ्ञो कणिट्टभाता हुत्वा निब्बत्ति । तस्स वीतसोकोति नामं श्रहोसि (वीतसोक घेरस्स गाथा वण्णना) ।

<sup>&</sup>lt;sup>र</sup> सांची--भेलसा (प्राचीन विविशा) के पड़ोस में।

<sup>ै</sup> भरहुत—इलाहाबाद से १२० मील दक्षिण-पश्चिम एक गाँव।

- (द) ग्रब्भुतधम्म—ग्रर्थं है ग्रसाधारण-धर्मं। हो सकता है कि भगवान् बुद्ध ग्रौर उनके शिष्यों मे जो ग्रसाधारण बाते रही उनका वर्णन करने वाला कोई ग्रन्थ रहा हो; किन्तु इस प्रकार का कोई ग्रन्थ न ग्रब प्राप्य है न ग्राचार्य्य बुद्धघोष के ही समय मे रहा है। उन्होने लिखा है "भिक्षुग्रो, ये चार ग्राश्चर्य्य ग्रद्भुतधर्म ग्रानन्द मे है" इस कम से (ग्रर्थात् बुद्ध के इस वाक्य के ग्रनुसार) जितने भी ग्राश्चर्य्य ग्रद्भुतधर्मों से युक्त सूत्र है, वे सभी ग्रब्भुत धम्म जानने चाहिए।"
- (६) वेदल्ल—महावेदल्ल और चुल्लवेदल्ल दो सुत्त है। इन दोनो सूत्रो में (१) महाकोट्टित तथा सारिपुत्र के, (२) भिक्षुणी धम्मदिन्ना तथा उसके पूर्व ग्राश्रम के पित के प्रश्नोत्तर है। इनसे वेदल्ल नाम के गंग्रह में किस प्रकार के सूत्र रहे होगे, इसका कुछ ग्रनुमान लग सकता है। प्रतीत होना है कि भगवान् बुद्ध के साथ श्रमण-ब्राह्मणों के जो प्रश्नोत्तर होते थे, वे वेदल्ल कहलाते थे।

सारे तिपिटक में वा नौ श्रगो वाले बुद्ध वचन में, कितना वास्तव में बुद्ध तथा उनके शिष्यों का उपदेश हैं श्रौर कितना पीछे की भर्ती, कहना कठिन हैं।

ग्रशोक के भाबू शिलालेख में सात बुद्धोपदेशों का नाम ग्राया है, जिनको-ग्रशोक चाहता था कि भिक्षु भिक्षुणियाँ, उपासक उपासिकाएँ सुने तथा धारण करे। वे बुद्धोपदेश यह है—

<sup>ै</sup> चत्तारो मे भिक्खवे, श्रन्छरिया श्रन्भता धम्मा श्रानन्देति झाविनय-पवत्ता सन्बेपि श्रन्छरियन्भृतधम्मपिट-संयुत्ता सुत्तन्ता श्रन्भृतधम्मति वेदि-तन्त्वा।

र मिक्सिम निकाय, (४३, ४४)।

<sup>. .</sup> भगवता बुधेन भासिते सबे से सुभासिते वा ए चु खो भंते हिमयाये विसेया हेवं स धंसे चिलिटितिके होसतीति श्रलहामि हकं तं वतवे [ ] इमानि भन्ते धंम पालियायानि विनयसमुकसे श्रलियवसानि श्रनागत भयानि मुनिगाया मोनेयसूते उपितसपिसने ए चा लाघुलोवादे मुसावादं श्रिधिगच्च भगवता बुधेन भासिते एतान भंते धंमपिलयायानि इच्छामि कि ति (?) बहुके भिखु-

(१) विनयसमुकते, (२) अलियवसानि, (३) अनागतभयानि, (४) मुनिगाथा, (४) मोनेयसूते, (६) उपितसपिसने, (७) लाधुलोबादे मुसाबादं अधिगचन भगवता बुद्धेन भासिते।

वे बुद्धोपदेश वर्तमान त्रिपिटक में कौन कौन से हैं, इनका अनेक विद्वानों ने त्रिनार किया है। श्री धम्मानन्द जी कोसम्बी को वे इस कम से स्वीकृत हैं<sup>8</sup>—

- (१) विनयसमुकसे==धम्मचक्कपवत्तन सुत्त
- (२) ग्रलियवसानि ग्रिरियवंसा (ग्रंगुत्तर, चतुक्क निपात)
- (३) अनागत भयानि अनागतभयानि (अंगुत्तर, पञ्चक निपात)
- (४) मुनिगाथा मृनि सुत्त (सुत्तनिपात)
- (५) मोनेयसते = नाळकमुत्त (सुत्तनिपात)
- (६) उपतिस पसिने सारिपुत्तसुत्त (सुत्तनिपात)
- (७) लाघुलोबाद = राहुलोबाद (मज्भिम नि० सुत्त ६१)

इन सात सुत्तों में से चार सुत्त सुत्तनिपात से लिए गए हैं। इससे सुत्त-निपात का महत्त्व तथा प्राचीनता स्वयं-सिद्ध है। सुत्तनिपात खुद्क निकाय का एक ग्रन्थ है; श्रौर निद्देस, नाम से सुत्तनिपात के ही कुछ सुत्तों की एक टीका भी

पाये च भिखुनिये चा ग्रभिखिनं सुनयु चा उपधालेयेयु चा हेवं हेवा उपासका चा उपासिका चा [.] एतेनि भंते इमं लिखापयामि ग्रभिहेतं म जानंतित (ग्रशोक के धमं लेख—जनार्वन भट्ट, एम० ए०)।

हिन्दी—...जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा है सब सुभाषित है। पर जैसे मुभे दिखाई देता है कि इस प्रकार सद्धमं चिरकाल तक स्थित रहेगा, वह कहना उचित समभता हूँ। मैं इन धर्मपर्यायों को—विनय समुकसे... ... और मृवावाद के बारे में भगवान् द्वारा उपिदष्ट राहुलोवाद को चाहता हूँ। क्या चाहता हूँ? यही कि बहुत से भिक्षु और भिक्षणियाँ सुनें तथा धारण करें। इसी प्रकार उपासक उपासकायें भी। भन्ते, मैं यह लेख लिख-वाता हूँ कि लोग मेरा ग्रमिप्राय जानें।

१ भगवान बुद्ध (मराठी); इण्डियन ग्राण्टीक्वेरी १९१२, फर्वरी।

खुद्किनिकाय के ग्रन्तर्गत है। इससे श्रनुमान होता है कि ग्रुनिवात खुद्क निकाय के निद्देस सद्श ग्रन्थो की ग्रपेक्षा एक या दो गताब्दी प्राचीन है।

बुद्धवचन का नौ ग्रंगो के रूप मे जो प्राचीनतर वर्गीकरण है, उसमें भी जातक का समावेश होने से उसकी प्राचीनता तथा महत्त्व स्पप्ट ही है। जब हम देखते हैं कि साँची, भरहुत ग्रादि स्थानो मे अनेक जातक कथाग्रों के चित्र उत्कीर्ण है, तब उनकी प्राचीनता तथा महत्त्व ग्रौर भी वढ जाता है।

जातक शब्द का अर्थ है जन्म सम्बन्धी। विकासदाद के अनुसार एक फूल को विकसित होने के लिए, उस पृष्प की जाति विशेष के अस्तित्व में आने में लाखो वर्ष लग जाते हैं। तब क्या कोई भी प्राणी साठ या सत्तर, अधिक से अधिक सौ वर्ष के जीवन में बुद्ध बन सकता है ? उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारण करने ही होगे। गौतम बुद्ध को भी धारण करने पड़े। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मो तथा अन्तिम जन्म में उनकी मंशा बोधिसत्त्व रही। बोधि का अर्थ बुद्धत्व और सत्त्व का अर्थ प्राणी—वुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी। जातक में बोधिसत्त्व के पाँच सौ सैतालिस जन्मों का उल्लेख हैं।

लेकिन बौद्ध तो श्रात्मा को ही नहीं मानते। फिर यह जन्मान्तरवाद कैसा? जब श्रात्मा ही नहीं, तो पुनर्जन्म कैसे हो सकता है? प्रश्न समुचित है। सामान्यतया सभी श्रबौद्ध दर्शन श्रात्मवाद के बिना जन्मान्तरवाद की कल्पना कर ही नहीं सकते। भगवद्गीता ने जिरा जन्मान्तरवाद को स्वीकृत किया है, वह श्रात्मवाद की ही भित्ति पर है।

बुद्धधर्म किसी ग्रात्मा को जो शाश्वत तथा नित्य समक्ता जाता है नहीं स्वीकार करता। ग्राचार्य्य दसुवन्धु कृत ग्रभिधर्मकोष की एक कारिका है—

नात्मास्ति; स्कन्धमात्रं तु कर्मक्लेशाभिसस्कृतम् । अन्तराभव-सन्तत्या कुक्षिमेति प्रदीपवत् ॥३–१८॥

<sup>&#</sup>x27;भरहुत शिलालेख—श्री बरुग्रा तथा सिनहा—कलकत्ता यृनिवर्सिटी १६२६)।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> ग्राचार्य्य वसुवन्धु का समय चौथी-पाँचवीं शताब्दी है ।

श्रात्मा नाम का कोई नित्य श्रुव, श्रविपरिणाम स्वभाव वाला पदार्थ नहीं है। कर्म से तथा (श्रविद्या ग्रादि) क्लेशो से श्रभिसस्कृत पञ्चस्कन्ध मात्र ही पूर्व-भव सतित क्रम से एक प्रदीप से दूसरे प्रदीप के जलने की तरह गर्भ में प्रवेश पाता है।

इसी प्रकार राजा **मिलिन्द<sup>र</sup> ने महास्थिवर नागसेन से प्रक्न किया**— यदि **संक्रमण<sup>र</sup> नहीं होता तो पुनर्जन्म कैसे होता है** ?

हाँ महाराज, बिना सक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

१. भन्ते, सो कैसे होता है ? कृपया उपमा देकर समभावे।

महाराज । यदि कोई एक बत्ती से दूसरी बत्ती जला ले तो क्या यहाँ एक बत्ती दूसरी में सक्रमण करती हैं ?

नही भन्ते !

महाराज ! इसी तरह विना सक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

२. कृपया फिर भी उपमा दे कर समभावे ?

महाराज ! क्या ग्रापको कोई श्लोक याद है जो ग्रापने ग्रपने गुरु के मुख से सीखा या  $^{7}$ 

हां, याद है।

महाराज ! क्या वह श्लोक ग्राचार्य्य के मुख से निकल कर ग्रापके मुख में घुस गया ?

नहीं भन्ते ।

महाराज । इसी तरह विना सक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

भन्ते ! ग्रापने ग्रच्छा समभाया ।

फिर राजा बोला—भन्ते । ऐसा कोई जीव है जो इस शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता हैं?

नहीं, महाराज।

<sup>ं</sup> रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, तथा विज्ञान।

राजा मिलिन्द का समय ई० पू० १५० है।

<sup>ै</sup> ग्रात्मा का एक शरीर को छोड कर दूसरे को धारण करना।

भन्ते <sup>!</sup> यदि इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाने वाला नहीं है, तब तो वह श्रपने पाप कर्मों से मुक्त हो गया।

हाँ, महाराज । यदि उसका फिर जन्म नहीं हो तो श्रलबत्ता वह श्रपने पापकर्मों से मुक्त हो गया श्रौर यदि वह फिर जन्म ग्रहण करें तो मुक्त नहीं हुग्रा।

कृपया उपमा देकर समभावे ।

महाराज ! यदि कोई आदमी किसी दूसरे का श्राम चुरा ले तो दण्ड का भागी होगा या नही  $^{7}$ 

हाँ भन्ते । होगा।

महाराज । उस आम को तो उसने रोपा नही था जिसे इसने लिया, फिर दण्ड का भागी कैसे होगा ?

भन्ते । उसके रोपे हुए श्राम से ही यह भी पैदा हुग्रा, इसलिए वह दण्ड का भागी होगा।

महाराज ! इसी तरह, एक पुरुष इस नामरूप से अच्छे बुरे कर्म करता है। उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा नामरूप जन्म लेता है। इसलिए वह अपने पाप कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।

भन्ते ! आपने ठीक समभाया।

जब तक मनुष्य की अविद्या-तृष्णा का नाश नही होता, तब तक उसका अच्छा बुरा कर्म ही उसका सब कुछ है। भगवान् का उपदेश हैं— "भिक्षुग्रों, सभी को इस बात पर सदा मनन करना चाहिए कि मेरा जो कुछ भी है कर्म ही हैं, कर्म ही दायाद है, कर्म ही से उत्पत्ति हैं, कर्म ही बन्धु हैं, कर्म ही शरण-स्थान है, जो मैं अच्छा बुरा कर्म करूँगा उसका मैं उत्तराधिकारी होऊँगा।"

<sup>ै</sup> भिक्षु जगदीश काश्यप कृत मिलिन्द-प्रश्न का हिन्दी श्रनुवाद (३-२-१३, ३-२-१६)।

<sup>ै</sup> कम्मस्सकोम्हि, कम्मदायादो, कम्मयोनि, कम्मबन्ध, कम्मपिटसरणो यं कम्मं करिस्सामि कल्याणं वा पापकं वा तस्स दायादो भविस्सामीति स्रिभिण्ह पच्चवेक्खितब्बं गहट्ठेन वा पब्बिजितेन वा (श्रंगुत्तर निकाय, पंचक निपात, द्वितीय पण्णासक, प्रथम वर्ग, सातवा सूत्र)।

तृष्णा के क्षय हो जाने पर कर्म का भी क्षय हो जाता है और पुनर्जन्म का भी; लेकिन जब तक तृष्णा का क्षय नहीं होता तब तक तो प्राणी को जन्म जन्मान्तर तक जन्मों के चक्कर में रहना ही पडता है। बुद्ध ने जब बुद्धगया में बोधि-वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया, उस समय उन्होंने सर्वप्रथम यहीं कहा—

"दु खदायी जन्म बार बार लेना पडा। मैं ससार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृहकारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृहकारक । ग्रब मैंने तुभे देख लिया। (ग्रब) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं। गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया, तृष्णा का क्षय हो गया।"

बुद्ध की शिक्षा के अनुसार रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार तथा विज्ञान इन पाँच स्कन्धो का ही यह व्यक्ति वा ससार बना है, इन पाँच स्कन्धो की धारा अच्छे बुरे कर्मानुसार बहती रहती है, बहती रही है और तब तक बहती रहेगी जब तक कोई व्यक्ति तृष्णा का सम्पूर्ण क्षय नहीं कर लेता।

पुनर्जन्म प्राय सभी भारतीत दर्शन सम्मत है। बुद्ध की शिक्षा की विशेषता यही है कि अनात्मवाद के साथ पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है। जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होना तो आज दिन भारतीय दार्शनिको का सामान्य आदर्श है।

तिपिटक में जिस जातक (ग्रन्थ) का समावेश हैं वह केवल गाथाश्रो का सग्रह है। जिस प्रकार धम्मपद एक चीज है और धम्मपद श्रद्धकथा दूसरी, उसी प्रकार जातक एक चीज है श्रीर जातक श्रद्धकथा दूसरी। श्रन्तर यह है

<sup>ै</sup>धम्मपद (जरावग्ग १५३, १५४) की यह दो गाथाएँ प्रथम संबुद्ध गाथाएँ कही जाती है—

श्रनेक जाति ससार सन्धाविस्स श्रविब्बिसं गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पन, गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि, सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखित, विसखारगतं चित्तं तण्हान खयमज्भगा॥

कि धम्मपद का अर्थे बिना धम्मपद अहुकथा के समक्त में या सकता है। जातक यद्यपि धम्मपद ही की तरह गाथाएँ मात्र है तो भी उन गाथाओं में, यदि पहले से कथा मालूम हो तो, पाठक को वह कथा याद आ सकती है। यदि कथा मालूम न हो तो अकेली गाथाओं से उद्देश्य पूरा नहीं होता। विना जातकह कथा के जातक अध्रा है।

फिर जातक में केवल भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बन्ध रखने वाली गाथाएँ मर हैं। जातकहुकथा में श्रष्टुकथा सिह्त श्रसल जातक कथाएँ श्रारम्भ होने से पहले निदान कथा नाम का एक लम्बा उपोद्घात हैं। इस निदान-कथा में सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र के साथ उनके पूर्व के २७ बुद्धों का भी जीवन चरित्र हैं। यह सारा का सारा बुद्धवंस से लिया प्रतीन होना है।

जातकट्टकथा के बगला अनुवादक श्री० ईशान् चन्द्र घोप ने अपने अनु-वाद में केवल जातक कथाओ वाले अश का अनुवाद दिया है। प्रस्तृत हिन्दी अनुवाद निदान-कथा सहित सारी जातकट्टकथा का अविकल अनुवाद है।

जातक की श्रष्टकथा तीन भागों में विभक्त हैं——(१) दूरे निदान, (२) श्रविदूरे निदान, (३) सन्तिके निदान।

बोधिसत्त्व ने जब सुमेध तपस्वी का जन्म ग्रहण कर भगवान् दीप द्धर के चरणो मे जीवन समर्पित किया, उस समय से लेकर वेस्सन्तर का शरीर छोड तुषित स्वर्ग लोग मे उत्पन्न होने तक की कथा दूरे-निदान कही जाती

<sup>ै</sup> बुद्धवंस के २७ बुद्ध इस प्रकार है——(१) तण्हञ्करो, (२) मेधङ्करो, (३) सरणङ्करो, (४) वीपङ्करो, (४) कोण्डञ्ज, (६) मङ्गलो, (७) सुमनो, (६) रेवतो, (६) सोभितो, (१०) ग्रनोमदस्सी, (११) पद्धमो, (१२) नारदो, (१३) पद्धमुत्तरो, (१४) सुमेघो, (१५) सुजातो, (१६) पियदस्सी, (१७) ग्रत्थदस्सी, (१८) घम्मदस्सी, (१६) सिद्धत्य, (२०) तिस्स, (२१) फुस्स, (२२) विपस्सी, (२३) सिखी, (२४) वेस्सभू, (२५) कक्सुसन्ध, (२६) कोणागमनो, (२७) कस्सप। ग्रन्तिम छ या सात बृद्धों के नाम भरहुत में ग्रंकित है——भरहुत ज्ञालालेख (पृ० ४३)।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> देखो वेस्सन्तर जातक (५४७) ।

है। तुषित-लोक से च्युत होकर महामाया देवी के गर्भ से उत्पन्न हो .... बोधगया में वृद्धत्त्व प्राप्त करने तक की कथा ग्राविदूरे-निदान कही जाती है। जहाँ जहाँ भगवान् बृद्ध ने विहार करते समय कोई जातक कही, उन स्थानों का जो उल्लेख है, वह सन्तिके-निदान है।

जितनी जातक कथाएँ हैं वे दूरे-निदान के ही अन्तर्गत आती है। हर जातक कथा चार विभागों में विभक्त हैं—(१) पच्चुपन्नवत्थु, (२) अतीत वत्थु, (३) अत्थवण्णना, (४) समोधान। पच्चुपन्नवत्थु से मतलब हैं वर्त-मान-कथा अर्थात् अगवान् वृद्ध के समय की कोई घटना, उदाहरण के लिए पहली अपण्णक जातक में ही अनाथिपिष्टिक के साथ पाँच सौ तैथिकों (वृद्ध-मत से भिन्न मतों के अनुयाइयों) के बुद्ध की शरण में आने जाने की कथा। अतीत-वत्थु का मतलब हैं किसी भी ऐसे अवसर पर भगवान् द्वारा कही गई पूर्व जन्म की कथा, जैसे पहली जातक में ही कान्तार में जाने वाले बजारों की कथा। अत्येक कथा में एक या अनेक गाथाएँ हैं। अत्थवण्णना का मतलब हैं इन गाथाओं की व्याख्या, जिसमें गाथाओं का शब्दार्थ ओर विस्तृ-तार्थ रहना हैं। समोधान सदैव अन्त में आता है जिसमें वृद्ध वताने हैं कि उन्होंने जो अतीत-वत्थु सुनाई उस अतीत-वत्थु के प्रधान पात्रों में कोन कीन था? वे स्वय उस समय किस योनि भे उत्पन्न हए थे।

दस अनुवाद में हम ने पच्चुपन्नबत्थु को वर्तमान कथा कहा है, अतीत-वत्यु को अतीत कथा। ऐसे पाठकों के लिए जिनका अधिक ध्यान कथामात्र की और हो प्रत्येक गाथा के नीचे अपना स्वतन्त्र अनुवाद दे दिया है। उसके आगे की अत्यवण्णना (व्याख्या) के आरम्भ और अन्त में दो लकीरे खीच दी है।

स्राखिर में जो समीधान स्राए हैं उन्हें हमने गलती से कथास्रो का साराश कह दिया है। वह ठीक नहीं। समीधान का सर्थ केवल पूर्वपात्रों का मेल बैठाना मात्र है।

कुल जातक कितने हैं ? प्रश्नीत् बोधिसत्त्व ने बुद्ध होने से पूर्व ठीक ठीक कितनी बार जन्म ग्रहण किया हैं ? कहना कठिन ही नही प्रसम्भव हैं। खुद्क निकाय के चरिया-पिटक में ३५ चर्या वा चरित्र हैं। वे ३५ चरियाएँ जातकह कथा में इस प्रकार हैं—

#### चरियापिटक

- १. ग्रकित्ति चरिय
- २. सङ्ख चरियं
- ३. कुरुधम्म चरिय
- ४. महासूदस्सन चरिय
- ५. महागोविन्द चरिय
- ६. निमि राज चरिय
- ७. चन्दकुमार चरियं
- सिविराज चरिय
- ६ वेस्सन्तर चरियं
- १०. ससपण्डित चरिय
- ११ सीलवनाग चरिय
- १२. भुरिदत्त चरिय
- १३. चम्पेय्यनाग चरियं
- १४. चुलबोधि चरिय
- १५. महिसराज चरिय
- १६ रुराज चरियं
- १७ मातङ्ग चरिय
- १८. धम्माधम्मदेवपुत्त चरियं
- १६. जयदिस्स चरियं
- २०. सङ्खपाल चरिय
- २१. युधञ्जय चरिय
- २२. सोमनस्स चरियं
- २३. श्रयोघर चरिय
- २४. भीस चरिय
- २४ सोणपण्डित चरिय
- २६ तेमिय चरिय
- २७ कपिराज चरियं

#### जातक

- १. ग्रकित्ति जातक (४८०)
- २. सङ्खपाल जातक (५२४)
- ३ कुरुधम्म जातक
- ४. महासुदस्सन जातक
- (देखे महागोविन्द स्त्र दीर्घ निकाय)
- ६. निमि जातक (५४१)
- ७. खण्डहाल जातक (५४२)
- प्त. सिवि जातक (४६६)
- वेस्सन्तर जातक (५४७)
- १० सस जातक (३१६)
- ११. सीलवनाग जातक (७२)
- १२. भूरिदत्त जातक (५४३)
- १३. चम्पेय्य जातक (५०६)
- १४. चुल्लबोधि जातक (४४३)
- १५ महिस जातक (२७८)
- १६. रुरु जातक (४८२)
- १७. मातङ्ग जातक (४६७)
- १८ धम्म जातक (४५७)
- १६. जयदिस जातक (५१३)
- २०. सङ्खपाल जातक (५२४)
- २१. युवञ्जय जातक (४६०)
- २२. सोमनस्स जातक (५०५)
- २३. भ्रयोघर जातक (५१०)
- २४. भिस जातक (४८८)
- २४. सोण नन्द जातक (५३२)
- २६. तेमिय जातक (५३८)
- २७ कपि जातक (२५०)

२८.	सच्चसव्ह्य पण्डित चरिय	२८. सच्चिकर जातक (७३)
२६.	वट्टपोतक चरिय	२६. वट्ट जातक (३५)
₹0.	मच्छराज चरियं	३०. मच्छ जातक (३४)
३१.	कण्हदीपायन चरिय	३१. कण्हदीपायन जातक (४४४
३२	सुतसोम चरिय	₹₹
₹₹.	सुवण्णमास चरिय	३३. साम जातक (५४०)
३४.	एकराज चरिय	३४. एकराज जातक (३०३)
३ሂ.	महालोमह्स चरिय	३५. लोमहस जातक (६४)

)

संस्कृत बौद्ध साहित्य मे जातक माला नाम का एक ग्रन्थ है; जिसके रच-यिता श्रार्थशूर है। तारानाथ ने श्रार्थशूर श्रौर प्रसिद्ध महाकवि श्रश्यघोष को एक ही कहा है। लेकिन यह ठीक नहीं। श्रार्थशूर की जातकमाला में कुल ३४ जातक है।

इसी प्रकार श्री० ईशानचन्द्र के ग्रनुसार महावस्तु नामक ग्रन्थ मे लगभग ८० कथाएँ हैं।

येरवादियों वा सिंहल, स्याम, वर्मा, हिन्दचीन म्रादि देशों के बौद्धों की परम्परा है कि जातकों की सख्या ५५० है। यह ५५० सख्या याद रखने की सुविधा के लिए प्रचलित हो गई प्रतीत होती हैं, नहीं तो जातकट्टकथा में जातकों की ठीक सख्या ५४७ है। ये कथाएँ २२ निपातों या परिच्छेदों में बँटी हैं। पहले परिच्छेद में १५० ऐसी कथाएँ हैं जिनमें एक ही एक गाथा या इलोक पाया जाता हैं; दूसरें में भी १५० ही कथाएँ हैं, लेकिन उनमें प्रत्येक में दो दो गाथाएँ हैं। तीसरें ग्रौर चौथे में पचास पचास कथा। गाथाग्रों की सख्या कमश तीन तीन ग्रौर चार चार। पाँचवे निपात से तेरस निपात तक यह कम मोटें खप से जारी रहना हैं। उन नौ निपातों में जातक-कथाग्रों की कुल संख्या केवल १३३ है। प्रत्येक निपात में कहीं जातकों की गाथाग्रों की सख्या उस निपात की सर्या से ग्रधिक हैं; लेकिन सामत्यत ऊपर का

<sup>&#</sup>x27; चूल निद्देस में एक जगह 'पञ्चें जातक सतानि' ग्रर्थात् पाँच सौ जातक स्राया है।

ही ऋम है। चौदहवे निपात का नाम पिकण्णक निपात है, शायद इसिलए कि इसके जातको में गाथाओं की सख्या बहुत ही अस्थिर है। निपात ऋम से प्रत्येक कथा में १४ गाथाएँ होनी चाहिए। लेकिन इस निपात के जातको में गाथाओं की सख्या साधारणत १० के ब्रासपास है और एक में तो ४७ है। इसके ब्रागे के सात निपातों के नाम (१) वीसित निपात, (२) तिस, निपात, (३) चत्तालिस निपात, (४) पण्णास निपात, (५) छट्ठी निपात, (६) सत्ति निपात, (७) ब्रसीति निपात है। इन सभी निपातों के जातकों की गाथाओं में की संख्या अधिकाण की ब्रोर ही मुकी हुई है। ब्रन्त के दो निपातों में तो ६० और १०० से भी ऊपर हैं। बाइसवे निपात का नाम महानिपात उसके ब्राकार को देखते ठीक ही है। उसमें केवल दस जातक कथाएँ हैं, लेकिन प्रत्येक जातक में सैकडो गाथाएँ हैं और अन्तिम जातक—वेग्मन्तर जातक—में तो गाथाओं की सख्या सात सौ से भी ऊपर हैं।

इस प्रकार म्थूल दृष्टि से देखा जाए तो जातको की मक्या ५४७ है श्रौर कम से कम थेरवादियों के लिए निश्चित है। लेकिन जातकट्ट यण्णना की ही निदान-कथा में ही एक महागोविन्द जातक का उल्लेख है, जो इन ५४७ जातकों में कही नहीं है। सूत्र-पिटक में भी महागोविन्द की जन्म-कथा है; जो इस सग्रह से बाहर ही है, इससे श्रनुमान होता है कि जातकों की सन्ध्या ५४७ से श्रिष्टक रही है।

मगर इन ५४७ जातको मे कई ऐसे हैं जिनकी स्वतन्त्र रूप से पृथक गिनती भी हुई हैं, लेकिन वे केवल किसी दूसरे वडे जातक के ग्रन्तर्गत हैं। उदाहरण के लिए पञ्चपण्डित जातक (५०८) श्रीर दकरक्खस जातक (५१७) दोनों महाउम्मग जातक (५४६) मे हैं। एक ही जातक एक से श्रधिक जगह दो भिन्न भिन्न नामो से भी गिने गये हैं जैसे प्रथम खण्ड का मुनिक जातक (३०) श्रीर दूसरे खण्ड का सालूक जातक (२८६) एक ही जातक दो जगह एक ही नाम से भी ग्राए है; प्रथम खण्ड में भी मत्स्य-जातक है श्रीर द्वितीय खण्ड में भी मत्स्य-जातक है, किन्तु कथा भिन्न भिन्न है। एक ही खण्ड में जातकों की पुनरक्ति है; कही कही सारे जातक एक हैं केवल बहुत ही थोडा नाम मात्र का भेद है। इससे मानना होगा कि जातकों की ठीक सख्या ५४७ न होकर, काफी कम है। हम "जातकों" की वात कह रहे हैं, साधारण कथाश्रों

की नहीं। यदि "जातको" की गिनती न करके उन कथाग्रो तथा उपाख्यानो का हिसाब लगाया जाए तो जातकटुकथा के ग्रन्तर्गेय कुछ हजार कथाएँ होगी।

जातक-कथा ससार के कथा-साहित्य मे प्राचीन सग्रह ही नही, सर्वापेक्षा बडा भी है।

५० जातको के अन्त में "पठमपण्णासको" और फिर १०० के अन्त में जो "मिन्भिम पण्णासको" आया है, उससे श्री ईशानचन्द्र घोष ने अनुमान लगाया है कि जातक सग्रहकार के मन में ५०, ५० के परिच्छेदों का ध्यान रहा होगा। लेकिन त्रिपिटक के अन्य निकायों में भी तो पचास, पचास के अम से ही गिनती है। इस पचास पचास के अम मात्र से जातकों की अन्तिम सख्या के सम्बन्ध में किसी अनुमान की गुञ्जाइश नहीं।

मूल "जातक" में केवल गाथाएँ होने के कारण स्वभावतः जातकट्ठकथा में भी जातक-कथायों का वर्गीकरण गाथायों के अनुसार हुआ है। यह गाथायों की सख्या के अनुसार न होकर उनके विषय के अनुसार होता तो कदाचित् अधिक अञ्छा था। जातकों में विषय-कम से कोई वर्गीकरण नहीं।

एक से नौ-निपात तक के निपात वर्गों मे विभक्त है। इन वर्गों मे किसी किसी का नाम उस वर्ग के पहले जातक के प्रनुसार है, जैसे प्रपण्णक वर्ग, किसी किसी का उस वर्ग मे ग्राए जातको के विषय का ध्यान रखकर जैसे स्त्रीवर्ग; लेकिन उसी स्त्रीवर्ग मे कुदाल पण्टित की कथा है जिसका स्त्रीवर्ग से कोई सम्बन्ध नहीं।

जातकों के नायकरण में कुछ का नामकरण तो उस जातक में आई गाथा के पहले अब्दों का ध्यान रखकर किया गया है जैसे अपण्णक जातक (१), किसी का प्रधान पात्र के अनुसार जैसे बक जातक (३६), किसी का मुख्य विषय के अनुसार जैंगे कल्पुरा जातक (२), किसी का बोधिसत्त्व ने जो जन्म-ग्रहण किए, जिस मछली, हाथी या बन्दर की योनि में पैदा हुए उनके अनुसार। बोधिसत्त्व प्राय तपल्यी, राजा, बुक्षदेवता, ब्राह्मण आदि होकर पैदा हुए

<sup>ै</sup>श्री ईशान चन्द्र घोष का ब्रनुमान है कि लगभग तीन हजार होंगी । <sup>३</sup> क्**दाल जातक (७०)** ।

श्रौर कभी कभी सिह, हाथी, घोड़ा, गीदड़, कुत्ता श्रादि भी। कम से कम तीन बार चाण्टाल योनि में पैटा हुए। हाँ, एक बार जुग्रारी भी।

इस जातकद्रकथा का रचियता, संग्रहकर्ता वा ग्रनुवादक कौन है? महावंस' मे लिखा है कि ग्राचार्य्य वद्धघोप ग्रभिधम्म पिटक के प्रथम ग्रन्थ धम्मसगणि पर अत्थसालिनि टीका लिख चुकने के बाद भारत मे सिहल गए। सिहल जाने का उनका एकमात्र उद्देश्य था सिहल-भाषा में सुरक्षित अद्रकथाश्रो का पाली में श्रनवाद करना। ये श्रद्रकथाएँ कहते हैं महेन्द्र के साथ भारत से सिहल पहुँची, इन्ही का बुद्धघोष ने महास्थविर सघपाल की ग्रधीनता में महाविहार, अनुराधपुर में रहकर अध्ययन किया। जब वह विसृद्धिमग्ग नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखकर ग्रपनी उन श्रट्टकथाश्रो को पालि स्वरूप देने की अपनी योग्यता प्रमाणित कर चके, तभी सिहल के भिक्षसूच ने उन्हें उन सिहल अद्रकथात्रो को पालि मे अनुवाद करने की आज्ञा दी। महावस का कहना है कि उसने "सारी अद्रकथाओ" का पालि अनवाद किया। पता नही इन "सारी श्रद्रकथाग्रो" मे कौन कौन श्रद्रकथाएँ सम्मिलित है। श्राज हमें जो अद्रकथाएँ प्राप्य है, वे सब तो स्पष्ट रूप से आचार्य्य बद्धघोप रचित नही है। खुद्दकनिकाय के कई ग्रन्थो—थेरगाया, थेरीगाया, उदान, विमान, पेत-वत्य, इतिवृत्तक, चरियापिटक--पर महास्थविर धम्मपाल रचित स्रद्रकथाएँ है। जिनका समय तो निश्चित नहीं, लेकिन वे बुद्धघोष के बाद ही हए है। विनय-पिटक के ग्रन्थो तथा सुत्तपिटक के ग्रन्तर्गत चारो निकागो पर श्रद्भकथाएँ लिखने से भी ग्राचार्य्य बुद्धघोप "सारी प्रद्रकथाग्री" के रचियना वा अनुवादक माने जा सकते है। परम्परा तो उन्हे ही जातरहरू ना का भी अनुवादक मानती है; लेकिन अधिक सम्भावना यही है कि यह श्रेय किसी ग्रन्य ग्राचार्य्य को प्राप्त है।

जातकट्ठकथा के रचियता ग्रन्थ के ग्रारम्भ में कहते हैं कि "बुद्धधर्म की चिरस्थिति चाहने वाले ग्रर्थदर्शी स्थिवर सहवासी तथा एकान्तप्रेमी शान्त-चित्त पण्डित बुद्धभित्त, ग्रीर महिंशासक वंश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ शुद्धबुद्धि

<sup>ै</sup> महावंस परिच्छेद ३८, गाथा सख्या २१५–२४६

भिक्षु बुद्धदेव के कहने से महापुरुषों के चिंग्य के अनन्त प्रभाव का प्रकट करने वाली जातक प्रार्थ प्रणाना की भारति है। द वालों के भन के अनुसार व्याख्या कहाँगा। यहाँ इस प्रात्म-पिचयान्यक लेख में जो महिशासक सम्प्रदाय के बुद्धदेव का नाम है, वह कुछ वहुत अनोखा है, खटकने वाला है। महिशासक सम्प्रदाय स्थिवरवाद से बाहर निकला हुआ एक सम्प्रदाय था। महाविहार परम्परा शुद्ध स्थिवरवाद को ही मानने वाली परम्परा रही है। आचार्य्य बुद्धघोप ने अपनी सब अट्टकथाओं में इसी परम्परा को अपनाया है। यदि जानकटुकथा बुद्धघोप रचित मानी जाए, तो उसमें महिशासक सम्प्रदायी बुद्धदेव की याचना का क्या अर्थ ?

इन कारणो से श्राचार्य्य बुद्धघोष को जिन्हे श्रनेक दूसरी श्रहकथाएँ लिखने का श्रेय प्राप्त है, इस श्रहकथा का भी श्रेय देने की प्रवृत्ति नही होती।

इन कथाग्रो का ग्रन्तिम सग्रह वा सम्पादन किसी के भी हाथो हुग्रा हो किन्तु इनकी रचना में तथा इनके जातकट्टकथा का वर्तमान रूप धारण करने में कई शताब्दियाँ श्रवश्य लगी होगी। कुछ न कुछ जातको का उल्लेख तो स्थविरवाद तथा महायान के प्राचीनतम साहित्य में हैं। उनकी यथार्थ सख्या कह सकना कठिन हैं। सम्भव हैं कि इन कथाग्रो में से प्रनेक कथाएँ भगवान् बृद्ध से पूर्व की हैं। बृद्ध ने प्रपने उपदेशों में उनका उपयोग भर किया है।

कुछ ऐसा ग्रवीद्ध साहित्य हैं जो यद्यपि भगवान् बुद्ध से पूर्व का समभा जाता हैं, लेकिन उसकी परम्परा भले ही पुरानी रही हो, उसका सम्पादन पीछे ही हुग्रा हैं। उस साहित्य में ग्रीर बीद्ध कथा-साहित्य में जो साम्य हैं वह जहां एक दूसरे की लेन देन हो सकता है, वहाँ यही ग्रधिक सम्भव हैं कि एक ही मूलकथा ने दोनो जगह भिन्न भिन्न म्प घारण किया है।

जहाँ तक पालि वाड्मय का प्रपना सम्बन्ध है, उन कथाग्रो में से कुछ तिपिटक में स्वतन्त्र रूप से त्राई है। सारे निपिटक का वर्तमान स्वरूप कब स्थिर हुन्ना, इसके बारे में कोई निश्चित बात कह सकना बहुत कठिन हैं। महावस का तो मत है कि ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी में सिहल में राजा

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातकट्रकथा, उपोव्घात (पृ० १)।

वहुगामणी के समय अहुकथाओं सिहत सारा तिपिटक लेख बद्ध हो गया था। प्रतीत होता है कि तिपिटक तो वहुगामणी के समय प्रथम शताब्दी में ही अन्तिम रूप से स्थिर हो गया था; लेकिन अहुकथाओं ने तो बुद्धघोप के समय अर्थात पाँचवी सदी के आरम्भ में जाकर अन्तिम रूप ग्रहण किया होगा। यदि बुद्धघोष जातकहुकथाओं के अनुवादक वा सम्पादक न भी रहे हो, तो भी यह कार्य्य उनके बहुत पीछे नहीं हुआ।

इससे बहुत पहले (ई॰ पू॰ द्वितीय शताब्दी मे) इस सग्रह की ग्रनेक कथाग्रो को हम भरहुत के स्त्पो पर उनके नाम के साथ श्रिङ्कित पाते हैं। यद्यपि हम सारी कथाग्रो के लिए कोई भी एक समय निर्धारित करने में श्रसमर्थ हैं तो भी इतना कह सकते हैं कि इस सग्रह की कहानियाँ ईसा पूर्व पांचवी शनाब्दी के भी पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक ही रची गई होगी। यह जातक-सग्रह ग्रपने वर्तमान स्वरूप में कम से कम लगभग दो हजार वर्ष पुराना है।

जातक कथा-सग्रह शुद्ध भारतीय साहित्य होने से अबीद्ध साहित्य की कथाओं में भी इनसे साम्य वा इनका प्रभाव दिखाई देना स्वाभाविक है। तिपिटक में न महाभारत का कही उल्लेख है, न रामायण का। वुद्ध के आ्रासपास के किसी और साहित्य में भी नही। सिविजातक सदृश अनेक कथाओं ने महाभारत में स्थान पाया है। रामायण में बुद्ध का नाम श्राया है। इतना

<sup>ै</sup>पिटकत्तय पालि च तस्सा श्रट्ठकथंपि च मुखपाठेन श्रानेसुं पुब्बे भिक्खू महामति ; हानि दिस्वान सत्तानं तदा भिक्खू समागता चिरद्वितत्थं धम्मस्स पोत्थकेसु लिखापयुं॥

महावसं ॥ (३३, १००-१०२)

तीस से ब्रधिक जातक दृश्यों का निश्चय हो गया है—भरहुत शिलालेख ।

श्वे क्लोक प्रक्षिप्त माना जाता है; कहते हें प्राचीन प्रतियों में श्रप्राप्य है—
यथा हि चोरः स तथाहि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।।
तस्माद्धि यः शङ्कचतमः प्रजानां न नास्तिकेनाभिमुखो वुधः स्यात् ।।

श्रयोध्याकाण्डम् ।। १।१९।३४

ही नही सारा रामायण दसरथ जातक, देवधम्म जातक श्रादि कुछ जातक लेकर रचा प्रतीत होता है। यह साम्य कैसे हुआ ?

सामान्य लोगो का कहना है कि महाभारत ग्रौर रामायण इतने ग्रधिक प्राचीन ग्रन्थ है कि उनमें ग्रदि कोई परवर्ती उल्लेख पाया जाए तो उसे प्रक्षिप्त ही मानना चाहिए। दूसरे पक्ष का कहना है कि चाहे महाभारत रामायण के कुछ ग्रश की परम्परा प्राचीन भी रही हो तो भी उनके सम्पादकों ने उनका सम्पादन करते समय ग्रनेक बार इनमें बहुत कुछ मिला दिया। इसलिए महाभारत-रामायण तथा जातकों में यदि कुछ साम्य दिखाई देता है तो वह जातक-कथाग्रो की ही देन हैं।

हमारा अनुमान हैं कि किसी अश मे तो अबौद्ध और बौद्ध साहित्य दोनो एक ही परम्परा के ऋणी हैं। प्राचीन काल का कथा साहित्य आज की तरह

ै दसरथ जातक में है---

फलानं इव पक्कानं निच्वं पएतना भयं। एवं जातानं मच्चानं निच्चं मरणतो भयं॥५॥

रामायण में है--

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाव् भयं ।

एवं नराणां जातानं नान्यत्र मरणाद् भयं ॥

दसरथ जातक में है---

एको व मच्चो श्रच्चेति, एकोव जायते कुले ॥१०॥ रामायण में है—

यद् एको जायते जन्तुरेकेव विनश्यति । वसरथ जातक में है---

दसवस्स सहस्सानि सिंह वस्स सतानि च कम्बुगीयो महाबाहु रामो रज्जं श्रकारिय ॥१३॥ रामायण में हे—

> दश वर्ष सहस्राणि दश वर्ष शतानि च बीत शोक भय क्रोधो रामो राज्यं स्रकारयत ।।

स्पष्ट रूप से बौद्ध और ग्रबौद्ध विभाग में विभक्त नहीं था। उस समय एक ही कथा ने बौद्धों के हाथों बौद्ध रूप ग्राँर ग्रबौद्ध कलाकारों के हाथों पड़कर ग्रबौद्ध रूप धारण किया होगा।

तो भी इतना तो कहना ही होगा कि शक काल तक महाभारत ग्रीर रामायण का ग्रपने वर्तमान रूप में न तो ग्रस्तित्व दिखाई देता है न प्रचार। सारे देश में महाभारत श्रीर रामायण की कथा घर घर होती रही हो ग्रीर समकालीन साहित्य में उसके बारे में कही कुछ न हो, यह हो नहीं सकता। डा० भण्डारकर का कहना है कि पतञ्जिल के महाभाष्य तक में राम का नाम नहीं, श्रीर न किसी प्राचीन शिला लेख में। साधारणतया रामायण महाभारत से प्राचीन समभी जाती है। लेकिन बात उल्टी है। श्री० धम्मानन्द जी कोसम्बी का कहना है कि रामायण के रामचन्द्र श्रीर उनकी अयोध्या नगरी दोनों के भारतीय होने में शंका है। रामायण को छोड़कर पतञ्जिल के समय तक भी किसी प्राचीन सस्कृत-प्रन्थ में श्रयोध्या वा नाम नहीं श्राता। इसलिए चाहे रामायण की कथा में कुछ ऐतिहासिकता हो चाहे न हो महाभारत श्रीर रामायण में महाभारत ही श्रपेक्षाकृत प्राचीन है।

हाँ, पाँचवी शताब्दी में श्राचार्य्य बुद्धधोष महाभारत श्रीर रामायण से परिचित प्रतीत होते हैं। वे लिखते हैं—"श्राख्यान का मतलब है भारत-रामायण श्रादि। वह कथा जहाँ हो रही हो, वहाँ जाना योग्य नहीं।" फिर दूसरी जगह भारत-युद्ध सीता-हरण श्रादि को निर्थक कहा है। अपने जयिहस जातक (५१३) में राम के दण्डकारण्य जाने का उल्लेख हैं। अपने

<sup>&#</sup>x27;There is no mention of his (Rama's) name in such a work as that of patanjali, nor is there any old inscription in which it occurs

Vaishnavism Saivism etc. by R.G. Bhandarkar P. 66.

<sup>े</sup> श्रक्खानं ति भारत रामायणादि । तं यस्मि ठाने कथयति, तत्य गन्तुं न बहुति । (दी० नि० श्र० १।६४) ।

<sup>ै</sup> भारतयुद्ध सीता हरणादि निरत्थक कथा (दी० नि० म्र० १।८६)

जिस प्रविकसित रूप में जातक-कथा की कहानियों ने महाभारत प्रोर रामायण में श्राकर विकास पाया, उससे यही पक्ष ठीक मालूम होता है कि उन कथाश्रों के श्रारम्भिक रूप का लेखा जातक-कथाश्रों में विद्यमान हैं ग्रौर पीछे के सँवरे-मँजे रूप का महाभारत श्रीर रामायण में।

घट जातक, एक प्रकार से छोटा मोटा भागवत ही है। उसमे कृष्ण-जन्म से लेकर कस की हत्या करने और फिर द्वारिका जा बसने तक की सारी कथा आई है। उसमे चानूर और मुष्टिक पहलवानो की हत्या करने जैसी छोटी छोटी बाते भी है। लेकिन श्रीमद्भागवत स्पष्ट रूप से पीछे की चीज होने से इसमें सन्देह नहीं कि कृष्ण-जन्म की कथा अपने प्राचीन रूप में जातक में ही विद्यमान है।

कुछ भी हो महाभारत रामायण की कथाश्रो से मिलती जुलती जातक मे जो कथाएँ है, उनका अपना महत्त्व है श्रीर वह कम नही।

ईसा की प्रथम शताब्दी में ग्रान्ध्र राजाग्रो के समय गुणाढ्य नाम के किसी पण्डित ने पैशाची भाषा में "बृहत्कथा" नाम का एक ग्रन्थ लिखा था। पैशाची भाषा या तो ग्राधुनिक दरदी की पूर्वज भाषा थी या उज्जैन के पास की एक बोली। यह गुणाढ्य कौन थे, कहना किन है। इनकी "बृहत्कथा" एकदम ग्रप्राप्य है। ग्रव तक किसी के देखने में नही ग्राई। इससे नही कहा जा सकता कि वह "बृहत्कथा" कितनी बृहत् थी ग्रौर उसमें क्या क्या था। बाण के हर्षचरित में, दण्डी के काव्यादर्श में, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी में ग्रौर सोमदेव के कथा सरितसागर में उसका प्रमाण है। सोमदेव ने, जो कि एक बौढ़ था, ग्रपना कथा सरितसागर "बृहत्कथा" से ही सामग्री लेकर लिखा ग्रौर सोमदेव के कथा सरितसागर में ग्रनेक जातक-कथाएँ विद्यमान है। इससे ग्रनुमान होता है कि "वृहत्कथा" का ग्रादि श्रोन जानक-कथाएँ विद्यमान है। इससे ग्रनुमान होता है कि "वृहत्कथा" का ग्रादि श्रोन जानक-कथाएं ही रही होगी। प्रसिद्ध पञ्चतन्त्र की ग्रधिकाश कथाग्रों का मूल जातकों म ही है।

<sup>ै</sup>भारत भूमि श्रौर उसके निवासी (पृ० २४६) जयचन्द्र विद्यालंकार । ंबक जातक (३८) । २ वानरिन्द जातक (४८) । ३ कूट वाणिज जातक (६८) । ४ मिति चिन्ति जातक (११४) श्रादि।

उसका कर्ता ब्राह्मण था। बौद्ध कथाएँ जहाँ जन-साहित्य है श्रौर उनका उद्देश्य जनसाधारण का शिक्षण रहा है, वहाँ पञ्चतन्त्र के ब्राह्मण रचयिता ने उन कथाश्रो का उपयोग केवल राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए किया है।

हितोपदेश में श्लोको की अधिकता है। वे सचमुच हितोपदेश हैं। उसमें पञ्चतन्त्र से सहायता ली गई है और अनेक जातक-कथाएँ विद्यमान है।

श्राख्यायिका-साहित्य मे वैताल पञ्चिविशित का भी स्थान है। उसमें पता नहीं कोई जातक-कथा है वा नहीं ? सिहासन द्वात्रिशिका शुक्तमप्ति श्रादि श्रीर भी कई ग्रन्थ है। जैन वाड्मय में भी श्राख्यायिका साहित्य है ही। इस सारे साहित्य में श्रीर बौद्ध जातक कथाश्रो में कही न कहीं साम्य श्रवश्य है, जो श्रिधकाश में जातक-कथाश्रो के ही प्रभाव का परिणाम है।

जातक-कथाओं में कई कथाएँ ऐसी हैं जो पृथ्वी के प्राय हर कोने में पहुँच गई है। पञ्चतन्त्र ही इन कथाओं को फैलाने का मुख्य साधन बना प्रतीत होता है। छठी सदी में पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद पहलवी अथवा प्राचीन फारसी में हुआ। यह अनुवाद खुसरो नौशेरवाँ के राजवैद्य की कृति था। इसी अनुवाद से पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद सीरिया की भाषा में हुआ, जो जर्मन अनुवाद के साथ १८७६ में लीपिजिंग् से छपा। पञ्चतन्त्र ही का एक अरबी अनुवाद लगभग ७५० ई० में अलमीकाफ के पुत्र अब्दुल्ला ने किया; जिसका नाम था कलेला दमना। यह कथा-सग्रह अरबो को बहुत प्रिय हुआ। आगे चलकर जब अरब योरोप के दक्षिण देशों में फैले तो उन्हें इन कथाओं को यूरोप में फैलाने का श्रेय मिला।

१६१६ में पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद कलेला दमना (کلیله نس) का अग्रेजी अनुवाद हुआ। १४६३ में अर्बी अनुवाद से ही पञ्चतन्त्र जर्मन में अनूदित हुआ। १०६० में इस अरबी अनुवाद का ग्रीक भाषा में एक अनुवाद हो चुका था। १८६६ में इस ग्रीक अनुवाद से लातीनी भाषा में अनुवाद हुआ। इसी प्रकार १५वी सदी के अन्त में पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद का फारसी अनुवाद हुआ जिसका नाम है अनवार सहेली। १६४४ में उस अनवार सहेली से

<sup>ै</sup>दोनों नाम पञ्चतन्त्र के कर्कट ग्रौर दमनक के विकृत रूप है।

निन्ने दे ल्यूमिरे (Livre des Lumiercs), नाम से फेच अनुवाद हुआ। १८५० में भीक अनुवाद से इटली की भाषा में अनुवाद हुआ। १२५० में अरबी अनुवाद से ही हीन्नू में अनुवाद हुआ, और इसी सदी के अन्त में हीन्नू से लातीनी में भी। फिर आगे चलकर १८५४ में सीधा अरबी से भी एक अनुवाद हुआ।

ईसप् की कथाश्रो के नाम से जिन कथाश्रो का यूरोप में प्रचार है श्रौर जिनके कुछ अनुवाद हमारी भारतीय भाषाश्रो में, यहाँ तक कि सस्कृत में भी छप चुके हैं, उनका मूल उद्गम-स्थान कहाँ हैं ? श्री० रीजडेविड्स उन कथाश्रो के बारे में विस्तृत अन्वेपण करने के बाद इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उनमें से किसी कथा का किसी ईसप से सम्बन्ध नहीं हैं। 'ईसप-कथाश्रो' का प्रथम सग्रह मध्यम-युग में हुआ। उनमें से श्रिधकाश का मूल-स्थान हमारी जातक-कथाएँ ही हैं, श्रौर बहुत सम्भव हैं कि लगभग सभी का मूल-स्थान भारतवर्ष हैं।

पञ्चतन्त्र के जिस अरबी अनुवाद का हमने ऊपर उल्लेख किया है वह द्वी शताब्दी में बगदाद के खलीफा अलमसूर के दरबार में लिखा गया था। इसी खलीफा के दरबार में एक ईसाई पदाधिकारी था, जो बाद में सन्यासी हो गया। उसका नाम है उमसकस का सन्त जान (St John of Damascus)। उसने ग्रीक भाषा में अनेक किताबे लिखी। उन्हीं में एक किताब बरलाम एण्ड जोसफ (Barlaam and Joāsaph) है। इस कथा के जोसफ कौन हैं? स्वय बुद्ध। ऊपर कह आए हैं कि बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व अपने पिछले और अन्तिम जन्म में बुद्ध बोधिसत्त्व कहलाए। यह बोधिसत्त्व ही बोसत और फिर जोसफ बना। सन्त जान की इस किताब में बुद्ध का आशिक चरित्र और अनेक जातक कथाएँ है।

<sup>ै</sup> श्रहमद नगर के श्री० बालकृष्ण गोडबोले ने संस्कृत में श्रनुवाद किया था।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup>श्री० मैकडानल के श्रनुसार बित्रयू ने २०० ई० में ईसप् कथाश्रो को लिखा। (इण्डियाज पास्ट पुष्ठ १२५)।

<sup>े</sup> बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज पृ० ३२

ग्ररबी के कलैला दमना की तरह यह ग्रन्थ लोगो को बहुत प्रिय हुग्रा ग्रौर इसका प्रचार भी बहुत हुग्रा। ग्रनेक यूरोपिय भाषाग्रो मे इसका श्रनु-वाद किया गया। यह ग्रन्थ लातीनी, फेच, इटालियन, स्पैनिश, जर्मन, श्रग्रेजी, स्वेडिश ग्रौर डच मे प्राप्य है। १२०४ मे ग्राटसलैण्ट की भाषा मे भी इसका ग्रनुवाद हुग्रा; ग्रौर फिलिपाइन द्वीप मे जो स्पेन-बोली बोली जाती है, उस तक मे यह प्रकाशित हो चुका है।

कितने ही स्राश्चर्यं की बात प्रतीत होने पर भी यह सत्य है कि सन्त जोसफत के रूप में भगवान् बुद्ध श्राज सारे रोमन कैथालिक ईसाइयों द्वारा स्वीकृत है, श्रादृत है श्रौर पूजे जा रहे हैं।

इन जातक कथाश्रो के प्रसार और प्रभाव की कथा श्रनन्त प्रतीत होती है। एक इटालियन विद्वान ने सिद्ध किया है कि किताब उल् सिन्दबाद की श्रनेक कथाश्रो का श्रौर श्रलिफलेला ( $\Lambda$ 1abian Nights) की श्रनेक कथाश्रो का भी मूल-स्थान जातक-कथाएँ ही है।

जिस समय हूण पूर्वी यूरोप में गए तो वे भी श्रपने साथ जातक कथाश्रों में से कुछ ले गए। बहुत सी ऐसी कथाएँ जिनका मूल जातक कथाश्रों में हैं सलाव लोगों में मिली हैं।

बौद्ध देशो में जातक कथाग्रो का प्रचार है ही।

इस प्रकार जातक वाङ्मय चाहे उसे प्राचीनता की दृष्टि से देखें, चाहे विस्तार की, श्रौर चाहे उपदेशपरक तथा मनोरञ्जक होने की दृष्टि से, बह ससार में श्रपना सानी नहीं रखता।

श्रट्ठकथानुसार इन कथाश्रो में से तीन चौथाई कहानियाँ जेतवन विहार में कही गईं। शेष राजगृह तथा श्रन्य कोसम्बी, वैशाली श्रादि स्थानों में।

जातक कथास्रो में जो वर्तमान कथाएँ हैं, ऊपरी दृष्टि से देखने से, उनका ऐतिहासिक मूल्य श्रधिक प्रतीत होता है। वे कथाएँ उतनी ऐतिहासिक नहीं

<sup>ै</sup>देखो पोप सिक्सटस् (१४८४-६०) की २७ नवम्बर की डिक्री जिसमें भारत के बरलाम श्रीर जोसफत को कैयालिक ईसाइयों के सन्तों के रूप में स्वीकृत किया है।

हैं जितनी काल्पनिक । वर्तमान-कथाग्रो की ग्रपेक्षा ग्रतीत-कथाग्रो का ऐतिहासिक मुल्य कही ग्रधिक हैं ?

प्राय' सभी जातको के ग्रारम्भ में "पूर्व काल में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" ग्राता हैं। पता नहीं यह ब्रह्मदत्त कोई राजा हुग्रा है वा नहीं ? कुछ लोगों का ख्याल हैं कि 'जनक' की तरह यह ब्रह्मदत्त भी श्रनेक राजाग्रों की पदवी रही होगीं। हमारा तो ख्याल हैं कि कथाग्रों में ब्रह्मदत्त का मूल्य कथा ग्रारम्भ करने के लिए एक निश्चित शब्द-समूह से ग्रधिक कुछ नहीं; जैसे उर्दू की प्राय हर कहानी 'एक दफा का जिकर हैं' से ग्रारम्भ होती हैं, ग्रौर ग्रग्नेजी की वन्स ग्रपान ए टाइम (Once upon a time) से, वैसे ही हमारी ग्रनेक जातक कथाग्रों के लिए 'पूर्व काल में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय' हैं।

जातक कथाग्रो के विषयों के बारे में थोड़े में कुछ भी कह सकना किटन हैं। मानवजीवन का कोई भी पहलू इन कथाग्रो से ग्रछ्ता बचा प्रतीत नहीं होता। यही वजह हैं कि पिछले दो सहस्र वर्ष के इतिहास में यह जातक कथाएँ मनुष्य समाज पर ग्रनेक रूप से ग्रपनी छाप छोड़ने में समर्थ हुई हैं।

जब कभी कहा जाता है कि भारतवर्ष का सारा साहित्य परलोक चिन्ता-मय है, उसको इहलोक की चिन्ता ही नही, तो हम उसे अपनी और अपने वाड्-मय की प्रश्नसा समभते हैं। किसी भी जाति का काम केवल परलोक-परक होने से नहीं चल सकता। भगवान् बुद्ध ने इह लोक तथा परलोक चिन्ता में समत्व स्थापित किया। यहीं कारण है कि जातक कथाग्रो को बौद्ध वाड्मय में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला और उनका विकास हुआ। जातक साहित्य जन-साहित्य के सच्चे अर्थों में जनता का साहित्य है। इसमें हमारे उठने बैठने खाने पीने, ब्रोढने विछाने की साधारण वातों से लेकर हमारी जिल्पकला, हमारी कारीगरी, हमारे व्यापार की चर्चा के साथ हमारी प्रर्थनीति, राज-नीति तथा हमारे समाज के सगटन का विस्तृत इतिहास भरा पड़ा है। उस युग के भू-वृत्त की भी पर्याप्त सामग्री है, विशेष रूप से उस युग के जल-मार्गी तथा स्थल-भार्गी की।

भारतीय जीवन का कोई पहलू ऐसा नही जिसका लेखा उन कथाश्रो में न मिलता हो। यदि भविष्य में हमारा इतिहास राजाश्रो की जन्म-मरण तिथियो का लेखा मात्र न रह कर जनता के जन्म-मरण के इतिहास के रूप में यथार्थ ढग से लिखे जाने को है, तो प्राचीन काल के वैसे इतिहास के लिए इन कथाग्रो का मूल्य बहुत ही ग्रधिक है।

यदि मनोरञ्जन के साथ साथ उपदेश ग्रहण करना हो, यदि हृदय को उदार तथा शुद्ध बनाने वाली कथाग्रो के साथ साथ बुद्धि को प्रखर करने वाली कथाएँ पढ़नी हो, यदि ग्रपने देश की प्राचीन ग्राधिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक ग्रवस्था से परिचित होना हो, तो हम जातक कथाग्रों से बढ़ कर किसी दूसरे साहित्य की सिफारिश नहीं कर सकते।

### $\times$ $\times$ $\times$

१६३३ में में इगलैण्ड में था। श्रद्धेय राहुल जी का पत्र श्राया कि बौद्ध ग्रन्थों को हिन्दी में लाने की एक पञ्चवर्णीय योजना बनी हैं, तुम्हारे हिस्से में केवल जातक-कथाग्रों का हिन्दी अनुवाद श्राया हैं, इसे तुम्हें ही कर डालना होगा। १६३४ में जब में इगलैण्ड से सिहल लीटा श्रीर वहाँ से पीनाङ्ग श्राया तो उस वर्ष पीनाङ्ग-निवास के दिनों में मेरा मुख्य कार्य्य जातक कथाग्रों का अनुवाद ही रहा। वहाँ में जानोदय बौद्धसभा का श्रतिथि था श्रीर सीभाग्य-वश मुक्ते आदरणीय स्थविर गुणरत्न जी का साक्षिध्य प्राप्त हुग्ना। परिश्रम श्रिधक करना पड़ा किन्तु राहुल जी की इच्छा के श्रनुसार निदान-कथा श्रीर प्रथम परिच्छेद की सौ जातक कथाग्रों का श्रनुवाद उसी वर्षी-वास के श्रन्त में समाप्त हो गया। भाई गुणरत्न जी ने श्रपनी बहुज्ञता से श्रनुवाद कार्य्य में श्रीर उसे मूल पालि से मिलाने में वडी सहायता की।

१६३५ में मैं स्याम के रास्ते भारत चला आया। आनोदय बौद्ध सभा वाले चाहते थे कि जातक कथा के प्रकाशित करने का पुण्य वे ही प्राप्त करें। किन्तु इससे पहले पञ्जाब विश्वविद्यालय के सस्कृत डिपार्टमेंट के श्रध्यक्ष डा० लक्ष्मण स्वरूप जी इन कथाओं को छपाने के लिए राहुल जी को लिख चुके थे, और राहुल जी ने भी उन्हें लिख दिया था। इसलिए मैंने पीनाङ्ग वालों से कहा कि भारत की कथाएँ भारत के ही पैसे से छपे तो ही ठीक होगा।

१६३५ में मैंने जो कुछ पीनाङ्ग में लिखा था, वह राहुल जी को लाकर दे दिया। उन्होंने उसे डाक्टर लक्षमण स्वरूप के पास लाहौर भेज दिया। छपाई श्रारम्भ हुई। श्रनुवादक सारनाथ में, छपाई लाहौर में, प्रूफ के श्राने जाने में देर लग जाएगी; इस ख्याल से प्रूफ लाहौर में ही देखें जाने लगे। निदान-कथा श्रौर बारह-कथाएँ छपी। किन्तु यह प्रबन्ध सन्तोषजनक सिद्ध न हुग्रा। जितना श्रश छप चुका था, उतना ही 'प्रथम-भाग' बनकर प्रकाशित हुग्रा।

इस प्रकार जातक कथाग्री के ग्रारम्भिक भाग को हिन्दी मे प्रकाशित करने का प्रथम श्रेय डाक्टर साहब को है, जिनका मैं कृतज्ञ हुँ।

लगभग ढाई तीन वर्ष पाण्डुलिपि मेरे पास रही। हिन्दी के कई प्रकाशको ने उसे प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु यह कार्य्य जरा बड़ा था। कई प्रकाशको ने चुनी हुई कहानियाँ माँगी। मेरा कहना था कि में कहानी-लेखक नहीं हूँ, में तो अनुवादक का धर्म पूरा करना चाहता हूँ।

पिछले वर्ष ग्रादरणीय श्री० पुरुषोत्तमदास जी टण्डन की प्रेरणा से जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य समिति ने जातक कथाश्रो के हिन्दी ग्रन्ताद को प्रकाशित करने का सकल्प किया, तो मुफ्ते लगा कि ग्रब यह कार्य्य सम्पन्न होकर रहेगा। उस सन्ध्या को जब श्री० टण्डन जी ने मेरा सारनाथ लौटना रोक कर श्री० उदयनारायण त्रिपाठी के साथ "ग्राज ही ग्रौर ग्रभी प्रेस जाकर सब निश्चय कर ग्राने के लिए" कहा तो मैंने समफा कि टण्डन जी के सोचने ग्रौर कार्य्य करने में कितना कम ग्रन्तर है। टण्डन जी ग्रोर साहित्य सम्मेलन ग्रविभाज्य है। टण्डन जी साहित्य सम्मेलन है; ग्रौर साहित्य सम्मेलन टण्डन जी। तो भी मैं इस ग्रवसर पर टण्डन जी के प्रति व्यक्तिगत रूप से ग्रपनी कृतज्ञता प्रकट किए बिना नही रह सकता।

सम्मेलन के साहित्यमन्त्री श्री० ज्योतिष्रसाद मिश्र निर्मल जी तथा सहायक मन्त्री श्री० नारायणदत्त जी पाण्डेय ने जातक की छपाई को बिल्कुल श्रपना काम समभा।

मेरे भाग्य से जिस समय जातक लॉ जर्नल प्रेस में छ्रा रहा था, उसी समय श्री० कोसम्बी जी बम्बई से सारनाथ श्राए श्रीर यही रहने लगे। उन्होंने मेरे सारे यनुवाद को सुनने की कृपा की, श्रीर श्रनेक एसी भूलों का जो मेरे श्रज्ञान वा प्रमावधानी के कारण रह गई थी, मार्जन कर दिया। मुभे सन्तोष है कि श्रब यह श्रनुवाद एक प्रकार से शायद निर्दोष कहा जा सकता है। यह कोसम्बी जी की ही कृपा का फल है।

पूज्य महास्थिविर बोधानन्द जी का ग्राशीर्वाद मिलता रहा है। भाई जगदीश काश्यप जी ग्रादि सभी सारनाथ-वासी समय समय पर इस कार्य्य में ग्रनेक प्रकार से सहायक होते रहे। ग्रपनो को क्या धन्यवाद दिया जाए?

प्रथम-खण्ड में जातकट्ठकथा की निदान-कथा और एक मौ कथाएँ हैं। दूसरे खण्ड में (जो प्रेस में हैं) दो सौ कथाएँ रहेगी। इस प्रकार प्रथम दो खण्डों में तीन सौ कथाओं का समावेश हो जाएगा। शेष दो मी सैतालीस कथाएँ उत्तरोत्तर लम्बी होती जाती हैं। श्राशा है, पाठक किसी दिन सभी को हिन्दी में श्रनूदित पढ़ सकेगे।

श्रद्धेय श्री० जयचन्द्र जी तथा कुछ मित्रो का ग्राग्रह रहा है कि भूमिका में जातकों के ग्राधार पर तत्कालीन ग्रवस्था का विस्तृत दिग्दर्शन रहना चाहिए श्रीर रहना चाहिए जातकों में उपलब्ध सामग्री का ऐतिहासिक विश्लेषण। इसके लिए जातकों के जिस मन्थन की ग्रावश्यकता है वह सभी जातकों का ग्रनुवाद छप चुकने पर ही सम्भव प्रतीत हुग्रा। तत्काल ग्रनुवादक की भीगा के ग्रन्दर रहने में ही सन्तोष मानना पडा।

भाई अमृत पाल जी की सहायता से पुस्तक के लिए जो नकशा बनाया गया है, हो सकता है कि जातको का अनुवाद समाप्त होने पर उसमें कही कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पडें। तब तक के लिए आशा है पाठक इसें स्वीकार करेंगे।

मैने यह अनुवाद सिहल अक्षरों में हेवावितारण ट्रस्ट की श्रोर से छपी पालि अट्ठकथा से किया हैं। कहीं कहीं सिन्दिग्ध स्थल होने पर श्री० फोसबोल द्वारा रोमन अक्षरों में सम्पादित पालि टैक्स्ट को भी देख लेता रहा हूँ। मैं दोनों का ऋणी हुँ।

अनुवाद मे पालि जातको का सिहल अनुवाद और विशेष रूप से पालि गाथाओं का सिहल अनुवाद सहायक हुआ है। सन्देह होने पर कभी कभी बॅगला अनुवाद तथा अग्रेजी अनुवाद को भी देख लिया है।

बँगला और अग्रेजी अनुवादों में पालि गाथाओं का पद्य-बद्ध अनुवाद है। में किव न होने से वैसा नहीं कर सका। मुभ्में पालि में मूल गाथाएँ देकर, उनके नीचे अपना हिन्दी अनुवाद दे देना ही अधिक अच्छा जँचा। पुस्तक में केवल दो ही तरह के टाइपो का प्रयोग है—काला और सफेद। काले टाइप में जो हैं वह पालि है, अथवा पालि गाथाओं का अनुवाद, और जहाँ कही सफेद टाइप में काला टाइप हैं वह पालि शब्दों के लिए हैं या पारि-भाषिक तथा महत्त्व-पूर्ण शब्दों के लिए।

पुस्तक की सुन्दर छपाई का श्रेय ला जर्नल प्रेस को है। उसके स्टाफ ने इसकी छपाई में हर तरह से सहयोग दिया है।

श्रपनी श्रोर से पूरी सावधानी रखने पर भी भूल हो जाना मानव स्वभाव है; मुक्तसे भी कुछ श्रवश्य हुई होगी। श्राणा है विज्ञजन सूचिन करने की दया दिखावेगे।

मूलगन्धकुटी विहार सारनाथ २३-८-४१

**त्र्यानन्द कौसल्यायन** 



# विषय-सूची

1	विषय		पृष्ठ
उपोद्घात	त		8
क. दूरेनि	दान		२
₹.	सुमेध (बाल्य, वैराग्य)		२
२	सन्यास		৩
₹.	<b>ग्रा</b> श्रम		5
٧.	दीपङ्कर का दर्शन		१५
	बुद्ध बनने का सकल्प		3 \$
Ę	दीपद्धर की भविष्यद्वाणी		२१
৩	सुमेध का दृढ सकल्प		२४
দ.	दस पारमिताएँ		२७
3	पहले के बुद्ध		३६
	धर्मो का ग्राचरण .		प्र७
ख. श्रविद	्रेनिदान		६२
१. गौत	म का बाल्य चरित		६२
१	देवलोक से मनुष्यलोक की ग्रोर .		६२
	बोधिसत्त्व का जन्म, कुल, देश श्रादि	•	६३
	माया देवी के गर्भ में .		६५
٧.	सिद्धार्थं का जन्म		६८
<b>y.</b>	कालदेवल की भविष्यद्वाणी		७१
દ્દ્	ज्योतिषी की भविष्यद्वाणी .		७३
	शैशव का एक चमत्कार		७५

# [ ३= ]

विषय			पुष्ठ
२. गौतम का चरित		•	७६
१. यौवनप्रवेश .			७६
२. जरा, व्याधि, मृत्यु ग्रौर सन्यासी दर्शन		•	७६
३. पुत्र-जन्म			<u> </u>
४. गृह-त्याग			50
३. गौतम का संन्यास	•		=8
१. भिक्षुवेश में			56
२. राजगृह में भिक्षाटन			<b>5</b> ٤
३. तपस्या			দও
४. सुजाता की खीर	•		32
५. मार विजय			ફ રૂ
६. बुद्ध पद का लाभ .			63
ग. सन्तिके निदान			33
१. बोधिवृक्ष के स्रासपास			٤۶
२. ग्रजपाल बर्गद के नीचे			१००
३. मुचलिन्द वृक्ष के नीचे			१०२
४. धर्म-प्रचार			१०३
५. बनारस (सारनाथ)			१०४
६. प्रथम उपदेश, धर्मचक प्रवर्तन			१०५
७. उक्त्वेला की श्रोर			१०६
<ul><li>पाजा विम्बिसार का बौद्ध होना</li><li>.</li></ul>			१०६
६. सारिपुत्र स्रौर मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या			१०१
१०. शुद्धोदन का सदेश .	•		११०
११. कपिलवस्तु गमन	•		११२
१२. सम्बन्धियो से मिलन .	•		११५
१३. पुत्र को दाय-भाग			११ः
१४. स्रनाथपिण्डिक का दान			१११

		C	
		विषय	पृष्ठ
	पह	इला परिच्छेद	१२३
٤٠	अ	परम्यक वर्ग	१२३
	٤.	श्रपण्णक जातक	१२३
		[दो बनजारे व्यापार के लिए जाते हैं। एक मूर्खता के कारण दैत्य के हाथो मारा जाता है। दूसरा बुद्धिमान होने के कारण दैत्य के चगुल मे नहीं फँसता ग्रौर घन लाभ कर श्रपने पाँच सौ साथियो सहित सक्शक वापिस ग्राता है।]	
	₹.	वण्णुपथ जातक .	१३६
		[कान्तार मे पानी के न मिलने से पाँच सौ व्यापारियों की जान जानेवाली हैं। बोधिसत्त्व के उत्साह दिलाने से बिना श्रत तक निराश हुए एक तरुण जमीन खोद कर पानी निकाल कर ही छोड़ता हैं।]	
	₹.	सेरिवाणिज जातक	१४२
		[ लालची व्यापारी सोने की थाली मुफ्त मे ही लेना चाहता है। बोधिसत्त्व उसका यथार्थ मूल्य कहकर ले जाते हैं। लोभी व्यापारी का हृदय फट जाता है।	
	٧,	चुल्लसेट्टि जातक	१४६
		[एक तरुण को एक मरा हुन्ना चूहा मिलता है। उसी से वह शनैः शनै उन्नति करता हुन्ना महाधनवान हो नगर के श्रेष्ठी का पद प्राप्त करता है।]	

	~	
	विषय	पुष्ठ
ሂ.	तण्डुलनालि जातक .	१५६
	[लोभवश राजा एक मूर्ख ग्रादमी को ग्रपना ग्रर्घ कारक बनाता है। वह पाँच सौ घोडो का मूल्य एक तण्डुल-नालि बताता है; फिर उस तण्डुल-नालि का मूल्य	
	बताता है भीतर-बाहर बाराणसी।]	
ξ.	देवधम्म जातक	१६३
	[मिहिसास कुमार एक उदक राक्षस के देवधर्में सम्बन्धी प्रश्न का यथार्थ उत्तर दे ऋपने दोनों भाइयो सूर्यकुमार तथा चन्द्रकुमार की जान बचाता है।]	
७.	कट्ठहारि जातक	१७३
	[राजा ब्रह्मदत्त बन में गा गाकर लकडी चुनने वाली एक लड़की पर श्रासक्त हो जाता है। उसे गर्भ रहता है। राजा लड़की को एक श्रॅंगूटी दे जाता है। जब लड़की पुत्र सहित राजा के पास जाती है, तो राजा उसे पहचान नहीं सकता। पीछे उसे पुत्र को श्रपनाना पड़ता है।]	
٦.	गामणी जातक	१७६
ε.	मखादेव जातक [ राजा को सिर का सफेद बाल दिखाई दिया। उसने इसे मृत्यु की पूर्व-सूचना समभ रार्जासहासन त्याग प्रत्रजित हो योगाभ्यास किया।]	१७८
१०.	सुखिवहारी जातक [राजा सन्यासी होकर सन्यास-सुख के श्रानन्द मे उल्लास-वाक्य कहता है।]	१द२

विषय		पृष्ठ
२. सील वर्ग	•	१=६
११. लक्खण जातक		१८६
	मूर्लं मृग के सभी श्रन्यायी मारे जाते नुयाइयो सहित सकुशल लौटता है।]	
१२. निग्रोधमृग जातक		१८०
राजा के रसोई घर के एक एक मृग रोज जाय दिन न जाकर दूसरे रि दल के सरदार से कह ही जाने। दूसरे दल चला गया। राजा ने	लो ने निश्चय किया कि बनारस के लिए वारी बारी से एक एक दल का । एक गर्भिणी मृगी अपनी बारी के देन जाना चाहती थी। उसने अपने । नेता बोला—जिसकी बारी वह का नेता उस मृगी के बदले स्वय उसके आत्म-त्याग से प्रभावित होकर ना ही छोड दिया।	
१३. कण्डिन जातक		२००
[कामुकता के हाथो मारा गया ।]	वशीभूत हो एक मृग शिकारी के	
१४. वातमिग जातक		२०३
[ रस-तृष्णा के व	ब्शीभृत हो एक मृग पकडा गया ।]	
१५. खरादिय जातक		२०७
[ एक बात न + के कारण पकडा गया ।	गनन वाला मृग शिक्षाकामी न होने ]	
१६. तिपल्लत्थमिग जातक		२०६
	नने वाला मृग शिक्षाकामी होने से कुशल वचकर चला भ्राया ।]	

विषय	पृष्ठ
१७. मास्त जातक	488
[शीत के बारे मे विवाद। शीत न कृष्णपक्ष में	
होता है न शुक्लपक्ष में । जब हवा चलती है, तभी शीत	
होता है ।]	
१८. मतकभत्त जातक	२१६
[एक ब्राह्मण श्राद्ध के हेतु भेडे की मारने जा रहा	
था। भेडा हँसा ग्रौर रोया। ब्राह्मण के पृछने पर कारण	
कहा । ]	
१६. ग्रायाचितभत्त जातक	२१६
[एक कुटुम्बी को वृक्षदेवता का पारीया । ]	
२०. नलपाण जातक	२२१
[तालाब का राक्षस तालाब मे उतर कर पानी	
पीने वालो को पकड लेता था। बन्दरों ने बोधिसत्त्व का	
कहना मान सरकण्डो की सहायता से किनारे पर बैठे ही	
बैठे पानी पिया । राक्षस उनका कुछ न विगा <b>ड सका ।</b> ]	
३. कुरुंग वर्ग · · ·	२२५
२१. कुरुंगमिग जातक	२२५
[वृक्ष पर बैठे हुए शिकारी ने मृग को लुभाने के	
लिए उसकी स्रोर बढाकर फल गिराए। मृग समक गया,	
बोला—हे वृक्ष, पहले तू फलों को सीधा जमीन पर गिराता	
था। ग्रब ग्रपने धर्म को छोडकर ग्रागे बढाकर गिरा	
रहा है । इसलिए मैं भी ग्रब दूसरी जगह जा रहा हूँ । ]	
२२. कुक्कुर जातक	२२७
[कुत्तो ने राजा के रथ के चमडे ग्रीर रस्सी को	
खा लिया। राजा ने महल के कुत्तो के ग्रातिरिक्त शेप	

### [ \$8 ]

	विषय	पुष्ठ
	सभी कुत्तो को मरवाना स्रारम्भ किया । वास्तविक स्रपराधी महल के कुत्त ही थे । बोधिसत्त्व ने कुत्तो की जान वचाई ।]	
२३.	भोजाजानीय जातक	२३२
	[ किसी दूसरे घोडे से युद्ध न जीता जा सकता था। भोजाजानीय अथव ने जखमी होने पर भी युद्ध किया श्रीर विजय पाई।	
२४.	भ्राजञ्ञ जातक	२३४
	[पूर्व जानक के सदृश ही श्राजञ्ञा घोडे ने श्रपना पराक्रम दिखाया।]	
२५.	तित्थ जातक	२३७
	[राजा का माङ्गिलिक बोडा श्रभ्यस्त तीर्थ पर नहाना नहीं चाहता था। बोधिसत्त्व ने उसका श्राश्य जान, उसे गये तीर्थ पर स्नान करवाया।]	
२६.	महिलामुदा जातक	२४२
	[चोरो की बातचीत मुन महिलामुख हाथी उद्ण्ड हो गया। फिर साधुजनो की बातचीत सुनकर शान्त हुम्रा।]	
२७.	ग्रमिण्ह जातक	२४६
	[कत्ते ग्रीर हाथी का परस्पर इतना स्नेह था कि कुत्ते का साथ छूटने पर हाथी ने खाना त्याग दिया।]	
२८.	नन्दिविसाल जातक	३४६
	[एक श्रादमी ने श्रपने बैंग के भरोसे दूसरे से शर्त लगाई। गाडी खीचने के समय बैंग को श्रपशब्द कह दिया। बैंग ने गाडी न सीची। श्रादमी बाजी हार गया। फिर दुबारा श्रपशब्द न कहने की प्रतिज्ञा करा बैंग ने उसे	•
	दोहरी बाजी जिताई।]	

	विषय	पुष्ठ
२६.	कण्ह जातक	२४२
	[ एक बैल ने ग्रपनी बृढिया माँ को जिसने उसे पाला	
	था मजदूरी कमाकर एक हजार कार्षापण लाकर दिए । ]	
₹0.	मुनिक जातक	२५६
	[एक सुग्रर को खूब खिला पिलाकर मोटा किया	
	जा रहा था। एक बेल ने ईर्ष्या की। दूसरे ने कहा—	
	ईर्ष्या मत कर । यह केवल इसका मरण-भोजन है ।]	
৪. কু	लावक वर्ग \cdots \cdots 🕟	348
३१.	कुलावक जातक	२५६
	[मघ माणवक ने ग्रामसुधार के उपायो द्वारा ग्राम-	
	वासियो को सदाचारी बनाया। ग्राम-भोजक को बुरा	
	लगा। उसने राजा से भूठी शिकायत की। राजा ने	
	मघ माणवक पर हाथी छुडवाया । मघ माणवक के मैत्री-	
	बल के कारण हाथी ने उसे कुछ न कहा। राजा ने प्रसन्न हो	
	बोधिसत्त्व को मुक्त किया। उस समय से वह यथेच्छ पुण्य	
	करने लगे ।]	
३२.	नच्च जातक	२६८
	[हस बच्ची ने मोर के सौदर्य पर मुग्ध हो उसे भ्रपना	
	पित चुना। मोर प्रसन्नता के मारे नाचने लगा। हंस ने	
	उसे लाज शरम छोड नाचते देख लड़की देने से इनकार कर	
	दिया । ]	
<b>3</b> 3.	. सम्मोदमान जातक	२७१
	[जब तक बटेरो का एक मत रहा चिड़ीमार उनका	
	कुछ न बिगाड सका। जब मतभेद हुग्रा, तो सभी चिड़ी-	
	मार के जाल में फँस गए । ]	

	विषय	Princeto.
		पृष्ठ
₹४.		२७४
	[एक मत्स्य श्रपनी मछली के साथ रति-क्रीडा	
	करता हुम्रा पकडा गया । ]	
३५.	वट्टक जातक	२७६
	[जंगल मे स्राग लगने पर बटेर-पोतक के माता	
	पिता उसे घोसले में छोड चले गए। बटेर-पोतक ने सत्य-	
	किया की । श्राग बुक्त गई ।]	
₹६.	सकुण जातक	२८१
	[वृक्ष पर पक्षीगण रहते थे। शाखाग्रो के परस्पर	
	रगड़ खाने से वृक्ष मे स्राग लग गई। बोधिसत्त्व ने सब	
	पक्षियो को ग्रन्यत्र जाने को कहा ।]	
₹७.	तित्तिर जातक	२८३
	[बन्दर, हाथी ग्रौर तित्तिर ने ग्रापस मे विचार कर	
	निश्चय किया कि जो ज्येष्ठ हो उसका ग्रादर सत्कार होना	
	चाहिए ।]	
३८.	बक जातक	२८७
	बिगुले ने मछलियो को घोखा दे दे एक एक को	
	ले जाकर मार कर खाया। ग्रत मे वह एक केकडे के हाय	
	से मारा गया ।]	
₹€.	नन्द जातक	२६२
	[एक गृहपति मरते समय गडा धन छोड गया।	
	नौकर जब उसके लडके को वह स्थान बताने जाना, तो	
	वहाँ पहुँ नते ही धन की गर्मी के कारण गालियाँ वकने	
	लगता ।]	

विषय	पृष्ठ
४०. खदिरंगार जातक	२६५
[मार ने बहुत कोशिश की कि प्रत्येक-बृढ़ को भिक्षा	
न मिले। बोधिसत्त्व ने दहकते हुए ग्रङ्गारो मे जल मरने की	
भी परवाह न कर दान दिया । ]	
५.	३०६
४१. लोसक जातक .	३०६
[विहारवासी भिक्षु ने ग्रागन्तुक भिक्षु के प्रति	
ईर्ष्यालु हो एक गृहस्थ से भूठी निन्दा की। गृहस्थ ने	
उसके लिए जो भोजन दिया, वह भी उसे नही दिया। इस	
दुष्कर्म के फलस्वरूप उसे नरक भोगना पडा।	
४२. कपोत जातक .	३१५
[एक कौम्रा रस तृष्णा के वशीभूत हो कबूतर के साथ रहने लगा। रोज साथ चुगने जाता था। एक दिन बहाना बना कर नहीं गया। घर पर उसने रसोइए की अनुपस्थिति में चोरी से मांस खाना चाहा। रसोइए ने उसके पर नोच उनमें निमक मसाला लगा उसे छीके में फेक दिया।	
४३ <b>. वेळुक जातक</b> [तपस्वी ने साँप के बच्चे को पाला, जिसने उसे डस कर मार डाला।]	<b>39€</b> T
४४. मकस जातक	३२१
[बढई ने भ्रपने लड़के को सिर पर बैठे मच्छर के हटाने के लिए कहा । लड़के ने मच्छर को मारने जाक कुल्हाडे से पिता को ही मार डाला ।]	

	विषय	पृष्ठ
<b>४</b> ५.	रोहिणी जातक	३२३
	[रोहिणी नाम की दास्री ने ग्रपने माता के सिर की मिक्खयाँ हटाने जाकर माता को मार डाला।]	
४६.	श्रारामदूसक जातक	३२४
	[ माली बानरो को उद्यान सौप कर गया कि उसकी अनुपस्थिति मे पानी सीचते रहे। बानरो ने पौदो को उखाड उखाड कर उनकी जडो की लम्बाई के अनुसार कम या अधिक पानी सीचा।]	
४७.	वारुणी जातक	३२८
	[शराब का व्यापारी श्रपने शिष्य को शराब बेचने के लिए कह गया। उसने शराब में नमक मिलाकर उसे खराब कर दिया।]	
ሄፍ.	वेदब्भ जातक	३३०
	[ब्राह्मण ने चोरो के लिए मन्त्र-बल से घन की वर्षा कर ग्रपनी जान गँवाई। बाद मे वह चोर भी ग्रापस में कटकर मर गए।]	
४६.	नक्खत्त जातक	३३४
पुर	[नक्षत्र विश्वास के कारण लडके वाले को विवाह क्का हुग्रा रहने पर भी लडकी न मिल सकी ।]	
<u>ب</u> ره.	दुम्मेध जातक	३३७
	[ब्रह्मदत्त कुमार ने राज्य पाने पर घोषणा की कि वह एक यज्ञ करेगा, जिसमे केवल दुराचारी लोगों की बिल दी जाएगी। लोगो ने कुकर्म छोड़ दिए।]	

विषय			पृष्ठ
६. श्रासिंस वर्ग			·३४ <b>१</b>
५१. महासीलव जातक			. ३४१
[ काशी राज्य से निक वहा के राज्य को भडका का नरेश ने विरोध न कर सत्या ग्रत मे कोशल नरेश को कार्श	शी पर श्राक्रमण प्रही ढग से काम	कराया । कार लिया ।	ती
५२. चूलजनक जातक .			. ३४८
५३. पुण्णपाति जातक	A #		388
[धूर्तों ने शराव मे चाहा । सेठ उनकी चालाव			ना
५४. फल जातक	• • •		३५१
[ ग्राम के वृक्ष की तर सत्त्व ने ग्रपने साथी काफिले व		•	
५५. पंचावुध जातक .	• •		. ३५४
[ एक कुमार तक्षशिल उसे मार्ग में श्लेषलोम यक्ष ि मण किया । उसके शस्त्र एक चिपक गए । तब भी कुमार ने प्रहार किया । वह भी चिपक वह भी चिपक गया । कुमा यक्ष ने उसे पुरुष-सिह जा	मेला। कुमार ने क एक करके यक्ष ने हिम्मत न हारी क गए। सिर से र ने तब भी हि	शस्त्रो से ग्राव के बालों में व । हाथ पैरो प्रहार किया स्मत न हारी	क- ही से
५६. कंचनक्खन्ध जातक .			. ३५=
[ एक सेठ के गडे हुए गया । वह उसे एक साथ उठ स्राया । ]			

	विषय	पृष्ठ
४७.	वानरिन्द जातक	३६१
	[ मगरमच्छ ग्रपनी स्त्री के कहने से बानर का हृदय-	
	मास चाहता था। बानर श्रपनी हुशियारी से बच निकला।]	
ሂട.	तयोधम्म जातक	३६४
	[ एक बानर ग्रपने बच्चो को भी दाँत से काटकर खस्सी कर डालता था कि कही बडे होकर उसे ग्रधिकार-	
	च्युत न कर दे। बोधिसत्त्व ने श्रपनी योग्यता सिद्ध की।	
	वानर ने जान दे दी।]	
¥E.	भेरिवाद जातक	३६७
	[कान्तार मे गुजरते हुए लडके ने पिता का कहना न	
	मान ग्रत्यधिक भेरी बजाई । चोरो ने ग्राकर धन लूट लिया । ]	
६०.	संखधमन जातक	३६६
	[ स्रत्यधिक शख बजाने से चोरो द्वारा लूटे गए । ]	
৩. হ্রা		३७०
•		२ <b>७</b> ० ३७०
•	त्थ वर्ग	•
•	तेथ वर्ग श्रसातमन्त जातक [ माँ के कहने से ब्राह्मण कुमार तक्षशिला जा श्रसात- मन्त्र श्रर्थात् स्त्रियो के दुर्गृण सीख कर श्राया । स्त्रियाँ श्रत्यन्त	•
•	तथ वर्ग श्रसातमन्त जातक [ माँ के कहने से ब्राह्मण कुमार तक्षशिला जा श्रसात-	•
Ę <b>ę</b> .	तथ वर्ग असातमन्त जातक [माँ के कहने से ब्राह्मण कुमार तक्षशिला जा असात- मन्त्र अर्थात् स्त्रियो के दुर्गृण सीख कर श्राया । स्त्रियाँ अत्यन्त निन्दित होती हैं, समक प्रव्रजित हो गया । ] श्रंडभूत जातक	•
Ę <b>ę</b> .	तथ वर्ग  श्रसातमन्त जातक   [माँ के कहने से ब्राह्मण कुमार तक्षशिला जा श्रसात-  मन्त्र श्रर्थात् स्त्रियो के दुर्गृण सीख कर श्राया। स्त्रियाँ श्रत्यन्त  निन्दित होती हैं, समक्ष प्रव्रजित हो गया।]  श्रंडभूत जातक  [राजा ग्रोर पुरोहित जुग्रा खेलते थे। पहले राजा	३७०
Ę <b>ę</b> .	तथ वर्ग  श्रसातमन्त जातक   [ माँ के कहने से ब्राह्मण कुमार तक्षशिला जा असात- मन्त्र अर्थात् स्त्रियो के दुर्गृण सीख कर आया। स्त्रियाँ अत्यन्त निन्दित होती हैं, समक प्रव्रजित हो गया।]  श्रंडभूत जातक  [ राजा ग्रोर पुरोहित जुआ खेलते थे। पहले राजा की जीत होती थी, फिर पुरोहित की होने लगी। राजा	३७०
Ę <b>ę</b> .	तथ वर्ग  प्रसातमन्त जातक   [माँ के कहने से ब्राह्मण कुमार तक्षशिला जा श्रसात-  मन्त्र श्रर्थात् स्त्रियो के दुर्गृण सीख कर श्राया। स्त्रियाँ श्रत्यन्त  निन्दित होती हैं, समक प्रव्रजित हो गया।]  प्रंडभूत जातक  [राजा ग्रोर पुरोहित जुग्रा खेलते थे। पहले राजा  की जीत होती थी, फिर पुरोहित की होने लगी। राजा को कारण पता लगा—पुरोहित के घर मे एक क्वारी लड़की	३७०
Ę <b>ę</b> .	रेथ वर्ग  श्रसातमन्त जातक  [ माँ के कहने से ब्राह्मण कुमार तक्षशिला जा असात- मन्त्र अर्थात् स्त्रियो के दुर्गृण सीख कर आया। स्त्रियाँ अत्यन्त निन्दित होती हैं, समक प्रव्रजित हो गया।]  श्रंडभूत जातक  [ राजा ग्रोर पुरोहित जुआ खेलते थे। पहले राजा की जीत होती थी, फिर पुरोहित की होने लगी। राजा को कारण पता लगा—पुरोहित के घर मे एक क्वारी लडकी थी जिसका सतीत्व रक्षित था। राजा ने धूर्त के हाथो उस	३७०
Ę <b>ę</b> .	तथ वर्ग  प्रसातमन्त जातक   [माँ के कहने से ब्राह्मण कुमार तक्षशिला जा श्रसात-  मन्त्र श्रर्थात् स्त्रियो के दुर्गृण सीख कर श्राया। स्त्रियाँ श्रत्यन्त  निन्दित होती हैं, समक प्रव्रजित हो गया।]  प्रंडभूत जातक  [राजा ग्रोर पुरोहित जुग्रा खेलते थे। पहले राजा  की जीत होती थी, फिर पुरोहित की होने लगी। राजा को कारण पता लगा—पुरोहित के घर मे एक क्वारी लड़की	३७०

## [ xo ]

	विषय	पुष्ठ
६३.	तक्क जातक	३८३
	[ गगा मे बहा दी गर्ऽ एक स्त्री को बोधिसत्त्व ने बचाया ।	
	उसने बोधिसत्त्व का शील नष्ट कर फिर उसे चोरो के हाथ से	
	मरवाना चाहा। चोरो के सरदार ने उस स्त्री को मार टाला।	
દ્દ્ ૪.	दुराजान जातक	३८७
	[स्त्रियो का स्वभाव दुर्जेय है।]	
६५.	<b>ग्र</b> नभिरत जातक	350
	[शिष्य ने स्त्रियो के दुराचार की शिकायन की।	
	म्राचार्य्य ने कहाउन पर कोध करना बेकार है। वह	
	सब के सामूहिक उपयोग की चीज होती ही है।]	
६६.	मुदुलक्खण जातक	३६२
	[एक तपस्वी को जो राजा की मृदुलक्षणा नामक	
	रानी पर श्रासक्त हो गया था रानी श्रपने बुद्धिबल से रास्ते	
	पर ले म्राई ।]	
६७.	उच्छंग जातक	३६८
	[ एक स्त्री के भाई, पति और पुत्र को राजा ने पकड	
	लिया। स्त्री ने उन्हें छुडाना चाहा। राजा तीनो में से एक	
	को छोडने पर राजी हुआ। स्त्री ने भाई को ही छोडने के लिए	
	कहा, क्योंकि भाई ही दुर्लभ है। पित और पुत्र तो दोनो सुलभ हैं।	
۶ <b>۲</b> .	साकेत जातक	४००
<b>~</b>	[ बिना पूर्व देखे श्रादमी में भी विश्वास होता है।]	600
2 >	विसवन्त जातक	
90.		४०२
	[ एक बार छोडे हुए विष को सर्प ने निकालने से इन- कार किया, ग्रग्नि मे प्रवेश करने के लिए भी तैयार हो गया।	
	गर जिला, जान में अवश करन के लिए मा तयार हो गया ।	

# [ ४१ ]

	विषय	पृष्ठ
<b>७</b> 0.	कृदाल जातक	४०४
	[ कदाल-पिंडत कुदाल के मोह में पड़ छः बार गृहस्थ ग्रीर प्रव्रजित हुग्रा । ग्रत में कुदाल को पानी में फेक उसके मोह से मुक्त हुग्रा । ]	
⊏. वः	रण वर्ग · · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	<b>३११</b>
७१.	वरण जातक	४११
	[श्रालसी लडका जगल से गीली लकडी ले श्राया। जिसके कारण श्राग न जल सकी। विद्यार्थियो को यवागु खाकर गाँव जाना था, वे न जा सके। श्राचार्य्य सहित सबकी हानि हुई।]	
७२.	सीलवनागराज जातक	४१५
	[ एक ग्रादभी जगल में रास्ता भूल गया था । हाथी ने उसकी जान बचाई । ग्रकृतज्ञ मनुष्य उसके दाँत माँगने गया । हाथी ने प्रसन्नता पूर्वक एक एक करके ग्रपने सब दाँत ग्रीर ग्रत में दाढें तक कटवा दी । ]	
७३.	सच्चंकिर जातक	४१६
	[ दुष्ट कुमार को उसकी दुष्टता के कारण श्रमात्य-जन नदी में डुवा श्राए । वह एक वहने लक्कड पर सवार हो गया । उसी लक्कड पर एक सर्प, चूहा श्रौर तोता भी थे । तपस्वी ने उनकी जान वचार्ड । सर्प, चूहा तथा तोता कृत उपकार को नहीं भूलें । दुष्ट कुमार ने राजा होने पर तपस्वी की भलाई का बदला बुराई में दिया । उसे ग्रपने प्राणों से हाथ बोना पडा ।]	
७४.	रुक्खधम्म जातक .	४२५
	[ एक दूसरे के ग्राथय से खड़े वृक्षों का ग्राँधी कुछ न विगाड़ सकी। ग्रकेले खड़े वृक्ष उखड़ कर गिर गए।]	

विषय	पृष्ठ
७५. मच्छ जातक	४२८
[मछली ने पर्जन्य-देवना को ग्रपने शील-बल से वर्षा वरसाने पर मजबूर किया । ]	
७६. श्रसिकय जातक	४३२
[एक काफले के साथ के सन्यासी को चोरों से डर नहीं लगा। कारण चोरों से धनियों को ही डर होता है।]	
७७. महासुपिन जातक	४३४
[राजा ब्रह्मदत्त ने १६ स्वप्न देखें। ब्राह्मणो ने उसे टरा उसके हाथ से महान् यज्ञ कराने चाहे, जिसमें पशुश्रो का घात होता। बोधिसत्त्व ने स्वप्नो की यथार्थ व्याख्या कर राजा को निर्भय किया।]	
७८. इल्लीस जातक	388
[कजूस सेठ न किसी को दान देता था, न स्वय खाता था। उसके पिता ने जो इन्द्र होकर पैदा हुम्रा था इल्लीस की शकल बना इल्लीस को सीधा किया।]	
७६. खरस्सर जातक	४६०
[ गॉव का मुखिया चोरो से मिलकर गाँव लुटवाता था ।]	
द <b>ः भीमसेन जातक</b>	४६२
[सारे जम्बूद्वीप में प्रसिद्ध एक धनुर्धारी कद के छोटे पन के कारण भीमसेन नाम के स्रादमी को स्रागे करके रहता था। भीमसेन को स्रभिमान हो गया। उसे मुँह की खानी पडी।]	
<ol> <li>श्रपायिम्ह वर्ग</li> </ol>	४६⊏
<b>८१. सुरापान जातक</b>	४६८
[प्रत्रजित शराब पीकर स्रपने स्राप को भूल गए।]	

## [ x¾ ]

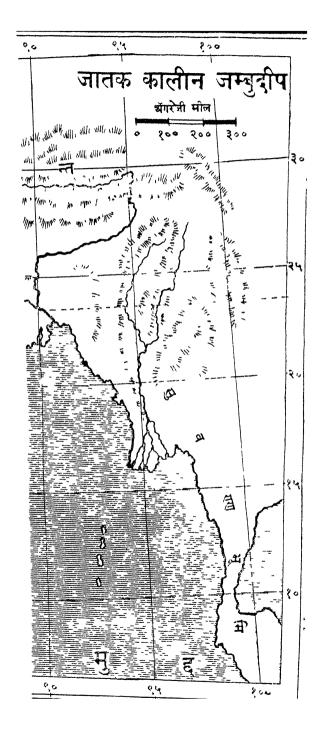
	विषय	पृष्ट
<b>5</b> ٦.	मित्तविन्द जातक	४७३
দ ३.	कालकण्णि जातक	४७३
	[ ग्रनायिपिण्डिक ने श्रपने कुरूप दरिद्र किन्तु पूर्व के	•
	मित्र के साथ मैत्री धर्म निवाहा। लोगों के बहुत कहने पर	
	भी मैत्री में श्रन्तर नही पडने दिया।]	
۳¥.	श्रत्थस्सद्वार जातक	४७६
	[ पिता ने भ्रपने सात वर्ष के पुत्र के प्रश्न के उत्तर मे	
	अर्थ (= उन्नति) के छ. द्वार बताए।]	
<b>ቫ</b> ሂ.	किम्पक्क जातक	३७४
	[ ग्राम के सदृश प्रतीत होनेवाले विष-फल को बोधिसत्त्व	
	का कहना न मान खाने वाले मनुष्यों में से कुछ मर गए, कुछ	
	कठिनाई से बचे । न खाने वाले सकुशल रहे । ]	
<b>८</b> ६.	सीलवीमंस जातक .	४८ ६
	[एक ब्राह्मण ने केवल यह परीक्षा करने के लिए	
	कि उसका म्रादर गुण के कारण होता है वा जाति म्रादि के	
	कारण चोरी करके देखा।]	
50.	मंगल जातक	४८४
	[शकुन-विश्वासी ब्राह्मण के चूहे द्वारा खाए कपडे	
	तपस्वी ने ले लिए। तपस्वी के उपदेश से ब्राह्मण का मिथ्या-	
	विश्वास दूर हुग्रा । ]	
55.	सारभ्भ जातक	४८६
	[ नन्दि विशाल जातक (२८) के सदृश । ]	
<b>5</b> €.	भृहक जातक .	४६०
	[तपस्वी के पास गृहस्थ ने सोना रक्या था। लालची	
	तपस्वी ने सोना उडा लिया। व्यापारी ने तपस्वी की ढोग	
	भरी बात सुन उस पर चोरी का शक कर सोना निकलवाया ।]	

# [ ४४ ]

विषय	पृष्ठ
६०. भ्रकतञ्जु जातक	१९३
[ श्रकृतज्ञ सेठ ने श्रनाथ पिण्डिक के भेजे व्यापारियों	
के साथ श्रकृतज्ञता का बरताव किया ग्रौर फल पाया । ]	
१०. लित्त वर्ग \cdots 🕟 .	४६६
६१. लित्त जातक	४६६
[दो जुम्रारी जुम्रा खेलते। एक हारने के समय गोटियों को मुँह मे डाल लेता। दूसरे ने गोटियो को विष से रँगा। जुम्रारी विषैली गोटियाँ निगलने से मूर्छित हो गया। पहले ने मरते मरते उसकी जान बचाई।]	
६२ महासार जातक	885
[ एक बन्दरी रानी का मुक्ताहार चुरा ले गई । चोर का पता न लगता था । श्रमात्य ने श्रपनी श्रकल से चोर का पता लगा हार निकलवा लिया।]	
६३. विस्सासभोजन जातक	४०७
[ मृगी के स्नेही सिह को ग्वाले ने मृगी के शरीर में हला- हल विष पोत कर मार डाला । ]	
६४. लोमहंस जातक	30%
[बोघिसत्त्व की काय-क्लेश-चर्य्या का वर्णन । ]	
६५- महासुदस्सन जातक	४१२
[महासुदर्शन राजा के मरने के समय श्रनित्यता का उपदेश ।]	
६६. तेलपत्त जातक	५१५
[ यक्षिणियो ने तरह तरह से कुमार को फँसाना चाहा । उसके सारे साथी यक्षिणियों के जाल मे फँस गए । किन्त्र	

### [ \( \t \t \) ]

विषय	पृष्ठ
कुमार को न रूप ने, न शब्द ने, न रस ने, न गन्ध ने, श्रौर न स्पर्श ने ही श्राकर्षित किया । गान्धार देश के तक्षशिला नगर- वासियो ने उसे श्रपना राजा चुना ।]	
६७. नामसिद्धि जातक	५२६
[ एक विद्यार्थी का नाम था 'पापक'। वह अच्छे नाम की तलाश में बहुत घूमा। श्रत में यह समक्त कि नाम बुलाने मात्र के लिए होता है, नाम से कुछ ग्राता जाता नही; वह लौट ग्राया।	
६८ कूटवाणिज जातक	४२६
[पण्डित श्रौर ग्रिति-पण्डित नाम के दो व्यापारियो ने साभा व्यापार किया । हिस्सा बाँटने के समय ग्रिति-पण्डित ने दो हिस्से लेने चाहे । उसकी चालाकी के फल स्वरूप उसका पिता जलते जलते बचा ।]	
<b>६६. प</b> रोसहस्स जातक	प्र३२
[ ग्राचार्य्य ने मरते समय कहा—कुछ नही । प्रधान शिष्य को छोड श्राचार्य्य के इस कथन को कोई नही समभ सका।]	
१००. श्रसातरूप जातक	४३४
[ कोशल नरेश वाराणसी नरेश को मार उसकी रानी को पकड ले गया । लडके ने बडे होकर कोशल पर चढाई की श्रौर माता की सलाह से बिना श्राक्रमण किए नगर जीत लिया । ]	



# जा त क

[ प्रथम खएड ]

### नमो तस्स भगवतो भ्ररहतो सम्मासम्बुद्धस्स

# जातक ऋडुकथा

### उपोद्घात

लाखों जन्मों में जिन महींष लो क ना थ ने संसार का ध्रनन्त हित किया, उनके चरणों में प्रणाम करता हूँ; ध में को हाथ जोड़ता हूँ; तथा सब से ध्रावरणीय (भिक्षु-) सं घ की पूजा करता हूँ। इन तीनों र त्नों के नमस्कारावि (से प्राप्त) इस पुण्य के प्रताप से सब उपद्रवो का नाश हो। प्रकाश-स्वरूप महींष (=बुद्ध) ने ग्र पण्ण क श्रावि जातकों को पहले कहा, जिन्हों कि लोक के उद्धार की इच्छा से, नायक, शास्ता (=बुद्ध) ने बुद्ध होने के लिए ध्रावश्यक ध्रनन्त सामग्री की प्राप्त के लिए पूरा किया। उन सब पूर्व जन्म की कथाग्रो के संग्रह को धर्म (-ग्रन्थ) संग्रह करने वालों ने जातक नाम से संगायन किया। बुद्ध-धर्म की चिर-स्थिति चाहने वाले ध्र थं द शीं स्थविर, सहवासी तथा एकान्तप्रेमी शान्त चित्त, पण्डित बुद्धि मित्त और महिं शास क वंश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ, शुद्ध-बुद्धि भिक्षु बुद्ध देव के कहने से महापुरुषों के चिरत्र के ध्रनन्त प्रभाव को प्रकट करने वाली जात क ध्रथंवर्णना की महा विहार वालो के मत के

<sup>&#</sup>x27; बुद्ध, धर्मं तथा संघ--यह तीन रत्न है ।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> श्रयण्णक (जातक), प्रथम जातक।

<sup>ै</sup> बुद्ध-निर्वाण के बाद उनके उपदेशों को संग्रह करने वाले।

<sup>ँ</sup> प्राचीन श्रठारह बौद्ध सम्प्रदायों में से एक ।

<sup>&</sup>lt;sup>५</sup> पुराने बौद्ध-सम्प्रदायो में से, प्राचीन स्थिवर-सम्प्रदाय का सिंहल में एक भेट।

श्रनुसार व्याख्या करूँगा। मेरी इस व्याख्या को सब सज्जन श्रच्छी तरह ग्रहण करें।

जातक की यह व्याख्या 'दूरेनिदान', 'म्राविदूरे-निदान', 'सन्तिके-निदान'—इन तीनो निदानो में वर्णित हैं और जो इसे इस तरह से मुनते हैं, वे आरम्भ से भली प्रकार समभने के कारण ठीक समभने हैं। इस लिए हम इसे इन तीनो निदानों में विभक्त कर के कहेंगे। पहले इन तीनो निदानों के वर्गीकरण को ही समभ लेना चाहिए। भगवान् दीपक्कूर' के चरणों में जीवन अर्पण करने के समय से ले कर वेस्सन्तर' का शरीर छोड तुषित-स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने तक की (जीवन-) कथा 'दूरेनिदान' कही जाती है। तुषित-लोक से च्युत हो कर बोध गया (बोधमण्ड) में बुद्ध होने तक की कथा 'म्राविदूरे-निदान' कही जाती है। (उपरान्त) 'सन्तिके-निदान' तो भिन्न भिन्न स्थानो में विचरते हुए उन उन स्थानो पर जो जीवन-कथा मिलती हैं वह (ही हैं)।

### क. दूरेनिदान

## १. सुमेध (बाल्य, वैराग्य)

'दूरे नि दा न' इस प्रकार है :---

चार श्रसखेय्य एक लाख कल्प पहले श्रमरवती नाम की एक नगरी थी। उस नगरी में सुमेंध नामक ब्राह्मण रहता था। वह माता-िपता दोनों के कुल से सुजात, शुद्ध-जन्मा, सात पीढी तक कुल दोष से रहित, सुन्दर, दर्शनीय, मनोहर, उत्तम रग के सौन्दर्य से युक्त था। उसने श्रौर कोई काम न कर ब्राह्मणों ही की विद्या सीखी थी। बचपन में ही उसके माता-िपता मर गये। तब खजानची (=राश-वर्द्यक श्रमात्य) बही-खाता

<sup>&#</sup>x27;सब से पहले बुद्ध ।

<sup>ै</sup>देखो वेस्सन्तर जातक (५३८)।

<sup>ै</sup>बही-खाता रखने वाला राशि-वर्धक नामक मन्त्री।

(=ग्राय-पुस्तक) ले कर ग्राया श्रीर सोना, चाँदी, मोती ग्रादि से भरी कोठ-रियो को खोल खोल कर कहने लगा—'इतना मातृ-धन हैं। इतना पितृ-धन हैं। इतना दादा-परदादा का घन हैं....। इस प्रकार सात पीढ़ी तक के धन को कह कर बोला, ''कुमार लो इसे सँभालो!"

सुमेघ पण्डित ने सोचा.—''इस धन को सग्रह कर मेरे पिता पितामह ग्रादि परलोक जाते हुए एक पैसा (=कार्षापण) भी साथ नहीं ले गये, लेकिन मुभे इसे साथ ले कर ही जाना चाहिए।"

उसने राजा को कह नगर में ढंढोरा पिटवाया; श्रौर जन-समूह को दान दे तापसो के सप्रदाय में साधु हो गया। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यहाँ सुमेध की कथा का कहा जाना जरूरी हैं। सुमेध की कथा कुछ न कुछ बुद्ध-वंस में श्राई हैं, लेकिन उस कथा के पद्यमय (=गाथा-सम्बन्ध में ग्राई) होने से, (उसका) अर्थ ठीक स्पष्ट नहीं होता। इस लिए हम उस कथा को बीच बीच में उन गाथाओं के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहेंगे।

चार ग्रसखेय्य एक लाख कल्प पूर्व दस प्रकार के शब्दो से युक्त ग्रमरवती ग्रथवा ग्रमर नामक एक नगर था, जिसके बारे मे बुद्ध-वंस मे कहा है —

"चार श्रसंखेय्य एक लाख कल्प पूर्व एक मनोरम, दर्शनीय, दस शब्दों से युक्त, श्रन्नपान से संयुक्त 'श्र म र' नामक नगर था।"

वहाँ 'दस शब्दों से युक्त' का अर्थ हैं—हाथी-शब्द, भ्रश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरि-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शङ्ख-शब्द, ताल-शब्द, खाने पीने का शब्द—इन दस शब्दों से युक्त। इन दसों शब्दों को एक्त्र ग्रहण करने से :—

हस्ति-शब्द, श्रश्व-शब्द श्रीर भेरि, शङ्ख, रथ श्रादि शब्द, खाने पीने का शब्द श्रीर श्रन्नपान का घोष।

'बुद्ध-वंस' मे इस गाथा को कह कर :---

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> सुत्तपिटक के खुद्दक-निकाय का एक ग्रन्थ।

"सर्वाङ्ग सम्पूर्ण, सब भोगो से युक्त, सात रत्नो से सम्पन्न, नाना जन समाकुल, देव नगर की तरह वैभवशाली, पुण्यात्माग्रों के निवास, ग्रमरवती नाम नगर में, करोड़ों का मालिक बहुत से धन धान्य वाला, वेद-पाठी (—ग्रध्यायक) मन्त्रधर, तीनों वेदों में पारङ्गत, लक्षण, इतिहास ग्रौर सद्धमं में पूर्णता-प्राप्त सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था।"

एक दिन महल के ऊपर के सुन्दर कोठे पर आसन मार कर एकान्त में बैठा हुआ सुमेध पण्डित सोचने लगा—'पण्डित ! जन्म ग्रहण करना दुःख है। प्रत्येक जन्म में मृत्यु दु ख है। उत्पन्न होना, बूढ़ा होना, रोगी होना (तथा) मरना; मेरे लिये अनिवार्य है। अतः मुक्ते चाहिए कि मैं उस अमृत महा-निर्वाण को खोजूँ जो उत्पत्ति, जरा, व्याधि, दु ख तथा सुख से रहित है और शीतल तथा अमृत स्वरूप है। आवागमन से मुक्त होने का एक निर्वाण-मार्ग अवस्य होगा। इसी लिए कहा है.—

"तब मैं ने एकान्त में बैठ कर सोचा कि स्रावागमन तथा शरीर-त्याग— बोनों दुःख है। स्रतः उत्पत्ति, जरा स्रौर व्याधि से युक्त में, स्रजर, स्रमर (स्रौर) क्षेम (-स्वरूप) नि वी ण को खोजूँ। स्रवश्य ही मुक्ते इस नाना प्रकार के गन्दगी से भरे, स्रपवित्र शरीर को छोड़ कर माया ममता रहित हो (चला) जाना होगा।

"जो मार्ग है, वह होगा (=रहेगा) ही। वह न हो (ऐसा) नहीं हो सकता। संसार से मुक्ति के पाने के लिए में उसी मार्ग को खोजुँगा।"

वह ग्रागे भी ऐसा सोचने लगा ---

"जिस प्रकार लोक में दु ख का प्रतिपक्षी सुख है, उसी प्रकार ग्रावागमन (—भव) का प्रतिपक्षी ग्रावागमन का ग्रभाव (—विभव) भी ग्रवश्य होना चाहिए। जिस प्रकार गर्मी के रहने पर, उसको शान्त करने वाली ठडक भी रहती है, इसी प्रकार राग ग्रादि ग्रग्नियों का शमन करने वाला निर्वाण भी ग्रवश्य होगा। जिस प्रकार पाप का प्रतिपक्षी पुण्य तथा निर्दोपता है, उसी प्रकार इस पापी (—दु.खमय) जन्म के रहते सारे जन्मों के क्षय होने से जन्म रहित निर्वाण भी ग्रवश्य होगा। इसी लिए कहा है:—

"जैसे यदि दुःख है, तो सुख भी है; वैसे ही श्रावागमन है तो श्रावागमन का श्रभाव भी है। जैसे गर्मी के रहने पर, उसके विपरीत शीतलता भी है, इसी प्रकार त्रिविध श्रग्नि के रहते निर्वाण भी होना चाहिए। जिस प्रकार पाप के रहने पर पुण्य भी है; उसी प्रकार जन्म के रहने पर ब्रावागमन से मुक्ति भी होनी चाहिए।"

ग्रौर भी सोचने लगा:---

जिस प्रकार मल के ढेर में डूबे मनुष्य को दूर से भी पाँच रगो के कमलों से ग्राच्छादित तालाब को देख कर 'मुफे किस मार्ग से तालाब तक पहुँचना चाहिए' सोच तालाब को खोजना चाहिए। यदि वह न खोजे, तो उसमें तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार सब मलों को धोने में समर्थ ग्रमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब के रहते (यदि मनुष्य) उसे न खोजे, तो उसमें ग्रमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब का दोष नहीं। जिस प्रकार डाकुग्रों से घरा हुग्रा मनुष्य भागने का रास्ता रहने पर भी, यदि न भागे तो वह रास्ते का दोष नहीं, उस ग्रादमी का ही दोष हैं। इसी प्रकार यदि मलों से लिप्त मनुष्य निर्वाण की ग्रोर ले जाने वाले कल्याण-मार्ग के रहते भी, उस मार्ग को न खोजे, तो वह मार्ग का दोष नहीं, उस ग्रादमी का ही दोष हैं। जैसे रोग-ग्रस्त मनुष्य रोग चिकित्सक वैद्य के रहते भी, यदि उस वैद्य को ढूँढ कर रोग की चिकित्सा न कराये, तो वह वैद्य का दोष नहीं। इसी प्रकार जो (चित्त-) मल के रोग से पीडित मनुष्य, मल के दूर करने के उपाय के जानकार ग्राचार्य्य के विद्यमान् रहते भी (उन्हे) नहीं खोजता, तो यह उसीका दोष हैं, मल-निवारक ग्राचार्यं का दोष नहीं। इसी लिए कहा हैं.—

"जैसे गन्दगी में फँसा हुन्ना मनुष्य, पानी से भरे तालाब को (दूर से) वेख कर भी, यदि उसे नहीं खोजता; तो वह तालाब का वोष नहीं। इसी प्रकार मल घो देने वाले ग्रमृत-सरोवर के रहते भी, यदि मनुष्य उस सरोवर को नहीं खोजता, तो वह उस ग्रमृत-सरोवर का दोष नहीं। जैसे शत्रुग्नों से घिरा हुग्रा (मनुष्य) यदि भागने का मार्ग रहते भी नहीं भागता है, तो उसमें मार्ग का दोष नहीं। इसी प्रकार मलों से घिरा हुग्रा (मनुष्य) यदि कल्याणकारी मार्ग के रहते भी उस मार्ग को नहीं ढूँढता है, तो वह उस मार्ग का दोष नहीं। जिस प्रकार रोग से पीड़ित पुरुष, यदि चिकित्सक के विद्यमान् रहते भी, उस रोग की चिकित्सा नहीं करता, तो वह चिकित्सक का दोष नहीं; इसी प्रकार मल के रोग से दुखी, पीड़ित पुरुष भी, यदि मल-निवारक ग्राचार्य को नहीं खोजता, तो वह ग्राचार्य का दोष नहीं।"

श्रीर भी सोचने लगा:--

"जैसे शौकीन भ्रादमी गले मे लगे हुए मैल को उतार कर सुख-पूर्वक जाता है, इसी प्रकार मुक्ते भी इस मलिन काय को छोड ममता रहित हो निर्वाण-नगर मे प्रवेश करना चाहिए। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल-मूत्र करके न तो उसे अपने श्रङ्क (=उच्छग) में ले कर जाते हैं, न उसे अपने पल्ले मे ही बाँध कर ले जाते है बल्कि उसके प्रति घुणा कर अनिच्छुक हो, उस (मल-मूत्र) को वही छोड जाते है, इसी प्रकार मुभे भी इस मलिन-काय को अनिच्छुक हो छोड अविनाशी (= अमृत) निर्वाण नगर मे प्रविष्ट होना चाहिए। जैसे मल्लाह लोग पुरानी नाव को बेपरवाह हो छोड़ जाते है, इसी प्रकार में भी इस नौ छिद्रों से चुने वाले शरीर को छोड बे-परवाह हो निर्वाण-नगर मे प्रवेश करूँगा। जैसे अनेक रत्नो को ले कर चोरो के साथ जाने वाला मनुष्य, श्रपने रत्नो के नाश होने के डर से, उन चोरो को छोड कर कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करता है, इसी प्रकार यह जो शरीर है, सो यह भी रत्न लूटने वाले डाकुओ की तरह है। यदि मैं इस शरीर के प्रति लोभ रख्ँगा, तो मेरा आर्य-मार्ग रूपी पुण्य (=रत्न) नष्ट हो जायगा। इस लिए मुभे इस डाक् के समान शरीर को छोड़ कर निर्वाण-नगर मे प्रवेश करना चाहिए। इसी लिए कहा है --

"जिस प्रकार मनुष्य मुर्दे को गले में बाँधने से घृणा कर उसे स्वेच्छापूर्वक अपने आप खुशी से छोड़ जाये, उसी प्रकार में इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरी अपिवत्र काया को बे-परवाह तथा आकांक्षा (= अर्थ) रहित हो छोड़ जाऊँ। जैसे स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल को बिना किसी चाह अथवा आकांक्षा के छोड़ कर चले जाते हैं, इसी प्रकार में इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरी काया को पाखाने (= बच्चकुटि) में मल के समान छोड़ कर चल दूँगा। जैसे मल्लाह पुरानी, टूटी फूटी, पानी भर जाने वाली नाव को बिना किसी चाह या आकांक्षा के छोड़ कर चले जाते हैं, वैसेही में इस नौ छिब्रों से सदा गन्दगी बहाने वाले शरीर को, मल्लाह की नाव की तरह, छोड़ कर चल दूँगा। जैसे सामान लेकर जाता हुआ पुरुष चोरों के सामान लूट लेने के डर से (रास्ता) छोड़ कर जाता है; इसी प्रकार यह शरीर महा-चोर के समान है। इसलिए में इसे कुशल (=कमं) के नाश के डर से छोड़ कर जाऊँगा।"

#### २. संन्यास

इस प्रकार सुमे**घ** पण्डित नाना प्रकार के दृष्टान्तो से इस भ्रनासक्ति के भाव का चिन्तन कर, पूर्वोक्त विधि से श्रपने घर पर पडी श्रनन्त भोग की वस्तुम्रो को याचकों मौर पथिकों को प्रदान कर, महादान दे, चीजो मौर कामुकता के लोभ को छोड, अमर (नामक) नगर से निकल कर अकेले ही हिमालय मे धम्मक नाम पर्वत के पास ग्राश्रम, पर्ण-कूटी ग्रौर टहलने का चबतरा (=चंक्रमण भूमि)' बना कर पाँच नीवरणो से रहित 'इस प्रकार एकाग्र चित्तता' ब्रादि कम से कहे गये ब्राठ कारण-गुणो से युक्त ब्रिभज्ञा (=ज्ञान) नामक बल की प्राप्ति के लिए, उस भ्राश्रम मे नौ दोषो वाले वस्त्रो को छोड कर, बारह गुणों से युक्त छाल (=वल्कल) की धारण कर ऋषियों के नियमानुसार साधु बन गये । इस तरह साधु बन आठ दोषो से युक्त उस पर्ण-कूटी को छोड, दस गुणो से युक्त 'वृक्ष की छाया' के नीचे जा कर, श्रनाज के बने सभी भोजनो को छोड, वक्ष से गिरे फलो को ही खाने लगे। बैठे, खड़े रहते तथा चलते हुए ही (=प्रर्थात् कभी न लेट कर) योग्याभ्यास (=प्रयत्न) करते हुए सात दिनो के ग्रन्दर ही भ्रन्दर भ्राठ समापत्तियोँ ग्रीर पाँच ग्रभिञ्जाग्री को पा लिया। इसी प्रकार उसने इच्छित ग्रभि-ञ्जा-बल प्राप्त किया।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>टहलते हुए योगाभ्यास करने की जगह।

<sup>े</sup> चित्त को शुद्ध वृत्तियो को ढाँकने वाले—१ काम-छन्द, २ व्यापाद (=क्रोध), ३ स्त्यानमृद्ध (=ग्रालस्य), ४ ग्रौद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धता), ४ विचिकित्सा (=सन्देह)।

<sup>ै</sup> १ समाहित (च्एकाग्र-चित्त), २ परिशुद्ध, ३ परियोदात, ४ ग्रङ्गण -रहित, ५ उपक्लेश-रहित, ६ मृदु, ७ कम्मनीय, द्र स्थिरता-प्राप्त (च्य्रभिञ्जा-प्राप्त)।

<sup>&</sup>lt;sup>\*</sup>चार रूप तथा चार ग्ररूप समापत्तियाँ।

<sup>&</sup>lt;sup>५</sup> दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म को स्मृति, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का ज्ञान ।

इसी लिए कहा गया है --

"इस प्रकार विचार कर में अरबों घन याचकों ग्रौर ग्रनाथों को वे हि मा ल य में चला ग्राया। हिमालय के पास ही घ म्म क नामक पर्वत है। वहाँ में ने ग्राश्रम, पर्ण-कुटी तथा पाँच दोषों से रहित टहलने का चबूतरा (चंचकमण-भूमि) बनाया, ग्रौर ग्राठ गुणों से युक्त ग्रभिञ्जा-बल प्राप्त किया। नौ दोषों से युक्त वस्त्र को छोड़ कर बारह गुणों से युक्त छाल (वल्कल) का चीवर घारण किया। ग्राठ दोषों से युक्त पर्ण-कुटी को छोड़, वस गुणों वाली 'वृक्षों की छाया' का ग्राश्रय लिया। बो, जोत कर तैयार किए ग्रनाजों को बिल्कुल त्याग दिया; ग्रौर ग्रनक गुणों से युक्त 'वृक्षों से गिरे फलों' को ग्रहण किया। वहाँ बैठे, खड़े ग्रौर टहलते हुए ही योग का ग्रभ्यास कर, सप्ताह के ग्रन्दर ग्रभिञ्जा-बल प्राप्त किया।"

इस पाली' में सुमेध पण्डित ने, आश्रम और टहलने के चब्तरे, श्रपने हाथ से बनाये—ऐसा कहा है। लेकिन इसका (वास्तविक) अर्थ यह है—महापुरुष ने सोचा कि आज में हिमालय में जा, धम्मक पर्वत में प्रवेश करूँगा? इस विचार से उन्होंने गृह-त्याग किया।

### ३. श्राश्रम

देवताश्रों के राजा शक्त (=इन्द्र) ने सुमेध के गृह-त्याग को देख विश्व-कर्मा देव-पुत्र को सम्बोधित किया—''तात । इस सुमेध पण्डित ने साधु होने के विचार से घर छोड़ा है; जा इसके लिए निवास स्थान का निर्माण कर।"

वि इव क मां ने उसके वचन को स्वीकार कर, रमणीय म्राश्रम, सुरक्षित पर्ण-कुटी और मनोरम टहलने के चबूतरे का निर्माण किया। भगवान् ने भ्रपने प्रज्ञाबल से उस म्राश्रम के बारे में कहा था.—"सारिपुत्र! उस धम्मक पर्वत में 'मेरे लिए म्राश्रम किया' और 'पर्णशाला बनाई गई' तथा पाँच दोषों से रहित चड्कमण-भूमि बनाई गई।" सो वहाँ "मेरे लिए किया" का मर्थ

<sup>ै</sup>पाली; तुलसीदास जी की पाँति की तरह; बुद्ध-वचन का पर्य्यायवाची।

है मेरे द्वारा की गई, ग्रौर 'पर्णशाला बनाई गई' का श्रर्थ है "पत्तो से ढकी हुई शाला भी मेरे लिए बनी हुई थी।" "पाँच दोषों से रहित"; चबूतरे के यह पाँच दोष है—कडा होना समतल न होना, बीच में वृक्षों का होना, घनी छाया होना, बहत सकीणें होना तथा लम्बा चौड़ा होना।

कडी तथा ऊबड खाबड़ भिम में टहलते हुए टहलने वाले के पैर दुखने लग जाते है, छाले पड जाते है, चित्त एकाग्र नहीं होता, योग-क्रिया (=कर्म-स्थान) सिद्ध नही होती। कोमल श्रीर समतल पर टहलने से योग-क्रिया सिद्ध होती है। इस लिए भूमि की कठोरता ग्रीर ऊबड़-खाबड-पन को एक दोष समभना चाहिए। चबूतरे के किनारे पर बीच में श्रथवा सिरे पर वृक्ष रहने से बे-परवाही के कारण (कभी कभी) उनमें माथा या सिर टकरा जाता है, इस लिए 'बीच बीच में वृक्षो का होना' दूसरा दोष है। तृण-लता म्रादि से ग्राच्छादित घनी छाया वाले स्थान में टहलते हुए ग्रन्धकार के समय या तो साँप श्रादि जीवो को (श्रपने पैर से) कूचल कर मार देता है, श्रथवा उनके द्वारा डसे जाने से (स्वयं) द ख को प्राप्त होता है। इस लिए 'घनी छाया वाला होना' तीसरा दोष है। चौडाई में केवल हाथ (रत्न) वा आघे हाथ भर चौडे, बहुत ही तग चब्तरे पर टहलने से टहलने वाले (पुरुष) की अगल-बगल में फिसल जाने के कारण नाखन भीर उँगलियाँ तक टूट जाती हैं। इस लिए 'बहत तग होना' चौथा दोष है। बहत चौड़े स्थान में टहलने से (श्रादमी) का चित्त (इघर उघर) भागता है, एकाग्र नही होता इस लिए 'बहुत लम्बा चौडा होना' पाँचवाँ दोष है। चौडाई डेढ़ हाथ, दोनो तरफ एक एक हाथ चौडी बगली (= अनुचक्रमण), लम्बाई साठ हाथ और उस पर समतल बाल बिखरा हुमा-चब्तरा ऐसा होना चाहिए। (सिहल-)हीप को श्रद्धावान् बनाने वाले महेन्द्र स्थविर का चवृतरा चेतिय गिरि (विहार)

<sup>&</sup>lt;sup>र</sup> योगाभ्यास का साधन, योग-युक्ति ।

रत्न=एक हाथ भर।

<sup>&#</sup>x27;लंका में जिस मिश्रक-पर्वत (=मिहिन्तले) पर महामहेन्द्र उतरे थे, उसी पर्वत पर निर्मित विहार।

मे वैसा ही था। इसी लिए कहा है 'पाँच दोषो से रहित चबुतरा बनाया'। 'म्राठ गुणो से युक्त' का मतलब हैं ''साधुम्रो के म्राठ सुखों से युक्त'। साधुम्रो के ग्राठ सुख यह हैं .- धन धान्य के सग्रह (की चिन्ता) का न होना, निर्दोष भिक्षा की प्राप्ति का प्रयत्न करना, तैयार भिक्षा का भोजन करना, राज्य श्रिधिकारियों के देश को सता कर धन दौलत या सीस-कहापण श्रीदि ग्रहण करते हुए (स्वय) देश को पीड़ित न करना, वस्तुग्रो मे वैराग्य, चोरों द्वारा (धन म्रादि) लूटे जाने से निर्भयता, राजाम्रो म्रीर राज्यामात्यो से बहुत लगाव न होना, श्रौर चारो दिशाश्रो में बेरोक-टोक पहुँच। चूँकि इस श्राश्रम मे रहते हुए, इन भ्राठ सुखो का भ्रानन्द लिया जा सकता था, इस लिए कहा गया है कि "ग्राठ गुणो से युक्त उस ग्राश्रम को बनाया"। "ग्रभिज्ञा-बल को प्राप्त किया" का मतलब है कि आगे चल कर उस आश्रम में रहते हुए कृत्स्न (=किसण) र परिकर्म का आरम्भ करके अभिज्ञाओं तथा समापत्तियो की प्राप्ति के लिए, ग्रनित्यता ग्रौर दूख के भाव की विदर्शना का अभ्यास कर प्रयत्न से प्राप्य विदर्शना-बल को प्राप्त किया। चूँकि 'इस ग्राश्रम मे रहते हुए इस बल को प्राप्त किया जा सकता है' यह विचार था, इस लिए उस ग्राश्रम को, श्रभिञ्जा की प्राप्ति के लिए विदर्शना बल (की प्राप्ति) के श्रनुकूल बनाया'--यह अर्थ है।

"नौ दोषो से युक्त वस्त्र को छोड देने" के सम्बन्ध की यह क्रमानुकूल कथा है। उस समय कुटी, गुफा, टहलने के चबूतरे ग्रादि से युक्त, फल फूल वाले वृक्षो से ग्राच्छादित, रमणीय, मधुर जलाशयो सहित, बाघ ग्रादि हिंसक पशु तथा भयानक पिक्षयो से शून्य, शान्त ग्राश्रम बना कर, सुन्दर चबूतरे के दोनो ग्रोर सहारे के लिए बाही लगा कर, ग्रौर चबूतरे के बीच में बैठने के

<sup>े</sup> तत्कालीन सिक्कों का व्यक्तिगत कर।

<sup>े</sup> योगाभ्यास के चालीसों साधनों में से किसी भी एक को साधारणतया 'कर्म-स्थान' कहते हैं। उनमें से प्रथम दस में से किसी को भी कसिन (=कृत्स्न) कहते हैं।

३ विपश्यना (==प्रज्ञा)।

लिए मुँगे के रंग की समतल शिला बना कर, पर्ण-कुटी के ग्रन्दर जटा-मण्डल, बल्कल-चीर, त्रिदण्ड, क्रण्डी श्रादि तापसो के सामान, मण्डप में पानी का बरतन, पानी (-भरा) शङ्क, पानी (पीने के) कसोरे, श्रग्निशाला में श्रुँगीठी तथा जलावन इत्यादि-इस प्रकार साध्यो की जो जो म्रावश्यकतायें हैं, उन का प्रबन्ध करके, पर्ण-कूटी की दीवार पर 'जो कोई साधु होना चाहे, इन चीजो को ले कर प्रब्रजित ही'-इन ग्रक्षरो को खोद कर विश्वकर्मा देव-पुत्र के देव-लोक चले जाने पर सुमेध पण्डित ने हिमालय की तराई में गिरि-कन्दराम्रो के साथ साथ, अपने लिए सुख से रहने योग्य स्थान को ढुँढते हए नदी के मोड पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, इन्द्र का दिया हुन्ना, रमणीक आश्रम देखा। टहलने के चब्तरे के छोर पर जा श्रौर वहाँ पद-चिह्न को न देख, सोचा-अवस्य साधु लोग समीप के गाँव में भिक्षा माँग श्रा कर थके हुए लौट कर, पर्ण-कुटी में प्रवेश कर, अन्दर बैठे होंगे। कुछ देर प्रतीक्षा कर वह सोचने लगा--'वे बहुत देर कर रहे हैं' जरा देखें। (फिर) पर्ण-कूटी के द्वार को खोल श्रन्दर प्रवेश कर, इधर उधर देखते हए बडी दीवार पर (लिखे) ग्रक्षरों को बाँच कर (सोचा) - यह वस्तुएँ मेरे योग्य है, इन्हे ग्रहण कर साध बन्गा। यह सोच श्रपने पहने घोती चादर को छोड दिया। इस लिए कहा है-- वहाँ वस्त्र को छोड दिया'। सारिपुत्र। इस प्रकार प्रविष्ट हो, मैंने इस पर्ण-कूटी मे घोती को छोडा"। "नौ दोषो से युक्त" कह कर दिखाया गया है कि नौ दोषों को देख कर छोडा।

तापस साधुओं के तापस साधु बनने पर (उनके) पहनने के वस्त्र मे नौ दोष होते हैं—'ग्रित मूल्यवान् होना' एक दोष हैं। 'दूसरे पर निर्भर रह कर मिलना' एक दोष। 'पहनने पर जल्दी से मिलन होना' एक दोष। 'मिलन होने पर वस्त्र को घोना तथा रगना होता हैं। 'पहनने से फट जाना' एक। 'फटने से सीना' या पेवन्द लगाना होता हैं। 'फिर ढूँढने पर कठिनाई से मिलना' एक। 'साधु-जीवन से मेल न खाना' एक। 'चोरो के लिए चोरी करने योग्य होना' एक। जैसे उसे चोर न चुरावे, वैसे छिपाना होता हैं। 'उपयोग करने से सजावट का कारण होना' एक। 'ले कर चलते समय कन्धे के लिए भार ग्रीर लोभ होना' एक। 'वल्कल चीर को घारण किया'' का ग्रर्थ है, ''सारि-पुत्र! तब मैं ने इन नौ दोषो को देख, वस्त्र को छोड़ छाल (==वल्कल) का

वस्त्र धारण किया—अर्थात् मूञ्ज-तृण को चीर, गाँठ बाँध बाँध कर बनाये वल्कल चीवर को धारण करने और पहनने के लिए ग्रहण किया।"

'बारह गुणो से युक्त' का अर्थ है कि बारह कल्याणकारी बातों से सयुक्त'। वल्कल चीवर में बारह गुण है—सस्ता, सुन्दर तथा विहित होना यह पहला गुण है। अपने हाथ से बनाया जा सकता है, यह दूसरा। जल्दी मैला नहीं होता है और धोने में भी कठिनाई नहीं, यह तीसरा। उपयोग करते करते फटने पर सीने की आवश्यकता न रहना, यह चौथा। नया ढूँढने पर आसानी से मिल सकना, यह पाँचवाँ। तापस साधुओं के अनुकूल होना, यह छठा। चोरों के काम का न होना, यह सातवाँ। पहनने वाले के लिए शौक का कारण नहीं होना, यह आठवाँ। पहनने में हलका रहता है, यह नौवाँ। चीवर रूपी सामान (—प्रत्यय) के विषय में सतोष, यह दसवाँ। छाल (—वल्कल) से उत्पन्न होने के कारण धर्म की दृष्टि से निर्दोष होना, ग्यारहवाँ। छाल के चीवर के नष्ट होने पर, उसके लिए परवाह न होना, यह बारहवाँ गुण है।

''श्राठ दोषों से युक्त पर्ण-शाला को छोडा'', सो उसे कैंसे छोडा ? (श्रपनी) उस सुन्दर घोती चादर को छोड़ कर, चीवर रखने के बाँस पर टेंगे हुए अनोज-फूल की माला जैसे लाल रग के छाल के चीवर को ले पहना। उसके ऊपर दूसरा सुनहरी रग का छाल का चीवर पहना। फिर पुन्नाग-फूल की शय्या के समान श्रौर खुर सहित मृग-चर्म को एक कन्धे पर बाँधा। जटाश्रों को खोल, जूडा बाँध, (उनके) स्थिर करने के लिए (बालो में) सलाई डाली। मोतियो के जाल के सदृश छीके में मूँगे के रग की कुण्डी को रक्खा। तीन स्थानों (चदोनो सिरो श्रौर बीच में) से भुकी बेहगी को ले कर, बेहगी के एक सिरे पर कुण्डी श्रौर दूसरे सिरे पर श्रकुश की पिटारी तथा त्रिदण्ड श्रादि लटका कर, खरिया के भार को कन्धे पर रख, दक्षिण हाथ में वैशाखी (चटेक कर चलने की लकडी) ले, पर्ण-कुटी से निकले, श्रौर साठ हाथ लम्बे टहलने के चबूतरे (चमहाचक्रमण-भूमि) पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलते हुए श्रपने वेष को देख कर सोचने लगे—'मेरा विचार सफल हुग्रा। प्रत्रज्या मुक्ते शोभती हैं। बुद्ध ग्रादि सभी वीर पुरुषों ने इस प्रत्रज्या की प्रशसा की हैं। मेरा गृह-बन्धन छूट गया। में श्रनासिक्त (चनेष्कम्य) के लिए

निकल पडा। मुभे उत्तम प्रब्रज्या मिल गई। मैं सन्यास (=श्रमण-धर्म) के श्रनुसार श्राचरण कर मार्ग-फल के सुख को प्राप्त करूँगा।"

(यह सोच) उत्साह से बैहगी को उतार चबूतरे के बीच में मूँगे के रंग के शिला-पट्ट पर सोने की मूर्ति की तरह बैठे। (फिर) दिन बीत जाने पर, सन्ध्या के समय पर्णशाला के भीतर जा, बाँस की चारपाई के पास के लकडी के फट्टो पर लेट विश्राम किया।

(दूसरे दिन) बहुत प्रात काल उठ, ग्रपने ग्राने (के उद्देश्य) पर विचार किया—"में गृहस्थ जीवन के दोषो को देख, ग्रपार भोग-राशि तथा ग्रनन्त यश को छोड़ जगल में ग्रा, श्रनासिक्त की चाह से साधु हुग्रा। इस लिए श्रब ग्रागे से मुफे ग्रालस्य नहीं करना चाहिए। एकान्त (-चिन्तन) को छोड़, बेकार घूमने वाले (पुरुष) को भूठे वितर्क रूपी मिक्खर्यों खा जाती हैं। इस लिए ग्रब मुफे एकान्त-चिन्तन की वृद्धि करनी चाहिए। में गृहस्थ जीवन को सताप समफ (घर छोड बाहर) निकला हूँ। यह (मेरी) मनोहर कुटिया— (जिसकी कि) पक्के बेल के रग जैसी लिपि भूमि हैं, चाँदी सी सफेद दीवारे हैं, कबूतर के पैर के रग सी पत्तो की छत हैं, चित्र-विचित्र कालीन के रग का सा बाँस का पलँग हैं—सुखदायक निवास स्थान हैं, मेरे घर की सम्पत्ति ग्रौर इसमें कोई विशेष श्रन्तर दिखाई नहीं देता। यह (सोच) पर्ण-कुटी के दोषों पर विचार करते हुए (उसमें) ग्राठ दोषों को देखा।

कुटिया के सेवन में ग्राठ दोष हैं—(१) बडे प्रयत्न से ग्रावश्यक चीजों को जुटा, उनको खोजना-बनाना, (२) (उसके) पत्ते, तृण श्रौर मिट्टी के गिर पडने पर, उन्हें फिर फिर लगाने के कारण निरन्तर मरम्मत करना; (३) ग्रासन-वासन (=शयनासन)पर बड़े बूढों का ग्रिधकार हैं, सोच उन के ग्राने पर बे वक्त उठने पर चित्त एकाग्र नहीं होता। इसके लिए वैसी चिन्ता, (४) सरदीं गर्मी से शरीर का सुकुमार हो जाना, (५) छिप कर घर में सभी पाप-कर्म करके पाप छिपाने की गुञ्जाइश होना, (६) 'यह मेरी हैं' ऐसी ममता होना, (७) घर होने का मतलब ही हैं 'श्रकेला न होना', इसके लिए

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> ग्रर्हत्व-प्राप्ति का मार्ग तथा ग्रर्हत्व-प्राप्ति ।

'साथी चाहना', (८) जूँ, पिस्सू, छिपकली ग्रादि का ग्राम तौर से बहुत बढ़ जाना ग्राठवाँ दोष है। इन ग्राठ प्रकार के दोषों को देख कर महात्मा ने कुटिया त्याग दी। इस लिए कहा है—''ग्राठ दोषो से युक्त पर्ण-शाला को छोडा।''

''दस गुणों से युक्त वृक्ष के नीचे ग्रा गया" कहने का ग्रभिप्राय यह है कि कुटिया को छोड, दस गुणो से युक्त वृक्ष की छाया के नीचे आर गया हूँ। वे दस गुण यह हैं---(१) चीजो के जुटाने की चिन्ता न होना पहला गुण; क्योंकि वहाँ (वृक्ष) तक केवल जाने भर का ही (परिश्रम) होता है। (२) ठीक-ठाक करने का बहुत परिश्रम न होना दूसरा, (क्योकि) चाहे भाडू लगाये या न लगाये—दोनो ग्रवस्थाग्रो में उसे सेवन किया जा सकता है; (३) 'उठने (की चिन्ता) न होना'तीसरा; (४) वह पाप कर्म को छिपा नही सकता। वहाँ पाप-कर्म करते लज्जा ग्राती है, इसके लिए पाप-कर्म को न छिपा सकना चौथा, (५) ख़्ले ग्राकाश के नीचे रहने से शरीर जैसा रूखा हो जाता है, वृक्ष की छाया में वैसा नही होता; इस लिए शरीर का रुखाई से बचना पाँचवाँ. (६) जोडने बटोरने की गुञ्जाइश न होना छठा (७) घर के प्रति होने वाली ग्रासिक्त का ग्रभाव सातवाँ; (८) सार्वजनिक शालाग्रो में से जैसे सफाई या मरम्मत के लिए निकल जाना होता है; वैसे यहाँ से न निकलना पडना ग्राठवाँ, (६) प्रसन्नता के साथ रहना नौवाँ; (१०) वृक्ष के नीचे सभी जगह श्रासन-वासन श्रासानी से मिल जाने के कारण उसके लिए 'चाह न होना' दसवाँ । इन दस गुणों को देख में वृक्ष के नीचे ग्राया हूँ — यह भावार्थ ( = कथन) है। इन (सब) बातों का ख्याल कर ग्रगले दिन महात्मा ने भिक्षा के लिए (गाँव में) प्रवेश किया। गाँव में लोगो ने बड़े उत्साह-पूर्वक भिक्षा दी। भोजन समाप्त कर, श्राश्रम को लौटे भ्रौर बैठ कर सोचने लगे :—''मैं समभता था कि भ्राहार नही मिलेगा, यही सोच मैं प्रब्रजित हुग्रा । यह चिकना चुपड़ा श्राहार ग्रभिमान ग्रौर पौरुष के मदों को बढाने वाला है। (इस प्रकार के) श्राहार से उत्पन्न दु ख का अन्त नही है। इस लिए मैं बोये जोते अनाज से बने भोजन को त्याग, सिर्फ (वृक्षो से) गिरे फल को खाऊँगा।" तब से उसने उसी तरह का भोजन ग्रहण कर, योगाभ्यास में लगे रह, एक सप्ताह के ब्रन्दर ही ब्राठ समापत्तियो ग्रौर पाँच ग्रभिञ्ञाग्रो को प्राप्त किया। इसी लिए कहा है .—

"बोये जोते श्रनाजो को बिल्कुल त्याग दिया। श्रौर श्रनेक गुणों से युक्त 'वृक्षों से गिरे फल' को ग्रहण किया। वहाँ बैठे, खड़े, श्रौर टहलते योगाभ्यास में लगे रह सप्ताह के श्रन्दर श्रभिञ्जा-बल को प्राप्त किया।"

# ४. दीपंकर का दर्शन

इस प्रकार श्रिभिञ्जा-बल को प्राप्त कर तपस्वी सुमें के दिन समाधि सुख में बीत रहे थे। उसी समय दीपङ्कर नामक बुद्ध ससार में उत्पन्न हुए। उनके गर्भ-प्रवेश (=पटिसिन्ध ग्रहण), जन्म, बुद्धत्व प्राप्ति तथा धर्म चक्र प्रवर्तन के समय सारे दस हजार ब्रह्माण्ड (=दस सहस्र लोक-धातु) किम्पत= प्रकिम्पत हुए, श्रीर महानाद हुग्रा। बत्तीस पूर्व-निमित्त दिखाई पड़े। लेकिन समाधि के सुख में दिन बिताते तपस्वी सुमेध ने न तो उन शब्दो (=महानाद) को सुना न उन शकुनो (=िनिमित्तों) को देखा। इसी लिए कहा है.—

"इस प्रकार मेरे सिद्धि-प्राप्त तथा धर्म में रत रहते समय, संसार के नेता बीपङ्कर नामक बुद्ध (—जिन) उत्पन्न हुए। समाधि में होने से मैंने उनके गर्भ-प्रवेश, उत्पत्ति, बुद्धत्व-प्राप्ति तथा धर्मोपदेश के समय हुए चा रों श कु नों (—निमित्तों) को नहीं देखा।"

उस समय चार लाख ग्रहेंतो के साथ दसबलो वाले वीपकूर कमशः चारिका करते, रम्मक नामक नगर मे पहुँच (वहाँ के) सुदर्शन महाविहार में रहते थे। रम्मक नगर-वासियों ने सुना कि साधु-सम्राट वीपकूर बुद्धत्व के उत्तम पद को प्राप्त कर कमशः चारिका करते (हमारे) रम्मक नगर मे श्रा, सुदर्शन महाविहार में रहते हैं। यह सुन मक्खन, घी श्रादि भैषज ग्रौर वस्त्र-बिछौने लिवा कर, गन्धमाला हाथ मे ले बुद्ध, धर्म तथा सघ के प्रति श्रद्धा से नम्न हो बुद्ध (=शास्ता) के पास गये। ग्रौर गन्ध ग्रादि से उन की पूजा कर हाथ जोड एक ग्रोर बैठे। बुद्ध का धर्म-उपदेश सुन दूसरे दिन के (भोजन के) लिए निमन्त्रण दे, ग्रासन से उठ कर चले गये। ग्रगले दिन भोजन

<sup>&#</sup>x27;देखो जातक (पु०६७)

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> देखिए श्रंगुत्तर-निकाय, दसमी निपाती ।

(=महादान) तैयार कराया। दीपद्धर बुद्ध के आगमन (के उपलक्ष) में (सारा) नगर सजाया गया। पानी बहने से टूटे फूटे स्थानों में रेत डाली गई, भूमि को समतल बनाया गया। चाँदी की पत्री जैसे सफेद बालू को फैलाया गया। खीलों और फूलो की वर्षा की गई। नाना रग के वस्त्रो की ध्वजा पताकाये उड रही थी। केलो और जल से भरे घटो की पित्तयाँ लगी हुई थी। उस समय तपस्वी सुमेध ने अपने आश्रम से ऊपर उठ (कर) लोगों के सिर पर से आकाश मार्ग से जाते हुए उन सन्तुष्ट मनुष्यों को देख सोचा "इसका क्या कारण हैं?" फिर आकाश से उतर कर एक ओर खड़े हो, उनसे पूछा .— "ओ! तुम इस मार्ग को किस के लिए अलङ्कृत कर रहे हो?" इसी लिए कहा गया हैं

सीमान्त (=प्रत्यन्त) प्रदेश में बुद्ध को निमन्त्रित कर, सन्तुष्ट चित्त हो लोग, उनके आगमन-मार्ग को ठीक कर रहे थे। में उस समय अपने आश्रम से निकल (अपने) कंपित बल्कल वस्त्र के साथ आकाश-मार्ग से जा रहा था। लोगों को प्रमुदित, प्रसन्न चित्त, सन्तुष्ट देख, उसी समय आकाश से उतर लोगों से पूछा:—"यह जन-समूह प्रमुदित, प्रसन्न, सन्तुष्ट हो किस के आने के लिए मार्ग ठीक कर रहा है?"

लोगों ने कहा '---''भन्ते । सुमेध । क्या तुम नहीं जानते ? दीपक्कर दस-(दिव्य) बल-वालें बुद्ध हो, (श्रपने) श्रेष्ठ धर्म का प्रचार श्रारम्भ कर, विचरते हुए हमारे नगर में पहुँच सुदर्शन महाविहार में वास करते हैं। हमने उन भगवान् को निमन्त्रित किया है। (इस लिए) उन भगवान् बुद्ध के श्राने के मार्ग को श्रलड्कृत कर रहे हैं।"

तपस्वी सुमेध सोचने लगा:—"बुद्ध" शब्द का सुनना भी लोक में दुर्लभ है, बुद्ध के जन्म लेने की तो बात ही क्या? मुफे भी इन मनुष्यों के साथ (मिल कर) बुद्ध (=दशबल) का मार्ग अलड्कृत करना चाहिए।" (यह सोच) उसने उन मनुष्यों को कहा—"भो। यदि तुम इस मार्ग को बुद्ध के लिए अलङ्कृत कर रहे हो, तो मुफे भी (इसका) एक भाग दो। में भी तुम्हारे साथ (मिल कर) मार्ग को अलङ्कृत करूँगा। उन्होने 'अच्छा' कह कर स्वीकार कर, 'तपस्वी सुमेध दिव्य शक्तिधारी है—यह जान श्राप इस स्थान को अलक्कृत करें कह पानी से ऊबड़-खाबड़ हुआ एक स्थान दिया।

स्मेध ने बुद्ध के ध्यान से उत्पन्न ग्रानन्द से सतुष्ट हो सोचा-"'मैं इस स्थान को अपने योग-बल से अलकृत कर सकता हूँ। लेकिन इस प्रकार अलकृत करने से मेरा मन सतुष्ट न होगा । इस लिए ग्राज मुफ्ते देह से परिश्रम करना चाहिए।" वह बालू रेत ला कर उस स्थान पर फैलाने लगा। स्रभी उसने उस स्थान को पूरा अलकृत न कर पाया था कि दीपङ्कर-बुद्ध छः अभिज्ञास्रो से युक्त, चार लाख महा प्रतापी ग्रर्हतो (=क्षीणाश्रवों) के साथ उसी ग्रलंकृत मार्ग से ग्रा निकले। उस समय देवता लोग दिव्य माला गन्ध ग्रादि से उनकी पूजा कर रहे थे। देवता दिव्य संगीत गा रहे थे और मनुष्य गन्धो तथा मालाग्रो से पूजा कर रहे थे। (उस समय) वह ग्रनन्त बुद्ध की लीलाग्रो के साथ मन. शिला पर ग्रॅंगडाई लेते सिंह की तरह उस ग्रलंकृत मार्ग पर चल रहे थे। तपस्वी सुमेध ने ग्राँखों से देखा---ग्रलकृत मार्ग से ग्राते हुए बत्तीस महापुरुष लक्षणों<sup>२</sup> तथा श्रस्सी श्रनुव्यञ्जनों<sup>१</sup> से युक्त बुद्ध उसी म्रलकृत मार्ग से म्रा रहे हैं। उनका मुख मण्डल (फैलाये हुए) दोनो हाथ (==व्याममात्र) के प्रभा-मण्डल से घिरा था, जिससे मणियो के रग की प्रभा निकल कर, ग्राकाश तल में नाना प्रकार के विद्युत प्रकाशों की भाँति इकट्ठी हो दो दो की जोड़ी करके छ रग की घनी बुद्ध किरणें प्रस्तारित कर रही थी। उनके ग्रत्युत्तम सुन्दर शरीर को देख कर (सुमेध ने) सोचा-"ग्राज मुभ्ते बुद्ध के लिए जीवन श्रर्पण करना चाहिए। भगवान् को कीचड़ मे नहीं चलने देना चाहिए। यदि चार लाख ग्रर्हतों (=क्षीणाश्रवो) के साथ (भगवान्) मणि फलकों से निर्मित पुल पर चलने के समान, मेरी पीठ को मर्दित करते चले; (तो) वह दीर्घ काल तक मेरे हित श्रीर सुख के लिए होगा"। वह केशो को खोल मृगछाला (=प्रजिन चर्म), जटा ग्रौर छाल (=वल्कल) के वस्त्रों को काले रंग की कीच पर फैला, नगों की पट्टी (=मणि फलक)

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति, ऋद्धि बल, परचित्त का ज्ञान तथा ग्राश्रवक्षय ज्ञान ।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> देखो, लक्खण-सूक्त (दीर्घ-निकाय) ।

<sup>ै</sup> महापुरिस-लक्खण (विनय १. ६५)।

<sup>ैं</sup> नीला, पीला, सफेद, मंजीठा, लाल तथा प्रभास्वर ।

के बने पुल की तरह (उस) कीचड़ में लेट गया। इसी लिये कहा है :---

"उन्हों ने मेरे पूछने पर बताया कि श्रनुपम लोकनायक दीपङ्कर नामक बुद्ध (=शास्ता) लोक में उत्पन्न हुए हैं । यह मार्ग उनके लिए साफ किया जा रहा है। 'बुद्ध'---यह सुनते ही उस समय मेरे मन में भ्रानन्द (=प्रीति) उत्पन्न हुग्रा। 'बुद्ध' 'बुद्ध' कहते हुए में गद्गद (—सौमनस्य को प्राप्त) हो गया। जोश ग्रौर सन्तोष से मेरा दिल भर गया; ग्रौर वहाँ खड़े खड़े मैने सोचा--"मै यहाँ (पुण्य का) बीज रोपूँगा। यह क्षण (कहीं हाथ से) चला न जाय" श्रौर लोगों से कहा-- "यदि यह मार्ग बुद्ध के लिए साफ कर रहे हो, तो (इसका) एक हिस्सा मुक्ते भी दो, में भी (उसे) साफ करूँगा। उन्हो ने साफ करने के लिए मुक्ते मार्ग दे दिया। तब में 'बुद्ध' 'बुद्ध'--(यह) चिन्तन करते उसे साफ करने लगा। मेरे हिस्से के तैयार हो जाने के पहले ही छः ग्रंभि ञ्लाग्रों से युक्त स्थित-प्रज्ञ, निर्मल (-चित्त) चार लाख श्चर्हतों (=क्षीणाश्रवो) के साथ महामुनि दी पङ्क र उस मार्ग पर चले श्राये। श्रगवानी के लिए बहुत सी भेरियाँ बज रही थी। श्रानन्वित हो वेवता ग्रौर मनुष्य 'साधु' 'साधु' कह रहे थे। उस समय वेवता मनुष्यों को वेखते थे ग्रौर मनुष्य देवताग्रो को । (वे) दोनों हाथ जोड़े बुद्ध (=तथागत) के पीछे चल रहे थे। देवता दिव्य वाद्य (चतुर्य) को ग्रौर मनुष्य मानुषिक वाद्य को बजाते तथागत का भ्रनुगमन करते थे। भ्राकाश-मण्डल में भ्रवस्थित देवता मन्दार, पद्म, पारिजात (म्रादि के) दिव्य पुष्पों को चारो स्रोर (=दिशा विदिशा में) बरसा रहे थे। भूमितल पर श्रवस्थित मनुष्य चम्पक, सलल, नीप, नाग, पुन्नाग, केतक (के पुष्पों) को चारो स्रोर बिखेर रहे थे। मैं यहाँ वहाँ भ्रपने केशों को खोल, वल्कल वस्त्र भ्रौर (भ्रासन-वाले) चर्म खण्ड को कीचड़ पर फैला, मुँह के बल लेट गया, जिसमें कि शिष्यों सहित बुद्ध बिना कीचड़ लगे मेरे ऊपर से चले जायें। वह मेरे हित के लिए होगा।"-

<sup>ै</sup> दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्मों का ज्ञान, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का जानना, ग्राश्रवों के क्षय होने का ज्ञान।

र 'हुरि' 'Hurrah' सदृश प्रसन्नता-सूचक नाद।

# ५. बुद्ध बनने का संकल्प

उसने कीचड़ में ही पड़े पड़े फिर ग्रॉखे खोल दीपङ्कर बुद्ध (=दशबल) की बुद्ध-श्री को देखते हुए सोचा—यदि मेरी इच्छा हो, तो में सब चित्त-मलों (=क्लेशो) का नाश कर भिक्ष बन रम्य नगर (=िनर्वाण) में प्रवेश कर सकता हूँ। लेकिन ग्रप्रसिद्ध वेषभूषा के साथ चित्त-मलों का नाश कर, निर्वाण-प्राप्ति करना मेरा ध्येय (=कृत्य) नहीं। मेरे लिए (तो) यही उचित (=योग्य) है कि में (भी) दशबल दीपङ्कर बुद्ध की तरह उत्तम बुद्ध पद को प्राप्त कर मानव-समूह (=महाजन) को, धर्म रूपी नाव पर चढा ससार-सागर से पार उतार लेने के बाद निर्वाण को प्राप्त होऊँ। (इस लिए) ग्राठ धर्मों पर विचार करते हुए बुद्ध-पद के लिए कामना (=प्रार्थना) करता लेटा रहा।

इसी लिए कहा है --

"पृथ्वी पर लंटे हुए मुक्ते ख्याल श्राया कि यदि मेरी इच्छा हो, तो में श्राज श्रपने क्लेशो का नाश कर सकता हूँ; लेकिन (इस) श्रप्रसिद्ध वेष से धर्म के साक्षात् करने से क्या? में बुद्धपद (—सर्वज्ञता) प्राप्त कर देव-ताग्रों सिहत (सारे) लोक का बुद्ध होऊँगा। प्रयत्न-शील (—वीर्य-दर्शी) हो मेरे श्रकेले (संसार सागर से) पार होने से क्या? बुद्ध-पद (—सर्वज्ञता) प्राप्त कर में देवताग्रों सिहत (सारे) लोक को पार उतार सक्रूँगा। नर-श्रेष्ठ (—दीपद्भर) के लिए की गई इस (पूजा के) प्रताप (—ग्रधिकार) से, में बुद्ध-पद (—सर्वज्ञता) प्राप्त कर बहुत जनता को पार उतार सक्रूँगा। मैं (ग्रब) ग्रावागमन की धारा (—संसार-स्रोत) को छेद ती नों भ वों का नाश कर, देवताग्रों सिहत (सारे) लोक को धर्म रूपी नाव पर चढ़ा कर पार उतार्हेंगा।"

लेकिन बुद्ध-पद की चाह रखने वाला यदि मनुष्य-योनि, लिङ्ग-प्राप्ति, हेतु (=भाग्य), बुद्ध (=शास्ता) का दर्शन, संन्यास (=प्रव्रज्या) श्रौर उसके गुण की प्राप्ति, योग्यता (=ग्रविकार), कामना (=छन्द)—(इन)

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> काम-भव, रूप-भव तथा श्ररूप-भव ।

म्राठ धर्मों से युक्त हो, तभी (उस की) वह प्रबल इच्छा (च्य्रभिनीहार) पूरी होती है।

मनुष्य योनि मे ही बुद्ध-पद की कामना करने वाले की इच्छा पूरी होती है। नाग, गरुड या देवता की योनियों में वह पूरी नहीं हो सकती। मनुष्य योनि में भी पुरुष-लिङ्ग में स्थित होने ही पर इच्छा पूरी होती है। स्त्री, षण्ड (=नपुसक) ग्रथवा (स्त्री-पुरुष) दोनो लिङ्गो वाले होने पर पूरी नहीं हो सकती। पुरुष होने पर भी यदि उसी जन्म में अर्हत पद की प्राप्ति का हेतु हो तो इच्छा पूरी होती है, नही तो नहीं। हेतु होने पर भी बुद्ध के जीते जी उनके पास प्रवल इच्छा (=प्रार्थना) रखने वाले की ही इच्छा पूरी होती हैं; बुद्ध के निर्वाण प्राप्त हो जाने पर (उनके) चैत्य (=मृतस्तूप) श्रथवा बोधिवृक्ष के पास प्रार्थना करके इच्छा पूरी नहीं होती। बुद्धों के पास से (श्रर्हत पद की प्राप्ति) के लिए इच्छा करते हुए भी भिक्षु-ग्राश्रमी की ही इच्छा पूरी होती है, गृहस्थ-स्राश्रमी की नही। भिक्षु म्राश्रमियो मे भी जो पाँच म्राभिञ्जास्रों श्रौर श्राठ **समापत्तियों** को प्राप्त कर चुका हो, उसी की पूरी होती हैं। जिसे यह गुण (=गुण-सम्पत्ति) प्राप्त नहीं, उसकी नहीं। गुण के होने पर भी, जिसने श्रपना जीवन बुद्धो के लिए श्रर्पण कर दिया, इस (त्याग)-श्रधिकार से श्रधि-कारी होने पर उसी की पूरी होती हैं, दूसरे की नही। श्रिधकारी होने पर बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्मों के प्रति जिसकी महती इच्छा, महान् उत्साह श्रौर प्रयत्न तथा खोज का भाव (पर्येषण) होता है, उसी की पूरी होती है, दूसरे की नही।

इच्छा-बल ( — छन्द) के विषय में एक उपमा है — जो कोई सारे ब्रह्माण्डों ( — चक्रवालों) के (गल कर) जलमय हुए (समुद्र के) गर्भ को, श्रपने बाहु-बल से तैर कर, पार जा सके, वही (पुरुष) बुद्ध-पद प्राप्त कर सकता है; श्रथवा जो कोई सारे ब्रह्माण्डों ( — चक्रवालों) के बाँसो की फाड़ी से ढके हुए गर्भ को हटा कर, मर्दन कर, पाँव से चल कर, पार कर सके, वह बुद्धपद को प्राप्त कर सकता है; श्रथवा जो कोई छुरियाँ गड़े हुए सारे ब्रह्माण्ड पर नगे पाँव से चलकर

<sup>&#</sup>x27;पूर्वकर्मका पुण्य फल।

उसे पार कर सके, वह बुद्ध-पद को प्राप्त कर सकता है, ग्रथवा जो कोई ग्रंगारों से भरे हुए सारे ब्रह्माण्ड के गर्भ को पाँव से मर्दन करता हुग्रा, उस पार जा सके, वह बुद्ध-पद को प्राप्त कर सकता है। जो इनमें से किसी एक बात को भी श्रपने लिए दुष्कर न समभे; 'मैं इसे भी तैर कर, वा चल कर पार करूँगा,' जिसकी कि इस प्रकार की महान् इच्छा, उत्साह, प्रयत्न तथा पर्येषण हो, उसी की प्रार्थना पूरी होती है; दूसरे की नही।

तपस्वी सुमेध इन ब्राठ बातो (=धर्मी) का ख्याल कर बुद्ध-पद (की प्राप्ति) के लिए बलवती इच्छा (=प्रभिनीहार) कर लेट गया।

### ६, दीपङ्कर की भविष्यद्वागी

भगवान् **दीपङ्कर** ग्रा, तपस्वी सुमेध के सिर की ग्रोर खडे हुए। मणि (-िर्निमत) खिड़की को खोलते हुए की तरह, पाँच प्रकार के रगीन चक्षु-प्रासाद से युक्त ग्राँखों को खोल कर कीचड़ पर पड़े तपस्वी सुमेध को देखा। फिर—यह तपस्वी 'बुद्धपद' के लिए दृढ सकल्प (च्य्रिभिनीहार) कर के पड़ा है, इसकी इच्छा पूरी होगी श्रथवा नहीं ?—इस प्रकार भविष्य सोचते हुए जाना कि ग्रब से चार ग्रसखेय्य एक लाख कल्प वीतने पर गौतम नाम के बुद्ध होगे। (तब) मण्डली के बीच में खड़े हो कहा—'देखते हो न तुम कीचड़ में पड़े उग्र तपस्या करने वाले इस तपस्वी को ?''

"भन्ते <sup>।</sup> हाँ !"

"यह तपस्वी बुद्ध-पद के लिए दृढ-सकल्प कर के पड़ा है। इसकी कामना पूरी होगी। ग्रव से चार ग्रसखेय्य एक लाख कल्प के बीतने पर यह गौतम नामक 'बुद्ध' होगा। उस जन्म में इसका निवास किपलवस्तु' नामक नगर होगा; माया नामक देवी इसकी माता होगी, शुद्धोदन नामक राजा पिता होगा। उपतिष्य' नामक स्थविर प्रधान-शिष्य (=ग्रग्र-श्रावक) होगा। कोलित' नामक (स्थविर) द्वितीय शिष्य (=श्रावक) होगा। ग्रानन्द (स्थविर)

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> तिलौराकोट, तौलिहवा (नैपाल-तराई) से दो मील उत्तर । <sup>२</sup>सारिपुत्र तथा मौदगल्यायन ।

परिचारक (=उपस्थायक) होगा। खेमा नामक स्थिवरा प्रधान शिष्या (=ग्रग्न श्राविका) होगी; उत्पलवर्णा नामक स्थिवरा द्वितीय शिष्या (=श्राविका) होगी। ज्ञान के परिपक्व हो जाने पर वह गृह त्याग (महाभिनिष्क्रमण) करेगा; ग्रौर महान् तपस्या करने के बाद न्यग्रोध(-वृक्ष) के नीचे खीर ग्रहण कर, नेरञ्जरा नदी के किनारे उसे भोजन कर, बोधि मण्ड पर चढ ग्रश्वत्य वृक्ष के नीचे बुद्ध-पद प्राप्त करेगा।

इसी लिए कहा है ---

"सत्कार(=ग्राहुति)-भाजन, लोक के ज्ञाता, दी प ङ्कू र मेरे शिर के पास खड़े हो कर यह बोले-- "इस उग्र तपस्या करने वाले जटिल तपस्वी को देखते हो ? ग्रब से चार श्रसंखेय्य एक लाख कल्प के बीतने पर यह बुद्ध होगा । तथागत क पि ल (वस्तु) नामक रम्य नगर से निकल कर, महान् उद्योग ग्रौर दुष्कर तपस्या करेंगे। फिर ग्रज पाल वृक्ष के नीचे बैठ खीर ग्रहण कर, ने र ञ्ज रा नदी के तट पर जायेंगे। वहाँ ने र ञ्ज रा नदी के किनारे वह खीर को खा मुसज्जित मार्ग से बोधि-वृक्ष के नीचे जायेंगे। वह स्रनुपम महा यशस्वी (पुरुष) बोधिमण्ड की प्रदक्षिणा कर, म्र इव त्य पीपल-वृक्ष के नीचे बुद्ध (पद को प्राप्त) होगा। इसकी जननी, माता माया (देवी) होगी; पिता ज्ञु द्धो द न श्रौर यह गौ त म होगा। इस जिन (==ज्ञास्ता) के को लि त भ्रौर उप ति ष्य नाम के वीतरागी, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) श्रर्हत श्रप्र-श्रावक होंगे; श्रौर ग्रा न न्द नामक परिचारक (≔उपस्थायक) परिचर्या (= उपस्थान) करेंगे। क्षे मा तथा उत्पल वर्णा आश्रव-रहित, वीतराग, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) श्रर्हत प्रधान शिष्यायें (== ग्रप्र-श्राविकायें) होगी ग्रौर उन भगवान् के बुद्ध (-पद) प्राप्ति करने का वृक्ष (=बोधि) पीपल (= ग्र इव तथ - बो धि) कहलाएगा।"

तपस्वी सुमेध 'मेरी' कामना सम्पूर्ण होगी' सोच सतुष्ट हुम्रा। जनता (—महाजन) ने बुद्ध (—दशबल) दीपङ्कर के वचन को सुना; ग्रीर 'यह

१ नीलाजन नदी (जि॰ गया)।

<sup>&</sup>lt;sup>र</sup>बोध गया का प्रसिद्ध पोपल-वृक्ष ।

तपस्वी सुमेध बुद्ध-बीज हैं, बुद्ध-प्रकुर हैं — सोच कामना की— "जैसे सामने के घाट (=तीर्थ) से नदी को पार न कर सकने पर मनुष्य नीचे के घाट से नदी पार करता हैं। इसी प्रकार हम बुद्ध दीपड्कर के शासन-काल में यदि मार्ग-फल को न पा सके, तो जब तू बुद्ध होगा, तब तेरे सन्मुख मार्ग-फल प्राप्त करने में समर्थ हों।"

वीपक्कर बुद्ध भी बोधिसत्त्व (सुमेध) की प्रश्नसा कर, ग्राठ मुट्ठी फूल से पूज, प्रदक्षिणा कर चल दिये ग्रौर वे चार लाख ग्रहंत भी गन्ध तथा माला से बोधिसत्त्व की पूजा कर, प्रदक्षिणा कर ग्रागे बढे। देवता ग्रौर मनुष्य भी उसी प्रकार पूजा तथा वन्दना कर चल दिये। सब के चले जाने पर बोधिसत्त्व उठ कर पारिमताग्रों पर चिन्तन करने की इच्छा से, पुष्पो के ढेर पर पालथी मार बैठ गये। बोधिसत्त्व के इस प्रकार बैठने पर, सारे दस हजार ब्रह्माण्डो (चक्क वालो) के देवताग्रो ने एकत्र हो, साधुकार दे—"(साधु !) ग्रार्य ! तपस्वी सुमेध ! (साधु)! पुराने बोधिसत्त्वो की (भाँति) ग्रासन मार पारिमताग्रों पर चिन्तन करने की इच्छा से बैठने के समय जो जो शकुन (चपूर्व निमित्त) पहले प्रकट होते रहे, वह सब ग्राज भी प्रकट हो रहे हैं, इस लिए हम यह जानते हैं कि तू निस्सन्देह बुद्ध होगा। जिनके लिए यह चिन्ह प्रकट होते हैं, वह निश्चय बुद्ध होता है। इस लिए तू ग्रपने उद्योग को दृढ करके प्रयत्न कर।" (इस प्रकार देवताग्रो ने) नाना प्रकार की स्तुतियो से बोधिसत्त्व की प्रशसा की। इस लिए कहा है —

"श्रनुपम महर्षि (दीपङ्कर) के इस वचन को सुन कर, कि यह (तपस्वी सुमेध) बुद्ध-श्रड्कुर है देवता श्रौर मनुष्य प्रसन्न हुए। (उस समय) देवताश्रौं सिहत सारे दस हजार ब्रह्माण्ड घोषणा करते, ताली बजाते, हँसते तथा हाथ जोड़ कर प्रणाम करते थे श्रौर (लोग सोच रहे थे) कि यदि इस (दीपङ्कर) बुद्ध (=लोक नाथ) के काल में हम चूक गये, तो भविष्य में इस (तपस्वी सुमेध के बुद्ध होने) के समय (कृतकायं) होगे। जिस प्रकार नदी पार करने वाले पुरुष सामने के घाट के छूट जाने पर, नीचे के घाट से महा नदी को पार करते हैं, इसी प्रकार यदि हम सब से यह बुद्ध छूट जायेंगे, तो हम भविष्य काल में इन बुद्ध के समकालीन (उत्पन्न) होंगे।"

# 9. सुमेध का दूढ संकल्प

"पूजा के भाजन, लोक के जानकार, दीपङ्कर ने मेरे कार्य की प्रशंसा करके दिक्षण पैर उठाया। वहाँ जितने बुद्ध के शिष्य (=जिन-पुत्र) थे, उन सब ने मेरी परिक्रमा की। नर, नाग, (तथा) गन्धर्व, सभी अभिवादन करके गये। जब संध-सहित बुद्ध (=लोक नायक) आँखों से ओक्सल हो गये, तब में प्रसन्न चित्त हो उठ बैठा। सुख से सुखित, प्रमोद से प्रमुदित, आनन्द (=प्रीति) से शान्त हो, मेने आसन लगाया। आसन लगा में सोचने लगा—में ध्यान-प्राप्त हूँ। अभिञ्जाएँ मुक्ते मिल चुकी है। सहस्रो लोकों में भी मेरे समान (दूसरा) ऋषि नहीं। में अदितीय (=असदृश्य) हूँ। मेने दिव्य-शक्ति (=ऋदि-धर्मों) में ऐसा सुख प्राप्त किया है।

"मेरे पालथी मार बैठने पर, इन सहस्र ब्रह्माण्डों के निवासियों ने महानाव किया—"तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"पूर्व (काल) में बोधिसत्त्वों के ग्रासन लगा कर बैठने पर, जो शकुन दिखाई देते रहते हैं, वे ग्राज (भी) दिखाई देते हैं। शीत का चला जाना, उष्णता का शान्त हो जाना—ये शकुन ग्राज भी दिखाई देते हैं। (इसलिए) तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"वस सहस्र ब्रह्माण्डों का निश्लाब्द श्रौर निर्द्वन्द्व होना-ये शकुन श्राज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"न श्रांभी (=महा वायु), न निवयाँ (प्रचण्डता से) बहती है। ये शकुन श्राज भी विखाई देते है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जल तथा स्थल (दोनों) पर फूलने वाले सभी फूल फूल जाते हैं। सो सभी म्राज भी फूले हुए हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सभी लतायें तथा वृक्ष फलों से लवे होते हैं। वे सभी झाज फलों से लवे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय ग्राकाश ग्रौर पृथ्वी (बोंनों) में विद्यमान रत्न चमकने लगते हैं। वे सभी रत्न ग्राज चमक रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दिव्य और मानुष (सभी) बाजे (तूर्ण) बजते हैं, वे बोनों भी आज बज रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।" "उस समय ग्राकाश से चित्र विचित्र फूलों की वर्षा होती है। वह वर्षा ग्राज भी हो रही है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) महासमुद्र संकुचित होता है, और दस सहस्र ब्रह्माण्ड काँपने लगते हैं। वे भी दोनों श्राज कंपन का शब्द कर रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दस सहस्र ब्रह्माण्डों के नरकों की भी श्राग्नियाँ बुक्त जाती है, वे श्राग्नियाँ भी श्राज बुक्त गई है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सूर्य्य निर्मल होता है, सभी तारे दिखाई देने लगते है, वे भी भ्राज दिखाई दे रहे हैं। तु निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय बिना वर्षा के ही पृथ्वी से पानी निकलता है, वह भी म्राज पृथ्वी से निकल रहा है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय श्राकाश मण्डल में तारे श्रौर नक्षत्र चमकने लगते हैं। चन्द्रमा वि शा खा नक्षत्र में होता है।....'तु निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) बिलों में तथा पर्वतों पर रहने वाले सब (प्राणी) श्रपने श्रपने घरों से निकल श्राते हैं। वे भी श्राज (श्रपने श्रपने) बसेरो से बाहर श्रा गये हैं। तृ निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय प्राणियों को श्रसन्तोष नहीं होता, सभी जीव संतुष्ट होते है। बे भी सब श्राज सन्तुष्ट है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) रोग शान्त हो जाते हैं, भूख नष्ट हो जाती है। वे (लक्षण) भी श्राज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय राग कम हो जाता है, द्वेष श्रौर मोह भी नष्ट हो जाते है। वे भी श्राज सब नष्ट हो गये है। तु निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय (किसी को) भय नहीं होता। श्राज भी ऐसा ही दिखाई देता है। इस चिन्ह से हम जानते है, कि तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) धूलि ऊपर को उड़ती है, म्राज भी वह दिखाई देती है। इस चिन्ह से हम जानते है, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय हवा से) बुरी गन्ध हट जाती है, दिब्य गन्ध बहती है। वह गन्ध भी भ्राज बह रही है, तु निश्चय से बुद्ध होगा।"

"आकार रहित (= श्ररूपी) देवताश्री के श्रतिरिक्त बाकी सब देवता

दिखाई देने लगते हैं। वे भी भ्राज सब दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।" "उस समय जितने नरक (होते) हैं, वे सब दिखाई देते हैं। वे भी सब भ्राज दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दोवार, दरवाजे तथा पर्वत ढाँकने की शक्ति खोये हुए (=िनरावरण) होते हैं। वे भी ख्राज ख्राकाश से हो गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

''उस क्षण में जन्म स्रौर मृत्यु का होना बन्द हो जाता है। वह लक्षण भी स्राज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।''

"उद्योग को वृद्ध कर। रुक मत, आगे बढ़। हम यह जानते हैं, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

दीपडूर बुद्ध तथा उन सहस्र ब्रह्माण्डो के देवताग्रो के वचन को सुन कर, (ग्रौर भी) श्रधिक श्रानन्द (=सौमनस्य) से उत्साहित हो बोधिसत्त्व ने सोचा—बुद्धो का वचन भूठा नही होता ? बुद्धो का कथन उलट नहीं सकता। जैसे श्राकाश में फेंके ढेले का गिरना, जन्मने वाले का मरना, उपा (=श्रहण के उद्गमन) के बाद सूर्य्योदय, गुफा से निकलते समय सिंह का गर्जन, भारी गर्भवती स्त्री का जनन—(यह सब) श्रनिवार्य (=श्रुव) श्रौर श्रवहयम्भावी है, इसी प्रकार बुद्धो का वचन निष्फल नहीं जाता "मैं निश्चय से बुद्ध होऊँगा।" इसी लिए कहा है :—

"तब बुद्ध तथा वस हजार ब्रह्माण्डो के वेवताथ्रो के वचन को सुन कर सन्तुष्ट, प्रसन्न हो मैंने सोचा— "बुद्ध एक बात कहने वाले होते हैं। उनका वचन निष्फल नहीं जाता। बुद्धों का कथन असत्य नहीं होता। मैं जरूर बुद्ध होऊँगा। जिस प्रकार आकाश में फेंका हुआ ढेला, पृथ्वी पर अवश्य गिरता है, इसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन अनिवार्य (= ध्रुव = शाश्वत) है। जिस प्रकार सब प्राणियों का मरना अनिवार्य है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन अनिवार्य है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन अनिवार्य है। जिस प्रकार रात्रि के बीतने पर सूर्योवय निश्चित है, इसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार बसेरे से निकलते सिंह का गर्जन करना निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार मिश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। ग्रिस प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है।"

# ८. दस पारमिताएँ श्रीर हढ़ संकल्प की पूजा

#### (१) दान पारमिता

"मैं बुद्ध अवश्य होऊँगा", (इस प्रकार का) निश्चय कर, बुद्ध बनाने वाले धर्मों का निश्चय करने के लिए सोचा—बुद्ध बनाने वाले धर्म कहाँ है ? उपर है, नीचे है, (वा) दस दिशाग्रो में हे ? इस प्रकार कम से सभी धर्मों (=धर्म धातुग्रो) पर विचार करने लगा। फिर प्राचीन काल के बोधिसत्त्वो द्वारा सेवित किये प्रथम-पारिमता दान-पारिमता को देख, उसने अपने को सम-काया—'पण्डित सुमेध! अब से तुक्ते पहले दान-पारिमता पूरी करनी होगी। जिस प्रकार पानी का घडा उलटने पर अपने को बिलकुल खाली कर, पानी गिरा देता है, और फिर वापिस ग्रहण नहीं करता, इसी प्रकार धन, यश, पुत्र, दारा अथवा (शरीर का) अङ्ग प्रत्यङ्ग (किसी) का (भी कुछ) ख्याल न कर, जो कोई भी याचक आवे, उसकी सभी इच्छित (वस्तुग्रो) को ठीक से प्रदान करते हुए, बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ कर तू बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। इस लिए पहले तू दान पारिमता (की पूर्ति) के लिए दृढ सकल्प (=ग्रिधिष्ठान) कर। इसी लिए कहा है—

'श्रहो! बुद्ध बनाने वाले घर्मी को यहाँ, वहाँ, ऊपर, नीचे दसों दिशाश्रों में, जितनी भी धर्म-धातुएँ हैं, (उन सब में) ढूँढ़ते हुए, मैंने पूर्व-महर्षियों द्वारा सेवित महान् मार्ग (= महापथ, महायान) दान-पारिमता को देखा। (श्रीर समकाया) पहले तू बृढ़ता पूर्वक इस दान-पारिमता को ग्रहण कर। यिद बुद्ध-पद के पाने की इच्छा है, तो दान की परम सीमा तक चला जा। जिस प्रकार पानी का भरा घड़ा उलटा करने पर श्रपने सारे पानी को गिरा देता है, कुछ भी बचा नही रखता, उसी प्रकार तू उत्तम, मध्यम, श्रधम (सभी तरह के) याचको को पा, श्रोंधे घड़े की तरह श्रपने सरवस्व का दान कर।

# (२) शील पारमिता

'बुद्ध वनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते' (विचार) ग्रौर भी सोचते

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>दान की पराकाष्ठा।

हुए उसने द्वितीय (पारिमता) शील-पारिमता को देख कर सोचा— 'पण्डित सुमेध' श्रव से तुभे शोल-पारिमता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार चमरी (=चमरी-मृग) ग्रपने जीवन की भी परवाह न कर, ग्रपनी पूँछ की रक्षा करता है, इसी प्रकार तू भी ग्रव से जीवन की भी परवाह न कर शील रक्षा करते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। "(इस लिए) तू द्वितीय शील-पारिमता (की पूर्ति) का दृढ सकल्प कर।" इसी से कहा हैं —

"यह बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। श्रोर भी जो जो धर्म बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक है; उन्हें भी ढूंढ़ना चाहिए, यह सोचते हुए उसने पूर्व महींषयों से सेवित द्वितीय पारिमता शील-पारिमता को देखा। (ग्रौर) अपने मन को समक्षाया—तू इस दूसरी शील-पारिमता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की इच्छा है, तो शील की (चरम) सीमा तक पहुँच जा। जिस प्रकार चमरी चाहे मर जावे; लेकिन किसी चीज में फँसी श्रपनी पूँछ को हानि पहुँचने नहीं देती। उसी प्रकार चा रों भू मि यों में शील की पूर्ति करते हुए चमरी की पूँछ की भाँति (श्रपने) शील की रक्षा कर।

# (३) नैष्क्रम्य पारमिता

फिर विचार हुआ—'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते' श्रौर भी सोचते हुए तृतीय नैष्कम्य पारिमता को देख विचारा—"पण्डित सुमेध ! श्रव से तुभे नैष्कम्य पारिमता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार जेल (चबन्धनागार) में चिरकाल तक रहने वाला मनुष्य भी जेल के प्रति स्नेह नहीं रखता, वहाँ न रहने के लिए ही उत्कण्ठित हैं, इसी प्रकार तू सब योनियों (चभवों) को जेल (सदृश) ही समभ, सब योनियों से ऊब कर उन्हें छोडने की इच्छा कर, नैष्कम्य की श्रोर भुक। इस प्रकार तू बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इस लिए) तू तृतीय नैष्कम्य-पारिमता (की पूर्ति) का दृढ़ सकल्प (=श्रिध-ष्ठान) कर। इसीलिए कहा है—

<sup>ै</sup> प्रतिमोक्ष संवर-शील (=यम नियमो की पूर्ति), इंद्रिय संवर-शील (=इन्द्रिय संयम), ग्राजीव परिशुद्धि (=जीविका की शुद्धि), प्रत्यय परि-वेषण (=शारीरिक ग्रावश्यकताग्रो की खोज)।

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। जो जो भी बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म है, उन्हें भी हूँ दूना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व ऋषियों से सेवित तृतीय नैष्क्रम्य पारिमता को बेखा। तू इस तीसरी नैष्क्रम्य पारिमता को वृद्धता पूर्वक प्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की प्राप्ति की इच्छा है, तो नैष्क्र-म्यता की भी सीमा को पार कर जा। जिस प्रकार चिरकाल तक जेल में रह (उसके) दुःखों को भेले मनुष्य को उस जेल के प्रति राग उत्पन्न नहीं होता (बल्क उससे) छूटना ही चाहता है; इसी प्रकार तू सब योनियों को जेल की तरह समभ्र, ग्रौर उन (योनियों) से छूटने के लिए नैष्क्रम्य की ग्रोर चल।

#### (४) प्रज्ञा पारमिता

तब 'इतने ही बुद्ध बनाने वाले धर्म नही हो सकते, और भी (होंगे)' सोचते हुए चौथी प्रज्ञा-पारमिता को देखा और मन मे सोचा—"पण्डित सुमेध ! ग्रब से तुभे प्रज्ञा-पारमिता भी पूरी करनी होगी। उत्तम, मध्यम, श्रधम, किसी को भी बिना छोडे सभी पण्डितों के पास जा कर प्रश्न पूछने होगे। जिस प्रकार भिक्षा माँगने वाला भिक्ष (उत्तम, मध्यम) हीन (सभी) कुलो मे किसी को भी न छोड कर एक ग्रोर से भिक्षाटन करते हुए शीघ्र ही (ग्रावश्यक) भोजन (च्यापन) प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार तू भी सभी पण्डितों के पास जा कर प्रश्न पूछते पूछते बुद्ध-यद को प्राप्त कर लेगा।" इस लिए तू चतुर्थं प्रज्ञा पार-मिता (की पूर्ति) का दृढ सकल्प कर। इसी से कहा है—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। श्रौर भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी खोजना चाहिए। यह ढूंढ़ने की इच्छा से पूर्व ऋषियों से सेवित चौथी प्रज्ञा पारिमता को देखा।" चौथे तू इस प्रज्ञा-पारिमता को बृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व-प्राप्ति की इच्छा है, तो प्रज्ञा की सीमा के पार जा। जिस प्रकार भिक्ष उत्तम, मध्यम (तथा) श्रधम कुलो में से (किसी एक कुल को भी) बिना छोड़े, भिक्षा माँगते हुए श्रपना निर्वाह (=यापन) करता है, उसी प्रकार तू पण्डित जनो से सर्वदा (प्रश्न) पूछता हुश्रा, प्रज्ञा की सीमा के श्रंत पर जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।"

# (५) वीर्य पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते, श्रीर भी' सोचते हुए पाँचवी

वीर्षं-पारिमता को देख यह (विचार) हुआ। "पण्डित सुमेघ! श्रव से तुक्तें वीर्यं-पारिमता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार (मृग-)राज सिंह सब श्रवस्थाओं (चईर्यापथों) में दृढ उद्योगी होता हैं, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में, सब श्रवस्थाओं में दृढ उद्योगी, निरालस्य, श्रौर यत्नवान् हो बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू पाँचवी वीर्य-पारिमता (की पूर्ति) का दृढ सकल्प कर। इसीसे कहा हैं—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। श्रौर भी जो जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म है, उन्हें भी खोजना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व-ऋषियो से सेवित पाँचवी वीर्य-पारिमता को देखा। पाँचवें तू इस वीर्य-पारिमता को वृद्धता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व प्राप्ति की इच्छा है तो वीर्य की सीमा के पार जा। जिस प्रकार मृग-राज सिंह बैठते, खड़े होते, चलते (सदैव) निरालस, उद्योगी तथा दृद्ध-मनस्क होता है, उसी प्रकार तू भी सब योनियो में दृद्ध उद्योग को ग्रहण कर। वीर्य की सीमा के श्रंत पर जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

#### (६) चान्ति पारमिता

तब 'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते, श्रौर भी' सोचते हुए, छठी क्षान्ति पारमिता को देखा। (उसके मन में) यह विचार हुशा। 'पण्डित सुमेध! श्रव से तुभे क्षान्ति पारमिता भी पूरी करनी होगी। सम्मान श्रौर श्रपमान, दोनों को सहना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी पर (लोग) शुद्ध चीज भी फेकते हैं, श्रशुद्ध चीज भी फेकते हैं। पृथ्वी सहन करती हैं। न तो (श्रच्छी चीज फेकने से) खुश होती हैं, न (बुरी चीज फेकने से) नाराज। इसी प्रकार तू भी सम्मान तथा श्रपमान, दोनों को सहने वाला हो कर ही बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू छठी क्षान्ति-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ सकल्प कर। इसी से कहा हैं—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे श्रौर भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म है उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व-ऋषियों से सेवित छठी क्षान्ति-पारमिता को देखा श्रौर (मन में) विचार हुश्रा—छठे तू इस क्षान्ति-पारमिता को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर। इसमें स्थिर चित्त हो लगने पर तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी (श्रपने पर) शुद्ध, श्रशुद्ध सब ही

(चीजों) के फेंकने को सहन करती है, न कोध ही करती है, न खुश ही होती है। उसी प्रकार तूभी सब (प्रकार) के मान, ग्रपमान सहता क्षान्ति की सीमा के ग्रंत पर जा बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

#### (७) सत्य पारमिता

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते, और भी सोचते हुए, सातवी सत्य पारिमता को देखा और मन मे यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुम्हे सत्य पारिमता भी पूरी करनी होगी। चाहे सिर पर बिजली गिरे, धन आदि का अत्यधिक लोभ हो तो भी जान बूभ कर भूठ न बोलना चाहिए। जिस प्रकार शुक्र का तारा (औषधि) चाहे कोई ऋतु हो अपने गमन-मार्ग को छोड कर, दूसरे मार्ग से नही जाता, अपने ही मार्ग से जाता है। इसी प्रकार तू भी सिवाय सत्य को छोड, मृषावाद न करके ही बुद्धत्व को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू सातवी सत्य-पारिमता (की पूर्ति) का दृढ अधिष्ठान कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही होगे श्रौर भी जो जो बुद्ध-पदवी-प्राप्ति में सहायक धर्म है उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियों से सेवित सातवीं सत्य-पारमिता को देखा। (श्रौर) मन में कहा—सातवें तू इस सत्य-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। एक बात बोलने वाला होने पर तू बुद्धपद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार शुक्र (तारा) सदैव (लोक) में एक समान हो, वर्षा-ऋतु श्रथवा (दूसरे) समय में श्रपने मार्ग का श्रतिक्रमण नहीं करता। उसी प्रकार तू भी सत्य (के विषय) में श्रपने मार्ग का श्रतिक्रमण न करने वाला बन। सत्य की सीमा के श्रंत पर जा, त बद्धपद को प्राप्त करेगा।

#### (५) अधिष्ठान-पारमिता

बुद्ध वनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, श्रौर भी सोचते हुए श्राठवी श्रिष्ठान ( = दृढ सकल्प) (-पारिमता) को देखा, श्रौर (उसके मन मे) विचार हुग्रा। 'पण्डित सुमेध । श्रव से तुफे श्रिष्ठान पारिमता भी पूरी करनी होगी। जो श्रिष्ठान ( = दृढ निश्चय) करना होगा, उस श्रिष्ठान पर निश्चल रहना होगा। जिस प्रकार पर्वत सब दिशाश्रो में (प्रचण्ड) हवा के भोके के लगने पर भी, न कॉपता है, न हिलता है, श्रौर श्रपने स्थान पर स्थिर रहता है, इसी प्रकार तुभी श्रपने श्रिष्ठान में निश्चल रहते हुए ही बुद्ध-पद

को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू म्राठवी म्रधिष्ठान-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ सकल्प कर। इसीसे कहा :—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही होंगे। श्रौर भी जो जो बुद्धपद की प्राप्ति में सहायक धर्म है, उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए, यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियों से सेवित श्राठवीं श्रिधिष्ठान-पारिमता को देखा। (श्रौर मन में कहा—) श्राठवें तू श्रिधिष्ठान-पारिमता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर इसमें श्रचल होने से तू बुद्ध-पद को प्राप्त कर। जिस प्रकार श्रचल, सुप्रतिष्ठित, शैल पर्वत तेज वायु से (भी) नही काँपता, श्रपने स्थान पर ही स्थिर रहता है, इसी प्रकार तूभी श्रपने श्रिधिष्ठान में सदैव निश्चल हो। श्रिधिष्ठान की सीमा के श्रंत पर जाने से तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

# (९) मैत्री-पारमिता

तब बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते', श्रौर भी सोचते हुए नौवी मैत्री पारमिता को देखा। श्रौर (उसके) मन में यह विचार हुशा। 'पण्डित सुमेघ! श्रव से तुभे मैत्री-पारमिता भी पूरी करनी होगी। हिंत, अनहित सब के प्रति समानभाव रखना होगा। जिस प्रकार पानी, पापी श्रौर पुण्यात्मा दोनों के लिए एक जैसी शीतलता रखता है, उसी प्रकार तू भी सब प्राणियों के प्रति एक जैसी मैत्री रखते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू मैत्री-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ निश्चय कर। इसीसे कहा:—

'बुढ़ बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे', और भी जो बुढ़-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हों उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियों से सेवित नौवीं मैत्री-पारिमता को देखा। (मन से कहा—) तू इस मैत्री-पार-मिता को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुढ़-पद की प्राप्ति की इच्छा है तो मैत्री-भावना में बेजोड़ बन। जिस प्रकार पानी, पापी और पुण्यात्मा दोनों को ही समान रूप से शीतलता पहुँचाता है और (दोनो के) मैल को घो देता है। उसी प्रकार तू भी हित, अनहित दोनों के प्रति समान भाव से मैत्री-भावना कर। मैत्री-भावना की सीमा के अंत पर जाने से बुढ़-पद को प्राप्त होगा।

# (१०) उपेत्ता पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नही हो सकते', श्रौर भी सोचते हुए दसवी

उपेक्षा-पारमिता को देखा। (मन में) यह विचार हुम्रा-"पण्डित सुमेध ! श्रव से तुभे उपेक्षा-पारिमता भी परी करनी होगी। सुख श्रौर दुःख में मध्यस्थ ही रहना होगा। जिस प्रकार पथ्वी, शचि श्रीर श्रशुचि, दोनों को (उसपर) फेंकने पर भी मध्यस्थ ही रहती है, इस प्रकार तु भी सुख, दु:ख दोनों में मध्यस्थ रहते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू दसवीं उपेक्षा-पारिमता (की प्रति) का दृढ़ निश्चय कर। इसीसे कहा है:--

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंग', ग्रोर भी जो जो बोधि-सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व ऋषियों से सेवित दसवीं उपेक्षा-पारमिता को देखा। (मन से कहा---) दसवें तू इस उपेक्षा-पारमिता को दृढ़ करके ग्रहण कर। दृढ़ता-पर्वक तला (सद्श) बन, बद्ध-पद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी खुशी ग्रौर नाराजी छोड़ (ग्रपने ऊपर) शुचि श्रीर श्रशुचि, दोनों के फेंकने की उपेक्षा करती है, इसी प्रकार तु भी सबैब सुख दुःख के प्रति तुल्य हो। उपेक्षा की (चरम-)सीमा के ग्रंत पर जाने से बुद्ध-पद को प्राप्त होगा।

इसके बाद सोचा-इस लोक में बोधिसत्त्वों द्वारा पूरे किये जाने वाले, परम ज्ञान ( = बोधि)परिपक्व करने वाले, तथा बुद्ध बनानेवाले धर्म इतने ही हैं; (इन) दस पारमितात्रों को छोड़ कर ग्रन्य नहीं। यह दस पारमिताएँ भी न तो ऊपर ग्राकाश में हैं, न पूर्व ग्रादि दिशाग्रों में हैं; किन्तु मेरे हृदय के भीतर ही प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार उनके हृदय ही में प्रतिष्ठित होने (की बात) जान, सब के लिए दृढ़ निश्चय कर, फिर फिर उनपर सीधे-उल्टे ( = अनुलोम प्रतिलोम) कम से विचार करने लगा। अन्त से शुरू करके स्रादि तक पहुँचाता, श्रादि से शुरू करके श्रन्त तक पहुँचाता, बीच से ग्रहण करके दोनों श्रोर खतम करता, (तथा) दोनों सिरों से आरम्भ करके बीच में खतम करता। (अगने) श्रंग का परित्याग पारमिताएँ, बाहरी वस्तुस्रों का त्याग उपपारमिताएँ स्रौर प्राणों का परित्याग परमार्थ-पारिमताएँ, (कहलाती) हैं। दस पारिमताएँ, दस उपपारिमताएँ भ्रौर दस परमार्थ-पारिमताएँ—(इन तीसों पर) दो तेलों को मिलाने की तरह, तथा सुमेरु पर्वत की मथनी बना चक्रवाल महा समुद्र की मथने की तरह बिचारने लगा।

उन दस पारमिताग्रों पर विचार करते समय धर्म-तेज से चार नियुत

दो लाख योजन घनी यह पृथ्वी भारी शब्द कर वैसे ही काँप उठी जैसे हाथी द्वारा भ्राक्रान्त नर्कट, ग्रथवा पेरा जाता ऊख-यत्र; भ्रौर कुम्हार के चक्र (तथा) तेली के कोल्हू की तरह घूमी। इसीसे कहा हैं —

'लोक में परमज्ञान (की प्राप्ति में) सहायक धर्म इतने ही है। इनसे श्रिधिक श्रन्य नहीं है। उनमें दृढ़ता पूर्वक स्थित हो, स्वभाव, रस तथा लक्षणो सहित इन धर्मों पर विचार करने लगा। उस समय धर्म तेज के प्रवाह से दस सहस्र ब्रह्माण्डों वाली पृथ्वी काँप उठी। पेरते ऊख के कोल्हू की तरह श्रौर तेल के कोल्हू के चक की तरह पृथ्वी हिली श्रौर नाद किया।'

रम्य-नगर-वासी, कॉपती हुई महा पृथ्वी पर नही खडे रह सके; श्रौर प्रलय-वायु से प्रताड़ित महान् शाल वृक्षो की तरह, मूछित हो गिर पडे। कुम्हार के बनते हुए घडे श्रादि वर्तन एक दूसरे से भिड कर चूर्ण विचूर्ण हो गये। भयभीत त्रसित जनता ने बुद्ध के पास जाकर पूछा .—"भगवान्! क्या यह नागो का विष्लव (=श्रावर्त्त) है, श्रथवा भूत, यक्ष, देवताश्रो के विष्लवो में से (कोई) एक है है हम इसे नही जानते। सारी जनता भयभीत है। क्या इससे लोक का कुछ श्रनिष्ट होगा श्रथवा भला ? हमें यह बात बतलाइए।"

शास्ता ने उनका कथन सुनकर कहा '—मत डरो, चिन्ता मत करो, यह भय का कारण नही। श्राज जो मैंने पिण्डत-सुमेध के भविष्य में गौतम नामक बुद्ध होने की भविष्यत् वाणी (=व्याकरण) की, सो वह (पिण्डत सुमेध) श्रव पारिमताश्रो पर विचार कर रहा है। उसके पारिमताश्रो पर विचार करते, तथा उन्हें मन्थन करते समय, धर्म-तेज से सारे दस सहस्र ब्रह्माण्ड एक भटके से काँप उठे श्रौर नाद करने लगे। इसीसे कहा है .—

"बुद्ध के भोजन-स्थान पर जितनी भी मण्डली थी, वह वहाँ कम्पित ग्रौर मूर्छित हो पृथ्वी पर लेट गई। हजारों घड़े, सैकड़ों मटके एक दूसरे से भिड़ कर चूर्ण हो गये। विह्वल, त्रसित, भयभीत, शंकित, ग्रौर उत्पीड़ित मनवाला जन समूह इकट्ठा हो, बीपङ्कर के पास ग्राया (ग्रौर बोला):—हे ग्राँखों वाले! इस दुनिया का क्या (कुछ) भला होने वाला है या बुरा? सारी दुनिया भय से मरी जाती है। इस (के कष्ट) को दूर करो।"

तब महामुनि दीपङ्कर ने उन (लोगो) को कहा—धैर्य रक्लो। इस भूमि कम्पन से मत डरो। जिसके लिए ब्राज मेंने लोक में बुद्ध होने की भविष्यत्- वाणी की, वह पुराने बुद्धों के सेवन के धर्म का विचार कर रहा है। उसके बुद्ध विषयक (बुद्ध भूमि) धर्मों का पूर्णरूप से विचार करने से, यह देवताओं सहित दस हजार (लोकों वालीं) पृथ्वी कॉपी है।"

#### (११) दृढ़ संकल्प की पूजा

तथागत के वचन को सुन कर लोगों को सतोष हुआ; श्रौर वह माला-गध-लेप ले, रम्य नगर से निकल बोधिसत्त्व के पास गये। माला श्रादि से पूजन बन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, रम्यनगर में लौट श्राये। बोधिसत्त्व भी दस पार-मिताश्रो पर विचार कर उत्साह पूर्वक दृढ सकल्प कर श्रासन से उठे। इसीसे कहा है —

"बुद्ध वचन को सुनने के समय ही (लोगों का) मन शान्त हो गया। सब ने मेरे समीप आकर प्रणाम किया। तब में बुद्ध के गुणों का ध्यान कर (तथा) चित्त को दृढ़ बना, दीपड्कर को नमस्कार कर, श्रासन से उठा।"

तब सारे दस हजार ब्रह्माण्डो के देवताश्रो ने इकट्ठे हो, श्रासन से उठते हुए बोधिसत्त्व की दिव्यमाला-गधो से पूजा कर इस प्रकार स्तुति-मगल (पाठ) किया—"श्रायं! तपस्वी सुमेध! तू ने श्राज बुद्ध दीपद्धर के चरणो में बड़ी प्रार्थना की। वह तेरी (प्रार्थना) निर्विध्न पूरी हो। तुक्ते भय-रोमाञ्च न हो। (तेरे) शरीर को कुछ भी रोग न हो। (तू) शीघ्र ही पारमिताश्रो को पूरा कर उत्तम बुद्धपद को प्राप्त करे। जिस प्रकार फल फूल वाले वृक्ष समय श्राने पर फलते फूलते हैं; इसी प्रकार तुम भी समय का श्रतिक्रमण किये बिना शीघ्र ही बुद्ध-पद पर पहुँचो।" (स्तुति) पाठ के बाद (देवता) श्रपने श्रपने लोक को गये। देवताश्रो से प्रशसित बोधिसत्त्व भी, "में दस पारमिताश्रों को पूरा कर, चार लाख श्रसखेय्य एक लाख कल्प बीतने पर बुद्धपद को प्राप्त होऊँगा।" बडे उत्साह के साथ दृढ़ सकल्प कर, श्राकाश-मार्ग से हिमालय को चला गया। इसीसे कहा है —

"श्रासन से उठते वक्त (तपस्वी सुमेध) पर देवता श्रौर मनुष्य दिव्य तथा मानुषिक—दोनों प्रकार के फूलो की वर्षा कर रहे थे। देवता तथा मनुष्य दोनो (तपस्वी सुमेध के लिए) मंगल कामना प्रकट कर रहे थे— "तेरी कामना महान् हैं। तेरी इच्छा पूरी हो। सब भय दूर हों; रोग शोक का विनाश हो। तुभे कोई विध्न न हो। तू शीध्र ही श्रेष्ठ बुद्ध-पद पर पहुँच जा।"

"जिस प्रकार फल वाला वृक्ष समय श्राने पर फलता है। उसी प्रकार महावीर! तेरे में बुद्ध-ज्ञान फले। जिस प्रकार दूसरे सभी बुद्धों ने वस पार-मिताश्रों को पूरा किया; उसी प्रकार महावीर! तू वस पारमिताश्रों को पूरा कर। जिस प्रकार दूसरे बुद्ध बोधि-मण्ड में बुद्ध-पद को प्राप्त हुए, उसी प्रकार महावीर! तू बुद्ध के परम ज्ञान का जानने वाला हो। जिस प्रकार दूसरे बुद्धों ने धर्म-चक्र चलाया, उसी प्रकार महावीर! तू धर्म का चक्र चला। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन निर्मल चन्द्र चमकता है, उसी प्रकार तू भी पूर्ण-मन हो वस हजार ब्रह्माण्डों में प्रकाशित हो। जिस प्रकार राहु से मुक्त हुश्रा सूर्य्य (अपने) तेज से अत्यन्त प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तू भी लोक से मुक्त हो (अपनी) श्री से प्रकाशित हो। जिस प्रकार सभी निदयाँ समुद्ध की श्रीर जाती है; उसी श्रकार वेवताश्रों सहित (सारा) लोक तेरे पास श्रावे।"

इस तरह उन (देवतास्रों) ने सुमेध की स्तुति-प्रशंसा की। तब वह उन बस धर्मों को ग्रहण कर, उनका पालन करते हुए बन में प्रविष्ट हुस्रा।

सुमेध कथा समाप्त

# ए. पहले के बुद्ध

#### (१) दीपंकर बुद्ध

रम्य नगर निवासियो ने भी नगर मे प्रविष्ट हो बुद्ध प्रमुख भिक्षु सघ को भोजन (= महादान) दिया। भगवान् (= शास्ता) उनको धर्मोपदेश दे, जन समूह को (त्रि॰) शरण ग्रादि मे स्थापित कर, रम्य नगर से निकले। तब से ग्रागे भी, ग्रायु भर सभी बुद्धों के कर्तव्य करते हुए क्रमानुसार उपिध-रिहत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इस विषय में ग्रीर सब बात, बुद्ध-वंस में कहे ग्रनुसार ही समभना चाहिए। वहाँ कहा है —

<sup>&#</sup>x27;परिनिर्वाण दो प्रकार का है:—(१) उपाधि-शेष परिनिर्वाण (=पॉच स्कंधों के शेष रहते निर्वाण; जैसे जीवन्मुक्त) (२) श्रनुपाधि-शेष परिनिर्वाण।

"तब वे सघ सहित बुद्ध ( = लोक नामक) को मोजन करा दीपङ्कर बुद्ध ( = शास्ता) की शरण गये। तथागत ने कुछ को शरणागमन में, कुछ को पंच शीलो में, तथा दूसरों को दस शीलो की दीक्षा दी। किसी को चार उत्तम-फलो को प्राप्त साधु बनाया। किसी को श्रसमान-धर्मी का पटिसम्भिदा (-ज्ञान) दिया। उस नर-श्रेष्ठ ने किसी को श्राठ समापत्तियाँ दी। किसी को तीन विद्याएँ किसी को छ श्रभिज्ञाएँ दी। वह महामुनि इस प्रकार से जन-समूह को उपदेश करते थे, इसीसे उन ( = लोकनाथ) का धर्म ( = शासन) फैला। बडी ठुड्डी ( = महाहनु), ऊँचे कन्धे वाले दीपङ्कर नामक (बुद्ध) ने बहुत से जनों को (ससार सागर से) पार उतार दुर्गति से मुक्त किया। महामुनि यदि एक लाख योजन पर भी ज्ञान के पात्र ( = समभदार मनुष्य) को देखते, तो एक क्षण में वहाँ पहुँच, उसे बोध कराते थे।

प्रथम सम्मेलन (=प्रिभिसमय) में बुद्ध ने एक ग्ररब को बोध कराया। दूसरे सम्मेलन में नाथ ने दस खरब को बोध कराया। तृतीय-सम्मेलन के वक्त जब बुद्ध ने देव-लोक में धर्मोपदेश दिया, उस समय नौ खरब को बोध हुग्रा। दीपङ्कर बुद्ध (=शास्ता) के तीन सम्मेलन (=सिन्नपात) हुए थे। पहला सम्मेलन दस खरब का हुग्राथा। फिर शास्ता के नारद-कूट (पर्वत) में एकान्त-वास करते वक्त एक ग्ररब पुरुष मल-हीन शान्त ग्रह्तं-पद को प्राप्त हुए। जिस समय महावीर (=बुद्ध) सुदर्शन (नामक) ऊँचे पर्वत पर रहते थे, उस समय

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में।

रश्चिता, चोरी न करना, काम भोग में मिथ्याचार न करना (=पर स्त्री-गमन से दूर रहना), भूठ न बोलना तथा मद्य-पान न करना।

<sup>ै</sup> ऊपर के पाँच शील (तीसरे शील में सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य), ६ ग्रासमय (=विकाल) भोजन न करना, ७ नृत्य-गीत ग्रादि का त्यागना, ८ माला गन्ध ग्रादि का न धारण करना, ६ ऊँचे तथा महार्घ पलंगों का सेवन न करना। १० चाँदी-सोने का ग्रहण न करना।

<sup>&</sup>lt;sup>\*</sup>श्रोतापत्ति, सक्नदागामी, श्रनागामी तथा श्रर्हत् ।

५ म्रर्थ, धर्म, निरुक्ति तथा प्रतिभान ।

<sup>&</sup>lt;sup>९</sup> दिव्य-चक्षु, पूर्व-जन्म-स्मृति तथा श्राश्रव-क्षय ज्ञान ।

मुनि की नौ खरब की सभा थी! उस समय मैं जटाधारी घोर तपस्वी था। श्राकाश में विचरण करता था, श्रीर पाँच श्रभिज्ञाये मुक्ते प्राप्त थी। (एक एक बार) दस-बीस हजारों को धर्म का साक्षात्कार हुग्रा। एक दो (करके) धर्म साक्षात्कार करने वालों की तो गणना श्रसख्य है।

तब भगवान् दीपद्धर का श्रत्यन्त शुद्ध धर्म (=शासन), बहुत प्रसिद्ध, विस्तार, उन्निति श्रीर वैभव को प्राप्त हुग्रा। चार लाख छ श्रभिज्ञाश्रो वाले बड़े बड़े योग बलो से युक्त चार लाख श्रनुयायी, लोक-वेत्ता दीपद्धर को सदैव घेरे रहते थे। उस समय यदि कोई (ुरुष) मानुषिक भव को छोड़, श्रप्राप्त-मन, शैक्ष रहते मनुष्य शरीर को छोड़ता, तो वह निन्दा का भाजन होता। भगवान् दीपद्धर का प्रवचन देव-लोक सहित इस लोक में स्थिर-चित्त, क्षीणाश्रव, स्थित-प्रज्ञ, विमल श्रहंतो से सुशोभित था।

दीपङ्कर बुद्ध (की जन्म-भूमि) थी रम्मवती नाम की नगरी। पिता था सुदेव नाम का क्षत्रिय। माता का नाम सुमेधा था। दीपङ्कर बुद्ध के सुमङ्गल और तिष्य नाम के दो प्रधान शिष्य ( — अप्रश्नावक) तथा सागत नाम का हजूरी ( — उपस्थायक) था। उन भगवान् की नन्दा तथा सुनन्दा नाम की दो प्रधान शिष्यायें ( — अप्रश्नाविकाएँ) थी, और उनका बोधि-वृक्ष पीपल का वृक्ष था। महामूँनि दीपङ्कर का शरीर, दीप-वृक्ष की तरह अस्सी हाथ ऊँचा था (श्रौर) प्रथित महान् शाल-वृक्ष की तरह शोभा देता था। उस महर्षि की आयु एक लाख वर्ष की (थी) उतने समय जीवित रह ( — ठहर) कर उन्होने बहुत से जनो को (ससार सागर से पार) उतारा। सद्धमं को प्रकाशित कर, तथा जन-समूह को पार उतार वह अपने शिष्यों सहित, अगिन-राशि की तरह प्रज्वित हो निर्वाण को प्राप्त हुए। वह ऋदि, वह यश, और चरणों मे वह चक्र-रत्न — वे सब अन्तर्धान हो गये। सच है सभी बनी चीजें ( — सस्कार) खाली ( — शून्य) है।

# (२) कौिएडन्य बुद्ध

भगवान् दीपङ्कर के बाद, एक श्रसखेय्य (कल्प) बीतने पर, कोण्डिन्य नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन सम्मेलन (=सिन्नपात) हुए। पहले सम्मेलन में दस खरब, दूसरे में दस श्ररब, तीसरे में नब्बे करोड़। उस समय बोधिसत्त्व, विजितावी नामक चक्रवर्ती (के रूप में) पैदा हुए थे। उन्होंने बुद्ध प्रमुख दस खरब भिक्षुग्रों के सघ को भोजन दान (=महादान) दिया। भगवान् (शास्ता) ने 'बुद्ध होगा', प्रकाशित कर धर्मोपदेश दिया। (विजितावी राजा) बुद्ध की धर्म-कथा सुन राज्य त्याग कर साधु हो गया। उसने तीनों पिटक पढ़े, ग्राठो समापत्तियाँ तथा पाँचो ग्रभिज्ञाएँ प्राप्त की; श्रीर (मरकर) बिना ध्यान नष्ट हुए ही ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुग्रा।

कौण्डिन्य बुद्ध की (जन्म-भूमि) रम्मवती नाम नगर था। सुनन्द नामक क्षित्रिय पिता, सुजाता नामक देवी माता, भद्र तथा सुभद्र दो प्रधान-शिष्य, प्रतु-रुद्ध नामक उपस्थायक, तिष्या तथा उपतिष्या दो प्रधान शिष्याएँ शाल का मञ्जलमय बोधि (वृक्ष), ग्रठासी हाथ ऊँचा शरीर, तथा लाख वर्ष की ग्रायु थी।

दीपङ्कर के बाद, श्रनन्ततेज, श्रमितयश श्रीर श्रप्रमेय तथा श्रनाऋम-णीय कोण्डञ्ज नामक शास्ता हुए।

#### (३) मंगल बुद्ध

उसके बाद एक ग्रसखेय्य (कल्प) बीत जाने पर, एक ही कल्प मे चार बुद्ध उत्पन्न हुए। मञ्जल, सुमन, रेवत, सोभित। भगवान् मञ्जल के तीन शिष्य सम्मेलन ( =श्रावक सिन्नपात) हुए। उनमें से पहले सम्मेलन मे दस खरब भिक्षु हुए, दूसरे में दस ग्ररब, तीसरे में नब्बे करोड। इनका ग्रानन्द-कुमार नामक सौतेला भाई, नब्बे करोड़ की मण्डली के साथ धर्म सुनने के लिए बुद्ध ( =शास्ता) के पास गया। बुद्ध ने उसको ऋमशः (धर्म) कथा कही। वह मण्डली के साथ पटिसम्भिदा-ज्ञान (सिहत) ग्रहंत पद को प्राप्त हो गया। शास्ता उन कुल पुत्रों का पूर्व-चित्रत्र तथा योग-बल से मिलने वाले पात्र-चीवरों को जानते थे। उन्होंने दाहिना हाथ पसार कर, "ग्राग्रों भिक्षुग्रों" कहा। वे सभी उसी क्षण योग-बल से प्राप्त पात्रचीवर धारण किये साठ वर्ष के वृद्ध साधुग्रों ( =स्थिवरों) की तरह के हो गये, ग्रौर बुद्ध को प्रणाम कर उन्हें चारों ग्रोर से घेर लिया। यह इनका तीसरा शिष्य-सम्मेलन हुग्रा।

जिस प्रकार दूसरे बुद्धो का शरीर-प्रकाश चारो ग्रोर ग्रस्सी ग्रस्सी हाथ

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> सुत्त-पिटक, विनय-पिटक तथा श्रभिधम्म-पिटक ।

भर का था, इस प्रकार उन (मङ्गल) का नहीं था। उन भगवान् का शरीर-प्रकाश सदैव दस हजार ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता था। (उनके शरीर-प्रकाश से) वृक्ष, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र ग्रादि ही नहीं ऊखल इत्यादि तक भी सुवर्ण-वस्त्र से ग्राच्छादित से जान पडते थे। इनकी ग्रायु नब्बे हजार वर्ष की हुई। इतने काल तक चाँद सूर्य्य ग्रादि (ससार को) ग्रपने प्रकाश से प्रकाशित न करते थे। रात दिन का भेद (—परिच्छेद) मालूम नहीं होता था। (ग्राज कल) जैसे सूर्य प्रकाश से पूर्ण दिन में प्राणी विचरते हैं, वैसे ही (उस समय) वह सदा बुद्ध प्रकाश में विचरते थे। (उस समय) लोग सायकाल के फूलने वाले कुसुमो तथा प्रात.काल के बोलने वाले पक्षी ग्रादि से दिन रात का भेद समभते थे। (सवाल होगा—) क्या दूसरे बुद्धों में ऐसा प्रताप नहीं था ' नहीं था (ऐसा) नहीं, वे भी यदि चाहते तो दस हजार ब्रह्माण्ड ग्रयवा उससे भी श्रिष्क को, (ग्रपने) प्रकाश से व्याप्त कर सकते। लेकिन पूर्व-प्रार्थना ग्रनुसार, भगवान् मङ्गल की शरीर-प्रभा दूसरे (बुद्धो) की व्याप्त-प्रभा की तरह सदैव दस सहस्र लोक धातु को स्पर्श करती थी।

वह (भगवान् मङ्गलं) बोधिसत्त्व (ग्रवस्था) के समय, बेस्सन्तरं जैसे जन्म में उत्पन्न हो, पुत्र तथा स्त्री सहित वङ्क पर्वंत जैसे पर्वंत में रहते थे। तब खरदाठिक नाम का एक यक्ष, महापुरुष का दान (देने) का विचार सुन, ब्राह्मण वेष में निकट ग्राया, ग्रीर उसने महात्मा से दोनो बच्चे माँगे। महासत्त्व ने 'ब्राह्मण को दोनो बच्चे देने का सकल्प किया, ग्रीर सन्तुष्ट चित्त हो जल-स्थल सहित सारी पृथ्वी को कम्पित कर दोनो बच्चे प्रदान किये। यक्ष ने टहलने की भूमि के छोर पर (लगी) बाँही के तख्ते के सहारे खड़े हो, महात्मा की अभाषों ही के सामने, दोनो बच्चो को मूली के ढेर की तरह खा लिया। यक्ष के मुँह खोलने पर ग्राग्न-ज्वाला की तरह (उसके) मुँह से रक्तधारा निकलते देख कर भी, महापुरुष का चित्त राई भर (च्केशाग्रमात्र) खिन्न नही हुग्ना। बिल्क 'मेरा दान सुदान हैं' सोच, उसके शरीर में महान् ग्रानन्द पैदा हुग्ना।

<sup>&#</sup>x27;भगवान् गौतमबुद्ध का मनुष्य-लोक में सिद्धार्थ से पहले का जन्म (देखो वेस्सन्तर जातक)।

उसने 'भविष्य काल में इसके फल स्वरूप इसी प्रभाव (=नीहार) से किरणें निकले' ऐसी कामना की। उसकी इस कामना के कारण ही बुद्ध होने पर उसके शरीर से किरणे निकल कर इतनी दूर तक पहुँची।

इनके स्रौर भी पूर्व चरित्र हैं। बोधिसत्त्व रहने की स्रवस्था में, एक बुद्ध के चैत्य को देख कर, 'इस बुद्ध के लिए मुभे जीवन दान करना चाहिए' सोचा, स्रौर मशाल (दण्डदीपक) लपेटने की तरह सारे शरीर को लिपटवाया, स्रौर लाख मूल्य की, रत्न-जिड़त सोने की थाली में घी भरवा, उसमें हजारों बित्तयाँ जलवा, उसे सिर पर ले, सारे शरीर में स्राग लगवा, चैत्य की प्रदक्षिणा करते सारी रात बिता दी। इस प्रकार सूर्योदय तक प्रयत्न करते हुए, उनका लोम-छिद्र मात्र भी गर्म न हो, पद्म-गर्भ में प्रविष्ट जैसा रहा। धर्म स्रपनी रक्षा करने वालो की रक्षा करता है। इसीसे भगवान ने कहा है—

धर्मानुकूल स्राचरण करने वाले की, धर्म निश्चय से रक्षा करता है। ठीक से स्राचरण किया हुस्रा धर्म सुख की स्रोर ले जाता है। धर्म के ठीक स्राचरण करने का यह फल है कि धर्मचारी दुर्गति को प्राप्त नही होता।

इस कर्म के फलस्वरूप भी, उन भगवान् (मङ्गल) के शरीर की किरण दस हजार ब्रह्माण्डों तक पहुँचा करती थी।

उस समय हमारे बोधिसत्त्व सुरुचि नामक ब्राह्मण थे। बुद्ध को निमन्त्रित करने की इच्छा से उन्होने समीप जा, मधुर-धर्म कथा सुन, प्रार्थना की—

"भन्ते! कल मेरी भिक्षा ग्रहण करे।"

"ब्राह्मण! तुभे कितने भिक्षु चाहिएँ।"

"भन्ते! (ग्रापके) श्रनुयायी भिक्षु कितने हैं?"

उस समय शास्ता का केवल प्रथम-सम्मेलन ही हुग्रा था, इस लिए ''दस श्ररब'' कहा।

"भन्ते! सभी को साथ ले, मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करे।"

बुद्ध (=शास्ता) ने स्वीकार किया। दूसरे दिन के लिए निमन्त्रित कर, घर लौटते हुए ब्राह्मण सोचने लगा—"मैं इतने भिक्षुत्रों को खिचडी, भात, वस्त्र श्रादि तो दे सकता हूँ, लेकिन (इतनों के लिए) बैठने का स्थान कैसे होगा?"

उसकी इस चिन्ता से, चौरासी हजार योजन की दूरी पर (स्वर्ग की) पण्डुकम्बल शिला पर बैठे देव-राज (इन्द्र) का भ्रासन गर्म हो गया। शक (-देव) ने सोचा—कौन हैं जो मुक्ते इस स्थान से गिराना चाहता हैं ? (तब) दिव्य चक्षु से देखते हुए, महापुरुष को देखा, श्रीर 'सुरुचि-ब्राह्मण बुद्ध-सहित भिक्षु सघ को निमन्त्रित कर, (उसे) बिठाने के स्थान की फिक्र में हैं, मुक्ते भी वहाँ पहुँच कर पुण्य में सहभागी होना चाहिए' (सोच) बढ़ई का भेष बना, बसूली-कुल्हाडा हाथ में ले, महात्मा के सम्मुख प्रकट हुआ। श्रीर पूछा "िक क्या किसी को मजदूरी से काम हैं ?"

महापुरुष ने देख कर पूछा, "क्या काम कर सकोगे?"

"ऐसा कोई हुनर नहीं जो मुक्ते मालूम न हो। घर हो, श्रथवा मण्डप, जो कुछ कोई बनवाना चाहे, उसके लिए मैं वही बना देना जानता हूँ।"

"तो, मेरे पास काम है।"

"श्रार्य ! क्या काम है ?"

"मैंने कल के लिए दस ग्ररब भिक्षुग्रो को निमन्त्रित किया है। उनके बैठने के लिए मण्डप बनाग्रोगे?"

"मैं बना दूँगा, यदि मुभे मेरी मजदूरी दे सकोगे।" "तात! दे सकूँगा।" "ग्रच्छा! तो बनाऊँगा।"

(यह कह उसने) जा कर एक स्थान को देखा। किसण-मण्डल' की तरह समतल, बारह तेरह योजन का एक प्रदेश था। उसने 'इतने स्थान में सप्त रत्नमय मण्डप बने' ऐसा दृढ सकल्प कर देखा, तो उसी समय (एक) मण्डप पृथ्वी भेद कर उठ ग्राया। उसके सोने के खम्भों पर चाँदी के, रूपे के खम्भों पर सोने के, मणिस्तम्भो पर मणिमय, सप्त-रत्न-मय स्तम्भो पर सप्त-रत्न-मय घटक थे। तब (सोचा—) मण्डप में बीच बीच में घटियों की फालर लटक जावे। उसके देखते ही देखते एक ऐसी फालर लटक गई, जिससे मन्द वायु से हिलने पर पाँचों प्रकार के बाजो (—तूरिय-नाद) का मधुर शब्द निकलता था, और दिव्य सङ्गीत बजने का सा समा होता था। सोचा—'बीच बीच में सुगन्चित माला दाम ग्रादि लटकें।' मालाएँ लटक गईं। 'पृथ्वी भेद कर दस खरब भिक्षुग्रों के लिए ग्रासन ग्रौर (सामने पात्र रखने के लिए) ग्राधार वन

<sup>ै</sup> योगाभ्यास के लिए मिट्टी श्रादि का बना हुग्रा समतल पहिये सदृश चक ।

जावें।' उसी समय बन गये। 'एक एक कोने में एक एक पानी की चाटी निकल आये।'पानी की चाटियाँ निकल आईं। इतना हो जाने पर आह्मण के पास जा कर कहा—'आर्यं! आर्वे, अपना मण्डप देख कर मुक्ते मजदूरी दे।' महापुरुष ने जा कर मण्डप देखा। देखने के साथ ही उसका सारा शरीर पाँच प्रकार के आनन्द (—प्रीति)' से भर गया।

तब मण्डप को देख कर उसे यह (विचार) हुआ। 'यह मण्डप मनुष्य का बनाया हुआ नहीं है। मेरे विचार और मेरे गुण के कारण निस्सन्देह इन्द्र-लोक गर्म हुआ होगा। उसके बाद देव-राज शक ने यह मण्डप बनवाया होगा। मेरे लिए यह उचित नहीं है कि ऐसे मण्डप में, केवल एक ही दिन दान दूँ। मैं एक सप्ताह तक (दान) दूँगा।'

कितना भी बाहरी दान हो, उससे बोधिसत्त्यों का सन्तोप नहीं होता। अलकृत शिर को काट कर, श्रिष्ट्रिजत श्रांखों को निकाल कर, श्रथवा हृदय-मांस को नोच कर (=उब्बत्तेत्वा) देने से ही बोधिसत्त्वों को त्याग के सम्बन्ध में सन्तोष होता है। सिवि जातक में हमारे बोधिसत्त्व को भी प्रतिदन पाँच श्रम्मण कार्पण दे, नगर में चारो द्वारों के बीच में दान करते हुए, उस दान से त्याग विषयक सन्तोष नहीं हो सका। लेकिन जब देव-राज इन्द्र ने ब्राह्मण वेष घर, श्रा, श्रांखे माँगी, तब, उखाड कर देते हुए उन्हें प्रसन्नता हुई। (ऐसा करते हुए) चित्त में बाल की नोक के बराबर भी विकार नहीं हुगा। इस प्रकार (बाहरी) दान से बोधिसत्त्वों की तृष्ति नहीं होती।

इसलिए उस महापुरुष ने भी, 'मुफे दस खरब भिक्षुग्रों को सप्ताह भर (भोजन) दान देना चाहिए', सोच, उन्हें मण्डप में बिठा सप्ताह भर 'गोपान' (—गवपान) का दान दिया। बड़े बड़े कउाहों को दूध से भर, चूल्हें पर चढ़ा, दूध के गाढ़े हो जाने पर, उसमे थोड़े ने वायल अल कर, पकने पर, म पुर अक्कर ग्रीर घी से पकाये हुए भोजन को गोपान ( गथपान) कहते हैं। श्रकेले

<sup>ै</sup>क्षुद्र, क्षणिक, ऊर्ध्वगामी, तरंग-तद्त्र तथा प्रगरणशील। (दे० विशुद्धिमार्ग)

१ देखों सिवि जातक (१५.३)

१ ११ द्रोण=१ ग्रम्मण ।

मनुष्य उसे नहीं परोस सकते थे। देवतात्रों ने भी इकट्ठे हो कर परोसा। बारह तेरह योजन का लम्बा-चौड़ा स्थान भी भिक्षुत्रों को (बैठ कर) खाने के लिए काफी न था, लेकिन वह अपने अपने योगबल के प्रभाव से बैठ गये। अन्तिम दिन सब भिक्षुत्रों के पात्र धुलवा कर, (उन्हे), घी, मक्खन, मधु, खाँड (—फाणित) आदि भैषज्य से भर कर, तीन तीन चीवरों के साथ दिया। नये साधु बने भिक्षुत्रों को मिले चीवर के कपडे (—शाटक) ही लाख के मूल्य के थे। बुद्ध ने (पुण्य का) अनुमोदन करते हुए 'इस पुरुष ने इस प्रकार का महादान दिया है, भविष्य में यह क्या होगा?' सोच, 'लक्षाधिक दो असंखेट्य कल्पों के बीत जाने पर, यह गौतम नामक बुद्ध होगा', देख, महापुरुष को सम्बोधन कर, कहा—''तू इतना समय बीत जाने पर गौतम नामक बुद्ध होगा।'' महापुरुष इस कथन (—व्याकरण) को सुन, ''मैं बुद्ध होऊँगा, मुक्ते घर-वास से क्या मतलब? में साधु होता हूँ'' सोच, उतनी सम्पत्ति को थूक के समान त्याग, बुद्ध (—शास्ता) के पास प्रव्रजित हो, बुद्ध-वचन सीख, अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, आयु के बीत जाने पर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

भगवान् मङ्गल के नगर का नाम उत्तर था। उनका पिता भी उत्तर नामक क्षत्रिय था। माता का नाम भी उत्तरा था। सुदेव तथा धमंसेन दो उनके प्रधान शिष्य थे। पालित नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। सीवली और श्रसोका—दो प्रधान शिष्याये थी। नाग-वृक्ष बोधि था। श्रठासी हाथ ऊँचा उनका शरीर था। नब्बे हज़ार वर्ष जीवित रह कर, जब वह निर्वाण को प्राप्त हुए तो दस हज़ार ब्रह्माण्डो में एक दम श्रन्धकार छा गया। सभी ब्रह्माण्डो में लोग रोने पीटने लगे।

'कौडिन्य (=कोण्डञ्ज) के बाद मङ्गल नामक नायक ने लोक के ग्रन्थकार का नाश कर धर्म रूपी मशाल (=उल्का) को धारण किया।'

#### (४) सुमन बुद्ध

इस प्रकार दस हजार ब्रह्माण्डों को श्रन्धकार-मय बना जब भगवान् (मङ्गल) निर्वाण को प्राप्त हुए तो सुमन नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात) हुए। प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। दूसरे (सम्मेलन में) कञ्चन पर्वत पर नौ खरब, तीसरे में श्राठ खरब।

उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व ध्रतुल नाम के बड़े ऋदि वाले महानुभाव सम्पन्न नाग-राज थे। बुद की उत्पत्ति को सुन, ध्रपने जाति-माइयों के साथ, नाग लोक से निकल कर, दस खरब भिक्षुग्रों से घिरे उन मगवान् का दिव्य वाद्य (च्तुरीय-नाद) से सत्कार किया, श्रीर भोजन कर प्रत्येक (भिक्षु) को दुशाले का जोडा दे तीनो (रत्नो) की शरण ग्रहण की। सुमन बुद ने भी भविष्यद्वाणी की—'तू भविष्य में बुद्ध होगा।' भगवान् सुमन के नगर का नाम खेम था। सुदत्त नामक राजा उनका पिता था। सिरिमा नामक माता थी। शरण ग्रीर भावितात्मा, दो प्रधान शिष्य थे। उदेन नामक परिचारक था। सोणा ग्रीर उपसोणा दो प्रधान शिष्यायों थी। नाग-वृक्ष बोधि था। नब्बे हाथ ऊँचा शरीर, ग्रीर नब्बे हजार वर्ष ही ग्रायु का प्रमाण था।

"(भगवान्) मङ्गल के बाद सब बातों (=धर्म) में श्रनुपम तथा सब प्राणियों में श्रेष्ठ सुमन नामक बुद्ध (=नायक) हुए।"

#### (५) रेवत बुद्ध

उनके बाद रेवत नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन की तो गणना नहीं । दूसरे में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। तीसरे में भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व प्रतिदेव, नामक ब्राह्मण थे। उन्होने बुद्ध (=शास्ता) का वह धर्मोपदेश सुन, तीनो रत्नों की शरण ले सिर पर हाथ की ग्रञ्जली जोड़ी, ग्रौर चित्त-मल के नाश के वारे में उन बुद्ध की स्तुति कर, वस्त्र को एक कन्धे पर रख पूजा की। उनने भी कहा—''तू बुद्ध होगा।''

(रेवत बुद्ध) के नगर का नाम धान्यवती (धञ्जवती) था। पिता विपुल नामक क्षत्रिय थे। माता का नाम विपुला था। वरुण ग्रौर बहादेव (दो) प्रधान शिष्य थे। सम्भव नामक परिचारक था। भद्रा ग्रौर सुभद्रा प्रधान शिष्याएँ थी। नाग-वृक्ष ही बोधि था। शरीर ग्रस्सी हाथ ऊँचा ग्रौर ग्रायु साठ हजार वर्ष की थी।

(भगवान्) सुमन के बाद रेवत नामक बुद्ध (—नायक) हुए। (वह) श्रनुपम, श्रद्धितीय श्रतुल, उत्तम बुद्ध (—जिन) थे।

# (६) सोभित बुद्ध

उनके बाद सोभित नामक ( = शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक ग्ररब भिक्षु थे। दूसरे में नब्बे करोड। तीसरे में ग्रस्ती करोड। उस समय (हमारे) वोधिसत्त्व ग्राजित नामक ब्राह्मण थे। उन्होने बुद्ध का धर्मीपदेश सुन, (तीन रत्नो की) शरण ग्रहण की, ग्रौर बुद्ध सहित भिक्षु सघ को भोजन दिया। उनने भी कहा— "तू बुद्ध होगा।" उन भगवान् का नगर सुधम्मं नामक था। पिता सुधमं नामक राजा था। माता का भी नाम सुधमां था। ग्रसम ग्रौर सुनेत्र (दो) प्रधान शिष्य थे। ग्रनोम नामक परिचारक था। नकुला ग्रौर गुजाता प्रधान शिष्याय थी। नाग-वृक्ष (की) ही बोधि थी। ग्रहावन हाथ ऊँचा शरीर ग्रौर नब्बे हजार वर्ष की ग्रायु थी।

"(भगवान्) रेवत के बाद सोभित नामक बुद्ध (=नायक) (हुए)। (वह) एकाग्र-चित्त, शान्त-चित्त, श्रसम =श्रद्धितीय पुरुष थे।"

# (७) श्रनोमदर्शी बुद्ध

उसके बाद, एक श्रसखेय्य (कल्प) बीत जाने पर एक कल्प में श्रनोमदर्शी, पद्म, तथा नारद, तीन बुद्ध हुए। भगवान् श्रनोमदर्शी के तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले मे श्राठ लाख भिक्ष, दूसरे मे सात लाख, तीसरे मे छ लाख (एक-त्रित हुए)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व, बडे श्रद्धि वाले, महाप्रतापी, श्रनेक लाख-करोड यक्षों के स्वामी, एक यक्ष-सेनापित थे। उन्होने बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, श्रा कर बुद्ध सहित भिक्षु सघ को भोजन (—महादान) दिया। बुद्ध ने भी कहा—"तू भविष्य मे बुद्ध होगा।" भगवान् श्रनोमदर्शी के नगर का नाम चन्द्रावती था। पिता यशवान् नामक राजा था। माता का नाम यशोधरा था। निसभ श्रीर श्रनोम दो प्रधान शिष्य थे। वरुण नामक परिचारक था। सुन्दरी तथा सुमना दो प्रधान शिष्याएँ थी। श्रर्जुन-वृक्ष (की) बोधि थी। श्रद्धावन हाथ ऊँचा शरीर श्रीर लाख वर्ष की उनकी श्रायु थी।

(भगवान्) सोभित के बाद नर-श्रेष्ठ, श्रमितयश, तेजस्वी, दुरितकम श्रनोमदर्शी बुद्ध हुए।

#### (८) पद्म बुद्ध

उनके बाद पद्म नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में दस खरब भिक्षु थे। दूसरे में तीन लाख। ग्राम से दूर जगल में होने वाले तीसरे सम्मेलन में महावन-खण्ड-निवासी दो लाख भिक्षु थे। तब तथागत के उस बन-खण्ड मे रहते समय (हमारे) बोधिसत्त्व सिह के रूप में जन्मे थे। सिंह ने बुद्ध को निरोध समाधि लगाए देख, प्रसन्न चित्त हो बन्दना तथा प्रदक्षिणा की, ग्रौर (ग्रन्यत्र) प्रीति तथा हर्ष से युक्त हो, तीन बार सिंह-नाद किया। सप्ताह भर तक उन्होने बुद्ध की ग्रोर ध्यान करने से उत्पन्न उस प्रीति को न छोडा, श्रौर उस प्रीति-सुख मे निमग्न हो, शिकार के लिए न जा ग्रपना जीवन-मोहत्याग उपासना की। बुद्ध (शास्ता) ने सप्ताह के बीतने पर निरोध समाधि से उठ, सिंह को देख, सोचा-"'यह सिंह भिक्षु-सघ के प्रति चित्त में भिक्त कर, सघ को भी प्रणाम करेगा, ग्रौर सकल्प किया कि भिक्ष-सघ ग्रावे।" उस समय भिक्षु ग्रा गये। सिंह के चित्त में सघ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। बुद्ध ने उसका मन देख कर कहा--- "तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् पद्म का चम्पक नामक नगर था। श्रसम नामक राजा पिता था। माता भी श्रसमा नामक थी। साल श्रौर उपसाल (दो) प्रधान शिष्य थे। वरण नामक परिचारक था। रामा तथा सुरामा प्रधान शिष्याएँ थी। सोण-वृक्ष की बोधि थी। अट्रावन हाथ ऊँचा शरीर ग्रौर लाख वर्ष की श्राय थी।

श्रनोमदर्शी के बाद नर-अेष्ठ, श्रसम=श्रद्वितीय-पुरुष पद्म नामक बुद्ध हुए।

#### (९) नारद बुद्ध

उनके बाद नारद नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले में दस खरब। दूसरे में नौ खरब। तीसरे में ग्राठ खरब भिक्षु (जमा) हुए। उस समय बोधिसत्त्व ने ऋषियों के नियमानुसार साधु बन पाँच ग्रिभिञ्जाये (चित्रय-शिक्तियाँ) ग्रौर ग्राठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को भोजन दान दे, चन्दन से पूजा की। उन्होंने भी कहा— ''तू भविष्य में बुद्ध होगा।'' उन भगवान् का धान्यवती नामक नगर था।

सुदेव नामक क्षत्रिय पिता था। श्रनोमा नामक माता थी। भद्रशाल तथा जितिमत्र (दो) प्रधान शिष्य थे। विशष्ठ नामक परिचारक (= उपस्थायक) था। उत्तरा तथा फाल्गुणी, (दो) प्रधान शिष्याएँ थी। महासोण-वृक्ष (की) बोधि थी। श्रद्वासी हाथ ऊँचा शरीर, श्रीर नब्बे हजार वर्ष की श्रायु थी।

(भगवान्) पद्म के बाद नर-श्रेष्ठ, श्रसम=श्रद्वितीय नारद नामक बुद्ध हुए।

# (१०) पद्मोतर बुद्ध

नारद बुद्ध के बाद, एक लाख कल्प बीत जाने पर, एक कल्प में एक पद्मोत्तर नामक बुद्ध ही उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। बेभार पर्वत के दूसरे सम्मेलनमें चौ खरब। तीसरे में ग्राठ खरब। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व जिटल नामक महानागरिक (—महाराष्ट्रीय) थे। उन्होने बुद्ध सहित भिक्षु सघ को तीनों भिक्षु-वस्त्र (—चीवर) दान दिये। उन बुद्ध ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् पद्मोत्तर के समय (दूसरे) पन्याई (—तीधिक) नही थे। सब देवता ग्रौर मनुष्य उन (बुद्ध) की शरण गये। उनका (जन्म) हंसवती नाम के नगर (में हुग्रा)। ग्रानन्व नाम का क्षत्रिय पिता था। सुजाता नामक देवी माता थी। देवल तथा सुजात दो प्रधान शिष्य थे। सुमन नामक परिचारक था। ग्रामिता तथा ग्रसमा दो प्रधान शिष्य थे। शाल-वृक्ष की बोधि थी। शरीर श्रद्धासी हाथ ऊँचा था, ग्रौर शरीर की प्रभा चारो ग्रोर बारह योजन तक फैलती थी। (उनकी) ग्रायु लाख वर्ष (की) थी।

(भगवान्) नारव के बाद नर-श्रेष्ठ, सागर की तरह से निश्चल पद्मोत्तर नामक जिन बुद्ध हुए।

# (११) सुमेध बुद्ध

उसके बाद तीस लाख कल्प बीत जाने पर, एक कल्प में सुमेध ग्रौर

<sup>ै</sup> वैभार-गिरि (राजगृह में, जिसके पास काल-शिला है)।

पहले के बुद्ध ] ४६

सुजात दो बुद्ध पैदा हुए। सुमेध के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। सुदर्शन नगर मे प्रथम सम्मेलन मे एक ग्ररब ग्रहेंत् जमा थे। दूसरे मे नव्वे करोड, तीसरे मे ग्रस्सी करोड। (उस समय) बोधिसत्त्व उत्तर नामक ब्राह्मणयुवक (माणवक) थे। (उन्होने) पृथ्वी मे गाड कर रखे हुए ग्रस्सी करोड़ धन को त्याग, बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को महादान दे, धर्म को सुन, तीनों (रत्नो) की शरण ग्रहण की, ग्रौर (घर से) निकल कर साधु हो गये। उन (बुद्ध) ने भी कहा—"तू भविष्य मे बुद्ध होगा।"

भगवान् सुमेध का सुदर्शन नाम का नगर था। सुदत्त नाम का राजा पिता था। माता भी सुदत्ता नाम की थी। सरण और सर्वकाम दो प्रधान शिष्यथे। सागर नामक परिचारक था। रामा और सुरामा दो प्रधान शिष्याये थी। महा-कदम्ब-वृक्ष (की) बोधि थी। स्रष्टासी हाथ ऊँचा शरीर था। नव्वे हजार वर्ष की स्रायु थी।

(भगवान्) पद्मोत्तर के बाद सुमेध नामक नायक हुए। वह दुराक्रमणीय उग्रतेज, लोक-श्रेष्ठ मुनि थे।

#### (१२) सुजात बुद्ध

उनके बाद सुजात नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में साठ हजार भिक्षु थे। दूसरे में पचास हजार। तीसरे में चालीस हजार। उस समय (हमारे) बोधिसत्तव चक्रवर्ती राजा थे। वे 'बुद्ध उत्पन्न होने की बात' सुन, पास जा, धर्म सुन, बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को सप्त रत्नों के साथ चारों महाद्वीपों का राज्य दान दे, बुद्ध के पास साधु हुए। सभी देश-वासी (उस समय) देश की उपज ले, विहार (=ग्राराम) के काम को पूरा करते हुए, बुद्ध सहित सघ को महादान देते थे। उनने भी उसे 'बुद्ध' (होगा) कहा। उन भगवान् का नगर सुमञ्जल था। उग्गत नाम राजा पिता था। प्रभावती नाम की माता थी। सुदर्शन ग्रीर देव (दो) प्रधान शिष्य थे। नारद नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। नागा ग्रीर नागसमाला (दो) प्रधान शिष्याये थी। महावेणु (की) बोधि थी। कम छिद्र घनी शाखा वाले (बोधि) की ऊपर वाली शाखाएँ मोर-पुच्छ-समूह की तरह चमकती थी। उन भगवान् का शरीर पचास हाथ ऊँचा था। ग्रायु नव्वे हजार वर्ष की (हुई)।

"वहाँ उस मण्ड-कल्प में, सिंह की सी ठोढ़ी ( =हनु)वाले, वृषभ-स्कन्ध श्रप्रमेय, दुराक्रमणीय सुजात नामक बुद्ध ( =नायक) हुए ।"

# (१३) प्रियदर्शी बुद्ध

उसके बाद म्रठारह सौ कल्प बीत जाने पर, एक ही कल्प मे प्रिय-वर्शी, म्रथं-वर्शी, धर्म-वर्शी—तीन बुद्ध उत्पन्न हुए। प्रिय-दर्शी के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए थे। पहले सम्मेलन मे दस खरब भिक्षु, दूसरे में नौ खरब, तीसरे में म्राठ खरब थे। उस समय बोधिसत्त्व काश्यप नामक ब्राह्मण (के कुल में पैदा हुए) थे। उन्होंने जवानी में तीनो बेदों में पारङ्गत हो, बुद्ध के उपदेश को सुन दस खरब धन के व्यय से विहार (—सघाराम) बनवा कर, (त्रि-) शरण तथा (च-) शील को ग्रहण किया। तब बुद्ध ने कहा—"ग्रठारह सौ कल्पों के बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का श्रनोम नाम का नगर था। सुदिश्न नामक राजा पिता था। चन्दा नामक माता थी। पालित तथा सर्वदर्शी (दो) प्रधान शिष्य थे। सोभित नामक उपस्थायक था। सुजाता तथा धम्मदिश्ना (दो) प्रधान शिष्याये थी। पियंगु(-वृक्ष) की बोधि थी। श्रस्सी हाथ ऊँचा शरीर श्रौर नव्वे हजार वर्ष की श्रायु थी।

"(भगवान्) सुजात के बाद, दुराक्रमणीय, ग्रसवृश, महा-यशस्वी, स्वयम्भू (नायक) लोक-नायक हुए।"

# (१४) श्रर्थ-दर्शी बुद्ध

उनके बाद अर्थं-दर्शी नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिप्य-सम्मेनलन हुए। पहले मे अट्ठानवे लाख भिक्षु (एकत्रित) हुए। दूसरे में अट्ठासी लाख, (और) तीसरे मे भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व सुसीम नामक महा ऋद्धिवान् तापस के रूप में पैदा हुए थे; उन्होने देव-लोक से मन्दार पुष्प का छत्र ला बुद्ध की पूज की। उन्होने भी कहा—''तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का सोभित नाम का नगर था। सागर नामक राजा पिता था। सुदर्शना नाम की माता थी। शान्त तथा उपशान्त (दो) प्रधान शिष्य थे। ग्रभय नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। धम्मा ग्रौर सुधम्मा प्रधान शिष्याये थी। चम्पक-वृक्ष (की) बोधि थी। उनका शरीर ग्रस्सी हाथ ऊँचा था। शरीर की प्रभा सदैव, चारो स्रोर एक योजन तक फैली रहती थी। उनकी स्रायु लाख वर्ष की (हुई)।

"वहीं उस मण्ड-कल्प में नर-श्रेष्ठ (=नरऋषभ) म्रर्थवर्शी ने महान् म्रन्थकार को नाश कर उत्तम बुद्ध-पद को प्राप्त किया।"

# (१५) धर्मदर्शी बुद्ध

उनके बाद धर्मदर्शी नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक ग्ररब भिक्षु थे। दूसरे में सत्तर करोड, तीसरे में ग्रस्सी करोड। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व देवराज शक्त के रूप में पैदा हुए थे। उन्होंने दिव्य गन्ध-पुष्प तथा दिव्य-वाद्य से (बुद्ध की) पूजा की। बुद्ध ने भी कहा—"(तू बुद्ध होगा)।"

उन भगवान् का सरण नाम का नगर था। सरण नाम का राजा पिता था। सुनन्दा नाम की माता थी। पदुम तथा फुस्सदेव (दो) प्रधान शिष्य थे। सुनेत्र नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। क्षेमा तथा सर्वनामा दो प्रधान शिष्याएँ थी। रक्त-कुरबक (नामक) वृक्ष की बोधि थी। यह (वृक्ष) बिम्विजाल भी कहा जाता है। अस्सी हाथ ऊँचा (उसका) शरीर था और आयु भी लाख वर्ष की।

उसी मण्ड-कल्प में महा यशस्वी धम्मदर्शी (बुद्ध) उस ग्रन्थकार का नाश कर देवताग्रों सहित (सारे) लोक में प्रकाशित हुए।

# (१६) सिद्धार्थ बुद्ध

इस कल्प से चौरानवे कल्प पहले एक कल्प मे सिद्धार्थ नाम के एक ही बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन (हुए) थे। पहले सम्मेलन मे दस खरब, दूसरे मे नौ खरब, तीसरे मे श्राठ खरब भिक्षु थे। वह (हमारे) बोधिसत्त्व उग्र-तेजा, सिद्धि (=ग्रभिञ्जा)-प्राप्त, मङ्गल नामक तापस के रूप मे पैदा हुए थे। उन्होने महा जम्बु (=जामुन) वृक्ष के फल को ला कर तथागत को प्रदान किया। बुद्ध (=शास्ता) ने उस फल को सेवन कर बोधि-सत्त्व से कहा—"चौरानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् (सिद्धार्थ) के नगर का नाम वेभार था। जयसेन नामक राजा पिता था। सुफस्सा नाम की माता थी। सम्बहुल तथा सुमित्र दो प्रधान शिष्य थे। रेवत नामक उपस्थायक था। सीवली ग्रीर सुरामा प्रधान शिष्याएँ थी। काँणकार-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा (उनका) शरीर था ग्रीर ग्रायु लाख वर्ष की।

(भगवान्) धर्म-दर्शी के बाद सिद्धार्थ नामक नायक का, सारे अन्धकार को नाश कर, सूर्य्य की भाँति उदय हुआ।

## (१७) तिष्य बुद्ध

इस कल्प से ब्यानवे कल्प पहले एक कल्प मे तिस्स तथा फुस्स—दो बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् तिष्य के तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन मे एक ग्ररब, दूसरे मे नव्वे करोड, तीसरे मे ग्रस्सी करोड़ भिक्षु थे। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व महाऐश्वर्य-शाली, महायशस्वी सुजात क्षत्रिय के रूप मे पैदा हुए थे। उन्होने ऋषियों के नियम के ग्रनुसार प्रव्रज्या ग्रहण की, ग्रौर ऋद्धि को प्राप्त हो, बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, दिव्य मन्दार-पदुम तथा पारिजात पुष्प ले, चारो प्रकार की परिषद् के बीच चलते हुए तथागत की पूजा की, (ग्रौर) ग्राकाश में फूलों का चँदवा लगवा दिया। उन शास्ता ने भी कहा—"ब्यानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।

उन भगवान् का क्षेम नामक नगर था। जन-सन्ध नामक क्षत्रिय पिता था। पद्मा (=पदुमा) नामक माता थी। ब्रह्मदेव और उदय दो प्रधान शिष्य थे। सम्भव नाम का परिचारक (=उपस्थायक) था। फुस्सा तथा सुदत्ता दो प्रधान शिष्याएँ थी। ग्रसन-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा उनका शरीर था। लाख वर्ष की ग्रायु थी।

(भगवान्) सिद्धार्थं के बाद, श्रनुपम, श्रद्धितीय, श्रनन्त शीलों से युक्त तथा श्रनन्त यशों के भागी तिष्य (नामक) लोक के श्रेष्ठ नायक (=बुद्ध) हुए।

#### (१८) पुष्य बुद्ध

उनके बाद फुस्स नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में साठ लाख भिक्षु (जमा) हुए। दूसरे मे पचास (लाख), तीसरे मे बत्तीस (लाख)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व विजितावी नामक क्षत्रिय थे। वह (ग्रपने) महान् राज्य को छोड, बुद्ध (=शास्ता) के पास सन्यासी हो, तीनो पिटक पढ, जन-समूह को धर्म- उपदेश करते तथा सदाचार (=शील-पारिमता) को पूरा करते थे। (फुस्स) बुद्ध ने भी उसके बारे मे वैसी ही भविष्यद्वाणी की। उन भगवान् का काशी नामक नगर था। जयसेन नामक राजा पिता था। सिरिमा नामक माता थी। सुरिक्खत और धम्मसेन (दो) प्रधान शिष्य थे। सिभय नामक उपस्था- यक था। चाला और उपचाला (दो) प्रधान शिष्याएँ थी। आँवले के वृक्ष (की) बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर था, और नव्वे हजार वर्ष की आयु थी।

"उस मण्ड-कल्प में श्रनुत्तर=श्रनुषम=श्रसदृश, लोक में सर्वश्रेष्ठ फुस्स नामक बुद्ध हुए।"

#### (१९) विपश्यी बुद्ध

इस कल्प से इकानवे कल्प पहले भगवान् विपस्सी उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन थे। पहले सम्मेलन मे ग्रडसठ लाख, दूसरे मे एक लाख, तीसरे मे ग्रस्सी हजार। उस समय बोधिसत्त्व बडे ऋदिमान्, महा प्रतापी, ग्रतुल नामक नाग-राजा थे। (ग्रतुल ने) सप्त रत्न जिडत, सोने का सिंहासन भगवान् (विपश्यी) को प्रदान किया। उन (भगवान्) ने भी भविष्यद्वाणी की—"ग्रब से इकानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन (भगवान्) का बन्धुमती नाम का नगर था। बन्धुमान् नाम का राजा पिता था। बन्धुमती नाम की माता थी। खण्ड और तिष्य प्रधान शिष्य थे। श्रशोक नामक परिचारक था। चन्द्रा और चन्द्रमित्रा प्रधान शिष्याएँ थी। पाटलि-वृक्ष (की) बोधि थी। शरीर श्रस्सी हाथ ऊँचा था श्रौर शरीर की प्रभा सदैव सात योजन तक फैली रहती थी। उनकी श्रायु श्रस्सी हजार वर्ष की थी।

"(भगवान्) फुस्स के बाद विपस्सी नामक नर-श्रेष्ठ, द्रष्टा, बुद्ध लोक में उत्पन्न हए।"

### (२०) शिखी बुद्ध

इस कल्प से इकत्तीस कल्प पहले सिखी (शिखी) ग्रौर वेस्सभू (विश्वभू) दो बुद्ध उत्पन्न हुए। सिखी के भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए।

पहले सम्मेलन मे एक लाख भिक्षु थे। दूसरे मे ब्रस्सी हजार, तीसरे मे सत्तर (हजार)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व ब्रिटिंदम नामक राजा थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को चीवर श्रीर भोजन (महादान) दे, सप्त रत्नो से सजा गज-रत्न दे, फिर (गज-रत्न के बदले मे), उसके समान मूल्य की विहित (=किप्प्य) वस्तुएँ दी। उनने भी कहा—'श्रब से इकत्तीस कल्प बीत जाने पर, तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का भ्रष्ठणवती नाम का नगर था। भ्रष्ठण नाम का क्षत्रिय पिता था। प्रभावती नाम की माता थी। भ्राभिभू और सम्भव प्रधान शिष्या थे। क्षेमञ्कूर नामक परिचारक था। मिखला भ्रौर पदुमा प्रधान शिष्याएँ थी। पुण्डरीक वृक्ष (की) बोधि थी। सैतीस हाथ ऊँचा शरीर था भ्रौर शरीर की प्रभा तीन योजन तक फैली होती थी। सैतीस हजार वर्ष की उनकी श्रायु थी।

(भगवान्) विपस्सी के बाद, श्रतुलनीय, श्रद्वितीय, तर-श्रेष्ठ सिखि नामक जिन बुद्ध हुए।

## (२१) विश्वभू बुद्ध

उनके बाद वेस्सभू नामक शास्ता उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन मे ग्रस्सी लाख भिक्षु थे, दूसरे मे सत्तर(-लाख) तीसरे मे साठ लाख। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व सुदर्शन नामक राजा थे। वे बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को चीवर ग्रौर भोजन दे, उनके पास प्रव्नजित हुए। वह सद् (ग्राचार) तथा (सद्) गुणो से युक्त थे। बुद्ध रत्न मे उनकी ग्रपार श्रद्धा थी। उन भगवान् ने भी कहा—"ग्रब से इकत्तीस कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का श्रनुपम नाम का नगर था। सुप्पतीत (सुप्रतीत) नाम का राजा पिता था। यशोवती नामक माता थी। सोण श्रौर उत्तर प्रधान शिष्यथे। उपशान्त नामक परिचारक था। दामा श्रौर सुमाला प्रधान शिष्याएँ थी। शाल-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा शरीर था। साठ हजार वर्ष की उनकी श्रायु थी।

<sup>ै</sup> ऐसी चीजें, जिनका ग्रहण, भिक्षु के लिए श्रनुचित न हो।

उसी मण्ड-कल्प में श्रतुलनीय, श्रद्वितीय, वेश्सभू नाम के बुद्ध लोकमें उत्पन्न हुए।

#### (२२) ककुसन्ध बुद्ध

उसके बाद इस कल्प में क्कुसन्ध, कोणागमन, काश्यप और हमारे भगवान्—यह चार बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् ककुसन्ध का एक ही सम्मेलन हुआ। उसमें चालीस हजार भिक्षु एकत्र हुए। उस समय (हमारे) बोधि-सत्त्व खेम नामक राजा थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को पात्र-चीवरों सहित भोजन तथा अजन आदि दवाइयाँ प्रदान की और बुद्ध का धर्मीपदेश सुन प्रत्रज्या ग्रहण की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

भगवान् ककुसन्ध का खेम नाम का नगर था। ग्रान्तित्त नामक ब्राह्मण पिता था। विशाखा नामक ब्राह्मणी माता थी। विधुर तथा सञ्जीव प्रधान शिष्य थे। बुद्धिज नामक परिचारक था। सामा तथा चम्पका प्रधान शिष्याएँ थी। महान् शिरीष-वृक्ष (की) बोधि थी। चवालीस हाथ ऊँचा शरीर था। ग्रायु उनकी चालीस हजार वर्ष की थी।

भगवान् (वेस्सभू) के बाद नर-श्रेब्ठ, श्रप्रमेय, दुराऋमणीय ककुसन्ध नाम के बुद्ध हुए।

#### (२३) कोग्गागमन बुद्ध

उनके बाद कोणागमन बुद्ध उत्पन्न हुए। उनका भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुमा। उसमे तीस हजार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय हमारे बोधिसत्त्व पर्वत नामक राजा थे। उन्होंने म्रमात्यों के साथ, बुद्ध के पास जा, धर्मोपदेश सुना, भ्रौर बुद्ध सहित भिक्षु-सघ को निमन्त्रित कर, प्रतूर्ण, चीनवस्त्र, रेशम (कोसेय्य), कम्बल, दुकूल भ्रौर स्वर्ण-वस्त्र के साथ भोजन प्रदान कर शास्ता के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का सोभवती नाम का नगर था। यज्ञदत्त नामक ब्राह्मण पिता था। उत्तरा नामक ब्राह्मणी माता थी। भीयस ग्रौर उत्तर (दो) प्रधान शिष्य थे। स्वस्तिज नाम का परिचारक था। सुमुद्रा ग्रौर उत्तरा प्रधान शिष्याएँ थी। उदुम्बर (गूलर) वृक्ष (की) बोधि थी। तीस हाथ ऊँचा शरीर था। तीस सहस्र वर्ष की उनकी ग्रायु थी।

"(भगवान्) ककुसन्ध के बाद नर-श्रेष्ठ, नर-पुङ्गव, लोक-ज्येष्ठ, कोणा-गमन नामक जिन सम्बुद्ध हुए।"

#### (२४) काश्यप बुद्ध

उनके बाद लोक में काश्यप नाम के बुद्ध शास्ता उत्पन्न हुए। उनका भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुन्ना। उसमें बीस हज़ार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व तीनो वेदो में पारगत ज्योति-पाल नामक ब्राह्मण-युवक थे। भूमि-श्राकाश (सर्वत्र) प्रसिद्ध, घटिकार नाम का कुम्हार उनका मित्र था। वह श्रपने (मित्र) के साथ शास्ता के पास गये श्रौर उपदेश सुन, भिक्षु बन गये। प्रयत्नशील बन तीनो पिटकों को सीखा श्रौर श्रपने शारीरिक कर्त्तं व्यों की पूर्ति से बुद्ध धर्म के लिए भूषण बने। काश्यप बुद्ध ने भी कहा— ''तू बुद्ध होगा।''

उन भगवान् का जन्म-नगर बनारस (=वाराणसी) था। ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण पिता था। धनवती नामक ब्राह्मणी माता थी। तिस्स ग्रौर भारद्वाज—दो प्रधान शिष्य थे। सर्व-िमत्र नाम का परिचारक था। ग्रनुला तथा उरुवेला प्रधान शिष्याएँ थी। न्यग्रोध-वृक्षु (की) बोधि थी। बीस हाथ ऊँचा शरीर था। बीस हजार वर्ष की उनकी ग्रायु थी।

"(भगवान्) कोणागमन के बाद नर-श्रेष्ठ, धर्म-राज, प्रभङ्कर काश्यप नामक जिन बुद्ध हुए।"

जिस कल्प मे दीपङ्कर बुद्ध उत्पन्न हुए, उस कल्प मे ग्रन्य भी तीन बुद्ध हुए। लेकिन उनके पास (हमारे) बोधिसत्त्व के बुद्ध होने की भविष्यद्वाणी (=व्याकरण) नहीं हुई, इस लिए वे (तीन बुद्ध) यहाँ नहीं दिखाये गये। लेकिन ग्रार्थ-कथा में उस कल्प से ग्रारम्भ करके सभी बुद्धों को दिखाने (=विणत करने) के लिए यह कहा गया है :—

'त णह ड्रूर, मे घड्कूर, फिर शरण ड्रूर, दी प ड्रूर बुद्ध, नर-श्रेष्ठ

<sup>&#</sup>x27;सूत्र-पिटक, विनय-पिटक तथा ग्रभिधर्म-पिटक।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> विहार में भाडू देना श्रादि।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>बुद्धवंश की श्रद्वकथा।

को ण्ड ञ्ज, म ङ्गल, सुमन, रेवत, सो भित मुनि, श्र नो म द शीं, प दुम, नार द, प दुमुत्त र, सुमे घ, सुजात, म हाय श स्वी प्रिय द शीं, श्र थं द शीं, घ मं द शीं, सिद्धा थं लोकनायक, ति स्स, फुस्स बुद्ध, वि प स्सी, सि खि, वे स्स भू, क कुस न्ध, को णाग म न, नायक का श्य प—्यह सब वीतराग, संयमी, बुद्ध महा श्रन्धकार को नाश करते हुए, सौररश्मियों की तरह उत्पन्न हुए, श्रौर श्रग्न-पुंज की तरह जल कर, शिष्यो-सहित निर्वाण को प्राप्त हुए।

#### धर्मों का आचरण

इस प्रकार हमारे बोधिसत्त्व, दीपङ्कर ग्रादि चौबीस बुद्धों के पास से ग्रिधिकार प्राप्त करते हुए, लक्षाधिक चार ग्रसखेय्य-कल्पो (तक) ग्राये। इस (भद्र कल्प-युग मे) भगवान् काश्यप-बुद्ध के बाद इन सम्यक् सम्बुद्ध के ग्रितिरिक्त दूसरे कोई बुद्ध नहीं (हुए)। इस प्रकार दीपङ्कर ग्रादि चौबीस बुद्धों ने जिनके लिए भविष्यद्वाणी की, उन बोधिसत्त्व के बारे में (कहा है):—

"मनुष्यत्त्व जाति, (पुरुष-)लिङ्गः, (उत्तम-)हेतु (=भाग्य), बुद्ध से भेंट, प्रव्रज्या, गुणों की प्राप्ति, ग्रधिकार, सदिच्छा; इन ग्राठ बातों से युक्त होने पर, संकल्प (=ग्रभिनीहार) पूरा होता है।"

इन म्राठ बातो पर भली भाँति विचार कर, (हमारे बोधिसत्त्व ने दीपकर (बुद्ध) के चरणो मे म्रभिनीहार किया— "हन्त ! में जहाँ तहाँ से बुद्धत्व प्राप्ति के सहायक गुणों की खोज करूँगा।" फिर उत्साह पूर्वक खोजते हुए पहले पहल दान-पारिमता को देखा। (इस प्रकार) दान-पारिमता म्रादि बुद्ध बनाने वाली बातों की म्रोर ख्याल गया। उन (बुद्ध-कारक) बातो को पूरा करते हुए, वह वेस्सन्तर के जन्म तक म्राये। ऐसे (साधनो मे लग्न हो) चले म्राते (बोधिसत्त्व की) तथा दूसरे बोधिसत्त्वो की सुफलता को (इस प्रकार) विणत किया गया है—

"इस प्रकार जो सर्वाङ्ग-पूर्ण पुरुष है, जिसका बुद्ध होना निश्चित है, वह एक ग्ररब कल्प तक के लम्बे काल में ग्रावागमन करते हुए भी, ग्र वी चि,

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> श्राठ महान् नरकों में से, सबसे नीचे का नरक ।

तथा लो का न्त रों में उत्पन्न नही होते, श्रौर न ही वह नि ज्भा म तृष्णे क्षुघापिपासा, का ल क ज्ज के जैसी योनियों में जाते हैं। दुर्ग ति में जाने पर भी वह छोटे छोटे जीव के रूप में पैदा नहीं होते। मनुष्य-योनि में पैदा होने पर, वह जन्मान्ध पैदा नहीं होते। वह बहरे नही होते, श्रौर न ही गूँगे होते हैं। वह स्त्री-योनि में नहीं जाते, न ही दोनों लिङ्गों वाले तथा नपुंसक (होते हैं)। ऐसे पुष्क, जिनका बुद्ध होना निश्चित है, वह (उक्त योनियों की श्रोर) नहीं लौटते। वह सर्वत्र शुद्ध श्रौर श्रा न न्त यं कमों से मुक्त होते हैं। वह क में कि या द शीं पुष्क भूठी घारणा नहीं ग्रहण करते। यदि वह स्वगं में पैदा होते हैं भी, तो श्र सं जी (योनि) में उत्पन्न नहीं होते। शुद्धा वा स देव-लोक में (उनके लिए उत्पन्न होने का) कारण नहीं होता। नैष्कम्य के भुके हुए, भवाभव वियुक्त सत्पुष्क सब पारमिताश्रों को पूरा करते, लोको-पकार के लिए विचरण करते हैं।

## १०. जातकों में पारमिताओं का अभ्यास

## (१) दान पारमिता

इन महात्म्यो को प्राप्त करते हुए ही (बोधिसत्त्व ग्रन्तिम जन्म तक)

<sup>ं</sup> तीन चक्रवाल के बीच के भ्रत्यन्त शीत-नरक।

रप्रेत की योनि।

<sup>ै</sup> श्रसूर-योनि ।

<sup>&#</sup>x27; तिरञ्चीन-योनि ।

<sup>&</sup>quot;मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, भ्रहंत की हत्या, बुद्ध के शरीर में जख्म करके उनका रक्त बहाना, संघ-भेद ( = संघ में नाइत्तफाकी पैदा करना)। यह पाँच भ्रनन्तर-कर्म है। इन कर्मी का फल तुरन्त श्रीर भ्रवश्य भोगना पड़ता है।

६ कर्म भ्रौर उनका फल मानने वाले।

<sup>&</sup>lt;sup>°</sup> रूप-लोक की योनियों में से एक।

<sup>&</sup>lt;sup>4</sup> श्रनागामी-फल प्राप्त (व्यक्ति) फिर इस लोक में उत्पन्न नहीं होते। वे शुद्धावास-लोक में उत्पन्न हो, वही श्रावागमन से मुक्त हो जाते हैं।

पहुँचे। उन्होने पारिमताग्रो को पूर्ण करते हुए, श्रकीर्ति ब्राह्मण, सङ्ख ब्राह्मण धनञ्जय राजा, महासुदर्शन, महागोविन्द, निमि महाराज, चन्द्रकुमार, विसयह श्रेष्ठी, सिवि राजा तथा वेस्सन्तर के जन्मों में, दान-पारिमता पूरा करने में पराकाष्ठा कर दी। लेकिन शश-पण्डित जातक में तो निश्चयरूप से (समक्षो)—

याचक को देख कर, मैंने ग्रपने शरीर तक को दे दिया। दान देने में मेरे समान (कोई) नहीं; यह मेरी दान-पारिमता है।

इस प्रकार शरीर प्रदान करते हुए उनकी दान-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

# (२) शील-पारमिता

इसी प्रकार शीलव नाग-राज, चम्पेय्य नाग-राज, भूरिदत्त नाग-राज, छह्त नाग-राज, जय-दिश राजा के पुत्र ग्रलीन शत्रु कुमार के जन्मों मे शील-पारिमता की पूर्ति की चरम-सीमा नहीं, लेकिन शङ्ख्याल के जन्म में तो निश्चय-रूप से (सोचा)—

शूल से छेदने भ्रौर शक्ति (-श्रायुध) से प्रहार करने पर भी सपेरा के प्रति
मुक्ते क्रोध नहीं होता । यह मेरी शील-पारमिता है ।

इस प्रकार भ्रात्म-त्याग करते हुए (उन) की शील-पारिमता परमार्थ-पारिमता हुई।

# (३) नैष्क्रम्य पारमिता

उसी प्रकार सौमनस्य कुमार, हस्तिपाल कुमार तथा श्रयोघर पण्डित के जन्मों मे महान् राज्य को छोड नैष्कम्य पारिमता की पूर्ति की सीमा नहीं। चूल-सुतसोम जातक मे तो निश्चय रूप से—

मैने अपने हाथ के महान् राज्य को थूक की तरह त्याग दिया । श्रौर उसको छोड़ते हुए श्रासक्ति (का श्रनुभव) नहीं हुश्रा । यह मेरी नैष्क्रम्य पारमिता है ।

इस प्रकार निर्लिप्त हो राज्य छोड कर कामना रहित होने से (उन)की नैष्कम्य पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

## (४) प्रज्ञा पार्मिता

इसी प्रकार विधुर पिष्डत, महागोविन्द पिष्डत, कुदाल पिष्डत, श्ररक पिष्डत, बोधि परिव्राजक, महौषध पिष्डत के जन्मों में, प्रज्ञा पारिमता की पूर्ति की सीमा नहीं। लेकिन सेनक पिष्डत के समय सत्तुभस्त जातक में तो निश्चय रूप से—

प्रज्ञा की खोज में, मैने ब्राह्मण को दुख से मुक्त किया। प्रज्ञा में (कोई) मेरे समान नहीं है। यह मेरी प्रज्ञा पारमिता है।

थैली के भीतर वाले सॉप को दिखाने मे (उन) की प्रज्ञा पारिमता परमार्थ पारिमता हुई।

# (५) वीर्य पारमिता

इसी प्रकार वीर्य पारिमता श्रादि (दूसरी) पारिमताश्रो की पूर्ति की भी (दूसरे जन्मो मे चरम) सीमा नहीं।

हाँ, महाजनक जातक मे तो निश्चय रूप से-

जल में किनारा न देख सकने वाले सभी मनुष्य मर गए, (किन्तु मेरे) चित्त में विकार नहीं उत्पन्न हुन्ना। यह मेरी वीर्य पारमिता है।

इस प्रकार महा समुद्र को पार करते हुए (उन) की वीर्य पारिमता परमार्थ पारिमता हुई।

# (६) ज्ञान्ति पारमिता

क्षान्तिवाद जातक मे---

"तेज फरसे से जड़ वस्तु की तरह मुक्ते काट रहे थे, इसपर भी, काशीराज के प्रति मुक्ते कोघ नहीं श्राया। यह मेरी क्षान्ति (क्षमा) पारमिता है।"

इस प्रकार जड़ वस्तु की भाँति भयकर पीड़ा को सहते हुए वह क्षान्ति पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

#### (७) सत्य पारमिता

महासूतसोम जातक मे-

"सत्यवादिता की रक्षा करते हुए, ग्रपने जीवन का परित्याग कर, मैने एक सौ क्षत्रियो को मुक्त किया। (यह मेरी) परमार्थ सत्य-पारिमता है।"

इस प्रकार जीवन परित्याग कर सत्य की रक्षा कर वह सत्य-पारिमता परमार्थ पारिमता हुई।

## (५) अधिष्ठान पारमिता

मूग पक्ख ( = मूक पक्ष ) जातक मे-

न तो मेरा माता-पिता से द्वेष हैं, न महाशय से ही द्वेष हैं। मुक्ते बुद्ध-पद (= सर्वज्ञता) त्रिय है। इसलिए मैंने इस व्रत का ऋधिष्ठान किया है।

इस प्रकार जीवन परित्याग करके भी (श्रपने) व्रत का श्रिधिष्ठान (= दृढता से पालन) करना (यह उन)की श्रिधिष्ठान पारिमता परमार्थ-पारिमता हुई।

# (९) मैत्री पारमिता

एकराज जातक मे-

न मुक्ते कोई डराता है, न मै किसी से डरता हूँ। मै मैत्री-बल पर निर्भर हो सदैव बन में विचरता हूँ।

इस प्रकार जीवन तक की परवाह न करके मैत्री करना (यह उन)की मैत्री-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

## (१०) उपेचा पारमिता

लोमहंस जातक मे-

मुर्वो तथा हिंडुयों का तिकया बनाकर श्मशान में सोता हूँ। ग्वाले मेरे पास श्राकर श्रनेक प्रकार के रूप दिखाते हैं।

इस प्रकार ग्रामीण बालको के थूक फेंकने ग्रादि से पीडा देने तथा, माला गन्ध उपहार ग्रादि द्वारा सुख देने से भी समभाव (=उपेक्षा) का उल्लघन नहीं किया। इस प्रकार की (उनकी) उपेक्षा पारिमता परमार्थ-पारिमता हुई।

यहाँ यह सक्षेप से कहा गया है, विस्तार के लिए चरियापिटक को देखना चाहिए।

<sup>&#</sup>x27;खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

इस प्रकार पारिमतास्रो को पूरा कर वह वेस्सन्तर के जन्म (=श्रात्म भाव) मे स्राये।

यह पृथिवी श्रचेतन है। सुख दुख से प्रभावित नहीं होती है; िकन्तु वह भी मेरे दान के बल से सात बार काँपी।

इस प्रकार महापृथ्वी को कँपाने वाले महापुण्य कर्मा, (हमारे बोधिसत्त्व) श्रायु को बिता कर, तुषित-देवलोक में उत्पन्न हुए।

भगवान् 'दीपङ्कर के चरणो' से ग्रारम्भ करके तुषित-लोक मे जन्म लेने तक के इस भाग को 'दूरेनिदान' जानना चाहिए।

# ख. अविद्रेनिदान

# १, गौतम का (बाल्य) चरित

## (१) देव-लोक से मनुष्य-लोक की श्रोर

बोधिसत्त्व के तुषित लोक में रहते समय ही बुद्ध-कोलाहल (==घोष)
पैदा हुग्रा। लोक में कल्प-कोलाहल, बुद्ध-कोलाहल तथा चक्रवर्ती-कोलाहल—
तीन प्रकार के कोलाहल उत्पन्न होते हैं। (ग्राज से) लाख वर्ष के बीत जाने
पर कल्प-उत्थान होगा (सोच) काम-धातु के लोक-व्यूह नामक देवता, खुले
सिर, बिखरे-केश, रोनी-शकल बना, हाथों से ग्राँसू पोछते हुए, लाल वस्त्र
पहने ग्रत्यन्त कुरूप वेश धारण किये मनुष्य-लोक में घूमते हुए इस प्रकार चिल्लाते
हैं—"मित्रो! लाख वर्ष व्यतीत होने पर कल्प-उत्थान होगा—यह लोक नष्ट
हो जायगा। महा-समुद्र सूख जायगा। यह महापृथ्वी ग्रीर पर्वत-राज सुमेरु
उड जायेगे, नष्ट हो जायेगे। ब्रह्म-लोक तक (समस्त) ब्रह्माण्ड का नाश हो
जायगा। मित्रो! मैत्री-भावना की भावना करो। करुणा, मुदिता, उपेक्षा
(भावना) की भावना करो। माता-पिता की सेवा करो। कुल में जो ज्येष्ठ
हों उनकी सेवा करो।" यह कल्प-कोलाहल हुग्रा।

सहस्र वर्ष बीतने पर, लोक मे सर्वज्ञ बुद्ध उत्पन्न होगे (सोच) लोक-पाल देवता "मित्रो । स्रब से सहस्र वर्ष बीतने पर लोक मे बुद्ध उत्पन्न होगे" उद्-घोषित करते हुए घूमते हैं। यह बुद्ध-कोलाहल हुस्रा। सौ वर्ष के बीतने पर चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा, (सोच) देवता "मित्रो । ग्रब से सौ वर्ष बीतने पर, लोक में चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा" उद्घोषित करते हुए घूमते हैं। यह चक्रवर्ती-कोलाहल हुग्रा।

यह तीनो कोलाहल महान्-कोलाहल होते हैं।

बुद्ध-कोलाहल के शब्द को सुन कर, सारे दस सहस्र चक्रवालो के देवता एक स्थान पर एकत्रित हो, 'ग्रमुक व्यक्ति बुद्ध होगा' जान पूर्व लक्षणो को देख उसके पास जा प्रार्थना (=याचना) करते हैं।

जब वह पूर्व-लक्षण उदय हो गये, तो (इस) चक्रवाल के सभी देवताम्रो— चतुर्महाराजिक, शक्र, सुयाम, सतुषित, परिनिर्मित-वशवर्ती—ने महाब्रह्माग्रो के साथ एक चक्रवाल में इकट्ठे हो (सलाह) की, (ग्रीर फिर) तुषित-लोक में बोधिसत्त्व के पास जा कर, उन्होंने प्रार्थना की—"मित्र! तुमने जो दस पारिमिताग्रो की पूर्ति की, वह न तो इन्द्रासन पाने के लिए, न मार, ब्रह्मा अथवा चक्रवर्ती के पद की प्राप्ति के लिए। लोक-निस्तार के लिए, बुद्धत्व की इच्छा से ही उन्हें तुमने पूरा किया। सो मित्र! अब यह बुद्ध होने का काल है। मित्र! यह बुद्ध होने का समय है।"

# (२) बोधिसत्व का जन्म कुल देश आदि

उस समय बोधिसत्त्व ने देवताग्रो को वचन दिए बिना ही (ग्रपने जन्म सम्बन्धी) समय, द्वीप, देश, कुल, माता तथा श्रायु-परिमाण—इन पॉच 'महा-विलोकनो' पर विचार किया। (सर्व) प्रथम, 'समय उचित है या नही ' (पर) समय का विचार किया। लाख वर्ष से ऊपर की श्रायु का समय (बुद्धों के जन्म के लिए) उचित समय नहीं होता। सो क्यो ? उस समय प्राणियों को जन्म, जरा, मरण का भान नहीं होता। बुद्धों का धर्मोपदेश तीन लक्षणों से रहित विही होता। उस समय 'श्रनित्य-दु ख तथा श्रनात्म' सम्बन्धी उपदेश करने पर लोग ''यह क्या कहते हैं ? (कह कर) उसे ध्यान से नहीं सुनते, न उसपर श्रद्धा करते हैं। इसी लिए उन्हें (धर्म का) बोध नहीं हो सकता। उसके न होने पर बुद्ध-धर्म (उनके लिए) सहायक (—नैर्याणिक) नहीं होता। इसीलिए

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> म्रनित्य, दुक्ख तथा म्रनात्म-भाव ।

वह समय अनुकूल नहीं है ? सौ वर्ष से कम आयु का समय अनुकूल समय नहीं होता। क्यो ? सौ वर्ष से कम की आयु वाले प्राणियों में राग-द्वेष बहुत होते हैं। अधिक राग-द्वेष वाले प्राणियों को दिया गया उपदेश भी प्रभावोत्पा-दक नहीं होता। पानी पर, लकडी से खीची हुई लकीर की तरह वह शीं घ्र ही नष्ट हो जाता है। इसीलिए यह भी समय अनुकुल समय नहीं है।

महासत्त्व ने देखा कि लाख वर्ष से नीचे श्रौर सौ वर्ष से ऊपर का समय श्रनुकूल समय है श्रौर कि वह सौ वर्ष की श्रायु वाला समय है, इसलिए बुद्धों के उत्पन्न होने का समय है।

तब द्वीप का विचार करते हुए, उपद्वीपों सहित चारो द्वीपो को (देख) विचार किया—दूसरे तीनों द्वीपों में बुद्ध उत्पन्न नहीं हुम्रा करते, जम्बू-द्वीप में ही वह जन्म लेते हैं, श्रौर (जम्बू-द्वीप में जन्मने का) निश्चय किया। फिर 'जम्बू-द्वीप तो दस हजार योजन बड़ा हैं' कौन से प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं' हस तरह प्रदेश पर विचार करते हुए मध्य-प्रदेश को देखा। "मध्य देश की पूर्व दिशा में कजंगल नामक कस्वा है, उसके बाद बड़े शाल (के बन) है, श्रौर फिर श्रागे सीमान्त (—प्रत्यन्त) देश। पूर्व-दक्षिण में सललवती नामक नदी है, उसके श्रागे सीमान्त देश। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक नामक कस्वा है, उसके बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा में यून नामक ब्राह्मण-ग्राम है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में उशीरध्वज नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में उशीरध्वज नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश। चत्र प्रकार विनय (-पिटक) में (मध्य-) देश का वर्णन है।

यह (मध्य-देश) लम्बाई में तीन सौ योजन, चौडाई में ढाई सौ योजन, श्रौर घेरे में नौ सौ योजन हैं। इसी प्रदेश में बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, प्रधान श्रग्न-श्रावक

<sup>ै</sup> भ्रपर-गोयान, पूर्व-विदेह तथा उत्तर-कुरू में ।

<sup>े</sup> वर्तमान कंकजोल, जिला संथाल पर्गना (विहार)।

<sup>ै</sup> वर्तमान सिलई नदी (हजारी बाग भ्रौर मेदनीपुर जिला)।

<sup>&</sup>lt;sup>\*</sup> हजारी बाग जिले में कोई स्थान।

<sup>&</sup>lt;sup>५</sup> थानेश्वर, जिला कर्नाल।

<sup>&</sup>lt;sup>५</sup> हिमालय का कोई पर्वत-भाग।

(=प्रधान शिष्य), महाश्रावक, ग्रस्सी महा-श्रावक, चक्रवर्ती राजा, तथा दूसरे महाप्रतापी, ऐश्वर्यशाली, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य पैदा होते हैं। ग्रौर वही यह कपिल वस्तु नामक नगर है, वही मुफ्ते जन्म लेना है'—यह निश्चय किया।

तब कुल का विचार करते हुए—"बुद्ध वैश्य या शूद्र कुल मे उत्पन्न नहीं होते। लोकमान्य क्षत्रिय यां ब्राह्मण, इन्हीं दो कुलों में जन्म लेते हैं। ब्राज कल क्षत्रिय कुल लोकमान्य है। (इसलिए) उसी (कुल) में जन्म लूँगा। शुद्धोदन नामक राजा मेरा पिता होगा (सोच) कुल का निश्चय किया।

फिर माता का विचार करते हुए—''बुद्धो की माता चञ्चल स्रौर शराबी तो होती नहीं। लाख कल्प से (दान स्रादि) पारिमताएँ पूरी करने वाली, स्रौर जन्म से ही स्रखण्ड पञ्च शील (=सदाचार) रखने वाली होती है। यह महामाया नामक देवी ऐसी (ही) है, यह मेरी माता होगी। लेकिन इसकी (बाकी) स्रायु कितनी होगी' (विचारते हुए) दस महीने सात दिन की स्रायु देखी।

# (३) मायादेवी के गर्भ में

इस प्रकार इन पाँच-'विलोकनो' को विलोकन कर, 'हाँ मित्रो! मेरे बुद्ध होने का समय हैं'—इस प्रकार वचन दे देवताग्रो को सन्तुष्ट किया, ग्रीर ''ग्राप लोग जाइए'' (कह) देवताग्रो को विदा कर, तुषित देवताग्रो के साथ, तुषित लोक के नन्दन वन में प्रवेश किया। सभी देवलोको में नन्दन वन होते हैं। वहाँ (साथी) देवता (लोग),—'यहाँ से च्युत हो कर (ग्रमुक) सुगति को प्राप्त होते हैं'—इस प्रकार बोधिसत्त्व को पूर्व के किये पुण्य कर्मों (के वल) से मिलने वाले स्थानो का स्मरण दिलाते हुए घूम रहे थे। इस प्रकार पुण्य कर्मों की स्मृति कराते देवताग्रों के साथ वे वहाँ रहे। फिर वहाँ से च्युत हो कर, महामाया देवी की कृक्षि में प्रवेश किया।

उस (गर्भ) प्रवेश को स्पष्ट करने के लिए क्रमानुसार कथा इस प्रकार हैं :-उस समय किपल वस्तु नगर में ग्राषाढ़ का उत्सव उद्घोषित हुग्रा था। जनता उत्सव मना रही थी। पूर्णिमा के सात दिन पहले महामाया देवी बिना मद्य-पान

<sup>ै</sup> देखो तिलौराकोट (नेपाल की तराई)।

६६ [ निदान-कथा

के मालागन्ध से सुशोभित हो, उत्सव मना रही थी। सातवे दिन प्रात ही उठ, उसने सुगन्धित जल से स्नान कर, चार लाख का महादान दिया; श्रौर सब ग्रलङ्कारों से विभूषित हो, सुन्दर भोजन ग्रहण कर, उपोसथ (= व्रत) के नियमों (= श्रङ्को) को धारण किया। फिर सु-ग्रलङ्कृत शयनागार में प्रविष्ट हो, सुन्दर शय्या पर लेटे, निद्रित ग्रवस्था में यह स्वप्न देखा—

'उसे चार-महाराज (दिक्पाल) शय्या सिहत उठा कर, हिमवन्त (-प्रदेश) में लें जा कर, साठ योजन के मन-शिला (नामक शिला) के ऊपर, सात योजन (छाया) वाले महान् शाल-वृक्ष के नीचे रख कर खड़े हो गये।

तब उन (दिक्पालो) की देवियो ने ग्राकर, (महामाया) देवी को श्रनोतप्त-दह में ले जाकर, मनुष्य-मल दूर करने के लिए स्नान कराया, दिव्य-वस्त्र
पहनाया, गन्धो से लेप किया, दिव्य फूलो से सजाया। वहाँ से समीप ही रजतपर्वत हैं, जिसके ग्रन्दर सुवर्ण-विमान हैं। वही पूर्व की ग्रोर सिर करके दिव्यशयन बिछवा कर उन्होंने उसे लिटाया। बोधिसत्त्व श्वेत सुन्दर हाथी बन
समीपवर्ती सुवर्ण-पर्वत पर विचर कर, वहाँ से उतर रजत-पर्वत पर चढे।
फिर उत्तर दिशा से ग्रा कर (उक्त स्थान पर पहुँचे)। उनकी रुपहली माला
जैसी सूण्ड मे श्वेत पद्म था। उन्होंने मधुर नाद कर, स्वर्ण-विमान में प्रवेश
कर फिर तीन बार माता की शय्या की प्रदक्षिणा की। फिर दाहिनी बगल को
चीर, कुक्षि मे प्रविष्ट हुए से जान पड़े। इस प्रकार (बोधिसत्त्व ने) उत्तराषाढ़
नक्षत्र में गर्म में प्रवेश किया।

दूसरे दिन जाग कर देवी ने इस स्वप्न को राजा से कहा। राजा ने चौसठ प्रधान ब्राह्मणों को बुलवाया। गोबर-लीपी, खीलों (—लाजा) स्रादि से मङ्गलाचरण की गई भूमि पर महार्घ स्रासन बिछवाये। उन पर ब्राह्मणों को बैठा घी, मधु, शक्कर से प्रस्तुत की गई खीर से सोने-चाँदी की थालियाँ भर कर, उन्हें सोने-चाँदी की ही थालियों से ढक कर परोसा। और नवीन वस्त्र तथा कपिला गौ स्रादि के दान से भी उन्हें सर्तापत किया। उनकी सब इच्छाएँ पूरी कर उन्होंने ब्राह्मणों को स्वप्न की बात कह "स्वप्न का (फल) क्या होगा ?" पुछा।

ब्राह्मणो ने कहा—''महाराज! चिन्ता न करे। श्रापकी देवी की कुक्षि मे गर्भ प्रतिष्ठित हुम्रा है। वह स्त्री-गर्भ नहीं, पुरुष-गर्भ है। श्रापके पुत्र होगा। वह यदि घर (=गृहस्थ) में रहेगा, तो चक्रवर्ती राजा होगा, यदि घर से निकल कर, प्रव्रजित होगा, तो लोक में कपाट खुला (=ज्ञानी) बुद्ध होगा।"

बोधिसत्त्व के गर्भ में भ्राने के समय, समस्त दस-सहस्र ब्रह्माण्ड एक प्रहार से कॉपने की तरह काँपे। बत्तीस पूर्व-शकुन (=लक्षण) प्रकट हुए। दस सहस्र चक्रवालो मे अनन्त प्रकाश हो उठा। मानो (प्रकाश) की उस कान्ति (=श्री) को देखने के लिए ही, ग्रन्धो को ग्रॉखे मिल गई। बहरे शब्द सूनने लगे। गाँगे बोलने लगे। कूबडे सीघे हो गये। लॅगडे पॉव से चलने लगे। बन्धनो मे पडे हुए सभी प्राणी बेडी हथकडी से मुक्त हो गए। सारे नरको की भ्राग बभ गई। प्रेतो की क्षुधा-पिपासा शान्त हो गई। पशुस्रो (=ितरश्चीनो) का भय जाता रहा। तमाम प्राणियो के रोग शान्त हो गये। सभी प्राणी प्रिय-भाषी हो गये। घोडे मधुर स्वर से हिनहिनाने लगे। हाथी चिघाडने लगे। सारे वाद्य (=तुरिय) स्वय बजने लगे। मनुष्यो के हाथो के स्राभरण, बिना ग्रापस में टकराये ही, शब्द करने लगे। सब दिशाएँ शान्त हो गई। प्राणियो को सूखी करती, मुद्रल शीतल हवा चलने लगी। बे-मौसम के वर्षा बरसने लगी। पथ्वी से भी पानी निकल कर बहने लगा। पक्षियो ने स्राकाश मे उड़ना छोड दिया। नदियो ने बहना छोड दिया। महासमुद्र का पानी मीठा हो गया। सभी जगहे पाँच रग के कमलो से ढक गई। जल-थल मे उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के पुष्प खिल उठे। वृक्षों के स्कन्धों में, स्कन्ध-कमल, शाखात्रो मे शाखा-कमल, लतात्रो मे लता-कमल पुष्पित हुए। स्थल पर शिला-तलो को फाड कर, ऊपर ऊपर से, सात सात हो, दण्ड-कमल निकले। श्राकाश में लटकने वाले कमल उत्पन्न हुए। चारो ग्रोर से पुष्पो की वर्षा हई। ग्राकाश मे दिव्य वाद्य (=तूर्य) बजे। चारो ग्रोर सारी दस-साहस्री लोक धातू (= ब्रह्माण्ड) माला-गुच्छ की तरह, दाबकर वॅघे माला-समूह की तरह, सजे सजाये माला-श्रासन की तरह, एक माला-पिक्त की तार, अथवा पुष्प धप गन्ध से सूवासित खिली हुई चवँर की तरह परम शोभा को प्राप्त हुई।

बोधिसत्त्व के गर्भ में ग्राने के समय से ही बोधिसत्त्व ग्रीर उनकी माता के सकट के निवारण करने के लिए चारो देव-पुत्र (महाराज) हाथ में खड्ग लिये हुए पहरा देते थे। (उसके बाद) बोधिसत्त्व की माता को पुरुष में राग नहीं हुग्रा। वह बड़े लाभ ग्रीर यश को प्राप्त हो सुखी तथा ग्रक्लान्त-शरीर, रही। वह कुक्षिस्थ बोधिसत्त्व को सुन्दर मिण-रत्न मे पिरोए हुए पीले धागे की तरह देख सकती थी। क्योंकि जिस कोख में बोधिसत्त्व वास करते हैं, वह चैत्य के गर्भ के समान (फिर) दूसरे प्राणी के रहने या उपभोग करने योग्य नहीं रहती; इसीलिए (बोधिसत्त्व की माता) बोधिसत्त्व के जन्म के (एक) सप्ताह बाद ही मर कर, तुषित देव-लोक में जन्म ग्रहण करती हैं। जिस प्रकार दूसरी स्त्रियाँ दस मास से कम (या) ग्रधिक में भी, बैठी या लेटी भी, प्रसव करती हैं; ऐसा बोधिसत्त्व-माता नहीं करती। वह (बोधिसत्त्व को) दस मास कुक्षि में रख, खड़ी ही प्रसव करती हैं। यह बोधिसत्त्व-माता की धर्मता (चित्रथेषता) है।

# (४) सिद्धार्थ का जन्म

महामाया देवी भी पात्र में तेल की भाँति, बोधिसत्त्व को दस मास कोख में धारण कर, गर्भ के परिपूर्ण होने पर, नैहर (पीहर) जाने की इच्छा से शुद्धो-दन महाराज से बोली—'देव, (ग्रपने पिता के) कुल के देव-दह नगर को जाना चाहती हूँ। राजा ने 'ग्रच्छा' कह, कपिलवस्तु से देवदह नगर तक के मार्ग को सम-तल करा ग्रीर केला, पूर्ण-घट, ध्वजा, पताका ग्रादि से ग्रलकृत करवा, देवी को सोने की पालकी में बिठा, एक हजार ग्रफ़सर तथा बहुत भारी सेवक-मण्डली के साथ भेज दिया।

दोनो नगरों के बीच मे, दोनो ही नगर वालो का लुम्बिनी बन नामक एक मङ्गल शाल बन था। उस समय (वह बन) मूल से ले कर शिखर की शाखाओं तक एक दम फूला हुआ था। शाखाओं तथा पृष्पों के बीच में पाँच रङ्गों के भ्रमर गण, और नाना प्रकार के पिक्ष-संघ मधुर-स्वर से कूजन करते विचर रहे थे। सारा लुम्बिनी-बन विचित्र लता-बन—जैसा, प्रतापी राजा के सुसज्जित बाजार जैसा (जान पड़ता) था। उसे देख देवी के मन में शाल वन में कींडा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। आमात्य, देवी को ले शाल-बन में गये। देवी ने सुन्दर शाल के नीचे जा, शाल की डाली पकड़नी चाही।

<sup>ै</sup> रुम्मिन् देइ, नौतनवा स्टेशन (B.N.W.R.) से प्रायः = मील पश्चिम, नैपाल की तराई में ।

शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये बेत की छड़ी की नोक की भाँति लटक कर देवी के हाथ के पास आ गई। उसने हाथ पसार कर शाखा पकड़ ली। उसी समय से प्रसववेदना (=कमर्ज-वायु) हुई। लोग (इदें गिर्द) कनात घेर, स्वय अलग हो गये। शाल-शाखा पकड़े, खड़े ही खड़े, उसे गर्भ-उत्थान हो गया। उस समय चारो शुद्ध-चित्त महाब्रह्मा ने सोने का जाल ले, पहुँच कर उस जाल मे बोधिसत्त्व को ग्रहण किया, और माता के सम्मुख रख कर बोले— 'देवी सन्तुष्ट होग्रो। तुम्हे महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है।'

जिस प्रकार अन्य प्राणी माता की कोख से निकलते समय, गन्दे, मल-विलिप्त निकलते हैं, वैसे बोधिसत्त्व नहीं निकलते। बोधिसत्त्व धर्मासन (=व्यास-गद्दी) से उतरे धर्म-कथिक (=धर्मीपदेशक) के समान, सीढ़ी से उतरे पुरुष की तरह, दोनों हाथ और दोनों पैर पसारे खड़े हुए (मनुष्य) के समान, माता की कोख के मल से बिलकुल अलिप्त, शुद्ध, विशुद्ध, काशी-देश के वस्त्र मे रक्खे मणि-रत्न के समान, चमकते हुए, माता की कोख से निकले। ऐसा होने पर भी बोधिसत्त्व और बोधिसत्त्व की माता के सत्कारार्थ, आकाश से दो जल की धाराओं ने निकल, बोधिसत्त्व और उनकी माता के शरीर को ठडा किया।

तब चारो महाराजाग्रो ने सोने के जाल मे लेकर खड़े ब्रह्माग्रो के हाथ से, (बोधिसत्त्व) को माङ्गिलिक समभे जाने वाले, कोमल मृग-चर्म मे ग्रहण किया। उनके हाथ से मनुष्यो ने दुकूल की तह (चुम्बट) मे ग्रहण किया। मनुष्यो के हाथ से निकल कर (बोधिसत्त्व ने) पृथ्वी पर खड़े हो, पूर्व दिशा की ग्रोर देखा। ग्रनेक सहस्र चक्रवाल एक-ग्रॉगन से हो गये। मनुष्य गन्ध माला ग्रादि से पूजा करते हुए बोले—"महापुरुष! यहाँ ग्राप जैसा भी कोई नहीं है, बढ़ कर तो कहाँ होगा।" बोधिसत्त्व ने चारो दिशाएँ चारो ग्रनुदिशाएँ नीचे-ऊपर—दसों ही दिशाग्रो का ग्रवलोकन कर, ग्रपने जैसा किसी को न देख, उत्तर दिशा की ग्रोर (करके) कम से सात पग गमन किया। (उस समय) महाब्रह्मा श्वेत-छत्र सुयाम (देवता) ताल-व्यजन (चंपेखा), ग्रौर ग्रन्य देवता शेष राजकीय ककुध-भाण्ड हाथ में लिये ग्रनुगमन

१ खड्ग, छत्र, पगड़ी, पादुका तथा व्यजन (=पंखा)।

कर रहे थे। सातवे पग पर ठहर ''मैं' ससार में सर्व-श्रेष्ठ हूँ'' नर-पुङ्गवो की इस प्रथम निर्भीक वाणी का उच्चारण करते हुए सिंहनाद किया।

बोधिसत्त्व ने इस प्रकार माता की कोख से निकलते ही तीन जन्मों मे, वाणी का उच्चारण किया—महोसध-जन्म मे, वेस्सन्तर-जन्म मे ग्रौर इस जन्म में। महोसध-जन्म मे तो बोधिसत्त्व के कोख से निकलते ही, देवेन्द्र शक ग्राया ग्रौर चन्दन-सार हाथ में रख कर चला गया। बोधिसत्त्व उसे हाथ में लिये ही निकला। तब उसकी माता ने पूछा—"तात । क्या लेकर श्राया है?" "ग्रम्मा । ग्रीवध ?" ग्रीवध लेकर श्राया होने के कारण उसका नाम श्रीवध दारक ही कर दिया गया। उस ग्रीषध को लेकर बरतन (=चाटी) में डाल दिया। वह श्रीषध अन्धे, बहरे, इत्यादि सभी प्रकार के श्राने वाले रोगियो के रोग-उपशमन की दवाई हुई। तब "यह महौषध है, यह महौषध है," इस प्रकार की ख्याति उत्पन्न होने के कारण, (=बोधिसत्त्व) का नाम भी महोषध ही पड गया। वेस्सन्तर के जन्म में तो बोधिसत्त्व माता की कोख से निकलते ही 'मॉ! घर मे कुछ है ? दान दुँगा" पूछते हुए निकला। उसकी माता ने "तात तु घनवानु कूल मे पैदा हुआ है" (कह) पुत्र की हुथेली को अपनी हुथेली पर रख, हजार की थैली रखवाई। इस जन्म मे तो केवल यह सिंह-नाद ही किया। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने तीन जन्मो मे माता की कोख से निकलते ही, शब्द उच्चारण किया।

गर्भ धारण के समय की भॉति ही जन्म के समय भी बत्तीस शकुन, प्रकट हुए। जिस समय लुम्बिनी बन में हमारे बोधिसत्त्व उत्पन्न हुए, उसी समय राहुल-माता देवी, श्रामात्य छन्न (=छन्दक) श्रामात्य कालउदायी, हस्तिराज आजानीय, श्रवराज कन्यक, महाबोधि-वृक्ष, श्रीर खजानो से भरे चार घडे भी उत्पन्न हुए। उनमें (कम से) एक गव्यूति (= ध्री योजन = २ मील) भर, एक श्राघे योजन भर एक तीन गव्यूति भर श्रीर एक योजन भर था। यह सात एक ही समय पैदा हुए। दोनो नगरों के निवासी बोधिसत्त्व को लेकर किपलवस्तु नगर को ही लौटे।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> उत्तम जाति का ।

'किपलवस्तु नगर में शुद्धोदन महाराज को पुत्र हुम्रा है, यह कुमार बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ कर बुद्ध होगा' (सोच) उसी दिन त्रयिंत्रश (तेतीस) भवन के सन्तुष्ट-चित्त देव-सघ वस्त्रों को उछाल उछाल कर कीड़ा करने लगे।

## (५) काल देवल की भविष्यद्वाणी

उस समय शुद्धोदन महाराज के कुलमान्य, म्राठ समाधि (=समापत्ति) वाले काल-देवल नामक तपस्वी, भोजन करके, दिन में मनोविनोद के लिए त्रयस्त्रिश देवलोक में गये। वहाँ दिन के विश्राम के लिए बैठे हुए उन्होंने, उन देवताम्रों को देख कर पूछा—"किस कारण से तुम इस प्रकार सन्तुष्ट-चित्त हो कीडा कर रहे हो? मुफ्तें भी वह बात बताम्रो।" देवताम्रों ने उत्तर दिया "मित्र! शुद्धोदन राजा को पुत्र उत्पन्न हुम्रा है। वह बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ, बुद्ध हो, धर्मचक प्रवर्तित करेगा। हमें उसकी म्रनन्त बुद्ध-लीला देखनी, तथा (उसका) धर्म सुनने को मिलेगा—इस कारण से हम प्रसन्न-चित्त है।"

उनकी बात सुन, तपस्वी ने शीघ्र ही देवलोक से उतर, राज-महल मे प्रवेश कर, बिछे ग्रासन पर बैठ, पूछा---"महाराज! ग्रापको पुत्र हुग्रा है, मैं उसे देखना चाहता हूँ।" राजा सु-ग्रलकृत कुमार को मँगा, तापस की वन्दना कराने को ले गया। बोधिसत्त्व के चरण उठ कर तापस की जटा मे जा लगे। बोधिसत्त्व के जन्म मे, बोधिसत्त्व के लिए दूसरा कोई वन्दनीय नही। यदि श्रजान में बोधिसत्त्व का शिर तापस के चरण पर रखा जाता, तो तापस का शिर सात टकडे हो जाता । तापस ने--'मुफे अपने आपको नाश करना योग्य नहीं हैं (सोच) श्रासन से उठ हाथ जोड कर (प्रणाम किया)। राजा ने, इस श्राश्चर्य को देख, ग्रपने पुत्र की वन्दना की। तपस्वी को ग्रतीत के चालीस श्रौर भविष्य के चालीस—ग्रस्सी कल्पो की (बात) याद ग्रा सकती थी। उस ने बोधिसत्त्व के (शरीर के) लक्षणों को देख, 'यह बुद्ध होगा या नहीं' इस बात का विचार कर मालूम किया, कि 'यह अवश्य बुद्ध होगा। यह अद्भुत पुरुष है' जान मुस्कराया। फिर सोचने लगा "इसके बुद्ध होने पर, मैं इसे देख सक्रूँगा वा नही ?" सोचने से (मालूम हुम्रा) 'नही देख पाऊँगा; (इसके बुद्ध होने से) पहले ही मर कर ग्ररूप-लोक मे--जहाँ सौ ग्रथवा हजार बुद्धो के जाने पर भी ज्ञान-प्राप्ति (= ग्रवबोध) नहीं हो सकती--उत्पन्न होऊँगा। तब

'ऐसे अद्भुत पुरुष को बुद्ध होने पर नहीं देख पाऊँगा, मेरा दुर्भाग्य हैं' सोच रो उठा। लोगों ने जब देखा—िक 'हमारे आर्य (=अय्य=बावा) अभी हैंसे और फिर रोने लग गये' तो उन्होंने पूछा—''क्यो भन्ते! क्या हमारे आर्य-पुत्र को कोई सकट होगा ?''

"इनको सकट नहीं हैं, यह निस्संशय बुद्ध होगे।"

"तो (म्राप) किस लिए रोते हैं ?"

"इस प्रकार के पुरुष को बुद्ध हुए नहीं देख सक्रूँगा, मेरा बडा दुर्भाग्य (=हानि) है—यहीं सोच श्रपने लिए रो रहा हूँ।"

फिर 'मेरे सम्बन्धियो में से कोई इसे बुद्ध-हुम्रा देखेगा, या नहीं'—विचार, भ्रपने भाजे नाळक को इस योग्य जान, श्रपनी बहिन के घर जाकर (पूछा)।

'तेरा पुत्र नाळक कहाँ है ?'

'घर में हैं, आर्थे।"

"उसे बुला।"

(भाजे के) पास म्राने पर बोला—''तात! महाराज शुद्धोदन के घर में पुत्र उत्पन्न हुम्रा है, वह बुद्ध-म्रकुर है। पैंतीस वर्ष बाद वह बुद्ध होगा; म्रीर तू उसे देख पायेगा। तू म्राज ही प्रव्रजित हो जा।''

वह—'मैं सत्तासी करोड़ धनवाले कुल मे उत्पन्न बालक हूँ, (तो भी) मामा मुफे अनर्थ मे नही लगा रहा हैं — सोच, उसी समय बाजार से काषाय (वस्त्र) तथा मट्टी का पात्र मँगवा, शिर-दाढ़ी मुँडा, काषाय वस्त्र पहिन, 'लोक मे जो उत्तम पुरुष है, उसीके नाम पर मेरी यह प्रव्रज्या हैं', यह (कहते) बोधिसत्त्व की ओर अञ्जलि जोड़, पाँचो अगो से वन्दना की, फिर पात्र को भोली में रख, उसे कथे पर लटका, हिमालय मे प्रवेश कर, श्रमण-धर्म का पालन करने लगा।

फिर तथागत के बुद्ध हो जाने पर, (उनके) पास भ्रा, उनसे नाळक '-ज्ञान' सुन, हिमालय मे चले गये; वहाँ भ्रहंत पद को प्राप्त कर, सर्व-श्रेष्ठ मार्ग (=उत्कृष्ट प्रतिपदा) पर भ्रारूढ़, सात मास तक ही जीवित रह, एक सुवर्ण पर्वत के पास निवास करते, खड़े ही खडे उपाधि-रहित निर्वाण को प्राप्त हुए।

## (६) ज्योतिषी की भविष्यद्वाणी

पाँचवे दिन बोधिसत्त्व को शिर से नहलाया गया, नामकरण सस्कार किया गया। राजभवन को चारों प्रकार के गन्धों से लिपवाया गया। खीलों सिहत चार प्रकार के पुष्प बखेरे गये। निर्जल खीर पकाई गई। राजा ने तीनो वेदों के पारगत एक सौ श्राठ ब्राह्मणो को निमन्त्रित किया। उन्हें राजभवन मे बैठा, सुभोजन करा, सत्कार पूर्वक (बोधिसत्त्व के) लक्षण के बारे में पूछा—"भविष्य क्या है?" उनमे.—

उस समय राम, ध्व ज, लक्ष्म ण, मन्त्री, को ड ज्ञ, भो ज, सुयाम ग्रौर सुद त्त-यह ग्राठ षड्-ग्रंग जानने वाले ब्राह्मण थे, जिन्होंने मन्त्रों की व्याख्या की।

यह ग्राठ ही लक्षण जानने वाले (चैवज्ञ) ब्राह्मण थे। गर्भ घारण के दिन 'स्वप्न' का भी विचार इन्होने ही किया था। उनमे से सात जनो ने दो उँगलियाँ उठा कर, दो प्रकार से भविष्य कहा—'ऐसे लक्षणो वाला यदि गृहस्थ रहे, तो चक्रवर्ती राजा होता है, ग्रौर यदि प्रव्रजित हो, तो बुद्ध।" ग्रौर फिर चक्रवर्ती राजा की श्री सम्पत्ति का वर्णन किया। उनमे सब से कम उमर ग्रौर कौण्डित्य गोत्री तरुण ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व के सुन्दर लक्षणो को देख एक ही उँगली उठा कर, एक ही प्रकार का भविष्य कहा—"इसके घर मे रहने की सम्भावना (चकारण) नहीं है, यह महाज्ञानी (चिववृत-कपाट) बुद्ध होगा। उस ग्रधि-कारी, ग्रन्तिम-जन्मधारी, प्रज्ञा मे ग्रन्य जनो से बढ़े हुए, इन लक्षणों वाले पुरुष के घर मे ठहरने की सम्भावना नहीं, यह निश्चय बुद्ध होगा—इस एक ही ग्रवस्था (चगित) को देखा। इसीलिए एक ही उँगली उठा कर भविष्य कहा।

जन ब्राह्मणो ने अपने अपने घर जाकर, पुत्रो से कहा—"तात । हम बूढ़े हो गये हैं। महाराज शुद्धोदन के पुत्र के बुद्ध होने तक (हम) रहेंगे वा नहीं, (लेकिन) उस कुमार के बुद्धपद प्राप्त करने पर तुम उसके धर्म में प्रब्रजित होना।"

वे सातो स्रायु पूर्ण होने पर, अपने कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। अकेला कौण्डिन्य माणवक ही जीवित रहा। वह महासत्त्व (बोधिसत्त्व) की

श्रीर ध्यान रख, गृह को त्याग, ऋमश. उरूवेंला जा, 'यह भूमि-भाग बड़ा रमणीय है, योगार्थी कुल-पुत्र के योगाभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान हैं' सोच, वही रहने लगा। (फिर) "महापुरुष प्रव्रजित हो गये" सुन, (सात) ब्राह्मणों के पुत्रों के पास जाकर कहा— "सिद्धार्थ-कुमार प्रव्रजित हो गये, वह नि.सशय बुद्ध होगे। यदि तुम्हारे पिता जीवित होते, तो वह श्राज घर छोड प्रव्रजित हुए होते। यदि तुम चाहते हो, तो (मेरे साथ) श्राश्रों हम उस पुरुष के पीछे प्रव्रजित होगे।"

वे सब (लडके) एक मत न हो सके। तीन प्रव्रजित नही हुए। शेष चारो कौण्डिन्य ब्राह्मण को मुखिया बना कर प्रव्रजित हुए। (श्रागे चल कर) वह पाँचो जने पचवर्गीय स्थिवरो के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तब राजा ने पूछा—"क्या देख कर, मेरा पुत्र प्रब्रजित होगा?" (उत्तर मिला) "चार पूर्व लक्षण।" "कौन कौन से चार लक्षण (—िनिमित्त)?" "बृद्ध, रोगी, मृत श्रीर प्रव्रजित।"

राजा ने (श्राज्ञा की)—"श्रब से इस प्रकार के किसी लक्षण (=वृद्ध श्रादि) को मेरे पुत्र के पास मत श्राने दो। मुफे, उसके बुद्ध बनने से मतलब नहीं। मैं उसे दो सहस्र द्वीपों से घिरे चारों महाद्वीपों का श्राधिपत्य करते हुए, छत्तीस योजन घेरे की परिषद् के बीच, श्राकाश के नीचे विचरते देखने की इच्छा रखता हूँ।" यह कह, राजा ने इन चार प्रकार के पुरुषों को कुमार के दृष्टि-गोचर होने से बचाने के लिए चारों दिशाश्रों में तीन तीन कोस की दूरी पर पहरा बैठा दिया। उसी दिन उस माङ्गिलक स्थान पर एकत्र हुए, श्रस्सी हजार आति-सम्बन्धियों ने श्रपने एक एक पुत्र (को देने) की प्रतिज्ञा की। यह (कुमार) चाहे बुद्ध हो, श्रथवा राजा, हम (इसे) श्रपना एक एक पुत्र दे देंगे। यदि यह बुद्ध होगा तो क्षत्रिय साधुश्रों से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा। यदि राजा होगा तो क्षत्रिय-कुमारों से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> बोध-गया, जि॰ गया (बिहार)।

## (७) शैशव का एक चमत्कार

राजा ने बोधिसत्त्व के लिए उत्तम रूप वाली, सब दोषो से रहित धाइयाँ नियुक्त की। बोधिसत्त्व ग्रनन्त परिवार, तथा महती शोभा ग्रीर श्री के साथ बढने लगे। एक दिन राजा के यहाँ (खेत) बोने का उत्सव था। उस (उत्सव के) दिन लोग सारे नगर को देवतात्रों के विमान की भाँति मलकुत करते थे। सभी दास (=गलाम) ग्रौर नौकर ग्रादि नये वस्त्र पहिन, गध माला ग्रादि से विभूषित हो, राज-महल में इकट्ठे होते थे। राजा को एक हजार हली की खेती थी। लेकिन उस दिन बैलो की रस्सी की जोत के साथ एक कम ग्राठ सौ सभी रुपहले हल थे। राजा का हल रत्न-सूवर्ण-जटित था। बैलों के सीग, श्रीर रस्सी-कोडे भी सुवर्ण-खचित ही थे। राजा बड़े दल-बल के साथ, पुत्र को भी ले, वहाँ पहुँचा। खेती के स्थान पर ही, बहुत पत्रो तथा घनी छाया वाला एक जामून का वृक्ष था। उसके नीचे कुमार की शय्या बिछाई गई। ऊपर सूवर्ण-तार-खचित चँदवा तनवाया गया। उसे कनात से घिरवा, पहरा लगवा दिया गया। फिर सब ग्रलड्वारो से ग्रलकृत हो, ग्रमात्य गण सहित राजा, हल जोतने के स्थान पर गया। वहाँ उसने सुनहले हल को पकड़ा, अमात्यो ने (ग्रन्य) एक-कम ग्राठ सौ रुपहले हलो को ग्रौर कृषको ने शेष दूसरे हलो को। हलो को पकड कर, वे इधर उधर जोतने लगे। राजा इस पार से उस पार, भीर उस पार से इस पार आता था। वहाँ बड़ी भीड़ थी, बड़ा तमाशा था। बोधिसत्त्व को घेर कर बैठी घाइयाँ, राजकीय-तमाशा देखने के लिए कनात के भीतर से बाहर चली ग्राईं। बोधिसत्त्व इधर उधर किसी को न देख, जल्दी से उठ, श्वास-प्रश्वास पर ध्यान दे, प्रथम-ध्यान प्राप्त हो गये। धाइयो ने खाद्य-भोज्य में (लगे रह कर) कुछ देर कर दी। सभी वक्षो की छाया घूम गई, लेकिन (बोधिसत्त्व वाले) वृक्ष की छाया गोल ही खडी रही। धाइयो ने 'ग्रार्य-पुत्र ग्रकेले हैं', ख्याल कर जल्दी से कनात उठा, ग्रन्दर घुस कर, बोधिसत्त्व को विछौने पर श्रासन मारे बैठे देखा। उस चमत्कार को देख उन्होने जाकर राजा से कहा—'देव । क्रमार इस तरह बैठा है। स्रन्य सभी वृक्षो की छाया लम्बी हो गई है, लेकिन जामून के वक्ष की छाया गोलाकार ही खडी है।" राजा ने वेग से आ, उस चमत्कार को देखा, "तात ! यह दूसरी बार तेरी वन्दना हैं" (कह) पुत्र की वन्दना की ।

#### २. गौतम का चरित

# (१) यौवन प्रवेश

क्रमश. बोधिसत्त्व सोलह वर्ष के हुए। राजा ने बोधिसत्त्व के लिए, तीनों ऋतुग्रो के लायक तीन महल बनवा दिये। उनमे एक नौ तला, दूसरा सात तला, तीसरा पाँच तला था। चालीस हजार नाटक-करने वाली स्त्रियो को नियुक्त किया। बोधिसत्त्व ग्रप्सराग्रों के समुदाय से घिरे देवताग्रो की भाँति, श्रलकृत निट्यो से परिवृत, स्त्रियो द्वारा बजाये गये वाद्यो से सेवित, महास्मपत्ति को उपभोग करते हुए, ऋतुग्रो के क्रम से, उतने (ऋतुग्रो के ग्रमुकूल) प्रसादों में विहरते थे। राहुल-माता देवी इनकी ग्रग्रमहिषी (=पटरानी) थी।

वह इस प्रकार महा-सम्पत्ति का उपभोग करते रहते थे। उसी समय एक दिन बोधिसत्त्व की बाति-विरादरी में ऐसी वात चली—"सिद्धार्थ-क्रीडा में ही रत रहना है। किसी कला को नही सीखता, युद्ध श्राने पर क्या करेगा?" राजा ने बोधिसत्त्व को बुला कर कहा—"तात । तेरे सगे सम्बन्धी कहते हैं कि सद्धार्थ किसी कला को न सीख कर सिर्फ खेलों में ही लिप्त रहता है। तुम इस विषय में क्या उचित समभते हो?"

"देव ! मुफ्ते शिल्प सीखने को नहीं हैं। नगर में भेरा शिल्प देखने के लिए ढँढोरा पिटवा दें कि म्राज से सातवें दिन (मैं) जाति वालों को (म्रपना) शिल्प (कर्तव्य) दिखाऊँगा।"

राजा ने वैसा ही किया। बोधिसत्त्व ने ग्रक्षण बेध, बाल-बेध जानने वाले धनुधीरियों को एकत्रित कर, लोगों के मध्य में श्रन्य धनुधीरियों से (भी) विशेष बारह प्रकार के शिल्प (=कला) जाति-विरादरी वालों को दिखलाये। इन (के विस्तार) को सरभंग-जातक में ग्राये (वर्णन) के श्रनुसार जानना चाहिए। तब वोधिसत्त्व के सगे सम्बन्धियों की शका दूर हुई।

# (२) जरा, व्याधि, मृत्यु श्रौर संन्यास-दर्शन

एक दिन बोधिसत्त्व ने बगीचा देखने की इच्छा से सारथी को बुला कर

१ सरभंग जातक (१७.२)

रथ जोतने को कहा। उसने 'ग्रच्छा' कह महार्घ उत्तम रथ को सब ग्रलङ्कारों से अलकृत कर, कमल-पत्र-सद्श चार मङ्गल सिन्ध्-देशीय (घोड़ो) को जोत, बोधिसत्त्व को सुचना दी। बोधिसत्त्व देव-विमान-सदश रथ पर चढ कर बगीचे की श्रोर चले। देवताश्रो ने (सोचा), सिद्धार्थ-कूमार के बद्धत्व प्राप्त करने का समय समीप है, (हम) इसे पूर्व-लक्षण दिखाये। (सो उन्होंने) एक देव-पृत्र को जरा से जर्जरित, ट्टे-दॉत, पक्के केश, टेढे-भुके शरीर, हाथ मे लकड़ी लिये, कॉपता हुग्रा (करके) दिखलाया। उसे (केवल) बोधिसत्त्व श्रीर सारथी ही देखते थे। तब बोधिसत्त्व ने महापदानसूत्र भे श्राये (वर्णन) अनुसार सारथी से पूछा--"सौम्य, यह कौन पुरुष है! इसके केश भी श्रौरो के समान नहीं है।" (ग्रौर) सारथी का उत्तर पा, (वे) ग्रहो! धिक्कार है जन्म को, जहाँ जन्म-लेने-वाले को (ऐसा) बुढापा हो, (सोचते हुए) उदास हो, वहाँ से लौट कर महल मे चले गये। राजा ने पुछा--- 'मेरा पुत्र जल्दी क्यो लौट श्राया ?" "केव ! बुढ़े श्रादमी को देख कर।" (भविष्यद्वक्ताश्रो ने) बढे आदमी को देख कर प्रब्रजित होगा कहा था (सोच) राजा ने 'इसलिए, मेरा नाश मत करो। पुत्र के लिए शीघ्र ही नृत्य तैयार करो। भोग भोगते हुए प्रब्रज्या का ख्याल न भ्रायेगा' कह, पहरा भ्रीर भी बढा कर चारो दिशास्रो मे स्राधे योजन तक का करवा दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार बगीचे जाते हुए, देवतास्रो द्वारा निर्मित रोगी पुरुष को देख, पहले की भाँति पूछ, शोकाकुल हृदय से महल मे लौट स्राये। राजा ने भी पूछ कर, पहले की भाँति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढ़ा कर चारो स्रोर पौन योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुए, देवताग्रो द्वारा निर्मित मृत-पुरुष को देख, पहले की भाँति पूछ, उदास हो, फिर महल में लौट श्राये। राजा ने भी पूछ कर पहले की भाँति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढा कर चारों ग्रोर एक योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन उद्यान जाते हुए, बोधिसत्त्व ने देवतास्रों द्वारा निर्मित

१ देखो दीर्घ-निकाय ।

भली प्रकार (वस्त्र) पहिने, (चीवर से) भले प्रकार ढँके एक प्रब्रजित (सन्यासी) को देख कर, सारथी से पूछा—'सौम्य ! यह कौन हैं ?' ग्रभी बुद्ध प्रकट नहीं हुए थे, इसीलिए सारथी को प्रब्रजित (वा) प्रब्रज्या के गुणो के बारे में कुछ मालूम न था। लेकिन देवताग्रो की प्रेरणा से सारथी ने—'देव ! यह प्रब्रजित हैं' कह प्रब्रजितों के गुण वर्णन किये। बोधिसत्त्व 'प्रब्रज्या' में रुचि उत्पन्न कर, उस दिन उद्यान को गये। यहाँ पर दीर्घ-भाणकों का मत हैं कि 'बोधिसत्त्व नें) चारों पूर्व-लक्षणों (—निमत्तो) को एक ही दिन देखा।'

### (३) पुत्र जन्म

बोधिसत्त्व ने उद्यान में दिन भर विनोद कर, सुन्दर पुष्किरिणी में स्नान किया। सूर्यास्त के समय सुन्दर शिला पट्ट पर, श्रपने को श्राभूषित कराने की इच्छा से बैठे। उस समय इनके परिचारक नाना रङ्ग के दुशाले, नाना भाँति के श्राभूषण, माला, सुगन्धि, उबटन लेकर चारो श्रोर से घेर कर खडे थे। उसी समय इन्द्र का श्रासन गर्म हुग्रा। उसने, "कौनं मुफे इस सिहासन से उतारना चाहता है" सोचते हुए बोधिसत्त्व के श्रलकृत होने का काल देख, विश्वकर्मा को बुला कर कहा—"सौम्य विश्वकर्मा श्राज श्राधी रात के समय सिद्धार्थ-कुमार महाभिनिष्क्रमण (=गृह त्याग) करेगे। यह (श्राज का श्रृङ्गार) उनका श्रन्तिम श्रृङ्गार है। उद्यान में जाकर महापुरुष को दिव्य श्रलकारों से श्रलकृत करों।"

उसने 'म्रच्छा' कह, देव-बल से उसी क्षण म्राकर, बोधिसत्त्व के जामा-साज के सदृश ही रूप घारण कर, जामा-साज के हाथ से दुशाला ले, बोधिसत्त्व के सिर पर बाँघा।

उसके हाथ के स्पर्श से ही बोधिसत्त्व जान गये कि यह मनुष्य नही, कोई देव-पृत्र है। पगडी से सिर को वेष्टित करते ही सिर मे, मुकुट के रत्नो की भाौति एक सहस्र, दुशाले उत्पन्न हो गये। फिर बाँधने पर दस सहस्र, इस प्रकार दस बार बाँधने पर दस-सहस्र दुशाले उत्पन्न हुए। सिर छोटा श्रौर

<sup>&#</sup>x27;'दीर्घ-निकाय' कण्ठ करने वाले पुराने श्राचार्यों को दीर्घ-भाणक कहा जाता है।

दुशाले बहुत, इसकी शका न होनी चाहिए (क्योकि) उनमे सब से बडे दुशाले (का वजन ही) श्यामा-लता के फूल के बराबर था, (ग्रीर) दूसरे तो कुतुम्बुक पृष्प के ही बराबर थे। बोधिसत्त्व का सिर किंजल्क-युक्त कुय्यक फूल के समान था। उनके सब ग्राभूषणों से ग्राभूषित हो, सब (गीतः) तालज्ञ ब्राह्मणों के ग्रपनी प्रपित का प्रदर्शन कर लेने पर, 'जय हो' ग्रादि वचनों से, तथा सूतमागधों के नाना प्रकार के मङ्गल वचनों तथा स्तुति-घोषों से सत्कृत हो, (बोधिसत्त्व) सर्वालङ्कार-विभूषित उत्तम रथ पर ग्रारूढ हुए।

उसी समय 'राहुल-माता ने पुत्र प्रसव किया' सुन महाराज शुद्धोदन ने आज्ञा की कि मेरे पुत्र को यह शुभ-समाचार सुनाओ। बोधिसत्त्व ने उसे सुन कहा "राहु पैदा हुआ, बन्धन पैदा हुआ।" राजा ने 'मेरे पुत्र ने क्या कहा', पूछ, उसे सुन, कहा—"अब से मेरे पोते का नाम राहुल-कुमार हो।"

बोधिसत्त्व भी श्रेष्ठ रथ पर चढ, बडे भारी यश, श्रित मनोरम शोभा तथा सौभाग्य के साथ नगर मे प्रविष्ट हुए। उस समय, प्रासाद के ऊपर बैठी, कृशा-गौतमी नामक क्षत्रिय-कन्या ने नगर की परिक्रमा करते हुए बोधिसत्त्व की रूप शोभा को देख कर, बहुत ही प्रसन्नता तथा हुई से यह 'उदान' कहा —

परम शान्त है वह माता, परम शान्त है वह पिता, श्रौर परम शान्त है वह नारी, जिसका इस प्रकार का पित हो।

बोधिसत्त्व ने यह सुना तो सोचा—यह कह रही है, कि इस प्रकार के रूप के देखने वाली माता का हृदय परम शान्त होता है, पिता का हृदय परम शान्त होता है, पिता का हृदय परम शान्त होता है। किस के शान्त होने पर हृदय परम शान्त होता है विस्कत होते हुए, (बोधिसत्त्व) को यह (विचार) हुम्रा कि राग-म्रिंग के शान्त होने पर परमशान्ति होती है। द्वेष-म्रिंग तथा मोह-म्रिंग के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है। ग्रिंभमान मिथ्या-विचार (=दृष्टि) म्रादि सभी मलो के उपशमन होने पर परम-शान्ति होते है। ग्रिंभमान होती है। यह मुक्ते प्रिय-वचन सुना रही है। मैं निर्वाण को हुँढ रहा हूँ। म्राज ही मुक्ते गृह-वास छोड, निकल कर, प्रम्नजित हो, निर्वाण

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> म्रानन्दोल्लास में निकली वाक्यावली ।

की खोज में लगना चाहिए। 'यह इसकी गुरु-दक्षिणा हो'—कह उन्होने भ्रपने गले से एक लाख का मोती का हार उतार कृशा गौतमी के पास भेज दिया। "सिद्धार्थ-कुमार ने मेरे प्रेम में फँस कर भेट भेजी हैं" सोच वह बड़ी प्रसन्न हुई।

#### (४) गृह-त्याग

बोधिसत्त्व भी वडे श्री-सौभाग्य के साथ ग्रपने महल मे जा, सुन्दर शय्या पर लेट रहे। उसी समय सभी अलङ्कारों से विभूषित, नृत्य गीत आदि में दक्ष देव-कन्या समान परम सुन्दरी स्त्रियो ने अनेक प्रकार के वाद्यों को लेकर. (कुमार को) घर कर, खुश करने के लिए नृत्य, गीत और वाद्य श्रारम्भ किया। बोधिसत्त्व (रागादि) मलो से विरक्त-चित्त होने के कारण, नृत्य ग्रादि मे रत न हो, थोडी ही देर में सो गये। उन स्त्रियों ने भी सोचा-"जिसके लिए हम नृत्य श्रादि करती है, वह ही सो गया। श्रब (हम) काहे को तकलीफ़ करे।" इसलिए वह भी अपने अपने बाजो को साथ लिये ही सो गई। उस समय सुग-न्धित-तेल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। वोधिसत्त्व जाग कर, पलग पर ग्रासन मार बैठ गये। उन्होने वाद्य-भाण्डो को साथ ही लिये सोई उन स्त्रियो को देखा। (उनमे) किन्ही के मुँह से कफ ग्रौर लार बह कर, उनका शरीर भीग गया था. कोई दॉत कटकटा रही थी, कोई खाँस रही थी, कोई बर्रा रही थी, किन्ही के मुँह खुले हुए थे, किन्ही के वस्त्र हटे होने से श्रति घृणोत्पादक गुह्य स्थान दिखलाई दे रहे थे। उन (स्त्रियों) के इन विकारों को देख कर (वे) ग्रीर भी श्रधिक दृढता-पूर्वक काम-भोगो से विरक्त हो गये। उन्हे वह सु-श्रलकृत इन्द्र-भवन सद्श महाभवन सड़ती हुई नाना प्रकार की लाशों से पूर्ण कच्चे इमशान की भाँति मालूम हुआ। तीनो ही भव (=ससार) जलते हुए घर की तरह दिखलाई पडे। हा! कष्ट!! हा! शोक!! ऐसी श्राह निकल पडी। उस समय उनका चित्त प्रब्रज्या के लिए, श्रत्यन्त श्रातुर हो गया। 'श्राज ही मुक्ते महाभिनिष्क्रमण (गृह-त्याग) करना चाहिए' (इस प्रकार निश्चय कर) पलग पर से उतर, द्वार के पास जा पूछा-"कौन है ?"

डचोड़ी में सिर रख कर सोये हुए छन्न ने कहा—'ग्रार्य पुत्र ! मैं छन्दक हुँ।'

"मैं श्राज महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ, मेरे लिए एक घोड़ा तैयार करो।" 'ग्रच्छा देव।' कह, उसने घोडे का साज-सामान ले, घोडसार में जा, सुगन्धित तेल के जलते प्रदीपों (के प्रकाश) में, बेल-बूटे वाले चँदवे के नीचे, सुन्दर स्थान पर खडे, श्रश्व-राज कन्थक को देख कर, 'ग्राज मुफे इसे ही तैयार करना चाहिए' (सोच) कन्थक को ही तैयार किया। साज सजाये जाते समय (कन्थक) ने सोचा—'(ग्राज की) तैयारी बहुत कसी हुई हैं। ग्रन्य दिनों में उद्यान-कीटा ग्रादि की यात्रा की तैयारी जैसी तैयारी नहीं हैं। ग्राज मेरे ग्रार्य-पुत्र महाभिनिष्कमण के इच्छुक होंगे।' इसलिए प्रसन्न-चित्त हों, जोर से हिनहिनाया। वह शब्द सारे नगर में फैल जाता, लेकिन देवताग्रों ने उस शब्द को रोक कर, किसी को न सुनने दिया।

बोधिसत्त्व छन्दक को (तो उधर) भेज, पुत्र को देखने की इच्छा से, श्रपने श्रासन को छोड राहुल-माता के वास-स्थान की श्रोर गये। वहां शयनागार का द्वार खोला। उस समय घर के भीतर सुगन्धित तेल-प्रदीप जल रहा था। राहुल-माता बेला, चमेली ग्रादि के श्रम्मन भर फूलों से सजी शय्या पर, पुत्र के मस्तक पर हाथ रखे सो रही थी। बोधिसत्त्व ने देहली मे पैर रख खडे खडे देख कर सोचा— 'यदि मैं देवी के हाथ को हटा कर श्रपने पुत्र को ग्रहण करूँगा, तो देवी जाग उठेगी, इस प्रकार मेरे गमन मे विघ्न होगा। बुद्ध होने के पश्चात् ही, श्राकर पुत्र को देखूँगा' तब महल से उतर श्राये। जातकहुकथा में जो 'उस समय राहुल-कुमार एक सप्ताह के थे' कहा है, वह दूसरी श्रहुकथा श्रों में नहीं है। इसलिए यहाँ यही समभना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने महल से उतर कर, घोडे के पास जाकर कहा— तात । कन्यक । ग्राज नू मुफे एक रात तार दे, में तेरी सहायता से बुद्ध होकर, देवताग्रो सहित सारे लोक को तारूँगा। फिर कूद कर कन्थक की पीठ पर सवार हुए। कन्यक गर्दन से ले कर (पूँछ तक) ग्रठारह हाथ लम्बा (ग्रौर) वैसे ही महाकाय, वल-वेग-सम्पन्न धुले शङ्ख-सदृश सर्व-श्वेत वर्ण का था। यदि वह हिनहिनाता वा पैर खटखटाता, तो (वह) शब्द सारे नगर मे फैल

१११ द्रोण=ग्रम्मन।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup>यह **पुरा**नी सिंहळ भाषा वाली जातक-कथा होगी ।

जाता। इसलिए देवताग्रो ने ग्रपने प्रताप से, ऐसा किया, जिससे कोई उस शब्द को न सूने। उन्होंने हिनहिनाने के शब्द को रोक लिया (ग्रीर) जहाँ जहाँ (घोडा) पैर रखता था, वहाँ वहाँ हथेलियाँ रखी। बोधिसत्त्व श्रेष्ठ अरव की पीठ पर सवार हो छन्दक को उसकी पुँछ पकडवा, आधी रात के समय महा-द्वार के समीप पहुँचे। उस समय राजा ने यह सोच, कि कही वोधिसत्त्व जिस किसी समय नगर-द्वार को खोल कर, (बाहिर) न निकल जाये, दर्वाजे के दोनो कपाटो में से प्रत्येक को एक हजार मनुष्यो द्वारा खुलने लायक बनवाया था। बोधिसत्त्व महाबल-सम्पन्न हाथी की गिनती से दस ग्ररब हाथी के बल को धारण करते थे, ग्रौर पुरुष के हिसाब से एक खरब पुरुषो का बल। उन्होने सोचा—''यदि द्वार न खुला तो स्राज में कन्थक की पीठ पर बैठे, उसकी पुँछ पकड कर लटके छन्दक के साथ ही, घोडे को जाँघ से दबा कर ग्रठारह हाथ ऊँचे प्राकार को कूद कर पार करूँगा।" छन्दक ने भी सोचा, "यदि द्वार न खुला, तो मैं आर्यपुत्र को कन्धे पर बैठा कन्थक को दाहिने हाथ से बगल में दबा प्राकार फाँद जाऊँगा।" कन्थक ने भी सोचा--"यदि द्वार नही खुला, तो मैं ग्रपने स्वामी के पीठ पर वैसे ही बैठे, पँछ पकड कर लटकते छन्दक के साथ ही, प्राकार को लॉघ जाऊँगा।" यदि द्वार न खलता, तो तीनो मे से प्रत्येक ऊपर सोचे अनुसार करता। लेकिन द्वार मे रहने वाले देवता ने द्वार खोल दिया।

उस समय बोधिसत्त्व को (वापिस) लौटाने की इच्छा से, ग्राकर, ग्राकाश में खडे हो मार ने कहा— "मार्ष (मित्र) । मत निकलो। ग्राज से सातवे दिन तुम्हारे लिए चक्र-रत्न प्रकट होगा। दो हजार छोटे द्वीपो सहित चारों महाद्वीपों पर राज्य करोगे। लौटो, मार्ष !"

"तुम कौन हो ?"

"मैं वश वर्ती हुँ।"

''मार <sup>।</sup> में भी जानता हूँ कि मेरे लिए चक्र-रत्न प्रकट होगा । लेकिन मुभे राज्य से काम नही । मैं तो साहस्रिक लोक-धातुस्रो को निनादित कर बुद्ध बर्नूंगा ।''

<sup>&#</sup>x27;कामदेव या शैतान।

''ग्राज से जब कभी तुम्हारे मन में कामना सम्बन्धी वितर्क, द्रोह सम्बन्धी वितर्क, या हिसा-सम्बन्धी वितर्क उत्पन्न होगा, तब मैं तुम्हें समक्रूंगा।'' कह, मार मौका ताकते हुए, छाया की भाँति जरा भी श्रलग न होते हुए, पीछा करने लगा।

बोधिसत्त्व हाथ मे ग्राये चक्रवर्ती-राज्य (के प्रति) ग्रपेक्षा रहित हो, उसे थूक की भाँति छोड़ कर, श्राषाढ की पुणिमा को उत्तराषाढ नक्षत्र मे नगर से निकले। (लेकिन) नगर से निकल कर, (उन्हे) फिर नगर देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। चित्त में ऐसा विचार होते ही महापृथ्वी कुम्हार के चक्के की भॉति कॉपी, मानों कह रही थी कि 'महापुरुष । तुने लौट कर देखने का काम (कभी) नहीं किया। बोधिसत्त्व जहाँ से मुँह फेर कर नगर को देखा था, उस भू-प्रदेश में ''कन्थक-निवर्तन-चैत्य''का चिन्ह बना वह गन्तव्य-मार्ग की स्रोर कन्थक का मुँह फेर, ग्रत्यन्त सत्कार ग्रौर महान् श्री-सौभाग्य के साथ चले। उस समय देवतात्रों ने उनके सम्मुख साठ हजार, पीछे साठ हजार, दाहिनी तरफ साठ हजार ग्रौर बाई तरफ भी साठ हजार मशाल धारण किये। ग्रन्य देवतास्रो ने चक्रवालो के द्वार-समूह पर श्रपरिमित मज्ञालो को धारण किया। ग्रीर (भी) दूसरे देवताग्रो तथा नाग, सूपर्ण (=गरुड) ग्रादि (के) दिव्य गन्ध, माला, चूर्ण, धूप से पूजा करते हुए, पारिजात-पुष्प, मन्दार-पुष्प, (की वृष्टि से) घने मेघो की वृष्टि के समय (बरसती) धारात्रो की भाँति, श्राकाश श्राच्छादित हो गया। उस समय दिव्य सगीत हो रहे थे। चारो श्रोर ग्राठ प्रकार के, साठ प्रकार के ग्रड्सठ लाख बाजे बज रहे थे। समुद्र के उदर में मेघ-गर्जनकाल की भॉति, युगन्धर की कूक्षि में सागर-निर्घोष काल की भॉति (शब्द) हो रहा था। इस श्री ग्रीर सौभाग्य के साथ जाते हुए, बोधिसत्त्व एक ही रात मे तीन राज्यों को पार कर, तीस योजन की दूरी पर श्रनोमा नामक नदी के तट पर पहुँचे।

क्या ग्रश्व तीस योजन से ग्रधिक न जा सका ? नहीं, न जा सका ! वह

<sup>ै</sup> शाक्य, कोलिय ग्रौर राम-ग्राम।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> श्रौमी नदी ? जिला गोरखपुर ।

(श्रव्व) एक चक्रवाल के श्रन्दर के घेरे को, पृथ्वी पर पड़े चक्के के घेरे की तरह, मिंदत करते हुए, कोने कोने पर घूम कर, प्रात काल के भोजन के समय से पूर्व लौट कर ग्रपने लिए तैयार किये गये भोजन को खा सकता था। लेकिन, उस समय मार्ग श्राकाश में स्थित देव नाग तथा गरुड श्रादि द्वारा वरसाये गये गन्धमाला श्रादि से जॉघ तक ढका हुश्रा था। शरीर निकालते निकालते, गन्ध माला के जाल को हटाते हटाते बहुत देर हो गई। इसलिए केवल तीस योजन ही पहुँच सका।

### ३, गौतम का संन्यास

# (१) भिद्ध वेश में

तव बोधिसत्त्व ने नदी के किनारे खडे हो छन्दक से पूछा— ''इस नदी का क्या नाम है ?'' ''देव <sup>!</sup> ग्रनोमा है ।''

मेरे म्राभुषणो तथा कन्थक को लेकर जा, मै प्रव्रजित होऊँगा।"

"हमारी भी प्रव्रज्या श्रनोमा होगी", (सोच) एडी से रगड कर घोडे को इशारा किया। घोडा छलाँग मार कर, श्राठ ऋषभ चौडी नदी के दूसरे तट पर जा खडा हुग्रा। बोधिसत्त्व ने घोडे की पीठ से उतर, रुपहले रेशम जैसे (नर्म) बालुका-तट पर खडे हो, छन्दक को कहा—"सौम्य! छन्दक! तृ

''देव<sup>ा</sup> मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।''

"तुभे प्रव्रज्या नही मिल सकती, लौट जा" तीन बार कह कर, वोधिसत्त्व उसे ग्राभरण ग्रौर कन्थक सौप सोचने लगे ——

"यह मेरे केश श्रमण-भाव (=सन्यासीपन) के योग्य नहीं है, ग्रौर बोधि-सत्त्व के केश काटने लायक दूसरा कोई नहीं है, इसलिए ग्रपने ही ग्राप खड्ग से इन्हें काटूँ।"

(यह सोच) दाहिने हाथ में तलवार ले, बाये हाथ से मौर सहित जूडे को काट डाला। कैश सिर्फ दो अगुल के होकर, दाहिनी स्रोर से चूम, सिर में

<sup>&</sup>lt;sup>९</sup> ग्रनोमा—ग्रन् <del>+</del> ग्रवम्—छोटी नहीं। <sup>२</sup> १४० हाथ—१ ऋषभ ।

चिपट गये। फिर जिन्दगी भर, उनका वहीं परिमाण रहा। मूँछ (-दाढी) भी उनके अनुसार ही हो गई। फिर सिर-दाढी मुँडाने की जरूरत नहीं रही। बोधिसत्त्व ने मौर-सिहत जूड़े को ले, आकाश में फेक दिया और (सोचा) यदि मैं बुद्ध होऊँ, तो यह आकाश में ठहरे, नहीं तो, भूमि पर गिर पडे।" वह चूडा-मणि बेष्टन योजन भर (ऊपर) जाकर, आकाश में ठहरा। शक देवराज ने दिव्य-दृष्टि से देख, (उसे) उपयुक्त रत्नमय करण्ड में ग्रहण कर त्रयस्त्रिश (स्वगं) लोक में चूडामणि चैत्य की स्थापना की।

बोधिसत्व (ग्रप्र-पुद्गल) ने सुगन्धयुक्त मौर को काट कर, ग्राकाश में, फेंक दिया। देवेन्द्र (=सहस्राक्ष) ने, उसे सुवर्ण-करण्ड में ग्रहण कर शिरोधार्य किया।

फिर बोधिसत्त्व ने सोचा—यह काशी के बने वस्त्र भिक्षु के योग्य नहीं हैं। तब कश्यप बुद्ध के समय के इनके पुराने मित्र घटिकार महाब्रह्मा ने एक बुद्धन्तर बीतने पर भी जरा को अप्राप्त मित्र-भाव के कारण सोचा—आज मेरे मित्र ने महाश्रभिनिष्क्रमण किया है। में उसके लिए भिक्षु की आवश्यक-ताएँ (=श्रमण परिष्कार) ले चलूँगा।

"योग में युक्त भिक्षु के लिए, तीन चीवर, पात्र, उस्तरा, सुई, काय-बन्धन ग्रौर पानी छानने का वस्त्र—यह ग्राठ (चीजें) होती है।"

(उसने) इन म्राठ परिष्कारों को लाकर बोधिसत्त्व को दिया। बोधिसत्त्व ने म्रर्हत-ध्वजा को धारण कर (म्रर्थात्) श्रेष्ठ प्रब्रज्या-वेष को ग्रहण कर छन्दक को प्रेरित किया।

'छुन्दक । मेरी बात से माता पिता को ग्रारोग्य कहना।' छुन्दक बोधि-सत्त्व की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर चल दिया। लेकिन कन्थक ने बोधिसत्त्व की छुन्दक के साथ हुई बात को सुना। ''ग्रव मुभे, फिर स्वामी का दर्शन नहीं होगा'' सोच, ग्रॉख से ग्रोभल होने के शोक को न सह सकने के कारण, वह कलेजा फट कर मर गया, ग्रौर त्रयांस्त्रश-भवन में कन्थक नामक देवपुत्र हो उत्पन्न हुग्रा। छुन्दक को पहले एक ही शोक था; लेकिन कन्थक की मृत्यु से (ग्रव) दूसरे शोक से (भी) पीडित हो (वह) रोता नगर को चला।

<sup>&#</sup>x27;दो बुद्धों के बीच का समय।

# (२) राजगृह में भिचाटन

बोधिसत्त्व भी प्रव्रजित हो उसी प्रदेश में, श्रन्पिया नामक कस्बे के श्रामो के वाग मे, एक सप्ताह प्रव्रज्या सुख मे बिता, एक ही दिन में तीस योजन मार्ग पैदल चल कर, राजगृह मे प्रविष्ट हुए। वहाँ प्रविष्ट हो भिक्षा माँगने के लिए निकले। जैसे धनपाल राजगृह मे प्रविष्ट हुन्ना हो, जैसे म्रसूरेन्द्र देवनगर में प्रविष्ट हुम्रा हो, वैसे ही बोधिसत्त्व के रूप को देख कर सारा नगर सक्षुब्ध हो गया। राज-पुरुषो ने जाकर राजा से कहा-"देव । इस रूप का एक पुरुष नगर में मधुकरी माँग रहा है। वह देव है या मन्ष्य, नाग है या गरुड, कीन है हम नही जानते ?" राजा ने महल के ऊपर खडे हो महापुरुष को देख ग्राश्चर्या-न्वित हो, (श्रपने) ग्रादिमयो को ग्राज्ञा दी-जाग्रो! देखो। यदि ग्रमनुष्य होगा, तो नगर से निकल कर अन्तर्धान हो जायगा। यदि देवता होगा, तो श्राकाश से चला जायगा, यदि नाग होगा तो पृथ्वी मे डुवकी लगा कर चला जायगा । यदि मनुष्य होगा, तो जो भिक्षा मिली है, उसे खायेगा ।" महापुरुष ने मिश्रित भोजन को सग्रह कर, 'इतना मेरे लिए पर्याप्त होगा' जान, प्रविष्ट हुए द्वार से ही (बाहर) निकल, पाण्डव-पर्वत की छाया मे पूरब-मुँह बैठ, भोजन करना श्रारम्भ किया। उस समय उनके श्रांत उलट कर मैंह से निकलते जैसे मालूम हुए। तब इस जन्म में, इससे पूर्व ऐसा भोजन आँख से भी न देखा होने से, उस प्रतिकृल भोजन से दू खित हुए श्रपने श्रापको, श्रपने श्राप ही यो समभाया-

"सिद्धार्थं। तू अन्न-पान सुलभ कुल मे तीन वर्ष के (पुराने) सुगन्धित चावल का भोजन किये जाने वाले स्थान मे पैदा होकर भी, गुदरीधारी (भिक्षु) को देख कर (सोचता था)—िक मैं भी कब इसी तरह (भिक्षु) बन कर भिक्षा माँग भोजन करूँगा? क्या वह भी समय होगा?—और यही सोच घर से निकला था। अब यह क्या कर रहा हैं?" इस प्रकार अपने ही अपने आपको समभा कर निर्विकार हो भोजन किया। राज-पुरुषो ने उस वृत्तान्त को देख, जाकर राजा से कहा। राजा ने दूत की बात सुन, नगर से शीघ्र निकल, बोधि-

<sup>ै</sup> वर्तमान रत्नगिरि या रत्नकृट ।

सत्त्व के पास जा, उनकी चर्या से ही प्रसन्न हो बोधिसत्त्व को (ग्रपने) सभी ऐइवर्य ग्रपंण किये। बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज! मुक्ते न वस्तु-कामना है, न भोग-कामना। मैने महान् बुद्ध-ज्ञान (=ग्रभिसबोधित) की प्राप्ति के लिए गृह-त्याग (=ग्रभिनिष्कमण) किया है। राजा के बहुत तरह से प्रार्थना करने पर भी, उसका चित्त ग्राकृष्ट न कर सकने पर, कहा—ग्रच्छा! तुम निश्चय से बुद्ध होगे। बुद्ध होने पर पहले पहल हमारे राज्य मे ग्राना।" यह यहाँ सक्षेप मे है। विस्तार "प्रबज्या का वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार चक्षुमान् प्रव्रजित हुए" (इस प्रकार ग्रारम्भ होने वाले) प्रव्रज्या-सूत्र' को ग्रहुकथा के साथ प्रव्रज्या सूत्र मे देख कर जानना चाहिए।

#### (३) तपस्या

बोधिसत्त्व ने भी राजा को वचन दे, क्रमश विचरण करते हुए, श्रालार कालाम तथा उद्दक राम-पुत्र के पास पहुँच समाधि (=समापत्ति) सीखी। फिर यह (समाधि) ज्ञान (=बोध) का रास्ता नहीं है, (सोच) उस समाधि भावना को श्रपर्याप्त समभ, देवताश्रो सहित सभी लोको को श्रपना बल वीर्यं दिखाने के लिए महान् प्रयत्न में लगने की इच्छा से, उरुवेला में पहुँच— "यह भूमि-भाग (=प्रदेश) रमणीय है" सोच, वहाँ रह महा-प्रयत्न करने लगे।

कौण्डिन्य स्नादि पाँच परिक्राजक भी, गाँव, शहर, राजवानी मे भिक्षा-चरण करते, बोधिसत्त्व के पास वहाँ पहुँचे। 'श्रव बुद्ध होगे, श्रव बुद्ध होगे' इस श्राशा से, वह उनके छ वर्ष तक महा-प्रयत्न करने के समय, श्राश्रम की भाडू-बर्दारी श्रादि सेवाग्रो को करते, बोधिसत्त्व के पास रहे।

बोधिसत्त्व भी 'ग्रन्तिम दर्जे की दुष्कर-क्रिया करूँगा' सोच (एक) तिल तण्डुलादि से भी काल-क्षेप करने लगे। (ग्रागे वल कर) ग्राहार ग्रहण करना सर्वथा छोड दिया। देवताग्रो ने रोम कूपो द्वारा (उनके शरीर में) ग्रोज डाला। (तो भी) ग्राहार के बिना बहुत दुबले होकर, उनका कनक-वर्ण शरीर काला पड गया। (शरीर में विद्यमान) महापुरुषो के बत्तीस-लक्षण छिप गये।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> सूत-निपात, मार-वग्ग ।

एक बार श्वास-रहित ध्यान करते समय, काय क्लेश से बहुत ही पीडित (एव) बेहोश हो टहलने के चबूतरे (=चकमण-भूमि) पर गिर पडे । तब कुछ देव-ताग्रो ने कहा, 'श्रमण गौतम मर गये।' कुछ ने कहा 'ग्रहंत-व्यक्ति का विहरण (=चर्या) ऐसा ही होता है।'' तब जिन (देवताग्रो) का विचार था कि (श्रमण गौतम) मर गये, उन्होंने जाकर राजा शुद्धोदन से कहा—"तुम्हारा पुत्र मर गया।''

मेरे पुत्र ने 'बुद्ध' होने के पश्चात् शरीर छोडा अथवा 'बुद्ध' होने से पूर्व ही शरीर छोड़ दिया ?"

" 'बुद्ध' न हो सका। प्रयत्न-भूमि मे, (प्रयत्न करते हुए ही) गिर कर मर गया।"

यह सुन कर राजा ने (इस बात का) विरोध किया—''मैं इसमे विश्वास नहीं करता। 'बुद्ध' हुए बिना मेरे पुत्र की मृत्यु होने वाली नहीं।''

राजा ने किस लिए विश्वास नहीं किया? तपस्वी काल देवल के वन्दना करने के दिन तथा जम्बू-वृक्ष के नीचे श्रलौकिक घटनाएँ देखे रहने के कारण। होश में भाकर, बोधिसत्त्व के उठ बैठने पर, उन देवतास्रो ने फिर महाराज शुद्धोदन को जाकर कहा—"महाराज! तुम्हारा पुत्र सकुशल है।" राजा ने कहा---"हाँ । मैं ग्रपने पुत्र के जीवित रहने की बात जानता हूँ।" महासत्त्व की छ. वर्ष की दुष्कर तपस्या श्राकाश में गाँठ बॉधने के समान (निष्फल) हुई। तब उन्होने सोचा—''यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्त्व-प्राप्ति का मार्ग नहीं हैं।'' (इसलिए) स्थूल ग्राहार ग्रहण करने के लिए ग्रामो तथा नगरो में भिक्षाटन कर, भोजन करना आरम्भ कर दिया। (शरीर के) बत्तीस महापुरुप-लक्षण (फिर) स्वाभाविक अवस्था मे आ गये। शरीर फिर सुवर्ण-वर्ण हो गया। पच वर्गीय भिक्षुग्रो ने सोचा--छ वर्ष तक दुष्कर तपस्या करके भी यह सर्व-ज्ञता को प्राप्त नहीं कर सका, ग्रव ग्रामादि में भिक्षा माँग कर स्थूल ग्राहार ग्रहण करता हुन्ना तो यह क्या ही कर सकेगा<sup>?</sup> यह लालची है। तपस्या के मार्ग से अष्ट है। जैसे शिर से नहाने की इच्छा रखने वाले के लिए ग्रोस-बुँद की ग्रोर ताकना (निष्फल) है, वैसे ही हमारा इसकी ग्रोर ताकना (=ग्राशा रखना) है। इससे हमारा क्या मतलब (सिधेगा)? ऐसा सोच महापुरुष को छोड, श्रपने श्रपने पात्र चीवर ले, श्रठारह योजन चल कर ऋषिपतन<sup>१</sup> पहुँचे।

#### (४) सुजाता की खीर

उस समय उरुवेला (प्रदेश) के सेनानी नामक कस्बे मे, सेनानी कूटम्बी के घर में उत्पन्न **सृजाता** नाम की कन्या ने तरुणी (वयस्-प्राप्त) होने पर, एक बरगद के वृक्ष से सुख सुख रक्खी थी (=प्रार्थना की थी)--"यदि समान जाति के कूल-घर मे जा, पहले ही गर्भ मे पुत्र लाभ करूँगी, तो प्रति वर्ष एक लाख के खर्च से तेरी पृजा (≕बलि कर्म) करूँगी'' उसकी वह प्रार्थना पूरी हुई । महासत्व (≕महापुरुष) की दृष्कर तपश्चर्या का छठा वर्ष पूरा होने पर, वैशाख पुणिमा के दिन बलि-कर्म करने की इच्छा से, उसने पहले हजार गायो को यष्टि-मध् ( = जेठी मध् ) के बन मे चरवा कर, उनका दूध दूसरी पाँच सौ गायो को पिलवाया। (फिर) उनका दूध ढाई सौ गायों को; इस तरह (एक का दूध दूसरे को पिलाते) १६ गायो का दूध म्राठ गायो को पिलवाया। इस प्रकार दूध का गाढापन, मधुरता, ग्रौर ग्रोज (बढाने के लिए) उसने क्षीर-परिवर्तन किया। उसने वैशाख-पृणिमा के प्रात ही बलि-कर्म करने की इच्छा से भिन-सार को उठ कर, उन भ्राठ गायो को दूहवाया। बछडो ने गौवो के थनो को मुंह नहीं लगाया। थनो के पास नवीन बरतन के लाते ही, क्षीर-धारा ग्रपने श्राप ही निकलने लगी। उस श्राश्चर्य को देख, सूजाता ने, ग्रपने ही हाथ से दूध को लेकर, नवीन बरतन मे डाल, ग्रपने ही हाथ से ग्राग जला (खीर) पकाना श्रारम्भ किया। उस खीर के पकते समय, (उसमे) बडे बडे बुलबुले उठ कर दक्षिण की ग्रोर (हो) संचार करते थे। एक बुलबुला भी बाहर नहीं गिरता था। चूल्हे से जरा सा भी धुम्रॉ नही उठता था। उस समय चारो लोकपालो ने ग्राकर चूल्हे पर पहरा देना शुरू किया। महाब्रह्मा ने छत्र घारण किया। शक (=इन्द्र) ने ईधन ला ला ग्राग जलाई। देवताग्रो ने दो सहस्र द्वीप परि-वारो और चारो महाद्वीपो के देवतात्रो और मनुष्यो के योग्य ग्रोज, ग्रपने देव-प्रताप से, डण्डे पर लगे हुए मधु-छत्ते को निचोड़ कर मधु ग्रहण करने की तरह,

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> सारनाथ (B. N. W RY), जि० बनारस।

६० [ निदान-कथा

एकत्र कर उसमे डाला। श्रौर समय पर देवता श्रोज को कौल, कौल (=कवल) मे डालते हैं। लेकिन सम्बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन श्रौर परिनिर्वाण के दिन ऊरवसी (=देगची) में ही उँडेल देते हैं।

एक ही दिन में अनेक आश्चर्यों को प्रकट हुआ देख, सुजाता ने (अपनी) पूर्णा (नाम की) दासी को कहा—''अम्मा पूर्णे! आज हमारे देवता बहुत ही प्रसन्न है। मैंने इससे पहले, इतने समय तक (कभी) इस प्रकार का आश्चर्यं नहीं देखा। जल्दी से जाकर देवस्थान को साफ करों' ''आर्य्ये! अच्छा'' कह उसके वचन को ग्रहण कर, वह जल्दी जल्दी वृक्ष के नीचे पहुँची। बोधिसत्त्व भी, उस रात को पाँच महास्वप्न देख, ''आज मैं नि संशय वृद्ध होऊँगा'' निश्चय कर उस रात के बीतने पर, शौच आदि से निवृत्त हो, भिक्षा-काल की प्रतीक्षा करते हुए, प्रात काल ही आकर, अपनी प्रभा से सारे वृक्ष को प्रकाशित करते हुए, उस वृक्ष के नीचे बैठे। पूर्णा ने आकर देखा कि बोधिसत्त्व वृक्ष के नीचे बैठे हैं और पूर्व की ओर ताक रहे हैं। उनके शरीर से निकलने वाली प्रभा के कारण सारा वृक्ष प्रकाशित है। (यह) देख कर उसने सोचा—''आज हमारे देवता वृक्ष से उतर कर अपने ही हाथ से बिल ग्रहण करने को बैठे हैं'' (इसलिए) उद्धिग्न हो, उसने बहुत जल्दी से यह (बात) जाकर सुजाता से कही।

सुजाता ने उसकी बात को सुन कर प्रसन्न हो, ''म्राज से तू मेरी ज्येष्ठ-पुत्री बन कर रह'' कह, (म्रपनी) लडकी के योग्य सब म्राभरण म्रादि उसको दिये।

'बुद्दत्व प्राप्ति के दिन लाख के मूल्य का सुवर्ण-थाल मिलना चाहिए' इसलिए (सुजाता ने खीर) को सोने की थाल में डालने का विचार कर, लाख के मूल्य का सोने का थाल मँगवा कर, उसमें खीर डालने की इच्छा से पके वरतन पर ध्यान दिया। पद्म-पुष्प में रक्खे पानी की तरह, सारी खीर उलट कर, थाल में श्रा पड़ी। श्रीर वह (खीर) ठीक एक थाल भर ही हुई। वह उस सुवर्ण-थाल को दूसरे सुवर्ण-थाल को दूसरे सुवर्ण-थाल से ढक, कपडे से बाँध, श्रपने को सब श्रलकारों से श्रलकृत कर, थाल को श्रपने सिर पर रख, बड़े वैभव के साथ न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे गई श्रीर बोधिसत्त्व को देख बहुत ही सन्तुष्ट हो, (उन्हे) वृक्ष का देवता समभ, (प्रथम) दिखाई पडने की जगह में ही (गौरवार्थ) भुक भुक कर जा, सिर से थाल को उतार कर खोला। फिर सोने की भारी में सुगन्धित पुष्पों से सुवासित जल ले, बोधिसत्त्व के पास जा खड़ी हुई। घटिकार महाबह्या द्वारा

विया गया मिट्टी का पात्र (=भिक्षा पात्र) इतने समय तक बराबर बोधिसत्त्व के पास रहा, लेकिन इस समय वह अदृश्य हो गया। बोधिसत्त्व ने पात्र को न देख कर, दाहिने हाथ को फैला जल ग्रहण किया। सुजाता ने पात्रसहित खीर को महापुरुष के हाथ मे अर्पण किया। महापुरुष ने सुजाता की ओर देखा। उसने सकेत से जान कर—"आर्य में मैंने तुम्हे यह प्रदान किया, इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिये" कह, वन्दना कर (फिर) "जैसा मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, वैसे ही तुम्हारा भी पूरा हो" कह, लाख (मुद्रा) के मूल्य के उस सुवर्ण थाल को लिये पुरानी पत्तल की भाँति जरा भी ख्याल न कर चल दी।

बोधिसत्त्व न्यग्रोध के नीचे बैठे हुए स्थान से उठ, वक्ष की प्रदक्षिणा कर, थाल को ले, नेरञ्जरा के तीर पर गये। वहाँ लाखो बोधिसत्त्वो के बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन, उतर कर नहाने योग्य, सुप्रतिष्ठित तीर्थ है; वहाँ किनारे पर थाल को रख कर, उतर नहा कर ग्रनेक लाख बुद्धो का पहरावा ग्रईत्-ध्वजा (=चीवर) पहन कर, पूर्व दिशा की स्रोर मुँह कर बैठ, एक (ही) बीज वाले पके ताल-फल के प्रमाण के, उनचास कवल (पिण्ड) करके, उस समस्त निर्जल मधुर-खीर का भोजन किया। यही ब्राहार बुद्धत्व-प्राप्ति होने पर, बोध-मण्ड में सात-सप्ताह तक बैठे रहने के समय, उनचास दिन का आहार हुआ। इतने समय तक न दूसरा ब्राहार किया, न नहाया, न मुँह घोया, न (अन्य) शारीरिक कृत्य किए। (इन सप्ताहो को) ध्यान-सूख, मार्ग (-लाभ) सूख तथा फल (=दू ख-क्षय) सूख में ही बिताया। हाँ, उस खीर को खा, सोने के थाल को ले, ''यदि में बुद्ध हो सकूँ, तो यह थाल पानी के स्रोत की तरफ चले, यदि न हो सकूँ तो नीचे की स्रोर जायें कह कर, (नदी में) फेक दिया। वह थाल धार चीर कर, नदी के बीच जा, बीचो बीच ही वेगवान घोडे की तरह, श्रस्सी हाथ (की दूरी) तक स्रोत से उलटा चला श्रीर एक गढे में डुब कर, काल नाग राज के भवन में जा, तीनो वृद्धों के उपयोग किये थालों से टकरा कर छन-छन (किल-किल) शब्द करता हुग्रा, उन सब थालो के नीचे जाकर बैठ गया। काल-नाग-राजा उस शब्द को सुन कर, "कल (भी) एक बुद्ध उत्पन्न हुआ था, आज फिर एक बृद्ध उन्पन्न हुमा है" (सोच) अनेक सौ श्लोको से प्रशासा करता रहा। उस (नाग-राज) को पृथ्वी का एक योजन तीन गव्यति मोटा (?) हो जाने का समय 'ग्राज' या 'कल' की तरह ही था।

बोधिमत्त्व भी नदी तीर के सुपूष्पित शाल बन में दिन बिता कर, शाम को डंठल से फूलों के गिरने के समय, देवताग्रो द्वारा श्रलंकृत, ग्राठ ऋषभ चौडे मार्ग से, सिंह-गति से बोधि-वृक्ष के पास गए। नाग- यक्ष, गरुड ग्रादि ने दिव्य गन्ध तथा पुष्पों से पूजा की। दिव्य सगीत का गायन किया। दस सहस्र लोक सर्वत्र सुगन्धित किये। एक समान माला (श्रलकृत) एक समान 'साधु साधु' के शब्द से गुँजित हुई। उस समय, सामने से घास लिये स्राते हुए सोत्थिय नामक घास काटने वाले ने, महापुरुष के आकार को देख कर, उन्हें आठ मुट्ठी तुण दिया। बोधिसत्त्व तृण ले, बोधिमण्ड पर चढ़ दक्षिण-दिशा में उत्तर की श्रीर मुँह करके खड़े हुए। उस समय दक्षिण चक्रवाल दब कर, मानो श्रवीचि (नरक) तक नीचे चला गया; उत्तर-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानो भवाग्र तक ऊपर चला गया। "माल्म होता है, यहाँ सम्बुद्धत्व नही प्राप्त होगा" सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते हुए, पश्चिम दिशा की ग्रोर जा पूर्व की ग्रोर मुँह करके खडे हुए। तब पश्चिम चक्रवाल दब कर, मानो अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया। पूर्व-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानो भवाग्र तक ऊपर चला गया। वह जहाँ जहाँ जाकर ठहरे, वहाँ वहाँ नेमियो को लम्बे करके, नाभी के सहारे लिटाये हुए, शकट के पहिए के सद्श महापृथ्वी ऊँची नीची हो उठी। ''मालूम होता है, यहाँ भी बोधि (=ज्ञान) की प्राप्ति नही होगी'' सोच, बोधि-सत्त्व प्रदक्षिणा करते उत्तर दिशा की ग्रोर जा दक्षिण की ग्रोर मुँह कर खडे हुए। तब उत्तर का चक्रवाल दब कर, मानो ग्रवीचि (नरक) तक नीचे चला गया, दक्षिण चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानो भवाग्र (लोक) तक ऊपर उठ गया। मालूम होता है, यह भी बुद्धत्व-प्राप्ति का स्थान न होगा" सोच, बोधिसत्त्व प्रद-क्षिणा करते पूर्व दिशा की स्रोर जा, पश्चिम की स्रोर मुँह करके खड़े हुए। पूर्व-दिशा, सभी बुद्धों के बैठने का स्थान है इसलिए न हिलती है, न काँपती है। ''यह सभी बुद्धों से ग्रपरित्यक्त स्थान है, (यही) दु ख-पञ्जर के विध्वसन का स्थान हैं"--जान, (बोधिसत्त्व ने) उन कुशो के छोरों को पकड कर हिलाया। उसी समय चौदह हाथ का म्रासन बन गया, ग्रौर वह तृण ऐसे (सुन्दर) रूप से वैठ गये, जैसे (सुन्दर) रूप से कोई चतुर चित्रकार प्रथवा शिल्प (पोत्थ)-कार चित्रित नहीं कर सकता। बोधिसत्त्व ने बोधिवृक्ष को भी पीठ की स्रोर करके, दृढ-चित्त हो निश्चय किया-- "चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड़ी ही क्यों न

मार पराजय ] ६३

बाकी रह जायें; (ग्रौर) शरीर-मांस, रक्त सूख जाये, तो भी यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किये बिना इस ग्रासन को नहीं छोडूँगा" ग्रौर सौ बिजलियों के गिरने से भी न टूटने वाले ग्रपराजित ग्रासन लगा बैठ गये।

## (५) मार पराजय

उस समय मार देव-पुत्र ने सोचा--- "सिद्धार्थ-कुमार मेरे ग्रधिकार से वाहिर निकलना चाहता है, इसे नही जाने दुँगा"---ग्रौर श्रपनी सेना के पास जा, यह बात कह, घोषणा करवा कर, ग्रपनी सेना से निकल पडा। मार के श्रागे की श्रोर वह सेना बारह योजन तक, दाई ग्रीर बाई श्रोर भी बारह बारह योजन तक, (लेकिन) पीछे की ग्रोर चक्रवाल के ग्रन्त तक फैली हुई थी। श्रासमान की स्रोर नौ योजन तक ऊँची थी। जय-घोष करने पर (उसका) जय-घोष एक हजार योजन दूर से भी पृथ्वी के फटने के शब्द की भाँति मुनाई देता था। तब मार देव-पुत्र ने डेढ सौ योजन के गिरिमेखल नामक हाथी पर चढ़ कर, सहस्रबाहु से नाना प्रकार के श्रायुधो को ग्रहण किया। मार-सेना के बाकी लोगो में से भी, किसी दो ने एक प्रकार के हथियार नहीं लिये। वे सब नाना प्रकार के रग तथा मुख वाले बन कर बोधिसत्त्व को डराते हुए भ्राये। उस समय दस सहस्र चकवालो के देवता महासत्त्व की स्तूति करते रहे। देवेन्द्र शक ग्रपने विजयोत्तर-शङ्ख को फूँकता रहा। वह शङ्ख एक सौ बीस हाथ का था। एक बार फूँक देने से चार महीने तक बज कर नि शब्द होता था। महाकाल नाग-राजा शेष सौ श्लोको से गुणगान कर रहा था। महाब्रह्मा श्वेत छत्र लिये खडा था। (लेकिन) मार-सेना के बोधि-मण्ड तक पहुँचते पहुँचते (देव-सेना) में (से) एक भी खडा न रह सका, (सभी) सामने ब्राते ही भाग गये।

काल-नाग-राज पृथ्वी में ग्रन्तर्धान हो कर, पाँच सौ योजन वाले ग्रपने मञ्जेरिक नाग-भवन में जा, दोनों हाथों से मुँह को ढॅक, लेट रहा। शक विजयो-त्तर-शङ्ख को पीठ पर रख कर चक्रवाल के प्रधान द्वार पर जा खडा हुग्रा। महाब्रह्मा श्वेत छत्र को चक्रवाल के सिरे पर रख (ग्रपने ग्राप) ब्रह्म-लोक को भाग गया। एक भी देवता न ठहर सका। महा-पुरुप ग्रकेले ही बैठे रहे। मार ने भी ग्रपने ग्रनुचरों से कहा—"तात! शुद्धोदन-पुत्र सिद्धार्थ के समान दूसरा (कोई) वीर नहीं है। हम सामने से इससे युद्ध नहीं कर सकेंगे (इसलिए)

पीछे से चल कर करे।" महापुरुष ने भी सब देवता स्रो के भाग जाने के कारण तीनो दिशा स्रो को खाली देखा। फिर उत्तर-दिशा की स्रोर से मार-सेना को स्रागे बढ़ते देख—"यह इतने लोग मेरे स्रकेले के विरुद्ध इतने प्रयत्नशील है। स्राज यहाँ माता, पिता, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं है। मेरी दस पार-मिताएँ ही चिरकाल से परिशोषित मेरे परिजन के समान है। इसलिए इन पारमिता स्रो को ही ढाल बना कर, (इस) पारमिता श्राक्त को ही चला कर, मुक्ते यह सेना-समूह विध्वस करना होगा।" (यह सोच) दस पारमिता स्रो का स्मरण करते हुए बैठे रहे।

तब मार देव-पुत्र ने सिद्धार्थ को भगाने की इच्छा से ग्रॉधी उत्पन्न की। तत्काल (उसी क्षण) पूर्व, पश्चिम से भभावात उठ कर, ग्रर्थ-योजन, (योजन), दो योजन और तीन योजन तक के पर्वत-शिखरो को उखाडती, वृक्षो को उन्मुलन करती, चारो स्रोर ग्राम-नगरो को चूर्ण विचूर्ण करती स्रागे बढी। कितु महापुरुष के पुण्य-तेज से उसकी प्रचडता बोधिसत्त्व के पास पहुँचते पहुँचते (इतनी निर्बल हो गई कि) उनके चीवर का कोना भी न हिला सकी। तब पानी में डुबाने की इच्छा से उसने भयकर महा-वर्षा शुरू की। उसके दिव्य बल से ऊपर सौ (फिर) हजार तहो वाले बादल बरसने लगे। वर्षा की धारास्रो के ज़ोर से पथ्वी मे छेद पड गये। बन-वृक्षो की ऊपरी चोटियो तक बाढ ग्रा गई, तो भी, (वह) महासत्त्व के चीवरो को ग्रोस की बुँदो के समान भी न भिगो सका। उसके बाद पत्थरो की वर्षा की। बड़े बड़े धुग्रॉ-धार जलते दह-कते पर्वत-शिखर ग्राकाश-मार्ग से ग्राये, लेकिन बोधिसत्त्व के पास पहुँच कर दिव्य-पुष्पो के गुच्छे बन गये। उसके बाद ग्रायुध-वर्षा ग्रारम्भ की। एक धार, द्विधार, ग्रसि (ः≕तलवार), शक्ति, तीर ग्रादि प्रज्वलित ग्रायुध ग्राकाश मार्ग से भ्राने लगे, (लेकिन) बोधिसत्त्व के पास पहुँच कर (वह भी) दिव्य-पुष्प बन गये। उसके बाद श्रङ्गारों की वर्षा की। लाल लाल रग के श्रङ्गार म्राकाश से बरसने लगे; (लेकिन) बोधिसत्त्व के पैरो पर वह दिव्य-फूल बन कर बिखर गये। उसके बाद राख की वर्षा की। ग्रत्यन्त उष्ण् ग्रग्निचूर्ण म्राकाश से बरसने लगा, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह चन्दन-चूर्ण बन कर गिर पड़ा। तब रेत की वर्षा की। धुधवाती, प्रज्वलित, ग्रति सुक्ष्म बालुका ग्राकाश से बरसने लगी, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणो पर वह दिव्य- मार पराजय ] ६५

पुष्प बन गिर पड़ी। तब कीचड की वर्षा की। धुधवाता प्रज्वलित कीचड आकाश से बरसने लगा, (लेकिन) बोधिसत्त्व के पैरो पर वह दिव्य-लेप बन गिर पडा। तब मार देव-पुत्र ने कुमार को भगाने की इच्छा से अन्धकार कर दिया। वह अन्धकार चारो तरह से घनघोर अन्धकार था, तो (भी) बोधिसत्त्व के पास पहुँच, सर्य प्रभा से विनष्ट अवधेरे की भाँति अन्तर्धान हो गया।

इस प्रकार मार जब वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड, ग्रन्धकार की वर्षा से (भी) बोधिसत्त्व को न भगा सका तो (ग्रपनी परिषद् से बोला)—"भणे! क्या खडे हो। इस कुमार को पकडो, मारो, भगाग्रो" ग्रीर इस प्रकार परिषद् को ग्राज्ञा देकर, ग्रपने ग्राप गिरिमेखल हाथी के कन्धे पर बैठ, (ग्रपने) चक्र को ले, बोधिसत्त्व के पास पहुँच कर बोला—"सिद्धार्थं! इस ग्रासन से उठ, यह (ग्रासन) तेरे लिए नहीं, मेरे लिए हैं।" महासत्त्व ने उसके वचन को सुन कर कहा—"मार! तू ने न दस पारिमताएँ पूरी की, न उपपारिमताएँ, न परमार्थं-पारिमताएँ ही, न तूने पाँच महात्याग ही किये, न जातिहित न लोक-हित काम किये, न ज्ञान का ग्राचरण किया। यह ग्रासन तेरे लिए नहीं, मेरे ही लिए हैं।"

मार अपने कोध के वेग को न रोक सका, और उसने महापुरुप पर चक चलाया। महापुरुष ने (अपनी) दस पारमिताओं का स्मरण किया, और उनके ऊपर, वे आयुध फूलों का चँदवा बन कर ठहर गये। यह वहीं तेज चक था, जिसे यदि और दिनों, मार कुद्ध होकर फेकता तो एक ठोस पाषाण-स्तम्भ को वाँसों के कडीर की तरह खड खंड कर देता। जब वह बोधिसत्त्व के लिए मालाओं का चँदवा बन गया, तब बाकी मार-परिषद् ने आसन से भगाने के लिए बडी बड़ी पत्थर की शिलाएँ फेकी। वह पत्थर की शिलाएँ भी, दस पारमिताओं का स्मरण करते ही महापुरुष के पास आ कर, पुष्प मालाएं बन कर, पृथ्वी पर गिर पडी।

चक्रवाल के किनारे पर खड़े देवता-गण गर्दन पसार पसार सिर उठा उठा कर देख रहे थे। "भो! सिद्धार्थ-कुमार का सुन्दर स्वरूप नष्ट हो गया। अब वह क्या करेगा?" 'पारिमताओं को पूरा करने वाले बोधिसत्त्वों के बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन (जो) आसन प्राप्त होता है, वह मेरे लिए ही हैं कहने वाले मार से महापुरुष ने पूछा, "मार! तेरे दान देने का कौन साक्षी हैं?" मार ने मार-सेना की स्रोर हाथ पसार कर कहा—"यह इतने जने साक्षी हैं।" उस समय "में साक्षी हूँ" 'मैं साक्षी हूँ" कह कर मार-परिषद् ने जो शब्द किया, वह पृथ्वी के फटने के शब्द के समान था। तब मार ने महापृष्ठ से पूछा—'सिद्धार्थं। तूने दान दिया है, इसका कौन साक्षी है?' महापृष्ठ ने कहा, "तेरे दान देने के साक्षी तो जीवित-प्राणी (—सचे-तन) हैं लेकिन इस स्थान पर मेरे दान (दिये) का कोई जीवित साक्षी नहीं। दूसरे जन्मों में दिये दान (की बात) रहने दें। वेस्सन्तर-जन्म के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह दिये गये दान की यह स्रचेतन ठोस महापृथ्वी भी साक्षिणी हैं, (श्रीर फिर) चीवर के भीतर से दाहिने हाथ को निकाल, "वेस्सन्तर-जन्म के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह तक दिये गये दान की तू साक्षिणी हैं वा नहीं?" कह, महापृथ्वी की ग्रीर हाथ लटकाया। महापृथ्वी ने "में तेरी तब की साक्षिणी हूँ", (इस प्रकार) सौ वाणी से, सहस्र वाणी में, लाख वाणी से, मार-बल को तितर-बितर करते हुए महा-नाद किया।

तब मार ने 'सिद्धार्थं । तूने महादान दिया, उत्तम दान दिया है' कहा। वेस्सन्तर के दान पर विचार करते करते डेढ़ सौ योजन के शरीर वाले गिरिमे-खल हाथी ने (दोनों) घुटने टेक दिये। मार-सेना दिशाश्रो विदिशाश्रो की श्रोर भाग निकली। एक मार्ग से दो जनों का जाना नहीं हुग्रा। वे शिर के श्राभरण तथा पहने वस्त्रो को छोड, जिधर मुँह समाया, उधर ही भाग निकले।

देव-गण ने भागती हुई मार-सेना को देख सोचा—'मार की पराजय हुई, सिद्धार्थ-कुमार विजयी हुए। (ग्राग्रो हम चलकर) विजयी की पूजा करे।' फिर नागों ने नागों को, गरुडो ने गरुडो को, देवताग्रो ने देवताग्रो को, ब्रह्माग्रो ने ब्रह्माग्रो को (सन्देश) भेजा ग्रौर हाथ में गन्ध माला ले, महापुरुष के पास, बोधि ग्रासन के पास पहुँचे। इस प्रकार उनके वहाँ पहुँचने पर:—

उस समय प्रमुदित हो नाग-गण ने, "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) ग्रीर पापी मार पराजित हुन्ना" (कह) बोधिमण्ड में महर्षि की विजय उद्घोषित की।

उस समय प्रसन्न हो गरुड़ ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई), ग्रौर पापी मार पराजित हुग्रा" (कह) बोधिमण्ड में महर्षि की विजय उदघोषित की ।

उस समय ग्रानिन्दत हो देव-गण ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) ग्रौर पापी मार पराजित हुग्रा" (कह) बोधिमण्ड में महींष की विजय उद्घोषित की। उस समय स्रानिन्दत हो ब्रह्माओं ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) स्रौर पापी मार पराजित हुस्रा" (कह) बोधिमण्ड में स्थिर-चित्त (बुद्ध) की विजय उद्घोषित की।

शेष दस हजार चक्रवालो के देवता, माला-गन्ध-विलेपन से पूजा कर, नाना प्रकार की स्तुतियाँ करने लगे।

#### (६) बुद्ध-पद का लाभ

इस प्रकार महापुरुष ने सूर्य के रहते रहते मार-सेना को परास्त किया। चीवर के ऊपर, गिरते हुए, बोधिवृक्ष के स्रकुर गिर रहे थे; जान पडता था, लाल मूँगो की (वर्षा से उनकी) पूजा हो रही है।

प्रथम याम मे उन्हे पूर्व-जन्मों का ज्ञान हुग्रा; दूसरे याम मे दिव्य-चक्षु विशुद्ध हुग्रा; ग्रौर ग्रन्तिम याम मे उन्होने प्रतीत्य-समृत्पाद का साक्षात्कार किया।

सो उनके बारह-पदो के प्रत्यय-स्वरूप (प्रतीत्य-समुत्पाद) को ग्रावर्त-विवर्त की दृष्टि से, सीधे (=ग्रनुलोम) उलटे (=प्रतिलोम), विचार करते हुए, दस सहस्र लोक-धातु (=ब्रह्माण्ड), पानी की सतह तक, बारह बार काँपी।

महापुरुष ने दिस | सहस्र लोक-धातुयों को । उस्तादित कर, दिन की लाली फटते समय बुद्धत्त्व ( — सर्वज्ञता) का साक्षात्कार किया। उस समय, सारे दस सहस्र लोक-धातु सु-अलकृत थे। पूर्व चक्रवाल के छोर पर ध्वजाएँ फहरा रही थी। इन पताकाग्रों की प्रभाये पश्चिम चक्र-वाल के छोर तक पहुँच रही थी। इसी प्रकार पश्चिम चक्र-वाल के छोर पर फहराती (ध्वजाग्रों की प्रभाग्रों से) पूर्व चक्रवाल के छोर (प्रभासित हो रहे थे)। उत्तर चक्रवाल के छोर पर फहराती उत्तेजित ध्वजाये दक्षिण चक्रवाल के छोर को प्रभासित कर रही थी। दक्षिण-चक्रवाल के छोर पर उडाई (पताकाग्रों की प्रभा) उत्तर चक्रवाल के छोर तक पहुँच रही थी। पृथ्वी तल पर उठाई गई ध्वजा पताकाये, ब्रह्म-लोक को छू रही थी, ग्रौर ब्रह्मलोक मे उठाई पताकाये पृथ्वी तल पर पहुँच रही थी। दस सहस्र चक्रवाल मे फूलदार वृक्षो पर फूल खिल गये, फलदार वृक्ष फलों के भार से लद गये। (वृक्षों के) स्कन्ध में स्कन्ध-कमल खिल गये। शाखाग्रो

<sup>ै</sup> देखो, महा-निदान-सुत्त (दीर्घ-निकाय) ।

में शाखा-कमल, लता स्रो में लता-कमल, स्नाकाश में लटकने वाले कमल स्रौर शिला-तल को फोड़ कर ऊपर ऊपर सात सात हो कर (खिलने वाले) दण्डक-पूष्प भी (खिल) उठे।

दस सहस्र लोक धातु घुमा कर रक्खी हुई माला के सदृश या सुप्रसारित पुष्प-शय्या के सदृश हो गये थे। चक्रवालो के बीच के ग्राठ सहस्र 'लोकान्तर' (जो) पहले सात सूर्यों के प्रकाश से भी प्रकाशित नहीं होते थे; (अब) चारों श्रोर प्रकाश से प्रकाशित (=एको भासा) हो रहे थे। चौरासी हजार योजन गहरा महासमुद्र मीठे जल वाला हो गया था। निदयों का बहना रक गया। जन्मान्ध को रूप दिखाई देने लगा था। जन्म के बहरे शब्द सुनने लगे थे। जन्म के पगु पाँव से (चलने) लग गये थे। (बिदयों की) हथकडी, बेड़ी ग्रादि बन्धन टूट कर गिर पड़े। इस प्रकार ग्रनन्त प्रभा-शोभा से पूजित (हो) ग्रनेक प्रकार की ग्राश्चर्यंकर घटनाएँ घटित हो रही थी।

तब बुद्ध ने बुद्धत्त्व-ज्ञान का साक्षात् कर, सभी बुद्धों द्वारा कहे गये उदान (प्रीति-वाक्य) को कहा है —

"दुःखदायी जन्म बार बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृह-कारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृह-कारक! श्रव मैंने तुभे देख लिया। (श्रव) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं, गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया; तृष्णा का क्षय देख लिया।"

यह तुषित देवलोक से आरम्भ करके यहाँ बोधिमण्ड में बुद्धत्त्व (=सर्व-ज्ञता) प्राप्ति तक की बात 'अविदूरे निदान' कही जाती है।

# ग. सन्तिके निदान

# (१) बोधि-वृत्त के त्र्यासपास

लेकिन 'सन्तिके निदान' (क्या है) ? "भगवान् श्रावस्ती मे श्रनाथ

<sup>ं</sup> बलरामपुर से १० मील पर वर्तमान सहेट महेट (जि० गोण्डा, युक्त-प्रान्त)।

पिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे"। वैशाली में महाबन की कूटागार शालामें विहार करते थे।" इस प्रकार उन उन स्थानो पर विहार करते समय का वृत्तान्त उन उन स्थानो पर ही मिलता है। जो कुछ इस विषय में कहा गया है, उसे भी आरम्भ से इस प्रकार समभना चाहिए.—

उस उदान (=प्रीति वाक्य) को कह कर (वहाँ) बैठे भगवान् के मन मे हुग्रा—"में इस (बुद्ध) श्रासन के लिए चार ग्रमखेय्य एक लाख कल्प दौड़ता रहा, इसी ग्रासन के लिए मेंने इतने समय तक, ग्रपने ग्रलकृत सीस को गर्दन से काट कर दिया; सुग्रञ्जित ग्रांखो ग्रौर हृदय-मास को निकाल कर प्रदान करता रहा; जालिय कुमार सदृश पुत्र, कृष्णाजिना कुमारी सदृश पुत्री माद्रीदेवी सदृश भार्या को दूसरो के दास बनने के लिए दिया। मेरा यह ग्रासन, जय-ग्रासन है, श्रेष्ठासन है। यहाँ (इस ग्रासन) पर बैठे मेरे सङ्कल्प पूरे हुए हैं। ग्रभी में यहाँ से नहीं उठूँगा" (यह सोच) दसो खरब समापत्तियो (=ध्यानो) मे रत, सप्ताह भर तक वही बैठे रहे। इसीके बारे में कहा है—"भगवान् सप्ताह-भर तक एक ही ग्रासन से विमुक्ति सुख का ग्रानन्द लेते हुए बैठे' रहे।"

तब कुछ देवतात्रों के मन में ऐसा सन्देह उत्पन्न हुन्ना, 'सिद्धार्थ कुमार को म्रभी भी (कुछ योग) करना बाकी हैं। इसीसे वह म्रासन के मोह को नहीं छोडता हैं।' शास्ता ने देवतात्रों के सदेह को जान, उसे हटाने के लिए, म्राकाश में जाकर यमक-प्रातिहार्यं दिखाई। महाबोधि-मण्ड में की गई यह प्रातिहार्यं, (देह-)सम्बन्धियों के समागम के समय पर की गई प्रातिहार्यं, ग्रौर पाटिकपुत्र (परित्राजक) के समागम पर की गई प्रातिहार्यं—ये सब प्रातिहार्यं, गण्डम वृक्ष के नीचे की गई यमक-प्रातिहार्यं जैसी ही हुई थी। इस प्रकार इस प्रातिहार्यं से देवतात्रों के सदेह को दूर कर, शास्ता ने (वज्र-) म्रासन से जरा थोड़ा

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> बसाढ (जि॰ मुजफ्फरपुर) के प्रायः २ मील उत्तर वर्तमान कोल्हुग्रा, जहाँ ग्राज ग्रशोक-स्तम्भ खड़ा है।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> विनयपिटक, महावग्ग ।

१ दिव्य-चमत्कार ।

पूर्व की ग्रोर 'उत्तर-दिशा भाग' में खंडे हो सोचा—'इस स्थान पर मैंने सर्वज्ञता-ज्ञान प्राप्त किया।' फिर चार ग्रसखेय्य एक लाख कल्प तक पूरी की गई पारिमताग्रो की फल प्राप्ति के स्थान को निर्निमेष दृष्टि से देखते सप्ताह बिता दिया। इसीलिए स्थान का नाम 'ग्रनिमिस-चेतिय' (=ग्रनिमेष चैत्य) हो गया।

तव (बज्ज-)ग्रासन ग्रौर खडे होने के स्थान के बीच की भूमि को चक्रमण-भूमि बना, पूर्व से पश्चिम को रतन भर चौडे, रत्न-चक्रमण पर चक्रमण करते हुए सप्ताह बिताया। उस स्थान का नाम 'रत्न-चक्रमण चेतिय' पडा।

चौथे सप्ताह में, देवताग्रों ने बोधि से पश्चिमोत्तर दिशा में रत्न-घर बनाया। वहीं (शास्ता ने) ग्रासन पर बैठ, ग्रिभिधर्म-पिटक को—विशेष रूप से ग्रनन्त कम वाले समन्त पट्टान' को विचारते हुए सप्ताह बिताया। इस विषय में ग्राभिधर्मिको का कथन है—''रत्नघर रत्नमय-गृह का नाम नहीं हैं, बित्क (ग्रिभिधर्म कें) सात प्रकरणो का सग्रह-स्थान ही रत्न-घर हैं।'' चूँकि यहाँ दोनों ही ग्रथं ठीक लग जाते हैं, इसिलए दोनों ही ग्रथं ग्रहण करने चाहिए।' उसके बाद उस स्थान का नाम 'रत्नघर-चेतिय' पडा।

# (२) श्रजपाल बर्गद के नीचे

इस प्रकार बोधि-वृक्ष के ही समीप चार सप्ताह बिता कर, पाँचवे सप्ताह (भगवान्) बोधि-वृक्ष से (चलकर) जहाँ श्रजपाल बर्गद (चल्यग्रोध) है, वहाँ चले गये। वहाँ भी धर्म पर विचार करते तथा विमुक्ति-सुख का श्रानन्द लेते ही बैठे रहे। उस समय देवपुत्र मार ने इतने समय तक (शास्ता का) पीछा करके, मौका ढूँढते हुए भी, इनमे कोई दोष न देख, सोचा—'श्रब यह मेरे श्रधि-कार से बाहिर हो गये'। श्रौर खिन्न हो, महामार्ग पर बैठे बैठे सोलह बातो का ख्याल कर, पृथ्वी पर सोलह रेखाएँ खेची। "मैंने इसकी तरह दान पारिमता पूरी नहीं की, इसीलिए मैं इसके जैसा नहीं हुग्रां" यह (सोच) एक रेखा खीची। वैसे ही "मैंने इसकी तरह शील-पारिमता, नैष्कम्य-पारिमता, प्रज्ञा-पारिमता, वीर्य-पारिमता, शान्ति-पारिमता, सत्य-पारिमता, श्रधिष्ठान-पारिमता, मैत्री

र स्रभिधर्म-पिटक का एक ग्रन्थ।

पारिमता, उपेक्षा-पारिमता पूरी नहीं की; इसीलिए मैं इस जैसा नहीं हुम्रा'' (सोच) दसवी रेखा खीची। "मैंने इसकी तरह (श्रद्धा इन्द्रिय म्रादि) इन्द्रियों की उन्नत अनुन्नत अवस्था सम्बन्धी असाधारण ज्ञान की प्राप्ति के आश्रय भूत दस पारिमताओं की पूर्ति नहीं की, इसिलए मैं इस जैसा नहीं हुम्रा'' (सोच) ग्यारहवी रेखा खेची। वैसे ही 'मैंने इसकी तरह असाधारण आश्रय-अनुशय ज्ञान, पा महाकरुणा समापत्ति (=ध्यान) ज्ञान, यमक-प्रातिहार्य ज्ञान; अनावरण-ज्ञान तथा सर्वज्ञता ज्ञान की प्राप्ति के आश्रय दस पारिमताओं की पूर्ति नहीं की। इसीलिए मैं इस जैसा नहीं हुम्रा'' (सोच) सोलहवी रेखा खीची। इस प्रकार, इन कारणों से (देवपुत्र मार) महामार्ग पर सोलह लकीरे खेंचते बैठा रहा।

उस समय तृष्णा, स्ररित तथा रगा (=राग) नामक मार की (तीनो) कन्यास्रो ने "हमारा पिता दिखाई नहीं दे रहा है, वह इस समय कहाँ हैं" (सोच) ढूँढते हुए उसे खिन्न-चित्त भूमि कुरेदते (=लिखते) देखा। उन्होने पिता के समीप जा पूछा="तात । स्राप किस लिए दु खी तथा खिन्न-चित्त हैं?"

"श्रम्मा! यह महा-श्रमण मेरे ग्रधिकार से बाहिर हो गया। इतने समय तक देखते रहते भी इसके छिद्र नहीं देख सका। इसीसे में दुखी तथा खिन्नचित्त हूँ" "यदि ऐसा है,तो सोच मत करो। हम इसे ग्रपने वश मे करके ले ग्रायेगी।"

"ग्रम्मा<sup>।</sup> इसे कोई वश मे नहीं कर सकता। यह पुरुष श्रचल श्रद्धा में प्रतिष्ठित है।"

"तात! हम स्त्रियाँ है। हम उसे ग्रभी राग ग्रादि के पाश में बाँध कर ले ग्रायेगी। ग्राप चिन्ता न करे" (यह) कह भगवान् के पास जा उन्होंने पूछा। "श्रमण! हमें ग्रपने चरणों की सेवा करने दो।"

भगवान् ने न उनके कथन को सुना, न ग्रांख खोल कर (उनकी ग्रोर) देखा। वह ग्रनुपम, उपाधिक्षीण (चित्वण) में रत हो, विमुक्तिचित्त, विवेक (चएकान्त) सुख का ग्रनुभव करते बैठे रहे। तव मारकन्याग्रों ने सोचा— "पुरुषों की रुचि भिन्न भिन्न होती है। किसी को कन्याये प्रिय लगती हैं, किसी को नव तरुणियाँ ग्रीर किसी को बीच की ग्रायु की मध्यवयस्काये ग्रीर किसी को प्रौढाये। (ग्राग्रो) हम इसे भिन्न भिन्न प्रकार से प्रलोभन दे।" तब उन्होंने सौ सौ रूप धारण किये। कुमारी बनी, ग्रप्रसूता हुई, एक बार प्रसूता, दो बार प्रसूता, मध्यवयस्का तथा प्रौढा स्त्रिये बन बन कर छ बार भगवान् के पास ग्रा

कर पूछा— "श्रमण! हमे ग्रपने चरणो की सेवा करने दो।" भगवान् ने उस (कथन) को भी मन मे नहीं किया। वह उस ग्रनुपम, उपाधिक्षीण (=निर्वाण) मे रत, विमुक्त-चित्त ही रहे।

(इस विषय मे) कोई कोई ब्राचार्य्य कहते हैं—"उन्हें बूढी स्त्रियों के स्वरूप में देख, भगवान् ने ब्रिधिष्ठान किया, कि यह खिष्डत दन्त और श्वेत केशा हो जाये" किन्तु यह (कथन) ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, क्यों कि बुद्ध इस प्रकार का ब्रिधिष्ठान नहीं करते। हाँ, भगवान् ने, "तुम जाब्रो। काहे यह सब प्रयत्न करती हो? जो विरागी नहीं हैं उन लोगों के सन्मुख यह सब करना चाहिए। तथागत का राग नष्ट हो गया, द्वेष (=क्रोध) नष्ट हो गया, मोह नष्ट हो गया" कह ब्रुपनी चित्तशुद्धि के विषय में कहा —

"जिसके जय को पराजय में बदला नहीं जा सकता, जिसके जीते (राग, द्वेष, मोह फिर) नहीं लौट सकते; उस बे-निशान (श्रपद = स्थान-रिहत), श्रनन्तदर्शी बुद्ध को किस रास्ते पा सकोगे ? जाल रचने वाली जिसकी विषय रूपी तृष्णा कहीं भी ले जाने लायक नही रह गई; उस श्रपद, श्रनन्त दर्शी बुद्ध को किस रास्ते से पा सकोगे ?

इन धर्म-पद के बुद्ध-वग्ग (१४) में आई दो गाथाओं को कह धर्मोपदेश किया। तब वे मार-कन्याये हमारे पिता ने सत्य ही कहा था, "श्रर्हत् सुगत को राग (के बन्धन) में लाना आसान नहीं।" (सोच) पिता के पास चली गई। भगवान् भी सप्ताह बिता कर वहाँ से मुचलिन्द वक्ष के नीचे चले गये।

#### (३) मुचलिन्द् वृत्त के नीचे

उस समय सप्ताह भर की बदली उत्पन्न हो गई। सर्दी श्रादि से बचने के लिए, नाग राज मुचलिन्द ने फन तान सात गेंडुरी बनाईं। उसमें गन्धकुटी में बाधारहित विचरने की तरह, विमुक्ति सुख का श्रानन्द लेते हुए, (भगवान् ने) सप्ताह बिताया फिर राजायतन (—वृक्ष) के पास पहुँच, वहाँ भी विमुक्ति सुख का श्रानन्द लेते हुए बैठे रहे। इस प्रकार यह सात सप्ताह पूरे हुए। इन सात सप्ताहों में (भगवान्) ने न मुख धोया, न शरीर-शुद्धि की, न भोजन ही किया। (सब समय) (सारे समय को) ध्यान-सुख, मार्ग-सुख श्रीर फल (—प्राप्ति के) सुख में ही व्यतीत किया।

धर्म-प्रचार ] १०३

तब सात सप्ताहो के बीतने पर, उनचासवे दिन शास्ता को मुँह धोने की इच्छा हुई। देवेन्द्र शक ने हरें लाकर दी। शास्ता ने उसे खाया। उससे उन्हे शौच (=शरीर शुद्धि) हुम्रा। तब शक ने ही नागलता की दातुन (दन्तकाष्ठ) श्रौर मुख धोने के लिए पानी ला दिया। बुद्ध उस दातुन को कर, श्रनोतत्त-दह (=सरोवर) पर पानी से मुँह धो, फिर राजायतन के नीचे बैठे।

# (४) धर्म-प्रचार

उस समय तपस्सु और भिल्लक नामक दो व्यापारी, पाँच सौ गाडियो के साथ उत्कलं देश से पिश्चम-देश (= मध्य देश) को जा रहे थे। उनके जाति-सम्बन्धी, देवताओं ने गाडियाँ रोक बुद्ध के लिए आहार तैयार करने के लिए उन्हें उत्साहित किया। उन्होंने जाकर, सत्तू और पूए (= मधुपिण्ड) ले, शास्ता के पास जा, खडे हो कर प्रार्थना की, "भन्ते। भगवान्। कृपा कर इस आहार को ग्रहण करे।"

(सुजाता के) खीर के ग्रहण करने के दिन ही भगवान् के पात्र अन्तर्धान हो गये थे। इसलिए भगवान् ने सोचा—'तथागत हाथ में तो आहार ग्रहण नहीं करते; में किस (बरतन) में आहार ग्रहण करूँ?'' तब उनके विचार को जान कर चारो दिशाओं के चारो महाराजा इन्द्र नील-मणि के बने पात्र को ले आये। भगवान् ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। फिर मूँगे वर्ण के पाषाण के चार पात्र ले आये। चारो देवपुत्रो पर अनुकम्पा करने के लिए भगवान् ने चारो पात्रो को ले, एक दूसरे के ऊपर रख अधिष्ठान किया कि वह एक हो जाये। चारो पात्र मुख द्वार पर प्रकट (चार) रेखाओं वाले हो, बिचले (पात्र) के परिमाण के एक पात्र बन गये। भगवान् ने उस मूल्यवान् पत्थर के पात्र में आहार ग्रहण किया। भोजन करके (दान) अनुमोदन किया। दोनो भाई बुद्ध तथा धर्म की शरण जाने से दो वचन के उपासक हुए। तब उनमें से एक के 'भन्ते! (पूजा) के लिए कुछ दे' कहने पर, भगवान् ने सिर पर दाहने हाथ

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> उड़ीसा ।

<sup>े</sup> संघ के न होने से वह बुद्ध श्रौर धर्म दो की ही शरण गए।

को फेर कर (म्रपने कुछ) बालो (चिकेश) को दिया। उन्होने म्रपने नगर मे पहुँच, उस केश को भीतर रख, (ऊपर से) चैत्य बनवाया।

सम्यक सम्बुद्ध भी वहाँ से उठ, अजपाल न्यग्रोध के पास जा, वहाँ न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे बैठे। तब वहाँ बैठते ही उनके मन मे अपने अनुभूत धर्म की गम्भीरता का विचार उत्पन्न हुआ (सब) बुद्धों के अभ्यस्त "इस धर्म का मैने अनुभव किया है...' (इस प्रकार) दूसरों को धर्मापदेश देने की अनिच्छा का विचार (चितकें) उत्पन्न हुआ। तब सहम्पति ब्रह्मा ने "अरे! लोक नाश हो जायगा, अरे! लोक विनाश हो जायगा" कहते, दस सहस्र चिक्रवालों से शक-सुयाम—सन्तुषित-सुनिर्मित—वशवर्ती-महाब्रह्माओं को ले कर, शास्ता के पास जा, "भन्ते! भगवान्! धर्मोपदेश करे। सुगत ! धर्मोपदेश करे" इत्यादि कम से धर्मोपदेश करने की प्रार्थना की।

#### (५) बनारस (सारनाथ)

शास्ता उसे प्रतिज्ञा दे, सोचने लगे, "मैं पहले किसे धर्मोपदेश कहूँ?" "इस धर्म को ग्रालार-कालाम शीघ्र ही जान लेगा" सोच कर देखा, तो पता लगा कि उसे मरे एक सप्ताह हो गया। तब उद्दक के बारे में ख्याल ग्राया। मालूम हुग्रा, वह भी (उसी) रात को मर गया। (तब) सोचा—"पञ्चवर्गीय भिक्षुग्रों ने मेरा बहुत उपकार किया है।" पञ्चवर्गीय भिक्षुग्रों के बारे में प्रश्न हुग्रा, 'वह इस समय कहाँ है?' सोचते हुए, बाराणसी (बनारस) के मृगदाव' में (बिहरते हैं) जान; वहाँ जाकर धर्मचक प्रवर्तित करने का विचरा किया।

कुछ दिन तक बोधिमण्ड के ग्रास पास ही भिक्षाचार कर विहार करते रहे। श्राषाढ़ पूर्णिमा के दिन बनारस पहुँचने के विचार से, चतुर्दशी को प्रातःकाल, तडके ही (=समय) पात्र चीवर ले, ग्रठारह योजन के मार्ग पर चल पड़े। रास्ते मे उपक नामक ग्राजीवक को देख कर, उसे ग्रपने 'बुद्ध' होने की बात कह, उसी दिन शाम के समय ऋषिपतन पहुँचे।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> वर्तमान सारनाथ, बनारस ।

<sup>ै</sup> उस समय के नग्न साधुग्रो का एक सम्प्रदाय ।

पञ्चवर्गीय-भिक्षुग्रो ने तथागत को दूर से ग्राते देख निश्चय किया— "श्रायुष्मानो ! यह श्रमण गौतम वस्तुग्रों के ग्रधिक लाभ के लिए मार्ग-भ्रष्ट हो परिपूर्ण शरीर, मोटी इन्द्रियो वाला, सुवर्ण-वर्ण हो कर ग्रा रहा है। हम उसे ग्रभिवादन ग्रादि न करेगे। लेकिन महाकुल-प्रसूत होने से यह ग्रासन का ग्रधिकारी है; ग्रत हम इसके लिए खाली ग्रासन बिछा देगे।"

भगवान् ने देवों सहित (सारे) लोक के चित्त की बात जान सकने वाले ज्ञान से सोच कर उन (पचवर्गीयो) के विचार को जान लिया। तब उन्होने समान रूप से सब देव मनुष्यो तक पहुँचने वाले मैत्री-पूर्णचित्त को, विशेष रूप से पचवर्गीयो की स्रोर फेरा। भगवान् के मैत्री-चित्त से स्पृष्ट हो, तथागत के समीप स्राते स्राते वह स्रपने निश्चय पर दृढ न रह सके स्रौर उन्होने स्रभिवादन प्रत्युत्थान स्रादि सब कृत्यो को किया। लेकिन 'सम्बुद्धत्त्व प्राप्ति' का उन्हे ज्ञान नथा, इसलिए वह (तथागत को) केवल नाम लेकर स्रथवा 'स्रावुसो' (—स्रायुष्मान्) कह कर सम्बोधन करते थे।

# (६) प्रथम-उपदेश: धर्मचक प्रवर्तन

तब भगवान् ने उन्हें "भिक्षुग्रों । तथागत को नाम से ग्रथवा 'ग्रावुस' कह कर मत पुकारों। भिक्षुग्रों ! तथागत ग्रह्तं हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं" कह, ग्रपने बुद्ध होने को प्रगट किया। बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठ, उत्तराषाढ नक्षत्र (ग्राषाढी पूर्णिमा के दिन) ग्रठारह करोड ब्रह्माग्रों से घरे हुए पञ्चवर्गीय स्थिवरों को सम्बोधित कर धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र' का उपदेश किया। उनमें से स्थिवर ग्रञ्जा-कौण्डिन्य उपदेशानुसार ज्ञान का विकास करते हुए, सूत्र की समाप्ति पर ग्रठारह करोड ब्रह्माग्रों सहित स्रोतग्रापित फल में स्थित हुए। तब बुद्ध वर्षा-काल के लिए वही ठहर गये। ग्रगले दिन वप्प स्थिवर को उपदेश करते विहार में ही बैठे रहे। शेष चार जने भिक्षा माँगने गये। वप्प स्थिवर पूर्वाह्म में ही स्रोतग्रापित फल को प्राप्त हुए। इसी कम से ग्रगले दिन महिय स्थिवर, फिर ग्रगले दिन महानाम स्थिवर, फिर ग्रगले दिन ग्रश्विज्ञ महा स्थिवर—सब को स्रोतग्रापित फल में स्थित कर, पक्ष के पाँचवे दिन, पाँचो जनो को एकत्र

<sup>ै</sup> संयुक्त नि० ५५: २: १ विनय महावग्ग (महाक्खंधक)।

कर ग्रनत्त-लक्षण सूत्र का उपदेश किया । देशना की समाप्ति पर पाँचो स्थविर ग्रर्हत्-फल मे स्थित हुए ।

तब शास्ता ने यश कुल-पुत्र की योग्यता (=उपिनस्सय) देख, उसी रात विरक्त हुए, घर छोड कर निकले (यश) को, "यश प्रा।" कह बुलाया। उसी रात को उसे स्रोतग्रापत्ति-फल, (श्रौर) ग्रगले दिन ग्रह्त्-फल मे प्रति-ष्ठित कर, उसके श्रौर भी चौवन (५४) मित्रो को "भिक्षुग्रो प्राग्रो"—वचन द्वारा प्रश्रज्या दे कर 'ग्रह्त्व' प्राप्त कराया।

# (७) उरुवेला की स्रोर

इस प्रकार लोक में इकसठ ग्रहिंत् हो गये। वर्षा-वास की समाप्ति पर शास्ता ने 'प्रवारणा' कर, "भिक्षुग्रो ! चारिका करो . ." (कह) भिक्षुग्रों को साठ दिशाग्रो में भेज, स्वय उरुबेल को जाते हुए, मार्ग में कप्पासिय वन-सड में तीस भद्रवर्गीय कुमारों को दीक्षित (=विनीत) किया। उन (कुमारों) में जो सब से पिछला था, वह स्रोतापन्न जो सर्वश्रेष्ठ था वह ग्रतागामी हुग्रा। उन सब को भी "भिक्षुग्रो । ग्राग्रो।" वचन से ही प्रज्ञजित कर, (भिन्न भिन्न) दिशाग्रो में भेज, स्वय उरुबेल पहुँच (वहाँ) तीन सहस्र पाँच सौ प्रातिहार्य (=चमत्कार) दिखा, सहस्रो जिल्लो सिहत उरुबेल काश्यप ग्रादि तीन जिल्ल भाइयो को विनीत कर 'भिक्षुग्रो । ग्राग्रो'—वचन से ही (उन्हें भी) प्रज्ञजित कर गया-शीर्ष पर बैठ, ग्रादिप्त-पर्याय (—सूत्र) के उपदेश से (उन्हें) ग्रहेंत्-भाव में प्रतिष्ठित कराया। फिर उन सहस्र ग्रहेंतो के साथ (राजा) विम्बसार को दी हुई प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए राजगृह नगर' के समीप स्थित लिट्ट-वन-उद्यान में पहुँचे।

# (८) राजा विम्बिसार का बौद्ध होना

राजा अपने माली के मुँह से बुद्ध के आने की बात सुन, बारह नहुत (—नियुत) ब्राह्मण-गृहपितयो के साथ,बुद्ध के पास पहुँचे। उनके चक्र से अकित

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> वर्षा-समाप्ति पर विदायगी ।

<sup>ै</sup>गया सीस, गया का ब्रह्मयोनि पर्वत है।

<sup>&</sup>lt;sup>५</sup>मगध की राजधानी ।

<sup>े</sup>महावग्ग (महाखंधक)।

<sup>&</sup>lt;sup>\*</sup>सयुक्त नि० ४३:३:६।

¹ नहुत≔दस हजार ।

तल वाले, सुनहले वस्त्र के चँदवे के समान प्रभा-पुज प्रसारित करने वाले, चरणों में सिर से प्रणाम कर, परिषद् सहित एक स्रोर बैठ गया। तब उन ब्राह्मण-गृहपितयों के मन में यह (शका) हुई—'क्या उरुवेल-काश्यप महाश्रमण (गौतम) का शिष्य है स्रथवा महाश्रमण उरुवेल काश्यप का (शिष्य)? भगवान् ने श्रपने चित्त से उनके चित्त के वितर्क को जान (उरुवेल काश्यप) स्थविर को 'गाथा' में कहा.—

"उरुवेल-वासी! तपः कृशों के उपदेशक! क्या देख कर (तुमने) ग्राग छोड़ी? काश्यप! तुम से यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा ग्राग्नि-होत्र कैसे छूटा?"

स्थविर ने भगवान् का अभिप्राय समभ कर कहा — "रूप; शब्द, रस, काम-भोग, तथा स्त्रियाँ ये सब यज्ञ से (मिलती है), ऐसा कहते हैं। लेकिन (उक्त) उपाधियाँ मल है, यह जान कर, विरक्त चित्त हो, मैं ने यज्ञ करना तथा हवन करना छोड़ दिया।"

इस गाथा को कह ग्रपने शिष्य-भाव के प्रकाशनार्थ, तथागत के चरणों में शिर रख, "भन्ते । भगवान् । ग्राप मेरे गुरु (=शास्ता) है, मै ग्रापका शिष्य हूँ" कह, ग्राकाश में एक-ताल, दो-ताल-तीन-ताल.. ...सात-ताल ऊँचे तक, सात बार चढ उतर कर, तथागत को प्रणाम कर, एक ग्रोर बैठ गया। इस प्रकार के चमत्कार को देख, लोग कहने लगे "ग्रहो बुद्ध! महाप्रतापी है; जिन तथागत ने इस प्रकार के दुराग्रही, ग्रपने को ग्रहंत् समभने वाले उरुवेल काश्यप को भी उसके मत रूपी जाल को काट कर, दीक्षित किया! भगवान् ने "न केवल ग्रभी मेंने उरुवेल-काश्यप का दमन किया है, ग्रतित-काल में भी किया है।" कह, तथा इस ग्रथं को स्पष्ट करने के लिए महानारद काश्यप जातक कह, चार ग्राय्यं सत्यों का प्रकाश किया। ग्यारह नहुत (ब्राह्मण-गृहपतियो) सहित मगध-नरेश (बिम्बिसार) स्रोतग्रापित्तफल में प्रतिष्ठित हुए। एक नहुत उपासक हुए।

बुद्ध के पास बैठे ही बैठे राजा (बालक-पन मे ग्रपने मन मे उठी) पाँच

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातक (५४४)

इच्छाओं को कह, त्रिशरण ग्रहण कर, ग्रगले दिन के लिए निमन्त्रण दे, ग्रासन से उठ, भगवान् की प्रदक्षिणा कर चला गया। ग्रगले दिन, जिन्होने तथागत को देखा था, वे भी, ग्रौर जिन्होने नही देखा था, वे भी—सभी ग्रठारह करोड़ राजगृह-निवासी, तथागत को देखने की इच्छा से प्रात-काल ही राजगृह से यिष्ट-वन को गये। तीन गव्यूति मार्ग (भी) पर्य्याप्त नहीं था। सारा यिष्ट-वन उद्यान हमेशा भरा रहता था। जन समूह भगवान् के सुन्दर स्वरूप को देखते तृप्त नहीं होते थे। यह रूप का प्रकरण (=वर्ण-भूमि) है। ऐसे स्थान पर लक्षण-ग्रनुव्यञ्जनादि के विस्तार के साथ तथागत के शरीर के सारे सौन्दर्य का वर्णन करना चाहिए।

इस प्रकार बुद्ध (दस बल) के सुन्दर शरीर के दर्शन के लिए म्राने वाले जन-समूह से उद्यान के म्रीर मार्ग के निरन्तर भरे रहने से एक भिक्षु को भी बाहिर निकलने का अवकाश नहीं रहा। उस दिन भगवान् को निराहार रह जाने की सम्भावना थी। ऐसा न होने देने के लिए, शक का म्रासन गर्म हुम्रा। देवेन्द्र ने विचार करके, (म्रासन गर्म होने के) कारण को जाना, भ्रीर ब्राह्मण तरुण (—माणवक) का रूप धारण कर, बुद्ध-धर्म-सघ की स्तुति करते हुए, बुद्ध (दस-बल धारी) के सामने उतर देव-बल से अपने लिए जगह कर गाथा बना कहा:—

श्रनासक्त (चित्रमुक्त) संयमयुक्त पुराने जटाधारियो (चित्रितो) के साथ (चित्रगी-निकशा) तप्त सुवर्ण (सुवर्ण सदृश) संयमी (चित्रित) भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

मुक्त, विप्रमुक्त, पुराने जिटलों के साथ तप्त सुवर्ण से रूपवान् मुक्त भग-वान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

उत्तीर्ण (च्पार-प्राप्त) विप्रमुक्त, पुराने जटिलों से युक्त, तप्त सुवर्ण जैसे रूपवान् उत्तीर्ण भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे है ।

<sup>ै &#</sup>x27;क्या ही ग्रच्छा होता, यदि मै राज्यभिषिक्त होता' श्रादि पाँच इच्छाएँ (महावग्ग)।

<sup>े</sup>राजगृह नगर के समीपवर्ती जठियांब (लट्टिवन उद्यान) ।

दस-वास (वाले); दस-बल (-धारी), दस धर्मी के ज्ञाता, दस गुणों से युक्त, सहस्र ग्रहंतों के साथ भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे है।"

उक्त गाथात्रों से बुद्ध का गुणानुवर्णन करते हुए (देवेन्द्र) आगे आगे चल रहे थे। लोगों ने ब्राह्मण तरुण (माणवक) के रूप की सुन्दरता देख 'यह माणवक अत्यन्त सुन्दर हैं, हमने इसे पहले नहीं देखा' सोच, पूछा:—"यह माणवक कहाँ से (आया) है ? किस का है ?" इसे सुन माणवक ने यह गाथा कहीं.—

ैलोक में जो घीर है, सर्वत्र संयत है, ग्रर्हत् है, सुगत है; श्रद्धितीय बुद्ध है—मै उनका सेवक (परिचारक) हूँ।

एक सहस्र भिक्षुश्रो के साथ बुद्ध (=शास्ता) ने, शक द्वारा बनाये गये मार्ग से राजगृह में प्रवेश किया। राजा ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघ को भोजन (=महादान) दे (प्रार्थना की)—''भन्ते! में बुद्ध-धर्म—सघ (=ित्ररत्न) के बिना न रह सक्रूँगा। समय, बे समय, भगवान् के पास ग्राऊँगा। यिष्ठ (=लिट्ठ)—वन उद्यान बहुत दूर है। लेकिन हमारा वेणुवन उद्यान ग्रधिक दूर नहीं है। वहाँ ग्राना जाना सहज है। बुद्ध के योग्य निवासस्थान है। भगवान्! ग्राप उसे स्वीकार करे।'' (कह) सोने की भारी में, पृष्प गन्ध से सुवासित, मणि के रग जल को ले कर वेणुवन उद्यान का दान करते हुए, बुद्ध (=दशबल) के हाथ में जल डाला। उसी ग्राराम की स्वीकृति से बुद्ध धर्म (=शासन) ने (लोक में) जड पकड़ी—(इसीलिए) पृथ्वी कॉपी। जम्बूद्दीप में वेणुवन को छोड़ ग्रौर किसी निवास (=शयनासन) के ग्रहण करने के समय पृथ्वी नहीं काँपी। सिहल (ताम्रपर्णी) में भी महाविहार' के ग्रितिरक्त, ग्रौर किसी शयनासन के ग्रहण करते वक्त पृथ्वी नहीं काँपी। (भगवान्) वेणुवन को ग्रहण कर, राजा (के दान) का ग्रनुमोदन कर, ग्रासन से उठ, भिक्षुसघ सहित वेणुवन को चले गये।

# (९) सारि-पुत्र श्रोर मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या

उस समय अ्रमृत की खोज में लगे हुए सारिपुत्र मौद्गल्यायन—दो परि-

<sup>ै</sup> सिंहल-द्वीप में महास्थविर महेन्द्र को प्रदत्त प्रथम विहार ।

ब्राजक राजगृह के समीप रहते थे। उनमे से (एक) सारिपुत्र ने ग्रश्वित् स्थिविर को भिक्षा-चार करते देखा। वह प्रसन्न-चित्त हो, उनका सत्सङ्ग कर उनसे 'जो हेतुग्रो से उत्पन्न धर्म हैं . . . (चि धम्मा हेतुप्पभवा. )' गाथा को सुन स्रोतग्रापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने ग्रपने मित्र मौद्गल्या-यन परिब्राजक को भी वह गाथा कही। वह भी स्रोतग्रापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुए। वह दोनो ही (ग्रपने पूर्व ग्राचार्य) सञ्जय से भेट कर, ग्रपनी मडली के साथ शास्ता के पास जा प्रब्रजित हुए। उनमे से महामौद्गल्यायन (एक) सप्ताह मे ही ग्रह्तंत्व को प्राप्त हुए। सारिपुत्र पन्द्रह दिन मे। शास्ता ने उन दोनो को प्रधान शिष्य (चग्रग्र-श्रावक) बनाया। सारिपुत्र स्थिवर ने जिस दिन ग्रहत्त्व पद प्राप्त किया, उसी दिन (बुद्ध) शिष्यो का सम्मेलन किया गया।

# (१०) शुद्धोदन का संदेश

तथागत के उसी वेणुवन उद्यान मे विहार करते समय, शुद्धोदन महाराज ने सुना—''मेरेपुत्र ने छ वर्ष तक दुष्कर तपस्या कर, बुद्ध के उत्तम पद को प्राप्त किया है। वह धर्म-उपदेश का प्रारम्भ (=धर्मचक्रप्रवर्तन) कर, राजगृह के समीप वेणुवन मे विहार करता हैं"। फिर एक मत्री (=ग्नमात्य) को बुला कर कहा —''ग्ररे! ग्राग्रो, तुम एक हजार ग्रादिमयो को साथ ले, राजगृह जाकर मेरे वचन से, मेरे पुत्र को कहो—'ग्रापके पिता महाराज शुद्धोदन (ग्रापका) दर्शन करना चाहते हैं', कह ग्रौर मेरे पुत्र को (बुलाकर) ले कर ग्राग्रो।"

"ग्रच्छा देव।" कह उसने राजा के वचन को शिरोधार्य किया। फिर वह एक हजार ग्रादिमियो को साथ ले, शीघ्र ही साठ योजन रास्ते को पार कर (राजगृह) पहुँचा। बुद्ध (उस समय) (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका) चार प्रकार की परिषद् के बीच बैठ, धर्म उपदेश कर रहे थे। उसी समय वह विहार मे प्रविष्ठ हुग्रा। उसने 'राजा का भेजा सन्देशा ग्रभी पडा रहें' सोच परिषद् के ग्रन्त मे खडे खडे शास्ता का धर्म उपदेश सुना;

<sup>ै</sup>ये धम्मा हेतुष्पभवा तेसं हेतुं तथागतो स्राह ! तेसं च यो निरोधो, एवं वादी महा समणो।

श्रीर खड़े ही खड़े हज़ार श्रादिमियो सिंहत श्रह्तं पद प्राप्त कर उसने प्रब्रज्या मॉगी। भगवान् ने 'भिक्षुश्रो । श्राश्रो' कह हाथ पसारा। उसी समय वे सब योगबल से पात्र-चीवर-धारी हो गये। सौ वर्ष के स्थिवर (=बुद्धिभिक्षु) जैसे हो गये।

'म्रर्हत् पद प्राप्त होने पर म्रार्य-लोग मध्यस्थ भाव को प्राप्त हो जाते हैं', इसलिए उसने राजा के भेजे सन्देश को नहीं कहा। राजा ने 'न गया हम्रा (ग्रमात्य) ही लौटता है, न कोई समाचार ही सुनाई देता है' सोच; 'ग्ररे ! म्रा, तुजा' कह, उसी प्रकार से दूसरा ग्रमात्य भेजा। वह भी जा कर, पूर्व प्रकार से परिषद् सहित ऋहंत्-पद को प्राप्त हो चुप रह गया। राजा ने इसी प्रकार हजार हजार मनुष्यों के साथ नौ ग्रमात्य भेजे। सब ग्रपना ग्रपना (ग्रात्मोन्नति का) काम समाप्त कर, चुप्पी साध, वही विहरने लगे। कोई लौट कर समाचार भी कहने वाला न मिलने से, राजा सोचने लगा-"इतने ब्रादिमयो ने मेरे प्रति स्नेह का भाव रखते हुए भी कोई समाचार तक नही दिया, तो अब कौन मेरे वचन को करेगा ?" (इस प्रकार सोचते हुए) सारी राजकीय परिषद् पर विचार करते हुए, उसने काल उदायी को देखा। वह राजा का सर्वार्थसाधक, (प्राइवेट सेकेटरी) ग्रान्तरिक, ग्रतिविश्वासी ग्रमात्य था। वह बोधिसत्त्व के साथ एक ही दिन पैदा हुम्रा था (म्रौर) साथ का धूली-खेला मित्र था। राजा ने उसे बुलाया तात! काल-उदायी! में अपने पुत्र को देखना चाहता हुँ, नौ हजार ग्रादिमयों को भेजा। एक ग्रादमी भी ग्रा कर समाचार (=शासन) भी कहने वाला नही है। शरीर का कोई ठिकाना नही। मैं जीते जी पुत्र को देख लेना चाहता हैं। क्या मेरे पुत्र को मुक्ते दिखा सकोगे ?"

''देव <sup>।</sup> दिखा सक्रूँगा, यदि साधु बनने (=प्रत्रज्या लेने) की ग्राज्ञा मिले।'' ''तात ! तु प्रत्रजित (हो) या ग्रप्रज्ञजित, मेरे पुत्र को लाकर दिखा।''

"देव ! ग्रन्छा" (कह) वह राजा का सन्देश (=शासन) ले, राजगृह गया ग्रीर बुद्ध (=शास्ता) के धर्म उपदेश के समय सभा (परिषद्) के ग्रन्त में खडा हो, धर्म सुन, साथियो (=परिवार) सहित ग्रर्हत्फल को प्राप्त हो "भिक्षु! ग्राग्रो" के वचन से साधु (=प्रत्रजित) हुग्रा।

भगवान् ने (=शास्ता) बुद्ध हो कर पहला वर्षावास ऋषिपतन में किया। वर्षावास समाप्ति पर प्रवारणा कर, उरुवेला में जा, वहाँ तीन

मास रह, तीनो जटाधारी (=जिटल) भाइयों को रास्ते पर ला, एक हजार भिक्षुत्रों के साथ, पौष मास की पूणिमा को राजगृह जा, (वहाँ) दो मास रहे। इतने में बनारस से चले पाँच मास बीत गये। सारा हेमन्त-ऋतु समाप्त हो गया। उदायी स्थिवर, श्राने के दिन से सात-ग्राठ दिन बिता, फाल्गुण की पूणिमासी को सोचने लगे—हेमन्त बीत गया। बसन्त ग्रा गया। मनुष्यो ने खेत (सस्य ग्रादि) काट कर, सामने के स्थानो पर रास्ता छोड दिया है। पृथ्वी हरित तृण से ग्राच्छादित है। बन-खण्ड फूलो से लदे हैं। रास्ते जाने लायक हो गये हैं। यह बुद्ध (=दश-बल) के लिए ग्रपने सम्बन्धियो (=जाति) को मिलने (=सग्रह करने) का (यह ठीक) समय है। (यह सोच) भगवान् के पास जा कर बोले—

"भदन्त इस समय वृक्ष पत्ते छोड़ फलने के लिए (नये पत्तों से) श्रंगार-वाले (जैसे) हो गये हैं। उनकी चमक श्रग्नि-शिखा सी है। महावीर! यह शाक्यो (=भगीरथों भगीरसो ) (के संग्रह करने) का समय है।

न बहुत शीत है, न बहुत उष्ण है, न भोजन की बहुत कठिनाई है। भूमि हरियाली से हरित है। महामुनि! यह (चलने का) समय है,"

(इत्यादि) साठ गाथास्रो द्वारा बुद्ध (=दश-बल) से (स्रपने) कुल के नगर को जाने के लिए यात्रा की स्तुति की। भगवान् (=शास्ता) ने पूछा— "उदायी! क्या है, जो (तुम) मधुर स्वर से यात्रा की स्तुति कर रहे हो?"

"भन्ते । स्रापके पिता महाराज शुद्धोदन (स्रापका) दर्शन करना चाहते हैं। (स्राप) जातिवालो का सम्रह करे।"

"उदायी । ग्रच्छा ? मै जाति वालो का सग्रह करूँगा; भिक्षु-सघ को कहो कि यात्रा की तैयारी (= व्रत) करे।"

''ग्रच्छा भन्ते !'' (कह) स्थविर ने (भिक्षु-सघ को) कहा।

#### (११) कपिलवस्तु-गमन

भगवान् दस हजार ग्रग-मगध वासी कुल-पुत्रों तथा दस हजार किपलवस्तु वासी कुल-पुत्रो, सब बीस हजार ग्रर्हत् भिक्षुग्रो के साथ राजगृह से निकल कर,

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>शब्द ग्रस्पव्ट है।

प्रति दिन योजन भर चलते थे। राजगृह से साठ योजन (दूर) कपिलवस्तु दो मास में पहॅचने की इच्छा से धीमी चारिका से चलते थे। स्थविर भी भगवान् के चल पड़ने की बात को राजा से कहने की इच्छा से श्राकाश मार्ग से जा राजा के निवास स्थान पर प्रकट हए। राजा ने स्थविर को देख प्रसन्न-चित्त हो, (उन्हे) बहुमूल्य ग्रासन पर बिठा, ग्रपने लिए तैयार किये गये, नाना प्रकार के स्वाद् भोजन से पात्र भर कर दिया। स्थविर ने उठ कर चलने का सा ढंग किया। "बैठ कर, भोजन करे" (राजा ने कहा) "महाराज! मैं भगवान् (=शास्ता) के पास जा कर भोजन करूँगा" (स्थविर ने उत्तर दिया)।

''शास्ता कहाँ हैं ?''

"महाराज! बीस हजार भिक्षुग्रो सिहत वह तुम्हारे देखने के लिए चल पड़े हैं।"

राजा ने प्रसन्न-चित्त हो कहा -- "ग्राप इस भोजन को ग्रहण करे ग्रीर जब तक मेरा पुत्र यहाँ नही पहुँचता, तब तक उसके लिए यही से भिक्षा ( = पिण्ड-पात) ले जाये।" स्थविर ने स्वीकार किया। राजा ने स्थविर को (भोजन) परोस कर दिया, ग्रौर (भिक्षा-पात्र) में सूगन्धित चूर्ण लगा, उसे उत्तम भोजन से भर 'इसे तथागत को दे' कह, पात्र स्थिवर के हाथ मे दिया। स्थिवर ने सब के सामने ही, पात्र को ग्राकाश में फेक दिया; श्रीर ग्रपने श्राप भी ग्राकाश मे उड भिक्षा (=पिण्डपात) लाकर भगवान (=शास्ता) के हाथ मे दी। भगवान् (=शास्ता) ने वह भ्राहार ग्रहण किया। इस प्रकार स्थविर प्रति दिन (ग्राहार) लाते थे।

यात्रा मे भगवान् (शास्ता) ने राजा की ही भिक्षा (=पिण्डपात) ग्रहण की। स्थविर ने भी प्रतिदिन भोजन करने के बाद "भगवान् । श्राज इतना चले ग्राये, भगवान् ! ग्राज इतना चले ग्राये" (कह) भगवान् के दर्शन से पहले ही बुद्ध के गुणो की कथा से सारे राजपरिवार मे बुद्ध (=शास्ता) के प्रति श्रद्धा पैदा कर दी। इसीलिए भगवान् ने 'भिक्षुग्रो! मेरे गृहस्थो का मन-प्रसन्न करने वाले (=कूलप्रसादक) शिष्य (=श्रावक) भिक्षुग्रो मे काल-उदायी सर्वश्रेष्ठ हैं" (कह) उसे ऊँचा (=ग्रग्र) स्थान दिया है।

शाक्य भी भगवान् के पहुँचने पर, 'ग्रपनी जाति के (सर्व)श्रेष्ठ (पुरुष) के दर्शन की इच्छा से एकत्रित हए, और 'ग्रपनी सभा मे' भगवान के ठहराने के लिए स्थान पर विचार किया। उन्होने न्यग्रोध (नामक) शाक्य के ग्राराम को रमणीय जान, वहाँ सब प्रकार से सफाई कराई। ग्रगवानी के लिए पहले गन्ध, पुष्प हाथ में ले, सब ग्रनङ्कारों से ग्रनकृत, नगर के छोटे छोटे लडकों तथा लड़िकयों को भेज फिर राजकुमारों ग्रौर राजकुमारियों को भेजा। उनके बाद स्वय गन्ध, पुष्प, चूर्ण ग्रादि से भगवान् की पूजा करते, (उन्हें) न्यग्रोधाराम लिवा ले गये। वहाँ बीस हजार ग्रहेंतों के साथ (जा कर) भगवान्, बिछे श्रेष्ठ बुद्ध के ग्रासन पर बैठे। शाक्य ग्रभमानी स्वभाव के थे। उन्होंने 'सिद्धार्थ-कुमार हमसे छोटा है, हमारा कनिष्ठ है, हमारा भानजा है, हमारा पुत्र है, हमारा नाती हैं', सोच छोटे छोटे राजकुमारों को कहा—''तुम प्रणाम करो। हम तुम्हारे पीछे बैठेंगे।'' उनके इस प्रकार (बिना प्रणाम किये हीं) बैठे रहने पर, भगवान् ने उनके मन की बात जान बिचारा—आति-सम्बन्धी मुभे प्रणाम नहीं कर रहे हैं। ग्रच्छा तो में उनसे प्रणाम कराऊँगा'' ग्रौर ग्रभिज्ञा के सहारे ध्यानावस्थित हो, ग्राकाश में चढ़, उनके सिर पर पैर की धूली बखेरते हुए से, गण्डम्ब वृक्ष के नीचे किये गये यमक नामक दिव्य-प्रदर्शन (यमक-प्रातिहार्य) जैसी प्रातिहार्य की।

राजा ने इस ग्राश्चर्य को देख कर कहा—'भगवान् ! में उत्पन्न होने के दिन, तुम्हे काल देवल की वन्दना के लिए ले गया था; उस समय (तुम्हारे) चरणो को उलट कर ब्राह्मण के सिर में लगे देख, मैंने तुम्हारी वन्दना की। वह मेरी प्रथम वन्दना (थी)। किर खेत बोने के उत्सव के दिन, जामुन की छाया में सुन्दर शय्या पर बैठे रहने के समय, दिन ढल जाने पर भी जामुन के वृक्ष की छाया का बना रहना देख कर भी (मैंने तुम्हारे) चरणों में वन्दना की थी। वह मेरी दूसरी वन्दना (थी)। ग्रब पहले कभी न देखी गई यह प्राति-हार्य, देख कर भी, मैं तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूँ। यह मेरी तीसरी वन्दना है। राजा के वन्दना करने पर, एक शाक्य भी ऐसी नहीं बचा, जो बिना वन्दना किये रहा हो। सभी ने वन्दना की। इस प्रकार भगवान् जाति-सम्बन्धियों से प्रणाम करवा, ग्राकाश से उत्तर बिछे ग्रासन पर बैठे। भगवान् के बैठने पर बाति-सम्बन्धियों का समूह ग्रत्यन्त प्रसन्न (==शिखर-प्राप्त) हो सभी एकाग्र चित्त हो बैठे।

तब महामेघ ने कमल-वर्षा (=पुष्कर-वर्षा) स्रारम्भ की। ताम्बे के रग

का पानी, नीचे, शब्द करता हुम्रा बहने लगा। भीगने की इच्छा वाले भीगते थे, जो नही भीगना चाहते थे, उनके शरीर पर बूँद मात्र भी न गिरती थी। यह देख सभी चिकत हुए, ग्रीर कहने लगे—ग्रहो! ग्राश्चर्यं! श्रहो! ग्रद्भुत ।

बुद्ध ने कहा कि यहाँ केवल श्रभी मेरे वश के समागम के समय ही वर्षा नहीं बरसी पहले भी वह बरसी हैं श्रीर इस श्रथं को स्पष्ट करने के लिए, महावेस्सन्तर-जातक कही। धर्म उपदेश सुन, सभी उठ, प्रणाम कर चले गये। न राजा ने, न राजा के महामात्य ने, श्रीर न दूसरे किसी ने भी कहा कि भगवान्। कल हमारी भिक्षा ग्रहण करे।

# (१२) सम्बन्धियों से मिलन

भ्रगले दिन बीस हजार भिक्षुम्रों सिहत बुद्ध (=शास्ता) ने किपलवस्तु, में भिक्षाटन के लिए प्रवेश किया। (वहाँ) न किसी ने उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित ही किया, न किसी ने पात्र ही ग्रहण किया। भगवान् ने इन्द्रकीलें पर खड़े हो सोचा—''पूर्व के बुद्धों ने (अपने) कुल के नगर में कैसे भिक्षाटन किया? क्या बीच के घरों को छोड़ कर (सिफं) बड़े बड़े ग्रादिमयों के ही घर गये, ग्रथवा एक ग्रोर से सब के घर?" फिर देखा कि एक बुद्ध ने भी बीच बीच में घर छोड़ कर भिक्षाटन नहीं किया हैं, (फिर) निश्चय किया—''मेरा भी (कुल) ग्रब यही (बुद्धों का) कुल हैं, इसलिए मुभे ग्रपना यह कुल धर्म ग्रहण करना चाहिए। ऐसा करने से भविष्य में मेरे शिष्य (=श्रावक) मेरा ही ग्रनुकरण करते (हुए) भिक्षाचार के व्रत को पूरा करेगे।" ऐसा (सोच), छोर के घर से ही, एक ग्रोर से भिक्षाचार ग्रारम्भ किया।

"म्रार्य सिद्धार्थंकुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह (सुन) लोग दुतल्ले, तितल्ले प्रासादो पर से खिडकियाँ खोल देखने लगे।

राहुल-माता देवी ने भी—'ग्रार्यपुत्र इसी नगर में राजाग्रो के बड़े भारी ठाट से सोने की पालकी ग्रादि में (चढकर) घूमें, ग्रीर ग्राज (इसी नगर में)

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातक (५४७)

<sup>&</sup>lt;sup>3</sup> किले के द्वार के बाहर खड़ा खम्भा।

वह शिर-दाढ़ी मुँडा, काषाय वस्त्र पहिन, कपाल (=खपड़ा) हाथ में ले, भिक्षाचार कर रहे हैं! क्या (यह) शोभा देता हैं कह, खिडकी खोल कर देखा कि परम वैराग्य से उज्ज्वल (बुद्ध का) शरीर नगर की सडको को प्रभा-सित कर रहा है। चारो श्रोर व्याम भर प्रभा वाली, बत्तीस महापुरुष लक्षणो श्रौर अस्सी अनुव्यञ्जनो से अलकृत, अनुपम बुद्ध शोभा से शोभायमान भगवान् को देखां और (उसका) शिर से पाँव तक (इस प्रकार) आठ नरसिंह गाथाओं में वर्णन किया—

"चिकने, काले, कोमल, घुँघरवाले केश है; सूर्य्य सदृश निर्मल तलवाला ललाट है, सुन्दर, ऊँची, कोमल, लम्बी नासिका है; नर्रासह भ्रपने रिम-जाल को फैला रहे है "

इत्यादि फिर (जा कर) राजा से कहा—"ग्रापका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है।"

राजा घबराया हुन्ना, हाथ से घोती सँभालते, जल्दी जल्दी निकल कर, वेग से जा, भगवान् के सामने खडा हो बोला— "भन्ते । हमे क्यो लजवाते हो ? किस लिए भिक्षाटन करते हो ? क्या यह प्रगट करते हो कि इतने भिक्षुग्रो के लिए (हमारे यहाँ) भोजन नहीं मिलता ?"

''महाराज !हमारे वश का यही स्राचार है ।''

"भन्ते! निश्चय से हम लोगों का वश महा सम्मत (= मनु) का क्षत्रिय वश है ? इस वश में एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नहीं हुग्रा।"

"महाराज! वह राज-वश तो श्रापका वश है। हमारा वश तो दीपङ्कर-कौण्डिन्य .....काश्यप (श्रादि) का बुद्ध-वश है। श्रौर दूसरे श्रनेक सहस्र बुद्ध भिक्षाचारी (रहे हैं), भिक्षाचार से ही जीविका चलाते रहे हैं।" उसी समय सडक में खड़े ही खड़े यह गाथा कही —

"उद्योगी ब्रालसी न बने, सुचरित धर्म का ब्राचरण करे, धर्माचारी (पुरुष इस लोक में भी ब्रौर परलोक में भी सुख-पूर्वक सोता है ।"

गाथा की समाप्ति पर राजा स्रोतापत्ति-फल में स्थित हुआ। (फिर) :—
"सुचरित कर्म का स्राचरण करे, दुश्चरित कर्म (=धर्म) का स्राचरण न
करे। धर्मचारी (पुरुष) इस लोक स्रौर परलोक में सुख पूर्वक सोता है।"
इस गाथा को सुन कर राजा सकृदागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। महाधम्मपाल

जातक है को सुन कर अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। अन्त में मृत्यु के समय, श्वेत छत्र के नीचे, सुन्दर शय्या पर लेटे ही लेटे अहंत्पद को प्राप्त हुआ। राजा को अरण्यवास कर योगाभ्यास आदि प्रयत्न नहीं करना पडा। (उसने) स्रोत-आपित-फल का साक्षात्कार कर, भगवान् का पात्र ले, मण्डली सहित भगवान् को महल पर ले जाकर, उत्तम खाद्य भोज्य परोसे। भोजन के बाद एक राहुल-माता को छोड, शेष सभी रिनवास ने आ आ कर भगवान् की वन्दना की। वह परिजन द्वारा—'जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करों' कहने पर 'यदि मेरे मे गुण है, तो आर्यपुत्र स्वय मेरे पास आयेगे; आने पर ही वन्दना करूँगी' कह न गई।

भगवान् राजा को पात्र दे, दो प्रधान शिष्यो (—सारिपुत्र, मौद्गल्यायन) के साथ, राजकुमारी के शयनागार (क्रित्री गर्भ) मे जा "राजकन्या को यथारुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना" कह बिछे ग्रासन पर बैठे। उसने जल्दी से ग्रा पैर पकड़ कर, शिर को पैरो पर रख, ग्रपनी इच्छानुसार वन्दना की। राजा ने भगवान् के प्रति राजकन्या के स्तेह-सत्कार ग्रादि गुण को कहा— "भन्ते! मेरी बेटी ग्रापके काषाय-वस्त्र पहिनने को सुन कर, तभी से काषाय-धारिणी हो गई। ग्रापके एक बार भोजन करने को सुन, एकाहारिणी हो गई। ग्रापके ऊँचे पलड़ के छोड़ने की बात सुन, तख्ते पर सोने लगी। ग्रापके माला, गन्ध ग्रादि से विरत होने की बात सुन, माला गन्ध ग्रादि से विरत हो गई। ग्रपने पीहर वालों के 'हम तुम्हारी सेवा सुश्रूषा करेगे' ऐसा पत्र भेजने पर एक सम्बन्धी को भी नही देखती! भगवान्! मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।"

"महाराज । इसमे (कुछ) ग्राश्चर्य नहीं, इस समय तो ग्रापकी सुरक्षा में रह, परिपक्व ज्ञान के साथ राजकन्या ने ग्रपनी रक्षा की है। पहले तो बिना किसी रक्षा के, ग्रपरिपक्व ज्ञान रखते भी, पर्वत के नीचे विचरते समय ग्रपनी रक्षा की थी" कह 'चन्द किन्नर जातक' सुना, बुद्ध ग्रासन से उठ कर चले गये।

दूसरे दिन (नन्द) राजकुमार का स्रभिषेक, गृहप्रवेश, विवाह—ये तीन मगल-उत्सव थे। उस दिन, भगवान् नन्द के घर जाकर, उसे प्रक्रजित करने

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातक (४४७)। <sup>२</sup> जातक (४८४)।

की इच्छा से नन्दकुमार के हाथ में पात्र दे मगल कह, ग्रासन से उठ कर चल पड़े। (नन्द की नव वधू) जनपद-कल्याणी ने कुमार को पीछे जाते देखा पर, "ग्रार्य पुत्र! जल्दी ग्राइयो" कह गर्देन बढा कर देखने लगी। राजकुमार भी (सकोचवश) भगवान् को 'पात्र ग्रहण कीजिये' न कह, विहार (तक) चला गया। उसकी (ग्रपनी) इच्छा न रहने पर भी भगवान् ने उसे प्रव्रजित किया। इस प्रकार भगवान् ने किपलपुर जाने के तीसरे दिन नन्द को साधु बनाया।

# (१३) पुत्र को दाय-भाग

सातवे दिन राहुल-माता ने (राहुल) कुमार को अलकृत कर, भगवान् के पास यह कह कर भेजा, "तात । देख ! बीस हजार साधुओ श्रमणो के मध्य में (जो वह) सुनहले उत्तम रूप वाले साधु (=श्रमण) है वही तेरे पिता है। उनके पास बहुत से खजाने थे; जो उनके (घर से) निकलने के बाद से नहीं दिखाई देते। जा, उनसे वरासत माँग। (उनसे कह) "तात! में (राज-) कुमार हूँ। अभिषेक प्राप्त करके चक्रवर्ती (-राजा) बनना चाहता हूँ। मुभे धन चाहिए। धन दे। पुत्र पिता की सम्पत्ति का स्वामी होता है।" कुमार भगवान् के पास जा, पिता का स्नेह पा प्रसन्न-चित्त हो, "श्रमण! तेरी छाया सुखमय है" कह और भी अपने अनुकुल (कुछ कुछ) कहता खड़ा रहा।

भगवान् भोजन के बाद (दान का) महत्त्व कह श्रासन से उठ कर चले गये । कुमार भी, 'श्रमण! मुफे दायज दे।' कहता भगवान् के पीछे पीछे हो लिया। भगवान् ने कुमार को नही लौटाया। परिजन भी उसे भगवान् के साथ जाने से न रोक सके। इस प्रकार वह भगवान् के साथ ग्राराम तक चला गया। भगवान् ने सोचा— "यह पिता के पास के जिस घन को माँगता है, वह (धन) सासारिक है, नाशवान है। क्यो न में इसे बोधिमण्ड में मिला ग्रपना सात प्रकार का श्रार्य-धन दूँ। इसे ग्रलौकिक वरासत का स्वामी बनाऊँ (ऐसा सोच) ग्रायुष्मान सारिपुत्र को कहा— "सारि-

<sup>ै</sup> सिद्धार्थ की मौसी श्रौर सौतेली माँ महागौतमी प्रजापती का पुत्र ।
ेश्रद्धा, शील ( = सदाचार) लज्जा, निन्दा-भय, (बहु-)श्रुत होना, त्याग तथा प्रजा।

पृत्र । तो लो राहुल-कुमार को साधु बनाग्रो।" राहुल-कुमार के साधु होने पर राजा को ग्रत्यन्त दुख हुग्रा। उस दुख को न सह सकने के कारण राजा ने (उसे) भगवान से निवेदन कर, वर माँगा—"ग्रच्छा भन्ते! श्रार्य (भिक्षु लोग) माता पिता की ग्राज्ञा के बिना (उनके) पुत्र को प्रव्रजित न करे" भगवान ने राजा को वह वर दिया।

फिर एक दिन (भगवान्) राज-महल मे प्रात काल के भोजन के लिए गये। (भोजन) कर चुकने पर, एक ग्रोर बैठे राजा ने कहा— "भन्ते! ग्रापके दुष्कर तपस्या करने के समय, एक देवता ने मेरे पास ग्रा कर कहा कि तुम्हारा पुत्र मर गया। उसके वचन पर न विश्वास करके उसके वचन का खण्डन करते हुए मैंने कहा" "मेरा पुत्र बुद्ध-पद प्राप्ति किये बिना मर नहीं सकता"।

ऐसा कहने पर, भगवान् ने कहा, "जब तुमने उस समय मे, हिंडुयाँ दिखा कर, 'तुम्हारा पुत्र मर गया' कहने पर विश्वास नहीं किया, तो श्रब क्या विश्वास करोगे ?" इसके श्रर्थ को स्पष्ट करने के लिए (भगवान् ने) महाधम्मपाल जातक कहा। कथा की समाप्ति पर राजा श्रनागमिफल में स्थित हुश्रा।

#### (१४) श्रनाथपिण्डिक का दान

इस प्रकार पिता को तीन फलों में स्थापित कर, भिक्षुसघ सहित भगवान् (किपलवस्तु से चल कर) फिर एक दिन राजगृह जा सीतवन में ठहरे। (उस) समय, अनाथपिण्डिक गृहपित पाँच सौ गाडियों में माल भर, राजगृह जा अपने प्रिय मित्र सेठ के घर ठहरा था। वहाँ उसने भगवान् बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुनी। फिर अत्यन्त प्रात.काल (उठा और) देवताओं के प्रताप से खुले द्वार से बुद्ध के पास पहुँचा। धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हो, दूसरे दिन भिक्षु-सघ सहित बुद्ध को महादान दे, श्रावस्ती आने के लिए भगवान् (=शास्ता) से वचन लिया।

(स्रनाथिपिण्डक ने) रास्ते में पैतालीस योजन तक लाख लाख खर्च करके, योजन योजन पर विहार बनवाये। स्रद्वारह करोड स्रशर्फी (=सुवर्ण) बिछा कर जेतवन मोल ले, उसने मकान बनवाना स्रारम्भ किया। (वहाँ) बीच में

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातक (४४७)।

दश-बल बुद्ध की गन्धकुटी बनवाई। उसके इदं गिदं ग्रस्सी महास्थिवरो के पृथक् पृथक् निवास, एक दीवार-दो दीवार-वाली, हस के ग्राकार की लम्बी शालाये, मण्डप तथा दूसरे बाकी शयनासन, पृष्करिणियाँ, टहलान (चक्रमण), रात्रि के स्थान श्रौर दिन के स्थान बनवाये। (इस प्रकार) श्रद्वारह करोड़ के खर्चं से रमणीय स्थान मे सुन्दर विहार बनवा, भगवान् के लिवा लाने के लिए दूत भेजा। भगवान् (चशास्ता) दूत का सन्देश सुन, महान् भिक्षु-सघ के साथ राजगृह से निकल क्रमश श्रावस्ती नगर मे पहुँचे।

महासेठ भी विहार-पूजा की तैयारी (पहले ही से) कर चुका था। उसने तथागत के जेतवन मे प्रवेश करने के दिन, सब ग्रलकारों से ग्रलकृत पाँच सौ कुमारों के साथ, सब ग्रलकारों से प्रतिमण्डित (ग्रपने) पुत्र को ग्रागे भेजा। ग्रपने साथियों सहित वह, पाँच रग की चमकती हुई, पाँच सौ पताकाये ले कर बुद्ध के ग्रागे ग्रागे चला। उसके पीछे महासुभद्रा ग्रौर चूळसुभद्रा (नाम की) सेठ की दो बेटियाँ, पाँच सौ कुमारियों के साथ, पूर्ण-घट ले कर निकली। उनके पीछे सब ग्रलकारों से ग्रलकृत सेठ की देवी (—भार्या) पाँच सौ स्त्रियों के साथ, भरा थाल लेकर निकली। उसके बाद सफेद वस्त्र धारण किये स्यव सेठ वैसे ही श्वेत वस्त्र धारण किये ग्रन्य पाँच सौ सेठों को साथ ले, भगवान् की ग्रगवानी के लिए चला।

यह उपासक मण्डली आगे जा रही थी। (पीछे पीछे) भगवान् महाभिक्षु-सघ से घिरे हुए, जेतवन को अपनी सुनहरी शरीर-प्रभा से रिञ्जित करते हुए, अनन्त बुद्ध-लीला और अनुलनीय बुद्ध शोभा के साथ जेतवन में प्रविष्ट हुए। तब अनाथपिण्डिक ने उन्हें पूछा—"भन्ते । में इस विहार के विषय में कैसे क्या करूँ?"

"गृहपति । यह विहार श्राये हुए तथा न श्राये हुए भिक्षु-सघ को दान कर दे।" 'श्रच्छा भन्ते !' कह महासेठ ने सोने की भारी ले, बुद्ध के हाथ पर (दान का) जल डाल, ''में यह जेतवन विहार सब दिशा श्रौर सब काल (श्रागत श्रना-

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> श्रेष्ठी नगर का भ्रवैतिनक पदाधिकारी होता था। वह धनिक व्यापा-रियों में से बनाया जाता था।

गत चतुर्दिश) के बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसघ को देता हूँ कह प्रदान किया। शास्ता ने विहार को स्वीकार कर दान की प्रशसा करते कहा .—

"यह गर्मी सर्दी से, हिंस्र जन्तुश्रों से, रेंगने वाले (ः सर्पादि) जानवरों से, मच्छरों से, बूँदा बॉबी से, वर्षा से ग्रौर घोर हवा-धूप से रक्षा करता है। यह ग्राश्रय के लिए, सुख के लिए, ध्यान के लिए ग्रौर योगाभ्यास के लिए (उपयोगी है) इसीलिए बुद्ध ने विहार-दान को श्रेष्ठ-दान (ः ग्रुप्रदान) कह, उसकी प्रशंसा की है। ग्रुपनी भलाई चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि सुन्दर विहार बनवाये ग्रौर उनमें बहु-श्रुतो को निवास कराये ग्रौर प्रसन्न-चित्त उन सरल चित्त वालों को, ग्रुन्न-पान वस्त्र तथा निवास (-श्रयनासन) प्रदान करे। तब (ऐसा करने पर) वे सब दुःखों के नाश करने वाले, धर्म का उपदेश करते हैं, जिसे जान कर वह मलरहित (ः ग्रुन्नाश्रव) परिनिर्वाण को प्राप्त होगा"

इस प्रकार विहार-दान का माहात्म्य कहा।

दूसरे दिन से अनाथिपिण्डिक ने विहार-पूजोत्सव आरम्भ किया। विशाखा का प्रासाद का पूजोत्सव चार महीने में समाप्त हुआ। लेकिन अनाथिपिण्डिक का विहार-पूजोत्सव नौ महीनों में समाप्त हुआ था। विहार पूजोत्सव में भी अठारह करोड ही खर्च हुए। इस प्रकार (उसने) उस विहार ही में चौवन करोड़ धन का दान किया।

पूर्व मे भगवान विपस्सी के समय, पुन्नवसुमित्र नामक सेठ ने सोने की ईंटो को सिरे से सिरे लगा कर, (उससे भूमि) खरीद कर, उसी स्थान मे योजन भर का सघाराम बनवाया था। भगवान् शिख के समय श्रीवर्द्ध नामक सेठ ने सोने के फलको को फैला कर (भूमि) खरीद कर, उसी स्थान पर तीन गव्यूति (६ मील) भर का सघाराम बनवाया था। भगवान् विश्वभू (चित्रसभू) के समय स्वस्ति (च्सोत्थि) नामक सेठ ने सोने के हस्ति-पदो के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर ग्राधे-योजन भर का सघाराम बनवाया था। भगवान् ककुसन्ध के समय श्रच्युत नामक सेठ ने सोने की ईंटो के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर गव्यूति (२ मील) भर का सघाराम बनवाया। भगवान् को-नागमन के समय उग्र नामक सेठ ने सोने के कच्छुग्रो के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर, ग्राधे गव्यूति (एक मील) का सघाराम बनवाया। भगवान् काश्यप के समय मे सुमङ्गल नामक सेठ ने सोने की ईंटों के फैलाव से खरीद

कर, उसी स्थान पर सोलह करीष तक का संघाराम बनवाया। लेकिन हमारे भगवान् के समय श्रनाथपिण्डक सेठ ने करोडो कार्षापणो के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर श्राठ करीष भर मे सघाराम बनवाया। यह स्थान सभी बुद्धों से श्रपरित्यक्त स्थान है। इस प्रकार बोधिमण्ड में सर्वज्ञता-प्राप्ति से महापरिनिर्वाण-मञ्च तक, जिस जिस स्थान पर भगवान् रहे, यह सब 'सन्तिके-निदान' है।

इसीके सम्बन्ध से (ग्रागे) सब जातको का वर्णन करेगे। जातकट्ठकथा की निदान-कथा समाप्त

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>एक करीष≔४ श्रम्मण । चार श्रम्मण बीज बोने की जगह।

# पहला परिच्छेद

## १. अपण्णक वर्ग

## १. श्रपएण्क जातक

भ्रप्पणक (इत्यादि)—यह धर्म-कथा भगवान् ने श्रावस्ती के जेतवन महा-विहार में रहते समय कही। किस के कारण यह कथा कही गई? एक सेठ के पाँच सौ तैथिक मित्रों के कारण।

## क. वर्तमान कथा

एक दिन श्रनाथिण्डिक सेठ, ग्रपने पाँच सौ श्रन्य-तीथिंक मित्रो को साथ ले, बहुत सा गन्ध, माला, लेप, तेल, मधु, मक्खन, वस्त्र-ग्राच्छादन ग्रादि लिवाकर, जेतवन गया। (वहाँ) भगवान् की वन्दना कर, माला ग्रादि से पूजा कर, भिक्षु-सघ को भेषज तथा वस्त्र ग्रादि प्रदान कर, बैठने के सम्बन्ध के छः दोषों को छोड, एक ग्रोर बैठ गया। वे दूसरे मत के शिष्य भी तथागत की वन्दना कर, शास्ता के पूर्ण चन्द्र की शोभा से शोभित मुख, लक्षण श्रौर श्रनुलक्षणो (श्रनुव्यज्जनो) से मण्डित, तथा चारो ग्रोर चार हाथ (=व्याम) की दूरी तक प्रभा से प्रकाशित सुन्दर शरीर (=ब्रह्म काय)—जिससे समय समय पर जोडा जोडा होकर घनी बुद्ध-किरणे निकलती थी—को देखते, श्रनाथिण्डिक के समीप ही बैठ गये।

१ किसी ग्रन्य पन्थ के ग्रन्यायी।

<sup>े</sup> अत्यन्त समीप, अत्यन्त दूर जिधर से हवा आती हो उधर, ऊँचे स्थान पर, बिल्कुल सामने तथा बिल्कुल पीछे हो कर बैठना—मे बैठने के छः बोष हैं।

तब बुद्ध ने उन्हें, मन शिलातल पर सिंह-नाद करते तरुण सिंह की तरह, या वर्षा के गरजते मेघ की तरह, या ग्राकाश-गङ्गा के ग्रवतरण की तरह, या रत्नो की माला गूँधते हुए की तरह, ग्राठ बातो से युक्त, श्रवण-योग्य, कमनीय ग्रौर उत्तम स्वर से नाना प्रकार की विचित्र धर्म-कथाये कही। उन्होंने बुद्ध के उपदेश सुन, प्रसन्न चित्त हो, उठ कर बुद्ध की वन्दना की, ग्रौर दूसरे मतो की शरण छोड बुद्ध की शरण ग्रहण की। उस दिन से ग्रारम्भ करके, वे नित्य-प्रति, ग्रनाथिपिण्डक के साथ, गन्ध माला ग्रादि हाथ में ले, विहार जा कर धर्म सुनते, दान देते, सदाचार (—शील) रखते तथा व्रत (—उपो-सथ-कमें) करते थे।

दूसरे दिन भगवान् श्रावस्ती से राजगृह चले गये। बुद्ध (=तथागत) के जाने पर, वे ग्रन्य-तीर्थिक श्रावक तथागत की शरण छोड, फिर दूसरे मतो की शरण ग्रहण कर, ग्रपने पहले स्थान पर ही चले गये। भगवान् सात ग्राठ मास बिता कर फिर जेतवन लौट ग्राये। ग्रनाथिपिष्डिक फिर उन्हें (साथ) ले जा कर, बुद्ध के पास जा गन्ध ग्रादि से पूजा तथा प्रणाम कर, एक ग्रोर बैठा। वे (तैर्थिक) भी भगवान् की वन्दना कर, एक ग्रोर बैठ गये। तब (ग्रनाथ-पिष्डिक ने) बुद्ध (=तथागत), से, (उनके) चारिका पर चले जाने के समय, उन (तैथिको) के (तथागत की) शरण छोड, फिर दूसरे मतो की शरण ग्रहण करके, ग्रपने पहले स्थान पर चले जाने की बात कही।

भगवान् ने ग्रनन्त (=ग्रप्रमाण) करोड कल्पों तक निरन्तर वाणी सम्बन्धी सदाचार को पालन करने के प्रताप से, दिव्य सुगन्धो से सुगन्धित, नाना प्रकार की सुगन्धियो से भरे रत्न-करण्ड को खोलते हुए की तरह, ग्रपने मुख-पद्म को खोल कर, मधुर स्वर से पूछा—"उपासको! क्या तुम सचमुच तीन-शरणो को छोड कर दूसरे मत की शरण चले गये थे?"

उन्होने छिपा न सकने के कारण कहा—"भगवान् ! सच (है)।" तब बुद्ध ने कहा—'उपासको ! नीचे श्रवीचि नामक नरक से ऊपर भवाग्र नामक सर्वोपिर देव-लोक तक जितनी श्रप्रमाण लोक-धातुये हैं, उनमें (कही

१ बुद्ध, धर्म, श्रौर संघ की शरण।

भी) सदाचार (=शील) स्रादि गुणो में बुद्ध के समान भी कोई नहीं, बढ़ कर तो कहाँ से होगा?' 'भिक्षुस्रो! (पैर) या बे पैर वाले जितने भी प्राणी हैं बुद्ध (=तथागत) उनमें सर्वश्रेष्ठ कहें जाते हैं। 'इस लोक या पर-लोक में जितने भी धन हैं.... तथागत. ', 'शुद्ध-चित्तो में श्रेष्ठ (= प्रम्र) ... ' इत्यादि सूत्रों में प्रकाशित तीनों रत्न (= बुद्ध, धर्म स्रौर सघ) के गुण प्रकाशित किये। ''इस प्रकार के गुणों से युक्त तीनो रत्नो की शरण जाने वाले उपासक वा उपासिका नरक स्रादि में पैदा नहीं होते। (वे) नरक के जन्म से बच कर, देव-लोक में उत्पन्न हो, महासम्पत्ति भोगते हैं। इसलिए तुम लोगों ने इस प्रकार की शरण को छोड कर, दूसरे मतो की शरण ग्रहण करके, श्रनुचित किया है।''

त्रिरत्न को मोक्ष (-दायक) श्रौर उत्तम मान कर (उनकी) शरण जाने वालो का नरक ग्रादि मे जन्म न लेना—यह दिखाने के लिए, यह सूत्र उद्घृत करना चाहिए.—

"जो बुद्ध की शरण गये हैं, वे नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-देह को छोड़ कर, वे देव-लोक में पहुँचेंगे॥"

"जो धर्म की शरण गये हैं, वे नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-देह को छोड़ कर, वह देव-लोक में पहुँचेंगे॥"

"जो संघ की शरण गये हैं, वह नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-लोक को छोड़ कर, वे देव-लोक में पहुँचेंगे।"

भयभीत हो मनुष्य पर्वत, वन, ग्राराम (=उद्यान), वृक्ष, चैत्य ग्रादि, ग्रानेक स्थानों (को देवता मान उन)की शरण लेते हैं। किन्तु ये शरण मङ्गल दायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, क्योंकि इन शरणो को ग्रहण करने से, सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता।

जो बुद्धधर्म तथा संघ की शरण जाते हैं; जिन्होंने चारों द्यार्य सत्यों को भनी प्रकार प्रज्ञा से देखा है। (वे चार द्यार्य सत्य है—) (१) दुःख, (२)

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>इतिवुत्तक ।

<sup>े</sup> संयुक्त निकाय, महासमय सूत्र ।

दुःख की उत्पत्ति, (३) दुःख का नाश ग्रौर (४) दुःखनाशक ग्रार्य ग्रष्टांगिक मार्ग । ये है मङ्गलप्रद शरण, ये है उत्तम शरण, इन शरणों को पा कर (मनुष्य) सारे दुःखों से छूट जाता है ॥"

शास्ता ने केवल उन्हे इतना ही धर्मोपदेश नही किया; बिल्क यह भी कहा—''उपासको बुद्धानुस्मृति कर्मस्थान (च्योगाभ्यास के लिए मन का विषय), धर्मानुस्मृति कर्मस्थान, संघानुस्मृति कर्मस्थान, श्रोतग्रापत्ति मार्ग, श्रोतग्रापत्ति फल, सकुदागामी मार्ग, सकुदागामी फल, ग्रनागामी मार्ग, ग्रनागामी फल, ग्रहंत्-मार्ग तथा ग्रहंत् फल, का दायक होता है। (ग्रौर उस) कम से भी धर्मोपदेश कर (ग्रन्त मे कहा—) ''इस प्रकार की शरण छोड़ कर तुमने ग्रनुचित किया।''

बुद्धानुस्मृति श्रोतापित्त मार्ग ग्रादि को देते हैं; यह "भिक्षुग्रो । एक धर्म (चात) के ग्रभ्यास करने से, बढ़ती करने से, सम्पूर्ण निर्वेद चिराग, निरोध, उपशमन, ग्रभिज्ञा, सम्बोधि (चपरमज्ञान) तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है। कौन सा है वह एक धर्म ? बुद्धानुस्मृति " ग्रादि सूत्रों से प्रतिपादित करना चाहिए। इस प्रकार भगवान् ने नाना प्रकार से उपासको को उपदेश दे कहा— "उपासको ! पूर्व (काल) मे भी मनुष्यो ने (एक बार) तर्क-वितर्क से ग्रयोग्य शरण को शरण समक्ष ग्रहण किया, ग्रौर भूतो (चग्रमनुष्यो) वाले मरुभूमि (चकान्तार) मे जा भूतों (चग्रभो) के ग्रास हो बर्बाद हुए। लेकिन उसी मरुभूमि मे निर्दोष (चग्रपण्णक) शरण को ग्रनुकूलता के साथ सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करने वाले मनुष्य कल्याण (चस्वस्तीभाव) को प्राप्त हुए।" यह कह (तथागत) चुप हो गये।

तब श्रनाथिपिण्डक गृहपित श्रासन से उठ, भगवान् की वन्दना तथा प्रशंसा कर, (दोनों) हाथो को जोड, सिर पर रख, इस प्रकार बोला— "भन्ते । इन उपासकों का इस समय उत्तम शरण को छोड वितर्क के पीछे चलना तो हमे मालूम है; लेकिन पूर्व समय मे भूतों वाली मरुभूमि मे वितर्क के पीछे चलने

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> धम्मपद, बुद्धवग्ग ।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> श्रंगुत्तर निकाय, एकक निपात ।

भ्रपण्णक ] १२७

वालों का बर्बाद होना, श्रौर निर्दोष-गहनी (= ग्रपण्णक-ग्राह) ग्रहण करने वालों का कल्याण प्राप्त करना—यह (बात) हमें मालूम नहीं। वह श्रापको ही मालूम है। भगवान्! श्रच्छा हो, यदि श्राप हमें इस बात को श्राकाश में उदय हुए पूर्ण चन्द्रमा की भाँति प्रकट करे।"

तब भगवान् ने 'गृहपित ! मैंने श्रनन्त (=श्रप्रमाण) समय तक दस पारिमताश्रो को पूरा करके, लोगो के सशय निवारण के लिए, बुद्ध (=सर्वज्ञता) का ज्ञान प्राप्त किया है। सोने के पात्र (=नालिका) में सिंह के तैल डालने की भाँति श्रच्छी तरह ध्यान देकर सुनो' कह, सेठ को सचेत कर, बादलो को फाड कर निकलते चन्द्रमा की तरह, पूर्व जन्म की छिपी बात को प्रकट किया :—

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे काशी देश के बनारस (=बाराणसी) नगर मे ब्रह्मदन निनामक राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्त्व ने (एक) बजारे (=सत्थवाह) के घर में जन्म ग्रहण किया था। क्रमशः सयाने हो, वह पाँच सौ गाडियाँ ले, व्यापार करते हुए विचरते थे। वह कभी पूर्व-देश से श्रपरान्त देश जाते थे, कभी श्रपरान्त से पूर्व।

वनारस ही में (एक) और भी बजारे का पुत्र था, लेकिन वह मूर्ख, जड़ और भोदू था। उस समय बोधिसत्त्व ने बनारस से बहुत सा मूल्यवान् सौदा पाँच सौ गाड़ियों पर लाद, चलने की तैयारी की थी। उस मूर्ख बंजारे के पुत्र ने उसी प्रकार, पाच सौ गाड़ियाँ लाद, चलने की तैयारी की थी। बोधिसत्त्व ने सोचा यदि यह मूर्ख मेरे साथ साथ जायगा तो एक ही रास्ते से एक हजार गाड़ियों के जाने पर रास्ता काफी न होगा, ग्रादिमयों के लिए लकडी-पानी तथा बैलो के लिए घास-चारा मिलना किठन हो जायगा। इसलिए या तो उसे ग्रागे जाना चाहिये या मुक्ते।

तब उस म्रादमी को बुला, यह बात कह कर पूछा:—हम दोनों एक साथ इकट्ठें नहीं जा सकते तुम म्रागे जाम्रोगे या पीछे ?

<sup>ै</sup> जातकों में काशी के राजा ब्रह्मदत्त का बहुत उल्लेख हैं।

उसने सोचा 'श्रागे जाने में मुभे बहुत लाभ है। बिना बिगाड़े (=श्रभिन्न) रास्ते से जाऊँगा, बैल श्रछूते तृण खायेगे, मनुष्यो को तेमन बनाने के लिए श्रछूते पत्ते मिलेगे, शान्त (निर्मल) पानी प्राप्त होगा; श्रौर मन माने दाम पर सौदा बेचूँगा।' (यह सोच कर) उसने कहा —"सौम्य! मैं ही श्रागे जाऊँगा।'

बोधिसत्त्व ने पीछे जाने में बहुत लाभ देखे। उन्होंने सोचा — 'यह ग्रागे ग्रागे जा कर विषम स्थानों को सम करेगा, मैं उसके गये रास्ते से चलूँगा। ग्रागे जाने वाले बैल पकी कड़ी घास खा लेगे, इस प्रकार मेरे बैल नये मधुर तृणों को खायेगे। पत्ते तोड़ लिये गये स्थानों पर, नये उत्पन्न पत्ते, साग भाजी के लिए मधुर होगे। यह लोग जहाँ पानी नहीं हैं, ऐसे स्थानों को खोद कर पानी निकालेगे, सो दूसरों के खोदे हुए कुग्रों (गढ़ों) से हम पानी पीयेगे। (वस्तुग्रों का) मूल्य निश्चित करना वैसा ही हैं जैसा मनुष्यों की जान लेना होता है। मैं पीछे जा कर इनके निश्चित किये गये मूल्य से सौदा बेचूँगा।" इतने लाभ देख कर उन्होंने कहा — सौम्य! तुम ग्रागे जाग्रो।"

"श्रच्छा ! सौम्य ।" कह, वह मूर्ख बजारा गाडियो को जोत (नगर से) निकला। वह कमश्च. मनुष्यो की बस्तियाँ पार कर कान्तार (= मरुभूमि) के प्रवेश-स्थान पर पहुँचा।

कान्तार पाँच प्रकार के होते हैं — ''चोरो का कान्तार, व्याल (=िहंसक जन्तुग्रो) का कान्तार, भूतो का कान्तार, निर्जल (=िनरुदक) ग्रौर ग्रल्प-भक्ष कान्तार।''

जिस मार्ग पर चोरो का दखल हो, वह चोर-कान्तार (कहा जाता है)। सिंह ग्रादि व्यालो से ग्रधिकृत मार्ग व्याल-कान्तार, जहाँ स्नान करने वा पीने के लिए पानी न मिले वह निरुदक कान्तार, भूतो ( — ग्रमनुष्यो) वाला मार्ग ग्रमनुष्य कान्तार, श्रौर खाने पीने के लायक कद मूल ग्रादि से शून्य मार्ग ग्रल्प-भक्ष कान्तार। इन पाँच प्रकार के कान्तारो मे से वह कान्तार निरुदक-कान्तार तथा ग्रमनुष्य-कान्तार था। इसलिए यह बंजारे का लडका गाडियों मे बड़े बड़े मटके रखवा, (उन्हे) पानी से भरवा कर (उस) साठ योजन के कान्तार में चला।

कान्तार के बीच में पहुँचने पर, कान्तार में रहने वाले दैत्य ने सोचा कि

यदि मैं इनके साथ के पानी को फेकवा दूँ, तो (इनके) दुर्बल हो जाने पर मैं इन सब को खा सकूँगा। (यह सोच) उसने बिल्कुल सफेद रंग के तरुण बैला को मनोरम रथ (=यान) में जुतवाया, धनुप-तरकस-ढाल (ग्रादि) हथियार (=ग्रायुध) हाथ में लिये। फिर नीले ग्रौर सफेद कमलो (की माला को) धारण कर, गीले केश, गीले वस्त्र, दस बारह दैत्यों को साथ ले एक बड़े राजा (=ईश्वर पुरुष) की तरह उस रथ में बैठ कीचड में डूबे हुए पहियों के साथ रास्ते पर हो लिया। उसके ग्रागे पीछे चलने वाले, उसके सेवक (=परिचारक) भी, भीगे केश, भीगे वस्त्र, नीले सफेद कमलों की मालाये धारण किये हुए, लाल सफेद कमलों के गुच्छे लिये, पानी तथा कीचड की बूँदे टपकाते हुए, ग्रौर भिस की जड़े खाते हुए (साथ) चले। जब सामने की हवा चलती थी, तो बजारा रथ में बैठ, नौकरों (=परिचारको) के साथ धूली को हटाते हुए ग्रागे ग्रागे चलता था। उस समय तो सामने की हवा थी। इसलिए बजारा श्रागे ग्रागे जा रहा था।

दैत्य ने उस बजारे को ग्राता देख, ग्रपने रथ को रास्ते से एक ग्रांर कर के पूछा—कहाँ जाते हैं  $^{7}$  (फिर) कुशल-क्षेम की बातचीत की ।

बजारे ने भी अपने रथ को रास्ते से एक श्रोर हटा, (श्रन्य) गाडियों की जाने का रास्ता दे, एक श्रोर खडे खड़े उस दैत्य से कहा—"जी! हम बनारस से श्राते हैं" श्रीर पूछा—"यह जो श्राप उत्पल-कुमुद धारण किये, पद्म-पुण्ड-रीक हाथ में लिये, कीचड से सने श्रीर पानी की बूँदे चुवाते श्रीर भिस की जड़ें खाते श्रा रहे हैं, सो क्या श्राप लोगों के श्राने के रास्ते में वर्षा हो रही हैं, (वहाँ) उत्पल श्रादि से ढके सरोवर हैं?"

उसकी बात सुन कर दैत्य बोला—'मित्र ! यह क्या कहते हो ? मामने यह जो हरे रग की वन-पाँती दिखाई देती हैं, उससे ग्रागे के सारे जगल में मूसला-धार वर्षा हो रही हैं। पहाड की दरारे भरी हुई हैं। जगह जगह पर पष्प ग्रादि से पूर्ण जलाशय हैं।" फिर ग्रागे पीछे जाती गाडिया की ग्रोर, इशारा करके पूछा—"यह गाडियाँ ले कर कहाँ जा रहे हो ?"

"ग्रमुक देश को।"

"इस इस गाडी मे क्या क्या सौदा है ?"

"यह (सौदा) है, ग्रीर यह (सौदा) है।"

"पिछली गाडी बहुत भारी मालूम हो रही है। उसमे क्या सौदा है?" "उसमे पानी है।"

"ग्रभी जो पानी साथ लाये, सो तो ग्रच्छा किया। लेकिन ग्रब यहाँ से ग्रागे पानी की ग्रावश्यकता नहीं। ग्रागे बहुत पानी है। मटको को फोड, पानी फेक सुख से जाग्रो।"

इस प्रकार की बातचीत कर ''श्राप जाइये, हमे देर होती हैं'' कह, कुछ दूर जा कर, उनकी ग्रॉख से ग्रोभल हो, (दैत्य) ग्रपने नगर को ही चला गया।

उस मूर्खं बजारे ने ग्रपनी मूर्खता के कारण दैत्य की बात मान, मटके फुडवा, चुल्लू भर भी पानी बाकी न रख, सभी (पानी) फिंकवा गाडियाँ हँक-वाई। ग्रागे (रास्ते में) जरा सा भी पानी न था। ग्रादमी पानी बिना पीडित होने लगे। उन्होने सूर्यास्त तक चलते रह कर, (शाम को) बैलो को खोल, गाड़ियो का घेरा बना खड़ा कर, बैलो को गाडियो के पहियो से बॉघा। न बैलों को पानी मिला, न मनुष्यो को भोजन (च्यवागू-भात)। दुर्बल मनुष्य जहाँ तहाँ पड कर सो रहे। रात होने पर दैत्यो के नगर से (वह) दैत्य ग्राये (ग्रीर) सब बैलो तथा मनुष्यो को मार, उनका मास खा, हिंडुयाँ (वही) छोड कर चले गये। इस प्रकार (उस) मूर्ख बजारे के पुत्र (की मूर्खता) के कारण, वह सब नाश को प्राप्त हुए। उनकी हाथो ग्रादि की हिंडुयाँ इधर उधर बिखर गईं; (किन्तू) पाँच सौ गाडियाँ जैसी की तैसी खडी रही।

उस मूर्ख बजारे के पुत्र के चले जाने के मास ग्राध-मास बाद, बोधिसत्त्व भी पाँच सौ गाडियों के साथ नगर से निकले, ग्रौर कमश. कान्तार के मुख पर पहुँचे। वहाँ उन्होने पानी के मटकों में बहुत सा पानी भर लिया (ग्रौर) ग्रपने तम्बुग्रों में ढँढोरा पीट, ग्रादिमयों को एकत्रित कर कहा—''बिना मुफे पूछे, एक चुल्लू भर पानी भी काम में न लाना। जगल में विषैले-वृक्ष भी होते हैं। (इस लिए) किसी ऐसे पत्ते, फूल या फल को, जिसे पहले न खाया हो, बिना मुफ से पूछे कोई न खाये।"

इस प्रकार म्रादिमियो को ताकीद कर, पाँच सौ गाड़ियो के साथ मरुभूमि (=कान्तार) की म्रोर बढे।

उस मरुभूमि के मध्य मे पहुँचने पर, उस दैत्य ने पहले ही की भाँति अपने

भ्रपण्णक ] १३१

को बोधिसत्त्व के मार्ग मे प्रकट किया। बोधिसत्त्व ने उसे देखते ही पहचान लिया (श्रीर सोचा)—"इस मरुभूमि मे जल नही है। इसका नाम ही निर्जल-कान्तार है। यह (पुरुष) निर्भय है। इसकी ग्रांखे लाल है। (श्रीर) इसकी छाया तक दिखाई नही पड़ती। निस्सन्देह इसने ग्रागे गये मूर्खं बजारे के पुत्र का सब पानी फिंकवा, उन्हें पीडित कर, उसे मडली सहित खा लिया होगा। लेकिन यह मेरी पडिताई (च्बुद्धि) तथा चतुराई (च्उपाय-कुशलता) को नहीं जानता।" फिर उससे कहा—"तुम जाग्रो। हम व्यापारी लोग बिना दूसरा पानी देखे, (साथ) लाये पानी को नहीं फेकते। जहाँ दूसरा पानी दिखाई देगा, वहाँ इस पानी को फेक गाडियों को हलका कर चल देगे।"

दैत्य थोडी दूर जा कर, अन्तर्धान हो अपने नगर को चला गया। दैत्य के चले जाने पर आदिमयों ने बोधिसत्त्व से पूछा—'आर्य! यह मनुष्य 'यह हरे रग वाली बन पाँती दिखाई देती हैं। उसके आगे मूसलाधार वर्षा बरस रही हैं' कहते हुए, उत्पल-कुमुद आदि की मालाये (धारण किये हुए), पद्म-पुण्डरीक के गुच्छे को (हाथ में) लिये भिस की जड खाते, भीगे वस्त्र, भीगे-सीस, पानी की बूँदे चूते हुए, आये हैं। इसलिए (क्यो न) हम पानी को फेक, गाडियों को हलकी कर, जल्दी जल्दी चले।"

बोधिसत्त्व ने उनकी बात न सुन, गाडियों को रुकवा, सब मनुष्यों को एकत्रित करवा, (उनसे) पूछा—''क्या तुम में से किसी ने इस कान्तार में तालाब ग्रथवा पुष्करिणी होने की बात पहले कभी सुनी ?''

"श्रार्य! नहीं । यही सुना है कि यह कान्तार निर्जल-कान्तार है।" "श्रव कुछ मनुष्य कहते हैं कि इस हरे रग की बन-पाँती के उस पार वर्षा होती हैं। (श्रच्छा, तो) वर्षा की हवा कितनी दूर तक चलती है?"

"ग्रार्यं! योजन भर।"

"क्या किसी एक (जने) के शरीर को भी वर्षा की हवा लग रही है ?" "ग्रार्य । नहीं।"

"बादल का सिरा (=मेघ सीस) कितनी दूर तक दिखाई देता है?" "ग्रार्थं । योजन भर।"

"क्या किसी को एक भी बादल दिखाई दे रहा है।"
"ग्रार्य! नही।"

"बिजली कितनी दूर तक दिखाई देती है ?"
"श्रार्यं! चार पाँच योजन तक ।"
"क्या किसी को बिजली का प्रकाश दिखाई पडा है ?"
"श्रार्यं! नही ।"
"बादल की गर्ज कितनी दूर तक सुनाई देती है ?"
"श्रार्यं! एक दो योजन भर।"
"क्या किसी को बादल की गर्ज सुनाई दी है ?"
"श्रार्यं! नही ।"

"यह मनुष्य नहीं, यह दैत्य (थे)। (वह) हमारा पानी फिंकवा कर, दुर्बल कर, (हमें) खाने के विचार से म्राये होंगे। म्राये जाने वाला मूर्ख बजारे का पुत्र चतुर (=उपाय-कुशल) नहीं था। इन्होंने म्रवश्य पानी फिंकवा, पीडा दे, उसे खा लिया होगा। उसकी पाँच सौ गाडियाँ जैसी की तैसी भरी खडी होगी। म्राज हम उन्हें देखेंगे। चुल्लू भर पानी भी बिना फेंके (गाडियों को) हाँको" (कह) हँकवाया।

फिर जाते हुए, उन्हों (=बोधिसत्त्व) ने जैसी की तैसी भरी हुई पाँच सौ गाडियाँ, तथा बैलो और ग्रादिमयों के हाथों ग्रादि की हिड्डियों को इधर उधर बिखरा देख, गाडियाँ खुलवा दी। गाडियों के इदं गिर्द घरे में तम्बू तनवा दिन रहते ही ग्रादिमयों ग्रीर बैलों को शाम का भोजन खिलवा, मनुष्यों के (घेरे के) बीच में बैलों को बँधवा-सुलवा स्वय सर्दारों (बलनायकों) सिहत हाथ में खड्ग ले, रात्रि के तीनों याम पहरा देते, खडे ही खडे सवेरा कर बैलों को खिला, कमजोर गाडियों को छोड, (उनकी जगह) मजबूत को ले, कम मोल का सौदा छोड (उसकी जगह) ग्राधिक दाम वाले सौदे को लाद, जहाँ जाना था, उस स्थान पर चलें गये। सामान को दुगुने-तिगुने मोल पर बेच, सारी मडली को (साथ) लें फिर (सानद) ग्रापने नगर को लौट ग्राये।

यह कथा कह कर बुद्ध (शास्ता) ने कहा—गृहपति । इस प्रकार पूर्व काल में वितर्क के पीछे चलने वाले सर्वनाश को प्राप्त हुए, लेकिन यथार्थ-प्राही लोग दैत्यों के हाथ से बच कर, सकुशल इच्छित स्थान पर जा, फिर ग्रपने स्थान पर लौट ग्राये।

इस प्रकार इन दो कथास्रो को मिला, पूर्वापर कथा सम्बन्ध छोड़, सम्बुद्ध

### श्रपण्णकं ठानमेके दुतियं श्राहु तक्किका। एतदञ्जाय मेधावी तं गण्हे यदपण्णकं।।

['कुछ (पडित) लोग यथार्थ (== प्रपण्णक) बात (== स्थान) कह रहे हैं; तार्किक लोग दूसरी (ग्रयथार्थ)। यह जान कर बुद्धिमान् पुरुष, जो यथार्थ हैं, उसे ग्रहण करें।]

इसमे जो 'ग्रयण्णक' (शब्द) है, उसका ग्रर्थ है = ऐकातिक, ग्रव-रोधी नैर्याणिक (=निर्वाण को प्राप्त करने वाला)। ठान (=स्थान) का मतलब है, बात या कारण। 'कारण' को 'स्थान' इसलिए कहते है, क्योकि 'फल' उस कारण के ग्रधीन हो कर ठहरता है । 'स्थान को स्थान, ग्रस्थान को श्रस्थान समभ कर' इत्यादि में 'स्थान' का जो भावार्थ है (=प्रयोग) है, उसे भी जानना चाहिये। यहाँ 'श्रपण्णक ठान' इन दो शब्दो का मतलब है, सारे हितो सुखो का दाता, पडितो द्वारा भ्राचरित जो एकातिक कारण है, यथार्थ कारण है, नैर्याणिक-कारण है। सक्षेप रूप से यह (ग्रर्थ) है। विस्तार से तो (बुद्ध, घर्म, सघ इन) तीन की शरण जाना, (गृहस्थों को) पाँच शील (==सदाचार), (साधुओं को) दस शील (पालन करना), प्रातिमोक्ष (=भिक्ष्-नियमो) से (ग्रपनी) रक्षा करना (=सवर), इन्द्रिय-सयम, शुद्ध जीविका रखना, विहित वस्तुग्रो (=प्रत्ययो) का सेवन, सभी चारो प्रकार की शुद्धता वाला शील, इन्द्रियो का सयम (=गुप्त द्वारता), भोजन की (उचित) मात्रा का ज्ञान, जागरूक रहना, ध्यान, विदर्शना, ग्रिभञ्जा, समापत्ति (=समाधि), त्रार्य (ग्रष्टागिक) मार्ग, ग्रार्य-फल-यह सब श्रपण्णक बाते (=स्थान) श्रपण्णक रास्ता (प्रतिपदा), नैर्याणिक **रा**स्ता (हैं) यह अर्थ है। क्योंकि यह 'श्रपण्णक-प्रतिपदा' नैर्याणिक प्रतिपदा का ही

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> श्रंगुत्तर श्रद्वान पाली ।

नाम है, इसीलिए भगवान् ने अपण्णक-प्रतिपदा का उपदेश देते हुए यह सूत्र' कहा है---

"भिक्षुग्रो! तीन धर्मों (=वातों) से युक्त भिक्षु ग्रपण्णक (=यथार्थ) प्रतिपदा में लग कर, ग्रपने चित्त के मलों के विनाग के लिए प्रयत्नशील होता है। कौन से तीन धर्मों से भिक्षुग्रो! भिक्षु इन्द्रियों को वश में रखता है, भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। सचेत रहता है। भिक्षुग्रो! भिक्षु कैसे इन्द्रियों को वश में रखता है भिक्षुग्रो! जब भिक्षु रूप (=स्थूल वस्तुग्रो) को देख कर, उसके ग्राकार (=िनिम्त्त) को ग्रहण नहीं करता. .. इस प्रकार भिक्षुग्रो! भिक्षु इन्द्रियों को वश में रखता है। भिक्षुग्रो! भिक्षु कैसे भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। भिक्षुग्रो! जब भिक्षु सोच-समभ कर ग्राहार ग्रहण करता है, न तो मस्ती के लिये, न ग्रभिमान के लिये . । इस प्रकार भिक्षुग्रो! भिक्षु कैसे भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। भिक्षुग्रो! भिक्षु कैसे सचेत (चजागरूक) रहता है भिक्षुग्रो! भिक्षु दिन में टहलना ग्रौर बैठना....। इस प्रकार भिक्षुग्रो! सचेत होता है।"

इस सूत्र मे तीन ही धर्म कहे गए है। लेकिन यह अपण्णक-प्रतिपदा अर्हेत्-फल की प्राप्ति तक रहती है। यहाँ अर्हत-फल भी फल-समाधि तथा उपाधि-रहित-निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग (=प्रतिपदा) का ही नाम है।

कुछ (चएके) इस शब्द का मतलब है पण्डितजन। ग्रमुक पण्डितजन, इस प्रकार का कोई नियम नहीं। लेकिन यहाँ पर 'एक' शब्द का प्रयोग मडली सिहत बोधिसत्त्व के ही लिए जानना चाहिये। तार्किक लोगों ने दूसरा ही कहा है (चहुतियं ग्राहु तिक्किका)—दूसरा ग्रथांत् पहले कहे गये ग्रपण्णक स्थान, नैर्याणिक-कारण से भिन्न (चदुसरा) तर्क के पीछे चलना, ग्रनैर्याणिक कारण। तार्किकों ने कहा (चग्राहु तिक्किका) इसे यहाँ पहले शब्द (= दुतिय) से मिला कर पढना चाहिये। ग्रपण्णक स्थान = ग्रविरोधी बात = नैर्याणिक बात-को-बोधिसत्त्व ग्रादि कुछ बुद्धिमान् (=पण्डित) मनुष्यों ने ग्रहण किया।

<sup>&#</sup>x27; श्रंगुत्तर निकाय, तिक निपात ।

लेकिन जिन्होने मूर्ख बजारे को अपना मुखिया बनाया वह तर्क-ग्राही (=दलील-बाज) थे, उन्होंने दूसरी अयथार्थ, अनैकातिक, अनैर्याणिक बात स्वीकार की । उनमें से जिन्होने अपण्णक स्थान को ग्रहण किया, उन्होंने शुद्ध मार्ग (=शुक्ल-मार्ग) का अनुगमन किया। जिन्होंने दूसरे 'ग्रागे जल अवश्य होगा' इस प्रकार की दलील-बाजी (=तर्क-ग्राह) से युक्त अनैर्याणिक बात को माना, उन्होंने अशुद्ध (=कृष्ण) मार्ग का अनुगमन किया। इसमें जो शुक्ल-मार्ग है वह उन्नति का मार्ग । इसलिए जिन्होंने शुक्ल-मार्ग है, जो कृष्ण-मार्ग है वह अवनित का मार्ग। इसलिए जिन्होंने शुक्ल-मार्ग का ग्रहण किया, उनकी अवनित न हो कर, वह सुखी हुए, लेकिन जिन्होंने कृष्ण-मार्ग का अनुसरण किया, वे अवनित हो दु ख को प्राप्त हुए।"

इस प्रकार भगवान् ने श्रताथिपिण्डक गृहपित को उक्त बात कह कर, श्रागे यूँ कहा—''यह जान कर मेधावी पुरुष जो यथार्थ है, उसे ग्रहण करे।'' इसमें ''एतदञ्जाय मेधावी'' का अर्थ है—मेधा कही जाने वाली विशुद्ध, उत्तम, प्रज्ञा से युक्त कुलपुत्र, इस अपण्णक और सपण्णक, तर्क-ग्राह तथा अतर्क-ग्राह कहे जाने वाले दोनो स्थानो में गुण-दोष, लाभ-हानि, अर्थ-ग्रनर्थ जान कर। 'त गण्हे यदपण्णक' का अर्थ है, जो सम्पूर्ण रूप से शुक्ल-मार्ग है, उन्नति-मार्ग कहा जाने वाला नैर्याणिक-कारण है, उसीको ग्रहण करे। किस लिए ? पूर्ण रूप से शुक्ल-मार्ग होने के कारण। लेकिन दूसरे को ग्रहण न करे। किस लिए ? अनैकातिक (असम्पूर्ण) होने के कारण। यह अपण्णक-प्रतिपदा सब बुद्धों, प्रत्येक बुद्धों, और श्रावकों (अबुद्ध-पुत्रो) को प्रतिपदा है। सभी बुद्ध इस अपण्णक-प्रतिपदा (अपार्म) का अनुसरण करके ही दृढ पराक्रम से पारमिताये पूरी कर बोधि (-वृक्ष) के नीचे बुद्ध पद को प्राप्त होते है, प्रत्येक-बुद्ध प्रत्येक-बुद्ध-पुत्र श्रावक-पार्मिता-ज्ञान को साक्षात् करते है। इस प्रकार भगवान् ने उन उपासको को तीन कुल-सम्पत्तियाँ, छः कामावचर स्वर्ग और ब्रह्म-लोक सम्पत्तियाँ दे कर भी ग्रन्त में ग्रहंत्-मार्ग को देने वाली

<sup>&#</sup>x27; क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्य ।

<sup>ै</sup> चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिज्ञा, याम, तुषित, निर्माण-रति तथा परनिर्मित वश-वर्ति ।

श्रमण्णक प्रतिपदा, तथा चार दुर्गतियो (= श्रपायो) श्रौर पाँच नीच-कुलो मे जन्म देने वाली सपण्णक प्रतिपदा इस प्रकार यथार्थ (= श्रपण्णक) धर्म का उपदेश कर, चारों आर्य सत्यो को, सोलह प्रकार से प्रकाशित किया। चारो सत्यो (के प्रकाशित करने के) के अन्त मे, वह सब पाँच सौ उपासक श्रोत-आपन्न हो गये।

बुद्ध ने इस धर्म-उपदेश को दिखला कर, दो कथाएँ कह, तुलना कर, जातक का साराश निकाला।

उस समय का मूर्ख बजारा देवदत्त था। उसकी मण्डली देवदत्त की मण्डली थी। (इस समय की) बुद्ध की मण्डली, बुद्धिमान् (=पण्डित) बजारे की मण्डली थी। और बुद्धिमान् बजारा तो में ही था। (यह कह) भगवान् ने धर्म-उपदेश समाप्त किया।

### २. वएगुपथ जातक

"म्रकिलासुनो" इत्यादि यह धर्म-कथा भगवान् ने श्रावस्ती मे विहार करते समय कही। किस के लिए ? एक शिथिल-प्रयत्न भिक्ष के लिए।

## क. वर्तमान कथा

बुद्ध के श्रावस्ती में विहार करते समय एक श्रावस्ती-निवासी कुल-पुत्र (—सन्नान्त तरुण) ने जेतवन जा कर बुद्ध (—शास्ता) के पास जा धर्म- उपदेश सुना, श्रौर प्रसन्न-चित्त (हो) इन्द्रिय-सम्बन्धी सुखों (—कामों) में दोष देख, साधु हो, भिक्षु-दीक्षा (—उपसम्पदा) ग्रहण की। पाँच-वर्ष बीत

<sup>&#</sup>x27;(१) बॉस का काम करने वाले, (२) नैषाद, (=मल्लाह), (३) रथ-कार, (४) मेहतर, (१) चाण्डाल।

जाने पर दो मात्रिकायें और विदर्शना-क्रम को सीख, बुद्ध से अपने चित्त के अनुकूल योगिकिया (=कर्मस्थान) ग्रहण की। फिर एक जगल मे प्रविष्ट हो, वर्षावास के तीन महीने तक साधना मे लगे रहने पर भी अवभास-मात्र वा निमित्त-मात्र भी न उत्पन्न कर सका।

तब उसके मन में यह विचार हुग्रा—"बुद्ध ने चार प्रकार के व्यक्ति कहें । में शायद चौथी प्रकार का—पदपरम—व्यक्ति होऊँगा। मालूम होता है में इस जन्म में मार्ग या फल कुछ नहीं प्राप्त कर सक्ँगा। तो फिर मैं जगल में रह कर ही क्या करूँगा? (इसलिए) बुद्ध के पास जा, उनके ग्रति सुन्दर शरीर को देखते तथा (उनके) मधुर धर्मोपदेश को सुनते हुए विचरूँगा।" (यह सोच) फिर जेतवन वापिस चला गया।

तब परिचितो तथा िमत्रों ने उससे पूछा—''श्रायुष्मान् । तू योगाभ्यास (=श्रमणधर्म) करने के लिए भगवान् (=शास्ता) से योगविधि (=कर्म-स्थान) ले कर गया था, लेकिन ग्रब लौट कर सघ के साथ घूम रहा है। क्या तेरे साधु होने (=प्रब्रज्या) का उद्देश्य पूरा हो गया है ने क्या तू जन्म-ग्रहण से मुक्त हो गया है ने"

"अयुष्मानो! मैंने मार्ग या फल नही प्राप्त किया। यह सोच, कि (शायद) मैं इसके योग्य नहीं हूँ, मैं अभ्यास को छोड चला आया हूँ।"

"ग्रायुष्मान् । दृढ पराक्रमी-उपदेशक के धर्म (=शासन) में साधु बन कर तूने, जो प्रयत्न करना छोड दिया, वह उचित नहीं किया। ग्रा तुमें तथागत के पास ले चले" कह, उसे शास्ता के पास लिवा ले गये।

शास्ता ने उसे देख कर कहा— "भिक्षुग्रो विष्य इस ग्रिनिच्छुक भिक्षु को ले कर ग्राये हो। इस भिक्षु ने क्या (ग्रपराध) किया है ?"

"भन्ते । यह भिक्षु ऐसे उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म मे साधु बन, योगाभ्यास (=श्रमण-धर्म) करते करते उस प्रयत्न को छोड कर, लौट ग्राया है।"

<sup>&#</sup>x27; भिक्षु-त्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष

<sup>े</sup>ध्यान के विषय ( =object ) का ग्रवभास ग्रथवा साकार रूप विखाई देना।

तब भगवान् ने उससे पूछा—"क्या सचमुच भिक्षु । तूने प्रयत्न ढीला कर दिया।"

"हॉ सचमुच । भगवान्।"

"भिक्षु। ऐसे धर्म मे साधु हो तू अपने को 'अल्पेच्छ', 'सन्तुष्ट', 'एकान्त-प्रिय' वा 'प्रयत्नवान्' न बना, क्यो आलसी भिक्षु प्रकट कर रहा है ? क्या तू पूर्व-जन्म मे उद्योगपरायण नही था ? (पूर्व जन्म मे) तेरे अकेले के उद्योग से मरुभूमि मे पाँच सौ गाडियो के आदमी और बैल पानी पाकर सुखी हुए थे। अब तू किस लिए हिम्मत हार रहा है ?"

वह भिक्षु (भगवान् की) इस बात से सँभल गया।

यह बात सुन कर भिक्षुग्रो ने भगवान् से प्रार्थना की—"भन्ते! इस समय इस भिक्षु का हिम्मत-हार बैठना तो प्रकट है, लेकिन पूर्व-जन्म में इस ग्रकेले के प्रयत्न से मरुभूमि में बैलो ग्रौर मनुष्यों का पानी पाकर सुखी होना हमें मालूम नहीं। वह श्रापके बुद्धत्त्व (—सर्वज्ञता) के ज्ञान को ही प्रकट है। हमें भी वह बात (—कारण) कहिये।"

"तो भिक्षुग्रो । सुँनो।" (कह) भगवान् ने उस भिक्षु को ध्यान दिला (उस) पूर्व-जन्म की ग्रज्ञात बात को प्रकट किया—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व काल में काशी देश के बनारस नगर में, ब्रह्मदत्त (राजा) के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व बजारे के कुल में पैदा हुए, सयाना होने पर पाँच सौ गाडियों के साथ वह व्यापार करने लगे। वह एक दिन साठ योजन वाली मरु-भिम में जा रहे थे। उस कान्तार का रेत इतना बारीक था कि मुट्ठी में लेने पर हाथ में नहीं ठहरता था। सूर्योदय के समय से (ही) भौर की ग्राग की तरह (इतना) गर्म हो जाता था कि उस पर चला नहीं जाता था। इसलिए उस कान्तार को पार करने वाले, लकडी, पानी, तिल, चावल सब को गाडियों पर लाद, रात को ही चलते थे। (वह) उषा (ग्रहणोदय) के समय गाडियों को घेरे में खडी कर, उन पर मण्डप तनवा, समय रहते ही भोजन समाप्त कर, छाया में बैठे बैठे दिन बिताते थे। सूर्योस्त होने पर शाम का भोजन खा कर, भूमि के

वण्णुपथ ] १३६

ठडी होने पर, गाडियो को जुतवा चल देते थे। यह यात्रा समुद्र-यात्रा जैसी होती थी। (उसमे भी) दिशा प्रदर्शक (=थल नियामक) की जरूरत रहती थी। वह दिशा-प्रदर्शक तारो को देख कर, काफिले को (कान्तार से) पार उतारता था।

वह बजारा भी, उस समय, इसी ढग से, उस कान्तार में जा रहा था। उन्सठ योजन पार कर लेने पर, यह सोच कि, ग्रब एक ही रात में हम मह-भूमि से बहार हो जायेंगे, शाम को भोजन कर, सब लकडी पानी फेकवा गाडियाँ जुतवा चल पड़ा। दिशा-प्रदर्शक (ुरुष) ग्रगली गाडी पर ग्रासन (कुर्सी) बिछवा, ग्राकाश में तारों को देखता, 'इधर हाँको उधर हाँको', कहता हुग्रा लेटा था। इतनी दूर तक न सोया रहने के कारण, थक कर, उसे नीद ग्रा गई। बैलों ने लौट कर, जिस रास्ते से वह ग्राये थे, उसी (रास्ते) को ग्रहण कर लिया; ग्रौर उसे पता नहीं लगा। बैल सारी रात चलते रहे। दिशा-प्रदर्शक ने ग्ररुणो-दय के समय उठ कर, तारों को देख कर, 'गाडियों को लौटाग्रों, लौटाग्रों'। कहा। गाडियों को लौटा कर कमश रास्ते पर लाते ही लाते ग्ररुणोदय हो गया।

श्रादिमियो ने (पहचान लिया)—'यह तो हमारा कल के पडाव का स्थान है।'' (फिर सोचने लगे)—हमारा लकडी पानी खतम हो गया। इसलिए श्रव हमारा नाश है।—गाडियो को खोल, घेरे में खडा कर, ऊपर से मण्डप तान, चिन्ता के मारे वे ग्रपनी श्रपनी गाडी के नीचे लेट रहे।

बोधिसत्त्व ने 'मेरे हिम्मत हारने पर सभी नाश को प्राप्त होगे' (सोच), प्राप्त काल ठडे ठडे समय मे ही घूमते हुए एक दूव-घास के पौदे को देख कर विचारा—'यह पौदे नीचे पानी की नमी के ही कारण उगे होगे', (श्रौर) कुदाली मँगवा, वह जगह खुदवाने लगे। (लोगो ने) साठ हाथ तक खोदा। इतने खोदने पर (उनकी) कुदाली नीचे एक पत्थर से टकराई। (पत्थर से) टकराते ही सब ने हिम्मत हार दी। लेकिन बोधिधसत्त्व ने सोचा—''इस पत्थर के नीचे पानी होना चाहिये।'' (यह सोच) नीचे उतर, पत्थर पर खडे हो, भुक कर, कान लगा, शब्द पर घ्यान दिया। नीचे पानी के बहने का शब्द सुन, ऊपर श्रा, श्रपने छोटे सेवक से कहा—''तात! यदि तू ने हिम्मत छोड दी, तो हम सब नष्ट हो जायेगे। तू बिना हिम्मत छोडे, इस हथीडे (चग्रयकूट) को ले, गढ़े मे उतर कर, इस पत्थर को तोड़।''

१४० [ १.१.२

उसने बोधिसत्त्व की बात मान ली, और सब के हिम्मत छोड देने पर भी हिम्मत न हार, नीचे उतर कर पत्थर पर चोट की। पत्थर बीच से टूट कर, नीचे गिर पानी के सोते के बीच मे पडा। (वहाँ से) ताड़ के तने जितनी (ऊँची) पानी की धारा निकली। सब ने पानी पी, स्नान कर, पुराने धुरे (=-ग्रक्ष) और जुए फाड, खिचडी-भात पका कर खाया। बैंलो को भी खिलाया। (फिर) सूर्यास्त होने पर, पानी के गढे के पास ध्वजा गाड, इन्छित स्थान को गये। वहाँ उन्होने सौंदे को बेच, दुगुणा, चार गुणा मुनाफा उठाया, श्रीर फिर श्रपने निवास स्थान को लौट श्राये।

वहाँ ग्रपनी ग्रायु भर जी कर, कर्मानुसार गित को प्राप्त हुए। बोधिसत्त्व भी दान ग्रादि पुण्य-कर्म करके पर-लोक सिधारे। बुद्ध (=सम्यक्सम्बुद्ध) ने बुद्ध-पद प्राप्त कर लेने पर (ही) यह कथा कह, इस गाथा को कहा था—

> म्रिकलासुनो वण्णुपथे खणन्ता, उदङ्गणे तत्थ पपं भ्रविन्दुं। एवं मुनी विरियबलूपपन्नो, म्रकिलासु विन्दे हदयस्स सन्तिं।।

[प्रयत्नशील लोगो ने बालू के मार्ग मे खोद कर पानी पाया। इसी प्रकार वीर्य्य-बल से युक्त मुनि प्रयत्नशील हो हृदय की शान्ति को प्राप्त करे।]

इसमे श्रिकलासुनो का अर्थ है, आलस्यरहित वा प्रयत्नशील। वण्णुपथे, वण्णु कहते हैं बालू को, सो इसका अर्थ है बालू का मार्ग। खणन्ता—भूमि को खोदता हुआ। उदङ्गणे, इस मे उद् जो है, सो निपात है, अङ्गण्—मनुष्यो के घूमने का स्थान —खुला प्रदेश। तत्थ—उस बालू मार्ग मे। पपं अविन्दुं का अर्थ है पानी को पाया। पिया जाने से पानी को पपा कहते हैं या बहने वाला (-जल) आप, पपा अर्थात् महाजल। एवं शब्द उपमा का द्योतक है। मुनी —मौन कहते हैं ज्ञान को, अथवा काय-मौन आदि मे से किसी एक से युक्त व्यक्ति को मुनी कहते हैं। लेकिन इस मुनी के, 'अगारिय-मुनी' 'अनगारिय-मुनि', 'सेख मुनि', 'असेखमुनि', 'पञ्चेकमुनि', 'मुनि-मुनि'—इस प्रकार के कई

भेद है। सो अगारिय (=आगारिक)-मुनि, जिसने गृहस्थ रहते मार्ग-फल को प्राप्त कर लिया है, जो धर्म (=शासन) का ज्ञाता है। अनगारिय (=अनागारिक) मुनि, जो उक्त प्रकार से ही मार्ग-फल को प्राप्त है, लेकिन साधु है। सेख (=शेक्ष्य) मुनि का अर्थ है सात शैक्ष (=श्रोतापन्न से अर्हत्-मार्ग प्राप्त तक) पच्चेक (=प्रत्येक)-मुनि का अर्थ है 'प्रत्येक-सम्बुद्ध'। मुनि-मुनि=बुद्ध (=सम्यक्सम्बुद्ध)। सक्षेप मे यहाँ इन सबसे मौनेय्य (=मौन) नामक प्रज्ञा से मुक्त मुनी समभना चाहिये। विरियबलूपपन्नो का अर्थ है वीर्य्य (= (=हम्मत) से तथा शरीर-बल और ज्ञान-बल से युक्त। अकिलासु= आलस्य रहित। 'चाहे चमडा, नस और हड्डी ही बाकी रह जाये चाहे शरीर मे सारा मास और खून सूख जाए'—इस प्रकार के चारों अङ्गो से सम्पूर्ण वीर्य्य से युक्त=आलस्य-रहित (कहा जाता है)। विन्दे हत्यस्स सन्ति का अर्थ है चित्त तथा हृदय की शीतलता का कारण होने से 'शान्ति' कहे जाने वाले ध्यान-विदर्शना-अभिज्ञा-अर्हत्व-मार्ग ज्ञान नामक आर्य-धर्म को प्राप्त करता है।

भगवान् ने, "भिक्षुग्रो । श्रालसी मनुष्य दु ख से जीवन बिताता है, पाप, बुरे कर्म (= श्रकुशल धर्म) से युक्त होता है, महान हित को खो देता है। (लेकिन) भिक्षुग्रो ! प्रयत्नशील (मनुष्य) सुख से जीवन बिताता है। पाप, बुराइयो (= श्रकुशल धर्मों) से रहित होता है, सच्चे हित की पूर्ति करता है। भिक्षुग्रो ! ढील करने से उत्तम (= श्रग्रपद) की प्राप्ति नहीं होती "— इस प्रकार अनेक सूत्रो में श्रालसी के जीवन का दु खमय होना और प्रयत्न-शील के जीवन का सुखमय होना बतलाया है। यहाँ भी श्राग्रह-रहित, प्रयत्न शील विदर्शक को उद्योग द्वारा होने वाले सुखमय जीवन को दिखाते हुए कहा है— "इस प्रकार उद्योग वल से युक्त, मुनी निरालस हो चित्त की शान्ति प्राप्त करे"। (इसीलिए) यह कहा गया "जिस प्रकार उन व्यापारियों ने निरालस (हो) बालुका पथ में भी खोद कर जल पा लिया। इसी प्रकार इस धर्म (-शासन) में

<sup>&#</sup>x27; सयुक्त-निकाय, दस-बल सूत्र।

भी निरालस हो प्रयत्न करने वाला पण्डित-भिक्षु इस ध्यान म्रादि भेद से कही गई हृदय की शान्ति को प्राप्त करता है। इसलिए भिक्षु ! (जब) पूर्व-जन्म मे तू ने (केवल) पानी के लिये प्रयत्न किया, तो म्रब इस प्रकार के उबारने वाले (चनैर्याणिक) धर्म (चशासन) मे मार्ग-फल की प्राप्ति के लिये क्यों हिम्मत हारता है ?' इस प्रकार धर्मोपदेश के बाद (भगवान् ने) चारो (म्रार्य-सत्यों) की व्याख्या (चप्रकाशन) की। सत्यों की व्याख्या समाप्त होने पर वह हिम्मत हारा भिक्षु म्रहेंत्व (नामक) उत्तम-फल मे प्रतिष्ठित हुम्रा।

शास्ता ने दोनों कथाऐ सुना, तुलना कर, जातक का साराश दिखाया— "उस समय हिम्मत न हार कर पाषाण को तोड़ कर, जन-समूह को पानी देने वाला (मेरा) छोटा-सेवक (चूळुपस्थायक) यही हिम्मत हारा भिक्षु था। बाकी मडली ग्राज की बुद्ध-मडली थी। प्रधान बजारा तो मैं (स्वय) ही था" कह (धर्म-)उपदेश समाप्त किया।

## ३. सेरिवाणिज जातक

'इध चेहि नं विराधेसि'—इस धर्म उपदेश को भी भगवान् ने श्रावस्ती मे रहते हुए एक हिम्मत हारे भिक्षु के ही सम्बन्ध मे कहा था।

## क. वर्तमान कथा

पूर्वोक्त प्रकार से ही भिक्षुग्रों द्वारा (बुद्ध के सम्मुख) लाए जाने पर बुद्ध (== ज्ञास्ता) ने उससे कहा—''भिक्षु ! इस प्रकार के मार्ग-फल-दायक धर्म (== ज्ञासन) में साधु हो कर भी (यदि) तू हिम्मत हार बैठेगा, तो तू उसी प्रकार चिन्ता को प्राप्त होगा, जैसे लाख के मूल्य की सोने की थाली गँवा कर

सेरिवाणिज ] १४३

सेरि नामक बनिया।" भिक्षुग्रो ने भगवान् से उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थनाकी। भगवान् ने पूर्व-जन्म की ग्रज्ञात बात (इस प्रकार) प्रकट की—

### ख. अतीत कथा

म्रब से पाँच कल्प पूर्व बोधिसत्त्व सेरिव नामक देश में फेरी करने वाले बिनए (के रूप में पैदा) हुए थे। वह सेरिव नामक एक (दूसरे) फेरी करने वाले लोभी बिनये के साम्म नील वाहिनी नामक नदी पार कर, म्रन्धपुर नामक नगर में गयां। (दोनो ने) नगर की गिलयो को म्रापस में बाँट लिया। बोधिसत्त्व म्रपने हिस्से की गिलयों में सौदा बेचते, दूसरा बिनया म्रपने हिस्से की गिलयों में।

उस समय नगर के एक सेठ का परिवार दिर हो गया था। उसके जाति-सम्बन्धी और (उसका) धन नष्ट हो गया। (उस परिवार में) बाकी रह गई थी अपनी दादी के साथ एक लड़की। दोनो जने दूसरों की नौकरीचाकरी (= मज़दूरी) करके पेट पालते थे। लेकिन, उनके घर में पहले महासेठ के उपयोग में आने वाली दूसरे (साधारण) बरतनों में फेंकी हुई एक सोने की थाली थी। चिरकाल से उपयोग में न आने के कारण वह मैली हो गई थी। वह (दोनो) इतना भी नहीं जानती थी कि यह सोने की थाली हैं। उस समय वह लोभी बनिया "(हीरे) मोती लो, (हीरे) मोती लो" (कहता) घूमता हुआ, उस घर के सामने आया। लड़की ने उसे देख कर अपनी दादी से कहा—

"ग्रम्मा! मुभे एक कण्ठा ले दो।" "ग्रम्मा! हम दरिद्र क्या देकर लेगे।"

"हमारे पास यह थाली जो है, यह हमारे किसी काम की नही है, इसे दे कर ले ले।"

उसने व्यापारी को बुला कर, ग्रासन पर बिठा, वह थाली दे कर कहा— "ग्रार्य ! इस (थाली) को लेकर, ग्रपनी बहन को कुछ दे दो।"

व्यापारी ने थाली हाथ में ले, सोने की थाली होगी (सोच) उलट कर, थाली की पीठ पर सूई से रेखा खीची। 'सोने की हैं' जान, ''इनसे मुफ्त में ही थाली लेनी चाहियें" (सोच) कहा, ''यह कितने दाम की होगी? यह तो आधे मास के मूल्य की भी नहीं हैं" (कह) थाली को भूमि पर फेक, ग्रासन से उठ कर चला गया।

(ग्रपने में तै पाये नियम के ग्रनुसार) एक के गली में हो ग्राने पर, दूसरा उस गली में प्रवेश करता था। उस (बिनये) के बाद बोधिसत्त्व उस गली में प्रविष्ट हो '(हीरे) मोती लो, (हीरे) मोती लो' कहते घूमते हुए उसी द्वार पर पहुँचे। उस लड़की ने फिर उसी प्रकार ग्रपनी दादी को कहा। दादी ने पूछा—''ग्रम्मा! पहला ग्राया व्यापारी थाली को जमीन पर पटक कर चला गया, ग्रब क्या देकर 'कण्ठा' ले?" लड़की ने उत्तर दिया—''ग्रम्मा! वह व्यापारी कठोर-भाषी था, लेकिन यह सौम्य मूर्ति तथा मृदुभाषी है। ग्राशा है कि यह थाली को ले लेगा।"

"ग्रच्छा <sup>।</sup> तो पुकार ।"

उसने उसे बुलाया। उसके घर मे प्रवेश कर बैठने पर, (उन्होने उसे) वह थाली दी।

उसने 'थाली सोने की हैं' जान, कहा—''ग्रम्मा । यह थाली लाख के मूल्य की है। थाली के मूल्य का सामान मेरे पास नही।''

"ग्रार्य। पहले ग्राया व्यापारी, यह ग्राधे मासे के मूल्य की भी नहीं है, कह पृथ्वी पर पटक कर चला गया था। यह (ग्रब) तेरे ही पुण्य (के प्रताप) से सोने की थाली हो गई होगी। हम इसे तुभे देते हैं। (इसके बदले मे) हमे कुछ ही देकर, इसे ले जाइये।"

बोधिसत्त्व के हाथ में उस समय पॉच सौ कार्षापण ग्रौर पॉच सौ के मूल्य का सौदा था। वह सब दे कर, 'मुफो यह तराजू, यैली, ग्रौर ग्राठ कार्षापण दे' मॉग लेकर चले गये। ग्रौर शोघ्र ही नदी के किनारे पहुँच, मल्लाह को ग्राठ कार्षापण दे, नाव पर चढ चले।

तब लोभी बिनये ने फिर उनके घर जा कर कहा— "लाग्रो वह थाली, मै तुम्हे कुछ दे ही दूँ।"

लड़की ने उसे गाली देते हुए कहा—''तू हमारी लाख के मूल्य की थाली को ग्राधे मासे के मूल्य की भी नहीं बताता था। लेकिन तेरे स्वामी जैसा एक धर्मात्मा व्यापारी, हमें (एक) हजार दे कर उसे ले गया।''

यह सुन 'मेने लाख के मूल्य की सोने की थाली गॅवा दी, उसने मेरी बड़ी

सेरिवाणिज ] १४५

हानि की' (सोच) अत्यन्त व्याकुल (=शोक अस्त) हो उठा। उसकी स्मृति ठिकाने न रही, श्रीर वह पायल (=सज्ञा हीन) सा हो गया। उसने अपने हाथ के कार्षापण श्रीर सौदे को घर के दरवाजे पर बखेर दिया। जो कुछ पहने-श्रोढे था, उसे भी उतार दिया, श्रीर वह तराजू की डण्डी की मुँगरी बना, बोधिसत्त्व के पीछे पीछे भागा। नदी के किनारे पहुँच, बोधिसत्त्व को (नाव मे) जाते देख, मल्लाह से कहा—"श्रो । मल्लाह । मल्लाह ! नाव को लौटाश्रो" बोधिसत्त्व ने "नाव को मत लौटाश्रो" कह मना किया।

उस बनिये को बोधिसत्त्व को निकल जाते देख, ग्रत्यन्त शोक हुग्रा। उस का हृदय गर्म हो गया। ग्रौर मुँह से खून निकल पड़ा, तथा हृदय (सूखे) कीचड़ की तरह फट गया। (इस प्रकार वह) बोधिसत्त्व के प्रति शत्रुता का भाव मन मे रख, उसी क्षण मर गया।

बोधिसत्त्व के प्रति देवदत्त का यह पहला डाह हुआ। बोधिसत्त्व (भी) दान स्रादि पुण्य करके कर्मानुसार गति को प्राप्त हुए।

सम्यक् सम्बुद्ध ने यह धर्मोपदेश कह, सम्बुद्ध होने ही की श्रवस्था में यह गाथा कही-

## इध चेहि नं विराधेसि सद्धम्मस्स नियामतं। चिरं त्वं ग्रनुतपेस्ससि सेरिवा यं व वाणिजो।।

[यदि तू सद्धमं के नियम को नही प्राप्त करता, तो तू सेरिवा बनिये की तरह दुःख को प्राप्त होगा]

इसमें 'इध चेहिनं विराधेसि सद्धम्मस्स नियामतं' का ग्रर्थं है कि इस धर्म में जो ग्रधिक से ग्रधिक सात जन्म ग्रहण करने के ही नियम वाला श्रोत-ग्रापित मार्ग है, उसे यदि तू प्राप्त नहीं करें, हिम्मत हार दें, तो यह नहीं मिलता । 'चिरं त्वं अनुतपेस्सिसं' का ग्रर्थं है, ऐसा होने पर चिरकाल तक सोच करते हुए, रोते हुए, तपेगा ग्रथवा हिम्मत हार देने के कारण, ग्रायं-मार्ग न पाने के कारण, (तू) चिर काल तक नरक ग्रादि में उत्पन्न हों, नाना प्रकार के दु खों को भोगेगा, सतप्त-परि-तप्त होगा, क्लेश को प्राप्त होगा। कैसे ? सेरिवा यं व वाणिजो।" सेरिवा—यह नाम हैं। यं वा का ग्रथं है जैसे। यह कहा गया है कि "जिस प्रकार पूर्व-

समय में सेरिवा नामक व्यापारी लाख के मूल्य की सोने की थाली पाकर, उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न न करके, उसे गँवा कर, (पीछे) अप्रसोस को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार तूभी इस धर्म मे, तैयार की गई सोने की थाली के सदृश, आर्यमार्ग को प्रयत्न की ढिलाई के कारण न प्राप्त करके, उससे भ्रष्ट हो, चिरकाल तक अनुताप को प्राप्त करेगा। लेकिन यदि प्रयत्न नहीं छोडेगा, तो जैसे बुद्धिमान् व्यापारी ने सोने की थाली पाई, वैसे ही (तूभी) मेरे धर्म (=शासन) में नौ प्रकार के अलौकिक (=लोकोत्तर) धर्मों को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार बुद्ध (=शास्ता) ने अर्हत्व-प्राप्ति को सर्वोच्च स्थान दे, यह धर्म उपदेश कर चारो (आर्य-)सत्यो की व्याख्या की। सत्यों की व्याख्या समाप्त होने पर, वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) सर्वोत्तम (=अग्र) फल में स्थित हुग्रा। बुद्ध ने भी दोनो कथाएँ सुना, तुलना कर, जातक का साराश निकाला।

'उस समय का मूर्ख व्यापारी देवदत्त था; श्रीर बुद्धिमान् व्यापारी तो में ही था', कह उपदेश समाप्त किया।

## ४. चुल्लसेट्ठि जातक

"भ्रप्पकेनापि मेधावी"—यह धर्म-उपदेश भगवान् ने राजगृह के पास स्थित जीवक के भ्राम्मवन में विहार करते समय चूल पन्थक स्थविर को उद्देश करके कहा।

## क. वर्तमान कथा

यहाँ पहले चुल्लपन्थक की उत्पत्ति कहनी चाहिये—राजगृह मे एक धन सेठ की लडकी का ग्रपने नौकर से सम्बन्ध था। दूसरो से ग्रपने इस कर्म को चुल्लसेट्ठि ] १४७

छिपाने के लिये उसने डर से नौकर से कहा— "ग्रव हम यहाँ नही रह सकते। यदि मेरे माता पिता इस दोष को जान लेगे, तो मेरे टुकडे टुकडे कर देगे। चलो हम विदेश निकल चले।"

(तब वे) दोनो हाथ में ही ले चलने योग्य कीमती कीमती (सारवान्) चीज ले (नगर के) प्रधान द्वार से बाहर हो किसी ग्रपरिचित स्थान में रहने की इच्छा से निकल भागे। उनके एक ही स्थान पर इकट्ठे रहते समय, दोनों के सहवास से (लड़की को) गर्भ हो गया। गर्भ के परिपक्व होने पर उस (लड़की) ने स्वामी से सलाह की—"गर्भ परिपक्व हो गया। जिस स्थान में जाति-सम्बन्धी नहीं हों वैसे स्थान पर प्रसव होने पर हम दोनो को बहुत कष्ट होगा। चलो पिता के घर चले।"

वह 'ग्राज चले, कल चले' करते करते दिन बिताने लगा। लडकी सोचने लगी—'यह मूर्ख अपने अपराध के भारीपन के कारण जाने से डरता है। माता पिता हर तरह से हितैषी होते हैं। चाहे यह जाए, या न जाए, मुफे जाना चाहिए।' फिर पित के घर से बाहर गये रहते वक्त घर के सामान को ठीक ठाक कर दिया। अपने पिता के घर चलने की बात पडोसियो को कह, रास्ते पर चल पडी। तब उस ब्रादमी ने घर लौट कर, स्त्री को न देख, पडोसियो से पूछा। पिता के घर जाने की बात सुन, जल्दी जल्दी अनुगमन करते जा, उसे मार्ग में पाया। उस स्थान पर उसे प्रसव हो चुका था "भद्रे! क्या हुआ ?" उसने पूछा। "स्वामी! एक पुत्र हुआ है। श्रव क्या करना चाहिये? जिस मतलब के लिये हम पिता के घर जा रहे थे, वह काम रास्ते मे ही हो गया। श्रव वहाँ जाकर क्या करेंगे? चलो लौटे।"

फिर दोनो एक राय हो वापिस लौटे। उस बच्चे के पन्थ मे पैदा होने के कारण उसका नाम पन्थक रक्खा गया।

कुछ समय बाद उसे दूसरा गर्भ हो गया। (पहले की भाँति यहाँ भी सारी कथा समभनी चाहिये)।

पन्थ (=मार्ग) में ही उत्पन्न होने के कारण, पहले उत्पन्न हुए (बालक) का नाम महापन्थक और दूसरे का चुल्लपन्थक कर दिया गया। दोनों बच्चों को लेकर, वह अपने निवास स्थान पर लौट आये। पन्थक बच्चों ने दूसरे बच्चों को 'वाचा, नाना, नानी' कहते सुनकर माता से पूछा—''दूसरे बच्चे, 'वाचा,

नाना, नानी' कहते है, माँ । क्या हमारे नातेदार नही है ?"

"हाँ तात ! यहाँ तुम्हारे नातेदार नहीं हैं, लेकिन राजगृह नगर में धन सेठी नाम के (तुम्हारे) नाना हैं, वहाँ तुम्हारे बहुत से नातेदार है।"

"ग्रम्मा, वहाँ हम किस लिये नही जाते हैं ?"

उसने पुत्र को अपने न जाने का कारण कह, पुत्रों के बार बार कहने पर स्वामी से कहा—"यह बच्चे बहुत दुखी हो रहे हैं। क्या माता पिता हमें देख कर (हमारा) मास थोडे ही खा लेगे? आग्रों। इन बच्चों को पिता का घर दिखला दे।"

"मैं सामने न जा (≕खडा हो) सक्रूँगा। हॉ <sup>!</sup> तुभ्के वहाँ ले जाऊँगा।" "ग्रार्यं! ग्रच्छा जैसे भी हो बच्चो को पित-कूल दिखलाना है।"

दोनो जने बच्चो को ले कर, कमश राजगृह पहुँचे। नगर-द्वार पर एक शाला मे ठहरे। माता पिता के पास सन्देश भेजा—''बच्चों की मॉ (ग्रपने) दो बच्चों को लेकर ग्राई है।''

उन्होंने वह सन्देश सुन कर कहला भेजा— "ससार में जन्म-मरण के चक्कर में घूमते हुए (ऐसा) कोई नहीं, जो (कभी न कभी) पुत्र या पुत्री न बना हों। उन दोनों ने हमारा बडा अपराध किया हैं। इसलिये वह हमारी आँखों के सामने नहीं खडे हो सकते। इतना धन लेकर वह दोनों (किसी) सुख की जगह जाकर रहे, लेकिन बच्चों को यहाँ छोड जाये।"

सेठ की कन्या ने माता पिता के भेजे धन को लिया, और बच्चो को आये हुए दूतों के साथ भेज दिया। बच्चे, (अपने) नाना के कुल में पलने लगे।

उन दोनो में से चुल्लपन्थक तो (ग्रभी) बहुत छोटा था, लेकिन महापन्थक (ग्रपने) नाना के साथ बुद्ध का धर्म-उपदेश सुनने जाता था। नित्य भगवान् (शास्ता) के सम्मुख (जाकर) धर्मोपदेश सुनने से, उसका मन साधु बनने को चाहा। उसने नाना से कहा—"यदि ग्राप ग्राज्ञा दे, तो में भिक्षु बन् ।"

"तात । क्या कहा ? मेरे लिये, सारे लोक की प्रव्रज्या से बढकर, तेरी प्रव्रज्या श्रेष्ठ है। यदि निभ सके तो तात । साधु बन जा।" (कह) स्वीकार कर बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने पूछा—"क्यो महासेठ। क्या पुत्र मिला है ?"

''हॉ भन्ते <sup>।</sup> यह बालक मेरा नाती हैं, कहता है कि ग्रापके पास साधु बर्नूंगा।''

बुद्ध ने एक पिण्डपातिक भिक्षु को बालक को प्रव्रजित करने की स्राज्ञा दी। स्थिवर ने उस (बालक) को त्वच्-पञ्चक कर्मस्थान कह प्रव्रजित किया।

उसने बुद्ध के बहुत से उपदेश सीख (बीस) वर्ष की श्रवस्था में ही उपसम्पदा प्राप्त की। उपसम्पन्न होने पर भली प्रकार मन देकर श्रभ्यास करते हुए श्रह्तिव को प्राप्त हुग्रा। ध्यान-सुख श्रौर मार्ग-सुख से समय व्यतीत करते उसने सोचा—'क्या में यह सुख चुल्लपन्थक को भी दे सकता हूँ?' फिर नाना सेठ के पास जा कर कहा—''महासेठ! यदि तुम्हे स्वीकार हो, तो मैं इस बालक को प्रज्ञजित करूँ?''

"भन्ते । प्रब्रजित करे।"

स्थविर ने चुल्लपन्थक बच्चे को प्रब्रजित कर, दस शीलों मे स्थापित किया। चुल्लपन्थक सामणेर प्रब्रजित होते ही मन्द-बुद्धि हो गया।

> "पदुमं यथा कोकनदं सुगन्धं पातो सिया फुल्लमवीतगन्धं, ग्रङ्गीरसं पस्स विरोचमानं तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे।"

("जैसे लाल कमल या सुगन्धित कोकनद म्राकाश मे प्रकाशमान् सूर्य को देख सुगन्धित म्रौर प्रफुल्लित होता है, उसी प्रकार म्राकाश मे तपने वाले सूर्य के सदृश प्रकाशयुक्त म्रगिरस गोत्रीय (—बुद्ध) को देखो।")

इस एक गाथा को चार महीनो में भी न सीख सका। यह भिक्षु (पूर्व में) काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय प्रब्रजित हुआ था। (ग्रपने) बुद्धिमान् (होने के ग्रभिमान में) एक मन्द-बुद्धि भिक्षु के पाँती (=बुद्ध-वचन) सीखने के समय उसका मजाक उडाया। उस परिहास से उस भिक्षु को इतनी लज्जा आई

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> पिण्डपातिक--भिक्षा पर ही निर्भर रहने वाले ।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> भिक्षु (=श्रामणेर) की प्रब्रज्या के समय केस, लोम, नख, दन्त तथा त्वच्, इन पाँच शब्दो का साकेतिक उपदेश।

<sup>ै</sup> बीस वर्ष से कम श्रायु रहने पर, कोई भी भिक्षु उपसम्पन्न नही हो सकता।

कि वह भिक्षु न पाठ ही याद कर सका, न स्वाध्याय ही कर सका। उसी कर्म के फल से (इस जन्म मे) वह भिक्षु प्रब्रजित होते ही मन्दबुद्धि हो गया। याद किये पद को वह ग्रगले पद के सीखते समय भूल जाता था। उस समय एक ही गाथा को कण्ठस्थ करने का प्रयत्न करते उसे चार महीने बीत गये। तब उसे महापन्थक ने कहा—"पन्थक । तू इस धर्म (==शासन) के योग्य नही है। चार महीने मे एक गाथा भी तू नही सीख सका, तो प्रब्रज्या का उद्देश्य किस प्रकार पूरा करेगा ? निकल यहाँ से"—(कह) विहार से निकाल दिया।

बुद्ध शासन के प्रति स्तेह से चुल्लपन्थक गृहस्थ न होना चाहते थे। महा-पन्थक उस समय भोजन-प्रवन्धक (—भत्त उद्देसक) थे। (एक दिन) कौमार-भृत्य जीवक बहुत गन्धमाला सहित ग्रपने ग्राम्नवन मे गया, (वहाँ) बुद्ध की पूजा कर उसने धर्मीपदेश सुना। ग्रासन से उठ, बुद्ध को प्रणाम कर, महापन्थक के पास जाकर पूछा—"भन्ते। (ग्राजकल) भगवान् के साथ कितने भिक्षु है।"

"पॉच सौ भिक्षु है।"

"भन्ते ! बुद्ध सहित पाँचो सौ भिक्षुग्रो के साथ कल ग्राप मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करे।" स्थविर ने उत्तर दिया—

"उपासक! चुल्लपन्थक नामक (भिक्षु) मन्द-बुद्धि है, मूढ है, उसे छोड शेष सब का निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ।"

चुल्लपन्थक ने सोचा—"स्थिविर इतने भिक्षुग्रो का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं, किन्तु मुक्ते बाहर रख कर, स्वीकार करते हैं। निस्सन्देह मेरे भाई का मन मेरी ग्रोर बिगडा हुग्रा है। ग्रव मुक्ते इस शासन (मे रहने) से क्या (लाम)? गृहस्थ हो कर दान ग्रादि पुण्य करते जीवन व्यतीत कहुँगा।"

सो वह एक दिन प्रात ही गृहस्थ बनने की इच्छा से चल दिया। बुद्ध ने प्रात काल ही लोक के बारे में विचार करते, (ग्रपने दिव्य-ज्ञान से) इस बात को जान लिया; ग्रौर चुल्लपन्थक से भी पहले, उसके जाने के मार्ग के बरामदे में जाकर टहलने लगे। चुल्लपन्थक ने घर से निकल कर, बुद्ध को देख,

<sup>&#</sup>x27;बुद्ध का समकालीन प्रसिद्ध वैद्य।

(उनके) पास जा वन्दना की। बुद्ध ने पूछा—"चुल्लपन्थक । इस समय तू कहाँ जा रहा है।"

"भन्ते । मेरे भाई ने मुक्ते निकाल दिया है, इसलिये में गृहस्थ होने जा रहा हूँ।"

"चुल्लपन्थक! तू मेरे ग्राधीन (=पास) प्रव्रजित हुन्रा है। यदि भाई ने निकाल दिया, तो तू मेरे पास क्यों नही ग्राया? ग्रा, गृहस्थ हो कर क्या करेगा? मेरे समीप रहना।" (कह) चुल्लपन्थक को ले कर गन्धकुटी के दरवाजे मे बिठा कर कहा—"चुल्लपन्थक पूर्व दिशा की ग्रोर मुँह करके इस कपड़े के टुकड़े पर 'रजो हरणं रजो हरणं' कह, परिमार्जन करते हुए यही (बैठे) रहना।" (ग्रीर फिर) ऋद्धि-बल से निर्मित कपड़े का एक परिशुद्ध टुकडा, उसे देकर, (उचित) समय की सूचना मिलने पर (स्वयं) भिक्षुसघ सहित जीवक के घर जा कर बिछे ग्रासन पर बैठे।

चुल्लपन्थक भी सूर्य की श्रोर देखते, तथा उस वस्त्र के टुकडे से 'रजो हरणं रजो हरणं' कह पोछते बैठा रहा। पोंछते पोछते उसका वह वस्त्र का टुकड़ा मैला हो गया। तब वह सोचने लगा—''यह वस्त्र का टुकड़ा श्रति परिशुद्ध (था), लेकिन इस शरीर के कारण, श्रपने पूर्व-स्वरूप को छोड इस प्रकार मैला हो गया।'' (यह सोच) उसने ''सभी सस्कार श्रनित्य हैं'' का ख्याल कर, सस्कारो के क्षय श्रीर व्यय पर विचार करते हुए विदर्शना-भावना (—समािष्ठ) बढ़ाई।

बुद्ध ने 'चुल्लपन्थक का चित्त विदर्शना-भावना पर ग्रारूढ़ हुग्रा' जान, 'चुल्लपन्थक । तू यह ही मत सोच कि यह वस्त्र का टुकडा रज (=धूलि, मैल) से रिञ्जित हो गया। तेरे ग्रपने ग्रन्दर जो राग ग्रादि मैल है, उनको दूर कर।" कह, सामने बैठ प्रकाश फैलाते हुए से दिखाई देते हुए हो कर यह गाथाये कही—

"रागो रजो न च पन रेणु वुच्चिति रागस्सेतं भ्रधिवचनं रजोति, एतं रज विप्पजहित्व भिक्खवो विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने ॥ दोसो रजो न च पन रेणु बुच्चिति दोसस्सेतं ग्रिधिवचनं रजोति, एतं रजं विष्पजिहत्व भिक्खवो विहरन्ति ते विगतरजस्त सासने"। मोहो रजो न च पन रेणु बुच्चिति मोहस्सेतं ग्रिधिवचनं रजोति, एतं रजं विष्जिह्न्व भिक्खवो विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"।

"राग को (ग्रसल) रज (=धूलि) कहते हैं, न कि रेणु को। रज राग का पर्य्यायवाची शब्द हैं। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन में विचरते हैं।

द्वेष (=क्रोध) को रज कहते हैं, न कि रेणु को। रज द्वेष का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन में विचरते हैं।

मोह को रज कहते हैं, न कि रेणु को। रज मोह का पर्थ्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर, मोह-रहित के शासन में विचरते है।"

गायात्रों की समाप्ति पर चुल्लयन्थक को प्रति सम्भिदा—ज्ञान के सहित प्रहृत्व प्राप्त हुन्ना; श्रौर प्रति-सम्भिदा-ज्ञान के साथ ही साथ तीतों पिटकों का भी ज्ञान हो गया।

उसने पूर्व (-जन्म) मे राजा हो, नगर की प्रदक्षिणा करते हुए, माथे से पसीना गिरने पर, शुद्ध वस्त्र से माथे को पोछा। वस्त्र मैला हो गया 'इस शरीर के कारण इस प्रकार का परिशुद्ध वस्त्र अपने पूर्व-स्वरूप को छोड़ मैला हो गया' सोच उसे, 'सब संस्कार (=िनर्माण) ग्रानित्य है' —ऐसी ग्रानित्य-बुद्धि हुई। इसी कारण से (इस जन्म मे भी) उस (की ग्राईत्व-प्राप्ति) का साधन (=प्रत्यय) 'रजो हरण' ही हुआ।

कौमारभृत्य जीवक बुद्ध के लिये दक्षिणा का जल लाया। बुद्ध ने 'जीवक! (ग्रभी) विहार में भिक्षु हैं' कह हाथ से पात्र ढक दिया। महापन्थक ने कहा—

१ स्रिनिच्चा वत संखारा।

चुल्लसेट्ठ ] १५३

"भन्ते ! (म्रब) विहार में (ग्रौर) भिक्षु नहीं है।" शास्ता ने कहा—"जीवक ! है।"

जीवक ने आदमी भेजा, 'भणे । जाओ, देखो तो विहार मे भिक्षु है या नहीं ?'

उस समय चुल्लपन्थक ने, "मेरा भाई 'विहार में भिक्षु नहीं है' कहता है, सो उसे विहार में भिक्षुग्रों का होना दिखाऊँगा"—सोच, सारे श्राम्रवन को भिक्षुग्रों से भर दिया। कुछ भिक्षु चीवर-कर्म (चीवर का सीना) कर रहे थे। कुछ भिक्षु चीवर रँग रहे थे। कुछ मिल कर पाठ कर रहे थे। इस प्रकार एक दूसरे से भिन्न हजारों भिक्षु बना दिये। उस ग्रादमी ने बहुत से भिक्षुग्रों को देख, लौट कर जीवक से कहा—"ग्रायं। सारा ग्राम्रवन भिक्षुग्रों से भरा पड़ा है।" उस समय चुल्लपन्थक स्थिवर—

## "सहस्सक्खत्तुं श्रत्तानं निम्मिनित्वान पन्थको, निसीदम्बवने रम्मे याव कालप्पवेदना" ॥

[चुल्लपन्थक अपने को भिन्न भिन्न हजार प्रकार का बना, (भोजन के) समय की सुचना मिलने तक रमणीय श्राम्रवन में बैठे रहे।]

तब बुद्ध ने उस पुरुष से कहा—"विहार जाकर कहो कि शास्ता चुल्ल-पन्थक को बुलाते हैं।"

उसके जाकर वैसा कहने पर, सहस्रो मुखो से "मै चुल्लपन्थक, मै चुल्ल-पन्थक", की (त्रावाज) उठी।

श्रादमी ने लौट कर कहा—"भन्ते ! सब चुल्लपन्थक ही है।"

''ग्रच्छा <sup>!</sup> तू जाकर, जो पहले बोले में चुल्लपन्थक हूँ, उसका हाथ पकड लेना । बाकी सब ग्रन्तर्धान हो जायेगे ।''

उस (श्रादमी) ने वैसा ही किया। उसी समय हजार के हजार भिक्षु अन्तर्धान हो गये। स्थविर श्रादमी के साथ श्राये। बुद्ध ने भोजन के बाद जीवक को बुला कर कहा—"जीवक प्रतुलपन्थक का पात्र ग्रहण कर। चुल्लपन्थक तुभे (दान-) श्रनुमोदन करेगा।"

जीवक ने वैसा ही किया। स्थविर ने सिंहनाद करते हुए तरुण-सिंह की तरह तीनों पिटकों का साराश निकाल कर श्रनुमोदन किया।

बुद्ध भिक्षु-सघ के साथ ग्रासन से उठ, विहार में गये। वहाँ भिक्षुग्रों ने (ग्रपना माध्यान्हिक) सन्मान प्रदिश्ति किया। फिर ग्रासन से उठ कर (भगवान् ने) गन्धकुटी के सामने खडे हो, भिक्षुसघ को सुगतोपदेश (च्बुद्धोपदेश) दे, कर्मस्थान वता, भिक्षुसघ को उत्साहित कर, सुगन्धित गन्धकुटी में प्रवेश कर दाहिनी करवट लेट सिंह-शय्या से शयन किया। तब शाम को, धर्म-सभा में, भिक्षु इधर उधर से एकत्र हुए। लाल बानात की कनात पसारते से, बैठ कर, वह बुद्धता के गुण को वर्णन कर रहे थे— "ग्रायुष्मानो! महापन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति (च्याध्यास) न जानी, ग्रीर (यह चार महीनो मे एक भी गाथा कण्ठस्थ न कर सका, इसलिये, मूढ है सोच विहार से निकाल दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने ग्रतुलनीय धर्मराज होने के कारण, प्रात काल ग्रीर मध्यान्ह के भोजन के समय के भीतर ही उसे प्रतिसम्भिदा-ज्ञान सहित ग्रईत्व प्रदान कर दिया, ग्रीर प्रति-सम्भिदा-ज्ञान के साथ ही उसे त्रिपिटक (का ज्ञान) भी ग्रा गया। ग्रहो ! बुद्धों के बल की महानता।"

तब भगवान् ने यह जान कि धर्म-सभा मे इस प्रकार की बातचीत हो रही है, सोचा कि ग्राज मुक्ते भी वहाँ जाना चाहिए। उन्होने बुद्ध-शय्या से उठ सुरक्त सधाटी धारण की; बिजली के सदृश (चमकदार) पट्टी (—काय बधन) को बाँधा, लाल बानात (कम्बल) सदृश ग्रपने महा-चीवर को पहना; ग्रौर फिर सुगन्धित गन्धकुटी से निकले। मस्त हाथी का पीछा करने वाले सिंह के समान, ग्रनन्त बुद्ध-लीला के साथ, वह धर्म-सभा मे पहुँचे। (वहाँ सभा मे जाकर) ग्रलकृत मण्डप के बीच मे ग्रच्छी तरह बिछाये श्रेष्ठ बुद्धासन पर चढ, छ वर्ण की बुद्ध-किरणे फैलाते, समुद्ध-गर्भ को प्रकाशित करने वाले, युगन्धर पर्वत के शिखर पर स्थित बाल-सूर्य्यं की भाँति, ग्रासन के बीच में विराजमान् हुए। सम्यक् सम्बुद्ध के ग्राते ही भिक्षु सघ बातचीत छोड चुप हो गया। शास्ता ने मृदु, मैत्रीपूर्ण चित्त से परिषद् को देख कर सोचा— "यह परिषद् ग्राति सुन्दर लगती है। किसी एक मे भी हाथ की चञ्चलता नहीं, पाँव की चञ्चलता नहीं, खाँसने का शब्द वा छीकने का शब्द नहीं। सभी बुद्ध का

<sup>&#</sup>x27;योग विधियाँ।

चुल्लसेट्ठ ] १५५

गौरव करने वाले हैं। सभी बुद्ध के तेज से प्रभावित हैं। मेरे श्रायु-कल्प तक भी चुपके रहने पर, यह पहले बोलना श्रारम्भ न करेगे। मुक्ते ही बातचीत श्रारम्भ करने का विषय ढूँढना चाहिए।" श्रपने ही प्रथम बोलने का निश्चय कर, भगवान् ने मधुर ब्रह्म-स्वर से भिक्षुग्रो को श्रामन्त्रित कर पूछा—"भिक्षुग्रो! इस समय किस बातचीत मे लगे थे? इस समय क्या कथा चल रही थी?"

"भन्ते । यहाँ हम कोई ग्रीर फजूल (=ित्रिश्चीन-कथा) बात नहीं कर रहे थे। हम यहाँ बैठे ग्रापका गुणानुवाद ही कर रहे थे, कि "ग्रायुष्मानो! महापन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति . ग्रहों । बुद्धों के बल की महानता।।।"

शास्ता ने भिक्षुग्रो की बात सुनकर कहा—''भिक्षुग्रो । इसी जन्म में चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म में महानता (नहीं) प्राप्त की है, पूर्व जन्म में भी मेरे कारण उसने भोगो (—ऐश्वर्य्य) में महानता प्राप्त की थी।"

भिक्षुत्रो ने भगवान् से, उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। तब भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात को प्रकट किया—

### ख. ऋतीत कथा

पूर्व काल मे, काशी राष्ट्र के, बाराणसी (नगर) मे ब्रह्मदत्त (राजा) के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व एक सेठ परिवार में उत्पन्न हुए थे। वयस्क होने पर श्रेण्ठी (चसेठी) का पद पा चुल्लसेठी नाम से प्रसिद्ध हुए। वह पण्डित थे, च्यक्त थे, सब लक्षणों के जानकार थे। एक दिन उन्होंने राजा की सेवा में जाते समय गली में एक मरे चूहे को देखा। उसी समय नक्षत्र का विचार करके कहा—बुद्धिमान (चक्षुमान्) कुलपुत्र इस चूहे को ले जाकर, (अपने) परिवार का पालन कर सकता है, अथवा जीविकोपार्जन के पेशे (=कर्मान्त) में लगा सकता है।

एक दरिद्र कुलपुत्र ने श्रेष्ठी की बात सुन, "यह बिना जाने नही कह रहा

<sup>&#</sup>x27; उस समय का एक राजकीय पद जो कि नगर के श्रधिक धनी पुरुष को मिलता था।

हैं" (सोच) उस चूहे को एक दुकान पर ले जा बिल्ली के (खाने के) लिये दे डांला। उसके लिए उसे एक काकणी (=कार्षापण का आठवाँ हिस्सा) मिली। उस काकणी से उसने गुड खरीदा। फिर एक बरतन में पानी ले जगल से आदे हुए मालियों को देख, उन्हें थोडा थोडा गुड और पानी देने लगा। उन्होंने उसे एक एक मुट्ठी फूल दिये। अगले दिन वह उन फूलों को बेच कर प्राप्त किये मूल्य से, फिर गुड और पानी का घड़ा ले कर, पुष्प-उद्यान में ही चला गया। मालियों ने उसे आधे चुने पुष्प-वृक्ष दे दिये।

थोडे समय में इस उपाय से उसने आठ कार्षापण प्राप्त कर लिये। एक दिन ऐसा हुम्रा कि मांधी माई, मौर हवा से राज्योद्यान में बहुत सी सुखी लकडी, शाखाये ग्रौर पत्ते गिर पडे। माली नहीं जानता था कि उनको कैसे हटवाये। उसने भ्राकर माली से कहा-"'यदि यह लकडी-पत्ते मुफ्ते दो, तो मै इन सब को यहाँ से उठवा ले जाऊँ।" "ग्रार्य ! ले जाग्रो।" (कह) उसने स्वीकार कर लिया। तब वह चुल्ल-अन्तेवासिक (= छोटा शिष्य) छोटे लडको के खेलने की जगह पर गया। उन्हे (थोड़ा थोडा) गुड दे, थोडी ही देर में लकडी-पत्ते उठवाकर उद्यान के द्वार पर ढेर लगवा लिया। उस समय राजकीय कुम्हार राज-परिवार के बर्तनो को पकाने के लिए लकडी ढुँढ रहा था। राजो-द्यान के द्वार पर जा उसने उन (लंकडी-पत्तो) को देखा। उन्हे खरीद लिया। उस दिन चुल्ल-ग्रन्तेवासिक को लकडी के बेचने से सोलह कार्षापण ग्रौर चाटी तथा दूसरे पाँच बर्तन मिले। (इस प्रकार) धीरे धीरे उसके पास चौबीस कार्षापण हो गये। उसने सोचा 'मेरे लिये यह एक (ग्रच्छा) ढग है।' वह नगर-द्वार के समीप एक पानी की चाटी रख पाँच सौ घसियारो (=त्ण-हारको) को पानी पिलाने लगा। वे पूछने लगे "सौम्य, तू ने हमारा बहुत उपकार किया है। हम तेरे लिये क्या करे?"

"काम पडने पर कहूँगा (करना)"—कह, इधर उधर घूमते हुए, उसने स्थलपथकर्मिक (स्थल-मार्ग के कर्मचारी) से ग्रौर जल-मार्ग के कर्मचारी (जलपथकम्मिक) से मित्रता कर ली।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> उस समय के राज-पदाधिकारी।

चुल्लसेट्ठि ] १५७

(एक दिन) स्थलपथर्कामक ने उससे कहा—''कल इस नगर में, घोडों का व्यापारी, पाँच सौ घोडे ले कर ग्राने वाला है।'' उसने उसकी बात सुन घिसयारों से कहा—''ग्राज मुफे (सब जने) एक एक घास की पूली (चतृणकलाप) दो, ग्रौर मेरा घास न बिकने तक, ग्रपना घास न बेचो।'' उन्होंने 'ग्रच्छा' कह स्वीकार किया ग्रौर घास के पाँच सौ पूले लाकर, उसके घर पर डाल दिये। घोडों के व्यापारी ने सारे नगर में (हूँडा)। किसी दूसरी जगह घोडों के लिये उसे चारा न मिला। (ग्रन्त में) उसे एक सहस्र देकर, उसने (वह) घास खरीदी।

कुछ दिन बाद, उसके जलपथर्कामक मित्र ने कहा कि घाट (=पत्तन-बन्दरगाह) पर बडी नाव ग्राई है। उसने सोचा 'यह एक (ग्रच्छा) मौका है' श्रीर ग्राठ कार्षापण में सब सामान से सुसज्जित एक रथ किराये पर लिया। बडी सजधज के साथ नाव के घाट पर जा, नाविक को एक ग्रॅगूठी पेशगी दे (उससे) थोडी दूर पर, कनात तनवा, (भीतर) बैठ, ग्रादमियो से कह दिया "जब बाहर से व्यापारी ग्राये, तो उन्हें तीन पहरों से लिवा कर सुचित करना।"

"नाव ग्राई है" सुन, **बाराणसी** के सौ व्यापारी सामान खरीदने के लिए ग्राये। 'यहाँ से तुम्हे सामान नहीं मिल सकता, ग्रमुक स्थान के महान् व्यापारी ने पेशगी दी हैं', सुन, वह उसके पास ग्राये। सेवको ने पूर्व ग्राज्ञा के ग्रनुसार उन्हें तीन पहरों में से लिवा कर सूचना दी।

वे व्यापारी सौ थे। उनमें से प्रत्येक ने एक एक सहस्र देकर, उसे नाव में भागीदार बनाया। फिर एक एक सहस्र देकर, अपने अपने हिस्से (क्ले माल) को छुड़ा लिया। (इस प्रकार) चुल्ल-अन्तेवासिक दो लाख ले बाराणसी आया। कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा से वह एक लाख साथ ले चुल्लसेठी के पास गया। श्रेष्ठी ने पूछा—"तात! क्या करके तू ने यह धन कमाया।"

उसने कहा— "ग्रापके ही बताये उपाय से चार महीने के ग्रन्दर यह धन कमाया।" ग्रीर मरे चूहे से ग्रारम्भ करके सब कहानी कह डाली। चुल्लक-महासेठी ने 'इस प्रकार के तरुण को किसी दूसरे के पास छोडना ग्रच्छा नहीं', सोच उसे ग्रपनी तरुण कन्या दे सारे परिवार का मालिक बना दिया।

श्रेष्ठी की मृत्यु के बाद, उसे उस नगर के श्रेष्ठी का पद प्राप्त हुग्रा। बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार परलोक सिधारे। सम्यक् सम्बुद्ध ने यह धर्मीपदेश

कह, बुद्ध होने की अवस्था मे यह गाथा कही-

#### ग्रप्पकेनापि मेधावी पाभतेन विचक्खणो, समुद्रापेति ग्रत्तानं ग्रणुं ग्रग्गिं व सन्धमं।

[(चतुर) मेधावी (पुरुष) थोडी सी भी त्राग को फूॅक मारकर बढ़ा लेने की तरह, थोडे से भी मूलधन से अपने को उन्नत कर लेता है।]

इसमें 'ग्रप्पकेनापि' का ग्रथं है थोड़े से भी =परिमित से भी। मेधावी= प्रज्ञावान्। पाभतेन=सामान का मूल्य। विचक्खणो=व्यवहार-कुशल। समुहापेति ग्रत्तानं का ग्रथं है बहुत सा धन तथा यश कमा कर, उसपर ग्रपने को प्रतिष्ठित करता है। कैसे? श्रणुं ग्राग्गं व सन्धमं, जैसे बुद्धिमान् ग्रादमी थोडी सी ग्राग को भी कम से गोबर का चूरा ग्रादि डाल कर, तथा मुँह से फूँक मारकर उठा लेता है, बढा लेता है, बडा ग्राग्न-पुञ्ज बना लेता है। उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य थोडा भी मूल प्राप्त कर, नाना (प्रकार के) उपायो से धन ग्रौर यश की वृद्धि करता है, ग्रौर वृद्धि कर, उसपर ग्रपने को प्रतिष्ठित करता है ग्रथवा उस महान् धन ग्रौर यश से ग्रपने को उठाता है, प्रसिद्ध करता है, मश-हर करता है।"—यह ग्रथं है।

इस प्रकार भगवान् ने, "भिक्षुग्रो । इस जन्म मे चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म मे धर्म की महानता को प्राप्त किया, ग्रीर पूर्व जन्म मे मेरे कारण भोगो (च्एेश्वर्य) की महानता तथा यश की महानता को प्राप्त किया" कह, इस धर्मोपदेश को स्पष्ट कर, दोनो कहानियाँ सुना, तुलना करके जातक का साराश निकाल दिखाया—"उस समय का चुल्लग्रन्तेवासिक (यही) चुल्लपन्थक था, ग्रीर चुल्लकमहासेद्ठी तो मैं (स्वय) ही था" कह देशना समाप्त की।

# ५. तएडुलनालि जातक

'किमग्घति तण्डुलनालिका, तण्डुल-नालि का क्या मूल्य है ? यह (उपदेश) बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय लाल-उदायी स्थविर को उद्देश करके कहा।

## क. वर्तमान कथा

उस समय मल्लपुत्र आयुष्मान् दब्ब सघ के भोजन-प्रबन्धक (=भत्तुहे-सक) थे। जब प्रांत काल वह भोजन की शलाकायें बाँटते तो लाल-उदायी स्थिवर को, किसी दिन अच्छा भोजन मिलता, किसी दिन खराब। जिस दिन उन्हें खराब भोजन मिलता, वह भोजन की शलाकाये बाँटने के स्थान पर गडबड़ करते, और कहते क्या दब्ब ही शलाका देना जानता है, हम नहीं जानते'। उसके शलाका की जगह पर गडबड़ करने से उसे ही शलाकाओं की डिलिया दे दी गई, "हन्ता लो तुम ही शलाकाये बाँटो।" उस दिन से वह ही सघ को (भोजन की) शलाकाये बाँटने लगा। बाँटते समय वह न जानता था—यह अच्छे भोजन (की शलाका) है और यह खराब भोजन (की शलाका) है। यह भी न जानता था—अमुक वर्ष की आयु तक के भिक्षुओं को खराब। 'अमुक-वर्षों की सीमा (=िठितिका) करते हुए भी 'अमुक-वर्ष-तक की सीमा की जा वुकी हैं —का ख्याल न रखता था। भिक्षुओं के स्थान के बारे मे, 'इस स्थान पर,

<sup>&#</sup>x27; गृहस्थों की स्रोर से परिमित स्नादिमयों का निमंत्रण होने पर भिक्षुस्रों के चुनने में पेसिल जैसी लकड़ी की शलाकाश्रों का वितरण होता था। रे भिक्षस्रों की स्नायु उनकी उपसम्पदा से गिनी जाती है।

इस (श्रायु)-सीमा तक के भिक्षु ठहरें, इस स्थान पर, इस सीमा तक के भिक्षु ठहरे, करके पृथ्वी या दीवार पर रेखा खीचता था। श्रगले दिन शलाका की जगह में भिक्षु (पहले दिन से) कम हो जाते वा श्रधिक हो जाते। उनके कम होने पर रेखा नीचे हो जाती, श्रधिक होने पर ऊपर। वह सीमा (=िठितिका) का ख्याल न कर, रेखा के चिन्ह के श्रनुसार शलाका बॉटता। तब उसे भिक्षु कहते—"श्रायुष्मान् लालउदायी रेखा चाहे ऊपर हो, चाहे नीचे, लेकिन श्रच्छे भोजन मिल चुकने की सीमा श्रमुक-वर्ष के भिक्षुश्रो तक है, श्रौर खराब-भोजन मिल चुकने की सीमा श्रमुक-वर्ष के भिक्षुश्रो तक।" (लाल-उदायी) खीभ कर उत्तर देता—"यदि ऐसा है, तो यह रेखा यहाँ किस लिए हैं? में तुम्हारा विश्वास थोडे ही कहँगा। में (तो) इस लकीर का विश्वास कहँगा।"

तब नए भिक्षुम्रो ने भ्रौर श्रामणेरो ने उसे, "(ग्रायुष्मान् ! लालउदायी) तेरे शलाका बॉटने पर भिक्षुम्रो के लाभ की हानि होती है। तू बॉटने के योग्य नहीं। यहाँ से निकल" कह, शलाका-बॉटने की जगह से निकाल दिया। उस समय शलाका की जगह पर बड़ा कोलाहल हुम्रा।

उसे सुन बुद्ध ने **श्रानन्द** स्थिवर से पूछा—"श्रानन्द! शलाका की जगह में बडा कोलाहल है। यह क्या शोर है?" स्थिवर ने तथागत को वह बात बताई।

शास्ता ने कहा— "श्रानन्द । श्रपनी मूर्खता से लालउदायी न केवल इस जन्म में दूसरों के लाभ की हानि कर रहा है, बल्कि (इसने) पहले भी ऐसा किया है।" स्थिवर ने इस बात को स्पष्ट करने के लिये प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्-जन्म की गुप्त बात प्रकट की—

#### ख. अतीत कथा

"पूर्व समय मे, काशी राष्ट्र के बाराणसी (नगर) मे ब्रह्मदत्त (नामक) राजा राज्य करते थे। उस समय हमारे बोधिसत्त्व उस (राजा) के प्रर्ध-कारक (=मूल्य निश्चित करने वाले appraiser of the prices) थे। (वे) हाथी, घोड़े, मणि, सुवर्ण ग्रादि का मूल्य (निश्चित) करते ग्रीर मूल्य

करवा चौँज के मालिको को चीज का उचित मूल्य दिलवाते थे। लेकिन राजा लोभी था, उसने लोभी-स्वभाव होने के कारण सोचा—"यदि यह अर्घकारक मूल्य (निश्चित) करता रहा, तो थोड़े ही समय में मेरे घर का धन नष्ट हो जायेगा। (इसलिए) किसी दूसरे को अर्घकारक रक्खूँगा।" उसने खिड़की खोल कर राजागन में देखते हुए, एक लोभी, मूर्ख, गँवार आदमी को वहाँ से जाते देख कर सोचा—"यह मेरा दाम लगाने का काम कर सकेगा।" और फिर उसे बुला कर पूछा—"अरे! क्या तू हमारा दाम लगाने का काम कर सकेगा?"

"देव! कर सकता हूँ"। राजा ने ग्रपने धन की रक्षा करने के लिए उस मूर्ख ग्रादमी को ग्रघं-कारक के पद पर स्थापित किया। उस समय से वह मूर्ख ग्रघं-कारक हाथी, घोडे ग्रादि का दाम लगाते वक्त, दाम को घटा कर जैसा मन मे ग्राता, वैसा कहता था। उसके उस पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण, जो कुछ वह कहता, वही चीओं का मूल्य होता।

उस समय एक सरहद्दी (=उत्तरापथक) घोडे का व्यापारी पाँच सौ घोडे लेकर ग्राया। राजा ने उस ग्रादमी को बुलवाकर घोडों का दाम लगवाया। उसने पाँच सौ घोडो का दाम एक तण्डुल नालिका किया ग्रीर फिर "घोडों के व्यापारी को एक तण्डुल नालिका दे दो" कह, घोडों को (राजकीय) ग्रश्व-शाला में भिजवा दिया। घोडे के व्यापारी ने पुराने ग्रर्थ-कारक के पास जा, उसे समाचार सुना कर पूछा, कि ग्रव क्या करना चाहिए?

उसने उत्तर दिया—''उस म्रादमी को रिशवत देकर, उससे कहो—िक हमारे घोडो का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है; यह तो हमे मालूम हो गया, भ्रब हम यह जानना चाहते हैं कि म्रापसे जो तण्डुल-नालिका मिली है, उसका क्या मूल्य है विया ग्राप राजा के सम्मुख खडे हो कर, कह सकेंगे कि तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है यिद कहे कि 'कह सकता हूँ' तो उसे राजा के पास लेकर ग्राग्रो। में भी वहाँ ग्राऊँगा।''

घोडो के व्यापारी ने "ग्रच्छा" कह बोधिसत्त्व के वचन को स्वीकार कर, श्रर्थ-कारक को रिशवत दे, वह बात कही। उसने रिशवत पाकर उत्तर दिया— "हाँ, तण्डुल-नालिका का मोल करा सकता हूँ।" "तो राज-कुल चले" कह, उसे ले, राजा के पास श्राये। बोधिसत्त्व तथा दूसरे बहुत से श्रमात्य भी श्रा गये। घोडो के व्यापारी ने राजा को प्रणाम करके कहा—"देव ! यह तो मैंने जाना कि पाँच सौ घोडो का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, ग्रब ग्रर्घ-कारक से पछे कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?"

राजा ने रहस्य न जानने के कारण पूछा—'ग्ररे ग्रर्घकारक ! पाँच सौ घोडो का क्या मृत्य है  $^{2}$ "

"देव! तण्डल-नालिका।"

"ग्ररे। पाँच सौ घोडो का तो मूल्य तण्डुल-नालिका है, उस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?" उस मूर्ख ने उत्तर दिया—'तण्डुल-नालिका का मूल्य है भीतर-बाहर (=सब) वाराणसी।"

राजा का पक्ष लेकर, उसने पहले तो घोडों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका (स्थिर किया) ग्रब घोडों के व्यापारी से रिशवत लेकर, उस तण्डुल-नालिका का मूल्य ग्रन्दर-बाहर (=सब) वाराणसी किया।

"किमग्घति तण्डुलनालिकाय भ्रस्सान मूलाय वदेहि राज! बाराणींस सन्तरबाहिरन्तं भ्रयमग्घति तण्डुलनालिका॥"

[राजन् ! घोडो की कीमत, इस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है  $^{?}$  इस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर सहित (सारी) बाराणसी है ]

उस समय वाराणसी का शहर पनाह (प्राकार) बारह योजन का था, (ग्रौर) उसके ग्रन्दर-बाहर तो तीन सौ योजन का देश (=राष्ट्र) था। सो, उस मूर्ख ने ग्रन्दर ग्रौर बाहर सहित इतनी बड़ी बाराणसी को तण्डुल-नालिका का मूल्य बताया।

इसे सुन अमात्य ताली पीट कर हँसते हुए कहने लगे—''हम आज तक यही समभूते रहे कि पृथ्वी और राज्य अमूल्य (होते) हैं। (लेकिन आज मालूम हुआ) कि इतने बड़े राज्य सिहत बाराणसी का मूल्य एक तण्डुल-नालिका मात्र है। अहो! मूल्य करने वाले की प्रज्ञा! इतने समय तक यह अर्घ-कारक कहाँ (छिपे) रहे। हमारा राजा ही (इनके) योग्य नहीं है।''

उस समय राजा ने लिज्जित हो, उस मूर्ख को निकाल, बोधिसत्त्व को ही

देवधम्म ] १६३

अर्घ-कारक का पद दिया। (समय आने पर) बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार (परलोक को) गये।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश की कहानी कह कर, तुलना कर, जातक का साराश निकाल दिखाया—"उस समय का गँवार, मूर्ख अर्घकारक (आज कल यह) लालउदायी है। बुद्धिमान् अर्घकारक तो मैं (स्वय) ही था" कह धर्म-देशना समाप्त की।

### ६. देवधम्म जातक

"हिरि स्रोत्तप्प सम्पन्नाः लज्जा स्रौर भय से युक्त" यह (धर्मदेशना) भगवान् ने जेतवन मे विहार करते समय, एक बहुत सामान रखने वाले भिक्षु को लेकर कही।

# क. वर्तमान कथा

उसने प्रक्रजित होने से पहले अपने लिए परिवेण, अग्निशाला, भाण्डागार बनवा कर उस भाण्डागार को घी-चावल आदि से भर कर प्रक्रज्या ग्रहण की। फिर प्रक्रजित होने पर, वह अपने नौकरों को बुलवा (उनसे) यथारुचि भोजन पकवा कर खाता था। उसके पास सामान बहुत था। रात को दूसरा ओढन-बिछावन होता था, दिन को दूसरा। वह विहार के एक सिरे पर बसता था।

एक दिन वह चीवर, बिछौने ग्रादि को निकाल कर परिवेण मे फैला कर सुखवा रहा था। उसी समय, जनपद ( चित्रेश) के बहुत से भिक्षु शयनासन देखते घूमते हुए (उस) परिवेण मे पहुँचे। वे चीवर ग्रादि देख पूछने लगे— "यह किसके हैं?" उसने उत्तर दिया, "ग्रावुसो। ये मेरे है।"

"ग्रावुस! यह भी चीवर, यह भी चीवर, यह भी ग्रोढ़न, यह भी ग्रोढन, यह भी बिछावन—यह सब तुम्हारे हैं?"

"हाँ ! ये सब मेरे हैं।"

"ग्रावुस! भगवान् ने (ग्रधिक से ग्रधिक) तीन चीवरो (के रखने) की ग्राज्ञा दी है। इस प्रकार के निर्लोभी बुद्ध के धर्म मे साधु हो कर (भी) तू इतना सामान रखता है?" 'चल, तुभ्ते भगवान् के पास ले चले' कह उसे शास्ता के पास ले गये?

शास्ता ने देख कर पूछा— "भिक्षुग्रो । क्यो जबरदस्ती इस भिक्षु को ले कर ग्राये हो ?"

"भन्ते ! यह भिक्षु बहुत भाण्ड बटोरे है, बहुत सामान रक्खे है।"

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच बहुत सामान रखता है ?"

"भगवान्! हाँ, सचमुच।"

"भिक्षु ! तू किस लिए, बहु-भाण्डिक हो गया ? क्या में निर्लोभता, संतोष...एकान्त-चिन्तन ग्रौर ग्रभ्यास की प्रशसा नहीं करता ?"

शास्ता की इस बात को सुन वह भिक्षु कुद्ध हो, "तो अच्छा! अब से में इस तरह रहूँगा" कह, ऊपर पहने चीवर को उतार, सभा के बीच मे केवल एक चीवर (=अन्तरवासक) धारी हो कर खडा हो गया।

तब शास्ता ने उसे सँभालते हुए पूछा—'भिक्षु! क्या तू ने जल-राक्षस के जन्म में लज्जा तथा निन्दा-भय के साथ विहार करते हुए बारह वर्ष नहीं बितायें? तो फिर श्रव इस गौरव-पूर्ण बुद्ध धर्म में प्रव्रजित होकर तू किस लिए चार प्रकार की परिषद् के बीच में पहने हुए चीवर को छोड़, लज्जा-भय त्याग खड़ा है?"

वह शास्ता के वचन को सुन, लज्जा तथा निन्दा-भय से युक्त हो, उस ंचीवर को पहन, शास्ता को प्रणाम कर, एक ग्रोर बैठ गया। भिक्षुग्रो ने भग-वान् से उस बात के प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में काशी देश में, बाराणसी (बनारस) में ब्रह्मदत्त राजा था। उस समय बोधिसत्त्व ने उस (राजा) की पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण किया।

नाम-करण के दिन उसका नाम मिहसास कुमार रक्खा। उसके खेल-कूद करते, राजा को एक ग्रौर भी पुत्र हुग्रा, जिसका नाम चन्द्रकुमार रक्खा गया, लेकिन उसके खेल-कूद करते समय ही उसकी माता (बोधिसत्त्व-माता) मर गई। राजा ने दूसरी पटरानी बनाई। वह राजा की प्रिया तथा ग्रनुकूल थी। राजा के सहवास से उसे एक पुत्र पैदा हुग्रा, जिसका नाम सूर्य्य-कुमार रक्खा गया। राजा ने पुत्र को देख, सन्तुष्ट हो, कहा—"भद्रे! तेरे पुत्र को वर देता हूँ।" देवी ने 'इच्छा होने पर ग्रहण करूँगी' कह वर को ग्रमानत रक्खा। (फिर) पुत्र के सयाने होने पर उसने राजा से कहा—"ग्रापने पुत्र-जन्म के समय मुभे वर दिया था, ग्रब मेरे पुत्र को राज्य दीजिये।"

'प्रज्वलित अग्निपुञ्ज के समान चमकते मेरे दो पुत्र है, (उन्हें छोड़ कर) तेरे पुत्र को राज्य नहीं दे सकता'—कह राजा ने इन्कार किया। लेकिन रानी को बार बार याचना करते देख, राजा ने सोचा, 'यह मेरे पुत्रो का बुरा भी सोच सकती है।' (इसलिये) पुत्रो को बुला कर कहा— "तात! मैने सूर्य्यकुमार के उत्पन्न होने के समय वर दिया था। अब उसकी माता राज्य माँगती है। मैं उसको नहीं देना चाहता। लेकिन स्त्री-जाति पापिन होती है, वह तुम्हारी बुराई भी सोच सकती है। इसलिए अभी तुम जगल में चले जाओ, मेरे मरने पर आकर अपने कुल के आधीन (इस) नगर में राज्य करना।" (यह कह) रोते कुमारों के सिरों को चूम, (उन्हें जङ्गल में) भेज दिया।

पिता को प्रणाम कर उन्हें राज-प्रासाद से उतरते समय देख, सूर्यं-कुमार को भी बात मालूम हो गई। 'मैं भी भाइयो के साथ जाऊँगा' (सोच) वह भी उनके साथ निकल पडा।

वह हिमालय मे प्रविष्ट हुए। बोधिसत्त्व ने मार्ग से हट, वृक्ष के नीचे बैठ, सूर्य्यं कुमार को बुला कर कहा—"तात! सूर्य्य! इस तालाब पर जाग्रो, वहाँ नहा, पानी पी, हमारे पीने के लिये भी कमल के पत्ते मे पानी ले ग्राग्रो। उस तालाब को कुबेर (चैश्रवण) ने एक जल-राक्षस को दिया था, ग्रीर कुबेर ने उस (राक्षस) को कह रक्खा था कि देव-धर्म जानने वालों को छोड, ग्रन्य जो कोई इस तालाब मे उतरेंगे, वे (सब) तेरे ग्राहार होंगे, (तालाब मे) न उतरने वाले तेरे ग्राहार नहीं होंगे।"

तब से वह राक्षस, जो उस तालाब में उतरते, उनसे देवधर्म पूछता।

१६६ [ १.१.६

जो न जानते, उनको खा जाता । सूर्य्यकुमार उस तालाब पर पहुँचा । बिना सोचे विचारे ही, उसमे उतरा । राक्षस ने उसे पकड कर पूछा—''तुभे देवधर्म मालूम है ?"

उसने उत्तर दिया-"हाँ जानता हूँ। चाँद सूर्य्य देव-धर्म है।"

"तू देव-धर्मों को नही जानता" (कह) उसने पानी मे प्रवेश कर, उसे ग्रपने वासस्थान पर ले जाकर रक्खा। बोधिसत्त्व ने उसे देर करता देख, चन्द्र-कुमार को भेजा। राक्षस ने उसे भी पकड कर पूछा— 'तुमें देव-धर्मं मालूम हैं?' "हॉ जानता हूँ। चारो दिशाये देव-धर्म हैं।" राक्षस ने 'तू देव-धर्म को नही जानता' कह उसे भी पकड कर वही रक्खा।

उसके भी देर करने पर "कोई श्राफत पडी" सोच, बोधिसत्त्व श्रपने श्राप वहाँ पहुँच, दोनो (जनो) के उतरने के पद-चिन्ह देख, "यह तालाब राक्षस के श्रिधकार में होगा" (सोच) तलवार निकाल, (तीर-)कमान ले खडे हो गये। जल-राक्षस ने बोधिसत्त्व को पानी में उतरते न देख जगल में काम करने वाले मनुष्य का रूप धारण कर, बोधिसत्त्व से पूछा—"महाशय! रास्ते के थके तुम किस लिए इस तालाब में उतर, नहा, (पानी) पी, भिसे खा, फूल को धारण कर सुख पूर्वक (श्रागे) नहीं जाते?"

बोधिसत्त्व ने उसे देख, सोचा, "यह वही यक्ष होगा" (ग्रीर) यह जान कर पूछा—"क्या तू ने मेरे भाइयो को पकड़ रक्खा है ?"

"हॉ, मैंने (पकड रक्खा है) ।"

"किस कारण से ?"

"इस तालाब मे उतरने वालो पर मुफ्ते ग्रधिकार है ।"

"क्या सब पर ऋधिकार है ?"

"जो देव-धर्म जानते हैं, उन्हें छोड़ बाकी सब पर स्रधिकार है ?"

"क्या तू देव-धर्म (जानना) चाहता है ? यदि चाहता है, तो मे तुभ से देव-धर्म कहूँगा।"

"तो कहे, मैं देव-धर्मों को सुनूँगा।"

"मैं देव-घर्मों को कहने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मेरा शरीर साफ नहीं है ।"

यक्ष ने बोधिसत्त्व को नहलाया, भोजन करवाया, पानी पिलाया, फूल धारण कराया, सुगन्धियो का लेप कराया, फिर ग्रलकृत मण्डप के बीच ग्रासन देवधम्म ] १६७

प्रदान किया। बोधिसत्त्व ने ब्रासन पर बैठ, यक्ष को पैरों मे बिठा, 'तो, देवधर्मों को ध्यान-पूर्वक कान देकर सुनो' कह, इस गाथा को कहा—

#### हिरिम्रोत्तप्पसम्पन्ना सुक्कथम्मसमाहिता, सन्तो सप्पुरिसा लोके देव-धम्माति बुच्चेर ॥

[लज्जा और निन्दा-भय से युक्त, शुभ-कर्मो से युक्त (लोगो) को शान्त श्रौर सत्पुरुष देव-धर्म कहते हैं।]

यहाँ हिरि स्रोत्तप्पसम्पन्ना का स्रर्थ है हिरि (=लज्जा) स्रौर स्रोत्तप्प (=िनन्दा-भय) से युक्त । इन (दो शब्दो) में, कायिक दूराचार आदि में जो लज्जा मानना है, वह हिरि (=ह्नी) है। 'हिरि' लज्जा का ही पर्याय-वाची शब्द है। ग्रीर उन्ही (=कायिक दूराचार ग्रादि) से जो तपना है, वह 'ग्रोत्तप्प' है: पाप से उद्धिग्न होने का यह पर्य्यायवाची शब्द है। सो हिरि (=लज्जा) अपने (अन्दर) से उत्पन्न होती है; श्रोत्तप्प (=िनन्दा-भय) बाहरी (कारणो) से। हिरि का स्वामी (=ग्राधिपत्य) खद है, किन्तु ग्रोत्तप्प का स्वामी लोक। हिरि में लज्जा का भाव रहता है; ग्रोत्तप्प में निन्दा-भय का भाव। हिरि का लक्षण हैं (ग्रात्म-)गौरव (ग्रादि) का भाव, ग्रोत्तप्प का लक्षण है दृष्कर्म (=वद्य) करने मे भयभीत होना। सो (परुष) ग्रपने (ग्रन्दर) से उत्पन्न होने वाली 'हिरि' को चार कारणो से उत्पन्न करता है-जात ( =जाति ) का विचार करके, ग्राय का विचार करके, वीरता का विचार करके, तथा (ग्रपनी) बह-श्रुतता (==पाण्डित्य) का विचार करके। सो कैसे ? (प्राणि-हिंसा ग्रादि) पाप-कर्म (ऊँची) जात वालों का काम नही, यह केवट ग्रादि नीच जातियों का काम है। वैसी (ऊँची) जात वाले को ऐसा कर्म करना ग्रनचित है-इस प्रकार जात का विचार कर प्राण-हिसा भ्रादि पापकर्म के न करते हए. हिरि उत्पन्न करता है। पाप-कर्म बच्चो का काम है, सयाने परुष के लिए ऐसा करना अनुचित है, इस प्रकार आयु का विचार कर, प्राणि-हिसा आदि पाप को न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। पाप-कर्म दुर्बलों का काम है, मेरे जैसे वीर (पुरुष) को इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है, इस प्रकार वीरता ( = शरभाव) का विचार कर प्राणि-हिंसा स्रादि पाप-कर्म को न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। पाप-कर्म (करना) ग्रन्थे-मुर्खो का काम है, पण्डितो का काम नही। (मेरे)

**१६**न [ १.१.६

जैसे पण्डित, बहुश्रुत को इस प्रकार का कर्म करना ग्रनुचित है। इस प्रकार बहु-श्रुत-भाव का विचार कर, प्राणि-हिंसा ग्रादि पाप-कर्म को न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। इसी प्रकार ग्रपने से उत्पन्न होने वाली 'हिरि' को चार कारणो से उत्पन्न कर, ग्रौर उस हिरि को ग्रपने चित्त में स्थापित कर, पाप-कर्म नहीं करता। इस प्रकार हिरि ग्रपने (ग्रन्दर) से उत्पन्न होने वाली होती है।

श्रोत्तप्प कैसे बाहर (के कारणो) से उत्पन्न होने वाला है ? 'यदि तू पाप-कर्म करेगा, तो चारों प्रकार की सभा (=परिषद्) में निन्दा का भागी होगा—

#### "गरहिस्सन्ति तं विज्जू श्रमुचि नागरिको यथा विवज्जितो सीलवन्तेहि कथं भिक्खु ! करिस्ससि ॥"

[विज लोग तेरी उसी प्रकार निन्दा करेगे, जैसे नागरिक (लोग) गन्दगी की। सच्चिरित्र भिक्षुश्रों द्वारा (स्रकेला) छोड दिये जाने पर, हे भिक्षु तू कैसे करेगा?]

इस प्रकार विचार करने से बाहर (के कारणो) से उत्पन्न स्रोत्तप्प (चिनन्दा-भय) के मारे, पाप-कर्म नहीं करता। इस प्रकार स्रोत्तप्प बाहर (के कारणो) से उत्पन्न होने वाला है।

हिरि (=लज्जा) का स्वामित्व कैसे अपने आप है ? जब एक कुल-पुत्र अपने को अधिपति (=प्रधान), ज्येष्ठ मान कर सोचता है, मेरे जैसे श्रद्धा से प्रक्रिजत, बहुश्रुत, धूतङ्ग रखने वाले को पाप-कर्म करना अनुचित है, (और) यह सोच पाप-कर्म से बचा रहता है। इस प्रकार हिरि का स्वामी अपने आप है। इसीलिए भगवान् ने कहा है—"वह अपने को ही स्वामी करके, अकुशल को छोड़ता है, कुशल (=अच्छे) कर्म का अभ्यास करता है। सदोष को छोड़ता है, निर्दोष कर्म का अभ्यास करता है। अपने आपको पवित्र बनाये रखता है। भें ओत्तप्प का स्वामी लोक कैसे है ? यहाँ एक कुल-पुत्र लोक को ही स्वामी (=अधिपति), ज्येष्ठ करके, पाप-कर्म से बचता है। जैसे कहा

<sup>&</sup>lt;sup>९</sup> म्रवघूतों के नियम, म्रारण्यक, पिण्डपातिक, पांसुकूलिक म्रादि होना । <sup>२</sup> भ्रंगुत्तर-निकाय, तिक निपात ।

है—''यह लोक-समूह महान् हैं। इस लोक-समूह में (ऐसे) श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो ऋद्विमान् हैं, दिव्यचक्षु (वाले) हैं, दूसरों के चित्त की बात जान लेने वाले हैं। वे (श्रपने) दूर से भी देख लेते हैं, श्रीर स्वय पास होने पर भी नहीं दिखाई देते। वे (श्रपने) चित्त से, (दूसरों के) चित्त को जान लेते हैं। वे मुफे जान लेगे (श्रीर कहेगे), 'भो । देखते हो। इस श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर (हो), प्रब्रजित हुए कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे-कर्मों से युक्त हो, विहरता है।" (श्रीर) ऐसे देवता भी है, जो ऋद्धि-मान् है, दिव्य-चक्षु (वाले) है, दूसरों के चित्त की बात जान लेने वाले हैं। वे तो दूर से भी देख लेते हैं, श्रीर स्वय पास होने पर भी दिखाई नहीं देते। वे (श्रपने) चित्त से, (दूसरों के) चित्त को जान लेते हैं। वे मुफे जान लेगे, (श्रीर कहेगे)—"भो! देखते हो। इस श्रद्धा पूर्वक घर से बेघर (हो) प्रब्रजित हुए कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे कर्मों से युक्त हो, विहरता है।" (इस प्रकार) वह लोक को ही स्वामी ( श्रिधपित) मान कर बुराइयों को छोडता है, भलाइयों का श्रभ्यास करता है, सदीष को छोडता है, निर्दोष-कर्म का श्रभ्यास करता है, श्रपने श्रापको पवित्र बनाये रखता है। इस प्रकार श्रोत्तप्प का स्वामी लोक है।

'हिरि में लज्जा का भाव रहता है, श्रोत्तप्प में निन्दा-भय'—सो, यहाँ लज्जा का अर्थ है, लज्जा का श्राकार-प्रकार। इस भाव से जो युक्त हो, उसे हिरि (कहते हैं)। भय का अर्थ है नरक-भय, इस भाव से जो युक्त है, वह श्रोत्तप्प। ये दोनो (हिरि श्रोर श्रोत्तप्प) ही पाप के त्याग में कारण होते हैं। जैसे पाखाना-पेशाब करता हुआ कोई कुल-पुत्र, शरम खाने के योग्य किसी को देख कर, लज्जा करने लगे, शरम खाये; इसी प्रकार अपने-श्राप में लज्जा का भाव उत्पन्न होने पर, (व्यक्ति) पाप-कर्म नहीं करता। कोई नरक-गामी होने के भय से डर कर पाप नहीं करता। यहाँ यह उपमा है—'जैसे लोहे के दो गोलो में, एक शीतल हो, लेकिन मल लगा हुआ, दूसरा ऊष्ण श्रङ्गार-वर्ण। (उन दोनो में से) बुद्धिमान (श्रादमी) शीतल को मल लगा रहने के कारण घृणा के मारे नहीं ग्रहण करता, दूसरे को जलने के भय से। सो शीतल (गोले) के मल लगे

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> स्रंगुत्तर निकाय, तिक निपात ।

रहने के कारण, घृणा के मारे न ग्रहण करने की तरह श्रपने-श्राप में लज्जा उत्पन्न होने से पाप-कर्म का न करना, श्रौर ऊष्ण (गोले) के जलने के भय से, न ग्रहण करने की तरह, नरक के भय से पाप का न करना', जानना चाहिये।

हो। (=िहिरि) का लक्षण है (ग्रात्म-)गौरव (ग्रादि) का भाव, श्रोत्तप्प का लक्षण है दुष्कर्म करने मे भयभीत होना—ये दोनों भी पाप-कर्म के त्याग मे ही कारण होते हैं। एक व्यक्ति ग्रपनी जाति (=जात) की महानता का विचार कर, ग्रपने शास्ता की महानता का विचार कर, ग्रपने विरासत की महानता का विचार कर, ग्रपने गुरुभाइयों (=सब्रह्मचारियो) की महानता का विचार कर, (इन) चार कारणो से गौरव स्वभाव वाली हीं को उत्पन्न कर पाप-कर्म से बचता है। दूसरा व्यक्ति ग्रात्म-निन्दा के भय से, पर-निन्दा के भय से, दण्ड के भय से, दुर्गित के भय से—(इन) चार कारणो से दुष्कर्म करने मे भय रूपी ग्रीतप्प को उत्पन्न कर पाप-कर्म नहीं करता। यहाँ जाति की महानता ग्रादि के विचार, तथा ग्रात्म-निन्दा ग्रादि के भय विस्तार से कहने चाहिये। इनका विस्तार श्रंगुत्तर निकाय की ग्रद्रकथा मे ग्राया है।

सुक्कधम्मसमाहिता (शुक्लधमंसमाहित) का अर्थ है, इन हिरि तथा अरोत्तप्प से ही आरम्भ करके, जितनी भी आचरणीय भलाइयाँ है, वे सब शुक्ल धमं है, और वे सक्षेप मे चातुर्भूमिक लौिकक तथा लोकोत्तर धमं है—इन धमों से समाहितः—समन्नागतः—युक्त । सन्तो सप्पुरिसा लोके—काय-कर्मादि के शान्त होने से शान्त, कृतज्ञताः—कृतवेदिता के कारण शोभायमान् पृष्य, सत्पुष्य । लोक—संस्कार-लोक, सत्व (=प्राणि) लोक, श्रोकास (=स्थान)लोक, स्कन्ध-लोक, श्रायतन-लोक, धातु-लोक—ये अनेक प्रकार के लोक है। सो 'एक लोक—सब सत्वो की स्थिति आहार पर निर्मर है . अट्टारह लोक, अट्टारह धातु-लोक',—इसमे सस्कार-लोक कहा गया है। स्कन्ध-लोक आदि सब उसके अन्तर्गत आ ही गये। यही लोक, परलोक, देव-लोक, मनुष्य-लोक आदि मे सन्व-लोक कहा गया है—

यावता चिन्दमसुरिया परिहरिन्त दिसाभिन्त विरोचना, ताव सहस्सधा लोको एत्थ ते वत्तिति वसो ॥ [जहाँ तक चन्द्रमा तथा सूर्य्य घूमते हैं, प्रकाश से दिशास्रो को प्रकाशित करते हैं; वहाँ तक सहस्र (चक्रवाल) लोक है, और इस सारे लोक पर तेरा वश है।]

इस गाथा में ग्रोकास-लोक का वर्णन किया गया है। इनमें यहाँ मतलब है सत्व-लोक से। सत्व लोक में ही (जो) इस प्रकार के सत्पुरुष होते है, वे देव-धम्माति वुच्चरे, (=वे देव-धर्म कहलाते है)। इनमे देव तीन प्रकार के होते हैं --सम्मृति-देव, उत्पत्ति-देव श्रौर विशुद्धि-देव। महासम्मत के समय से लेकर, लोग (जिन जिन) राजा राजकूमार ग्रादि को देव कह (करके) बुलाते हैं ( = सम्मत करते हैं), वे सम्मुति-देव। देव-लोक मे उत्पन्न हुए देव, उत्पत्ति-देव। क्षीणास्रव ( = ग्रर्हत्) विशुद्धि-देव। ऐसा कहा भी गया है ---"सम्मृति-देव है राजा, महारानियाँ, (राज-)कुमार । उत्पत्ति-देव **है भू**मि **के** देवों से ग्रारम्भ करके ऊपर के देवों तक। विशुद्धि-देव हैं बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, क्षीणाश्रव।" इन देवो के धर्म है देव-धर्म। वच्च का ग्रर्थ है कहलाते है। हिरि तथा ग्रोत्तप्प--यह दोनो कुशल-धर्मों के मल है। कुशल(-कर्म) रूपी सम्पत्ति से देव-लोक मे उत्पत्ति होने से, श्रीर विश्वद्धता का कारण होने से, कारण के ग्रर्थ मे ही, तीन प्रकार के देवो के धर्म, देव-धर्म। उन देव-धर्मी से युक्त मनुष्य भी देव-धर्म है। इसलिये व्यक्ति की स्रोर सकेत करके उपदेश किये गये इस धर्मीपदेश मे, इन धर्मी का उपदेश करते हए कहा है, "सन्तो सप्परिसा लोके देव-धम्माति वृच्चरे।"

यक्ष इस धर्म-देशना को सुन प्रसन्न हुन्रा, ग्रौर बोधिसत्त्व से बोला, "पण्डित <sup>†</sup> में तुम पर प्रसन्न हुन्रा हूँ। एक भाई को (लौटा) देता हूँ। (बोलो) किस (भाई) को लाऊँ ?"

<sup>&</sup>quot;छोटे भाई को लाग्रो।"

<sup>&</sup>quot;पण्डित । तू देव-धर्मों को केवल जानता भर है, उनके प्रनुसार भ्राचरण नहीं करता।"

<sup>&</sup>quot;कैसे (=िकस कारण से)?"

<sup>&</sup>quot;क्योंकि तू ज्येष्ठ (भाई) को छोड, उसके छोटे भाई को मँगवा कर ज्येष्ठ का गौरव नही रखता है।"

"यक्ष ! में देव-धर्मों को जानता हूँ, श्रौर उनके श्रनुसार श्राचरण करता हूँ। इसी (भाई) के कारण, हमने इस वन में प्रवेश किया। इसीके कारण, हमारे पिता से इसकी माँ ने राज्य माँगा। हमारे पिता ने उसे वर न दिया, (लेकिन) हमारी रक्षा के लिए, हमें वनवास की श्राज्ञा दी। (सो) इस कुमार को बिना लिये यदि हम लौटेंगे, तो—"इसे जगल में एक यक्ष ने खा लिया"— यह बात कहने पर भी कोई विश्वास न करेंगा। इसलिए मैं, निन्दा के भय से भय-भीत, इसीको माँगता हूँ।

"साधु, साधु पण्डित! तू देव-धर्मों को जानता है, श्रौर उनके श्रनुसार श्राचरण भी करता है" कह, यक्ष ने बोधिसत्त्व को साधु (-वाद) दे, (उसके) दोनो भाई लाकर, (उसे) दे दिये।

तब बोधिसत्त्व ने उसे कहा—"सौम्य ! तू अपने पूर्व के पाप-कर्म के कारण, दूसरों का रक्त-मास खाने वाले यक्ष की योनि मे उत्पन्न हुग्रा। अब फिर भी पाप-कर्म ही करता है। यह पाप-कर्म नरक ग्रादि से छूटने न देगा। (इसलिए) अब से तू पाप-कर्म को छोड़ कर पुण्य ( — कुशल) कर्म कर।" (इस प्रकार) बोधिसत्त्व, उस यक्ष को दमन कर सके। उस यक्ष का दमन कर, उसी यक्ष की रक्षा मे वही रहने लगे।

एक दिन नक्षत्र देख, पिता के मरने की बात जान, यक्ष को साथ ले, वे बाराणसी पहुँचे। फिर राज्य को ग्रहण कर, चन्द्रकुमार को उप-राज ग्रौर सूर्य-कुमार को सेनापित का स्थान दिया। यक्ष के लिए एक रमणीय स्थान पर, मन्दिर (=ग्रायतन) बनवा दिया, ग्रौर ऐसा (प्रबन्ध) कर दिया, जिससे उसे श्रेष्ठ माला, श्रेष्ठ पुष्प, ग्रौर श्रेष्ठ भोजन मिलता रहे। धर्मा- नुसार राज्य करके वह कर्मानुसार (परलोक) को गये।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला कर, (श्रार्य-)सत्यो को प्रकाशित किया। श्रार्य-सत्यों के प्रकाशन के श्रन्त मे, उसने भिक्षुत्रों को स्रोत श्रापत्त-फल मे प्रतिष्ठित किया। सम्यक्-सम्बुद्ध ने दोनो कथाएँ कह कर, तुलना कर, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय का उदक-राक्षस, (इस समय का) बहु-भाण्डिक भिक्षु है। सूर्य्य-कुमार (इस समय का) स्नानन्द, चन्द्र-कुमार (इस समय का) सारिपुत्र, ग्रौर महिसांस-कुमार नामक ज्येष्ठ भ्राता तो मै ही था।

# ७. कट्टहारि जातक

"पुत्तो त्याहं महाराज..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते हुए वासभ खित्तय (क्षत्रिया) की कथा के सम्बन्ध मे कही। वासभ-खित्तया की कथा बारहवे परिच्छेद (निपात) मे भद्दसाल जातक में स्रायेगी।

## क. वर्त्तमान कथा

महानाम शाक्य को नागमुण्डा नामक दासी की कोख से लड़की उत्पन्न हुई। (पीछे वह) कोसल-नरेश की पटरानी हुई। उससे राजा को पुत्र हुग्रा। लेकिन राजा ने उसका पूर्व मे दासी होना जान, उसको तथा उसके पुत्र विड्डभ को भी स्थान से च्युत कर दिया। दोनो घर के भीतर ही रहते। शास्ता ने उस बात का पता पा, पाँच सौ भिक्षुग्रों के साथ, प्रातःकाल ही राजा के निवास-स्थान पर जा, बिछे ग्रासन पर बैठकर पूछा—"महाराज वासभ खित्या कहाँ है ?" राजा ने (उसके सम्बन्ध मे) उक्त बात कही। "महाराज वासभ खित्या कहाँ है ?"

"भन्ते ! महानाम की।"

"और (यहाँ) ग्राकर, वह किसे प्राप्त हुई ?"

"भन्ते! मभे"

"महाराज ! यह राजा की लड़की, राजा को प्राप्त हुई, राजा से ही इसे पुत्र हुग्रा, सो वह पुत्र किस लिए पिता के राज्य का ग्रधिकारी नहीं ? पूर्व समय में राजाग्रो ने लकड़हारिनी के मुहूर्त भर के सहवास से, उसकी कोख से उत्पन्न पुत्र को भी राज्य दिया है।"

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> भद्दसाल जातक (४६५)

राजा ने भगवान् से, उस बात को स्पष्ट कर, कहने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की——

#### ख. अतीत कथा

"पूर्व समय मे, बाराणसी मे, ब्रह्मदत्त राजा वडे समारोह के साथ उद्यान गया। वह वहाँ पुष्प-फलो की चाह से घूम रहा था, उसी समय उद्यान के वन-षण्ड में गा गा कर लकडी चुनती एक स्त्री को देख, उसपर ग्रासक्त हो, उसने उससे सहवास किया। उसी क्षण, बोधिसत्त्व ने उसकी कोख मे प्रवेश किया। उसकी कोख, वज्र से भरी गई की तरह, भारी हो गई। उसने गर्भ स्थापित हुग्रा जान, (राजा से) कहा—"देव! मुफ्ते गर्भ हो गया है।" राजा ने ग्रँगुली की ग्रँगुली देकर कहा—"यदि लड़की हो, तो इस (ग्रँगुली) को फेककर, (ग्रपनी) लडकी को पालना। यदि लड़का हो, तो ग्रँगूली के साथ, उसे मेरे पास लाना"। इतना कहकर, वह चला गया। गर्भ-परिपक्व होने पर, उसने बोधिसत्त्व को जन्म दिया। बोधिसत्त्व के इधर उधर दौड-भाग कर कीडा भूमि मे खेलते समय, कोई कोई (उसके सम्बन्ध मे) कहते थे, "बिना-बाप-के ने हमें मारा"। इसे सुन, बोधिसत्त्व ने माता के पास जाकर पूछा—"माँ, मेरा पिता कौन हैं?"

"तात<sup>ा</sup> तू बाराणसी-नरेश का पुत्र है।"

"ग्रम्मा! क्या इसका कोई साक्षी (=सबूत) है ?"

"तात ! राजा 'यदि लडकी हो, तो इस ग्रँगूठी को फेककर, (ग्रपनी) लड़की को पालना, यदि लडका हो, तो ग्रँगूठी के साथ, उसे मेरे पास लाना,' कह, यह ग्रँगूठी दे गया है।"

"ग्रम्मा । यदि ऐसा है, तो मुभ्रे क्यों पिता के पास नही ले चलती?"

उसने पुत्र का विचार जान, राज-द्वार पर जा, राजा को कहला भेजा, और राजा के बुलवाने पर, राजा को प्रणाम कर कहा—"देव ! यह तुम्हारा पुत्र है।"

राजा ने पहचानते हुए भी, सभा में लज्जा के मारे, कहा—"यह मेरा पुत्र नहीं है।"

"देव ! यह तुम्हारी ग्रॅंगूठी हैं, इसे पहचानेगे ?" "यह ग्रॅंगुठी भी मेरी नहीं है ।"

"देव ! तो अब मेरे पास सत्य किया' के अतिरिक्त कोई दूसरा साक्षी नहीं है। 'यदि यह बालक आप से पैदा हुआ है, तो आकाश में ठहरे, नहीं तो भूमि पर गिरकर मर जाये' कह, उसने बोधिसत्त्व को पैरों से पकड़, आकाश में फेक दिया। बोधिसत्त्व ने आकाश में पालथी मार, बैठ, मधुर स्वर से पितृ-धर्म (=पिता का कर्तव्य) कहते हुए, यह गाथा कही—

> पुत्तो त्याहं महाराज! त्वं मं पोस जनाधिप! ग्रज्जेपि देवो पोसेति किंच देवो सकं पजं।

[महाराज ! तुम्हारा पुत्र हूँ। जनाधिप ! तुम मेरा पालन करो। देव ! तुम तो श्रौरो का भी पालन करते हो, (फिर) श्रपनी सन्तान की (तो वात ही) क्या ?]

इसमे पुत्तो त्याहं का मतलब है, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। पुत्र होते है चार प्रकार के—आत्मज, क्षेत्रज, अन्तेवासिक तथा दिन्नक (च्दत्तक)। अपने हेतु (शरीर) से जो उत्पन्न हुम्रा हो, वह आत्मज, शयनासन पर, पलंग पर, छाती पर;—इस प्रकार के स्थानो पर जो (दूसरे से) उत्पन्न हुम्रा, वह क्षेत्रज; अपने पास रहकर शिल्प (चिवद्या) सीखने वाला अन्तेवासिक, तथा पालने-पोसने के लिए दिया गया (बालक) दिन्नक। यहाँ पुत्र शब्द का प्रयोग आत्मज के अर्थ मे है। चारो प्रकार की संग्रह-वस्तुम्रो से जो प्रजा का रञ्जन करे, वह राजा; फिर महान् राजा, सो महाराज, आमन्त्रित करने के लिए ही महाराज! कहा गया है। त्वं मं पोस जनाधिप का अर्थ है, हे जनाधिप! हे महाजन(समूह) मे ज्येष्ठतम! आप मेरा पोषण करे, भरण करे, वृद्धि करे। अञ्जेपि देवो पोसेति का अर्थ है कि देव अन्य अनेक हाथी-पालक,

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> सत्य किरिया, सत्य ग्रौर पुण्य की शपथ।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup>दान, प्रिय-वाणी, लोक-हित का श्राचरण तथा समानता ।

१७६ [ १.१.८

ग्रहव-पालक ग्रादि मनुष्यों तथा हाथी घोड़े ग्रादि प्राणियों का पालन करते हैं। किञ्च देवो सकं पजं में किञ्च (=ग्रौर क्या) शब्द निन्दार्थंक तथा अनुग्रहार्थंक निपात है। 'देव, ग्रपनी सन्तान, मुक्त ग्रपन पुत्र की पालना नहीं करते' कहकर निन्दा भी की गई है; ग्रौर 'ग्रन्य बहुत जनो का पालन करते हैं' कहकर अनुग्रह (का भाव भी जाग्रत) किया गया है। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने निन्दा करते हुए, तथा ग्रनुग्रह (का भाव जाग्रत) करते हुए कहा—"किञ्च देवो सकं पजं [=ग्रपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या ?]।

राजा ने बोधिसत्त्व को स्राकाश में बैठे, इस प्रकार धर्मोपदेश करते सुन हाथ पसार कर कहा—''तात ! ग्रा! में ही पालन करूँगा। में ही पालन करूँगा।" (ग्रौर भी लोगो ने) सहस्रो हाथ फैलाये। बोधिसत्त्व, ग्रौर किसी के हाथ में न उतर कर, राजा के ही हाथ में उतर, उसकी गोद में बैठे। राजा ने उन्हें उप-राजा बना, उनकी माता को पटरानी (== ग्रग्र-महिषी) बनाया। पिता के मरने पर वह काष्ठवाहन राजा के नाम से धर्म-पूर्वक राज्य का सञ्चालन कर (ग्रपने) कर्मानुसार परलोक को गया।

शास्ता ने कोसल-नरेश का यह धर्मोपदेश ला दोनो कहानियाँ कह, तुलना करके जातक कथा का साराश निकाल दिखाया। उस समय की माता, (श्रब की) महामायाथी, पिता (श्रब का) शुद्धोदन राजाथाश्रौर काष्ठवाहन-राजातो में ही था।

### ८. गामगी जातक

श्रिप श्रतरमानानं—यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक उद्योग हीन (=श्रालसी) भिक्षु के सम्बन्ध मे कही। इस जातक की वर्तमान-कथा तथा ग्रतीत-कथा, दोनो ग्यारहवे परिच्छेद के संवर-जातक में ग्रायेगी। उस जातक में तथा इसमें कहानी समान ही है, हाँ गाथा का भेद है।

बोधिसत्त्व के उपदेश को मानकर, सौ भाइयो मे सबसे छोटा होने पर भी ग्रामणी कुमार, सौ भाइयो के बीच, श्वेतछत्र के नीचे, सिहासनासीन हुग्रा। ग्रपने यश रूपी धन पर विचार करते हुए, भेरा यह यश रूपी धन, मुभे ग्रपने ग्राचार्य से मिला है, सोच, सन्तुष्ट-चित्त हो, यह उदान (=हर्षे से प्रेरित कथन) कहा—

श्रिप श्रतरमानानं फलासाव समिज्कति, विषक्क ब्रह्मचरियोस्मि एव जानाहि गामणी।।

[जल्द-बाजी न करने वालो की विशेष-फल की स्राशा पूर्ण होती है। गामणी ! तूऐसा जान कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ।]

इसमे जो स्रिप है, सो केवल निपात-मात्र है। स्रतरमानानं का मतलब है पण्डितो के उपदेश को मानकर, जल्द-बाजी से काम न ले, ढग (=उपाय कौशल) से काम करनेवालो की। फलासाब समिज्भिति का स्रर्थ है—इच्छित फल की जो झाशा है, वह उस फल की प्राप्ति होने से पूरी होती ही है। स्रथवा फलासा=स्राशा-फल, इच्छानुसार फल की प्राप्ति होती ही है, यह स्रर्थ है। विपक्कब्रह्मचिरियोस्मि चारो संग्रह-वस्तुयें श्रेष्ठ-चर्या होने से ब्रह्म-चर्या (कही गई है)। स्रौर क्योंकि वह यश रूपी धन की प्राप्ति का मूल-कारण है, इसलिए यश रूपी धन की प्राप्ति हुई रहने से (ब्रह्म-चर्य) का परिपक्व (=विपक्व) होना कहा गया है। स्रौर जो उसके यश की उत्पत्ति हुई है, वह भी श्रेष्ठता के कारण 'ब्रह्मचर्य' (कहा जा सकता है)। इसीलिए कहा है—

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> पच्चुप्पन्न वत्थु तथा श्रतीत-वत्थु ।

<sup>ै</sup> संवर जातक (४६२) ग्यारहवें परिच्छेद की इस कथा से ग्रामणी जातक की गाथा को संगति नहीं बैठती। मालूम होता है। ग्रसली ग्रामणी जातक लुप्त हो गई है।

विपक्क ब्रह्मचिरयोस्मि। एवं जानाहि गामणी—कही कही ग्रामिक पुरुष को; ग्रौर कही कही ग्राम में जो बडा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (ग्रपने को) सब जनो में श्रेष्ठ समक्त ग्रपनी ही ग्रोर इशारा कर, ग्रपने को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का ग्रतिकमण करके, तुक्ते इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह ग्राचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात ग्राठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई ग्रपने ग्रपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुग्रा।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (ग्रार्य-)सत्यो को प्रकाशित किया। (ग्रार्य-)सत्यो के प्रकाशन के ग्रन्त मे, (वह) ग्रालसी भिक्खु ग्रर्हत्-पद मे प्रतिष्ठित हुग्रा। शास्ता ने दोनो कहानियाँ कह, मेल तुलनाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया।

## ६. मखादेव जातक

जतमङ्गरुः मर्ग्हं......इस गाथा को शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, महानिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (चमहाभिनिष्क्रमण) पहले निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

# क. वर्त्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=ग्रभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा मे ग्रा बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुग्रो को सम्बोधित किया—"भिक्षुग्रो! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?"

मखादेव ] १७६

"भन्ते । ग्रौर कोई बात-चीत नहीं, बैठे ग्रापके ग्रभिनिष्कमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुत्रो ! तथागत ने केवल ब्रब ही ब्रभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी ब्रभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुग्रो ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की । भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में शिदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुग्रा। वह चौरासी हजार वर्ष तक बाल-कीडा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा श्रौर फिर महाराजा हुग्रा। चिरकाल के बाद (उसने), एक दिन (ग्रपने) नाई (कप्पक)से कहा—"सौम्य कप्पक! जब तुभें मेरे सिर में सफेद (बाल) दिखाई दें, तो मुभें कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमें के रंग के (=काले) केशों में केवल एक सफेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव! श्रापके (सिर में) एक सफेद (बाल) (दिखाई) दें हा है।"

"तो सौम्य ! उस सफेद (बाल) को उखाडकर मेरी हथेली पर रक्खो।" ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाडकर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हजार वर्ष की ग्रायु शेष थी, लेकिन फिर भी सफेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज ग्राकर समीप खडा हो गया हो, (ग्रथवा) ग्राग लगी कुटिया मे दाखिल हुआ हो, उसका चित्त, उद्दिग्न हो उठा। वह सोचने लगा—"मूर्ख मखादेव! सफेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलो) का परित्याग न कर सका।" उसके इसप्रकारसफेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करने से, (उसका) हुदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'ग्राज ही मुक्ते निकलकर प्रत्रजित होना चाहिए (का निश्चय कर), नाई को लाख (मुद्रा) ग्रामदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहा—"तात! मेरे सिर में सफेद (बाल) उग ग्राया है।

में बढा हो गया हूँ। (म्रभी तक) में ने मानुषिक भोगो का उपभोग किया है, भ्रब में दिव्य भोगों की खोज करूँगा। (यह) मेरा गृहत्याग (चिनष्कमण) का समय है। (म्रब) तू इस राज्य को सँभाल। में प्रव्रजित हो, मखादेवश्राम्त-उद्यान में रहते हुए योगाभ्यास (चश्रमण-धर्म) करूँगा।"

इस प्रकार उसने जब इस प्रब्रज्या के लेने की इच्छा प्रकट की, तो ग्रमात्यों ने ग्राकर उसे पूछा—''देव! ग्रापके प्रब्रजित होने का क्या कारण है?'' राजा ने सफेद (बाल) को हाथ में लेकर, ग्रमात्यों से यह गाथा कही—

#### उत्तमङ्गरुहा मय्हं इमे जाता वयोहरा, पातुभूता देवदूता पब्बज्जासमयो मम ॥

[यह मेरी श्रायु का हरण करनेवाले मेरे सिर के बाल पैदा हो गए है। यह देव-दूत प्रादुर्भूत हुए है। यह मेरी प्रब्रज्या का समय है।]

यहाँ उत्तमङ्गरुहा का अर्थ है केश । हाथ पाँव आदि अङ्गो मे उत्तमअङ्ग (=िसर) मे उत्पन्न होने के कारण, केश, उत्तमङ्गरुहा कहलाते हैं ।
हमे जाता वयोहरा, अर्थात् तात ! देखो, सफेद (बाल) होने से, यह तीनों
अकार की आयु के हरण करनेवाले (हैं), (इसलिए) इसे जाता वयोहरा।
पातु भूता =उत्पन्न हुए। देवदूता, देव कहते हैं मृत्युको, उसके दूत, सो देवदूत।
सिर मे सफेद (बालो) के उत्पन्न होने पर (मनुष्य अपने को) यमराज (=
मृत्यु-राज) के समीप खड़ा सा समभता है, इसलिए सफेद (बाल) मृत्यु-देव
के दूत कहलाते हैं। देवताओं जैसे दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत। जिस प्रकार
अलकृत-सजे हुए देवता के, आकाश में खड़े होकर 'अमुक दिन मरेगा'
कहने से वह (मरण) वैसे ही होता है, इसी प्रकार सिर में सफेद (बाल) का
उगना भी देवता की भविष्यद्वाणी के सदृश ही होता है। इसलिए सफेद (केश)
देव सदृश दूत कहलाते हैं। विशुद्धि-देवो के दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत।
सभी बोधिसत्त्व बूढ़े, व्याधिग्रस्त, मृत तथा प्रव्रजित को देख कर ही वैराग्य को
प्राप्त हो, निकल कर प्रव्रजित होते हैं। जैसे कहा है—

जिग्णं च दिस्वा दुखितं च व्याधितं मतञ्च दिस्वा गतमायुसद्ख्यं

#### कासाव वत्थं पब्बिज्जितञ्च दिस्वा तस्मा म्रहं पब्बिजितोम्हि राजा।।

[जीर्ण (==बूढे) दु खित ==व्याधित को देखकर, श्रायुक्षय-प्राप्त == मृत को देखकर, (तथा) काषाय वस्त्र धारी प्रव्रजित को देखकर, हे राजन् ! मैं प्रव्रजित हुन्ना हूँ।]

इस प्रकार सफेद (केश) विशुद्धि-देवों के दूत होने से देव-दूत कहलाते हैं। पब्बज्जासमयों मम, स्पष्ट करता है कि यह मेरे लिए गृहस्थ से निकलने के कारण 'प्रब्रज्या' कहें जाने वाले, साधु-भेस धारण करने का समय हैं।

यह (सब) कहकर, वह उसी दिन राज्य छोड, ऋषि-प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हुआ और उसी मखादेव-आम्र-वन में विचरते हुए, चौरासी हजार वर्ष तक चारो ब्रह्मविहारों की भावना करते ध्यानावस्था को बिना छोड़े मरकर, ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो, फिर वहाँ से मिथिला ही में निमि नामक राजा (के रूप में) उत्पन्न हुआ; और उसने नष्ट होते हुए अपने वश को सँभाला! फिर वहीं आम्रवन में प्रब्रजित हो, ब्रह्मविहारों की भावना कर, फिर ब्रह्मलोक ही में उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने भी, "भिक्षुग्रो! तथागत ने केवल इसी जन्म में महाभिनिष्क्रमण नहीं किया, पहले भी ग्रभिनिष्क्रमण किया है।"

इस धर्म-उपदेश को लाकर, दिखाकर, चारो (म्रार्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (उस समय) कोई स्रोतापन्न हुए। कोई सकुहागामी। कोई म्रनागामी।

इस प्रकार भगवान् ने इन दो कहानियों को कहकर, तुलना करके जातक का साराश निकाल दिखाया । उस समय का नाई (ग्रबका) ग्रानन्द था, पुत्र (ग्रबका) राहुल था । ग्रीर मखादेव राजा तो में ही था ।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> मैत्री-भावना, करुणा-भावना, मुदिता-भावना तथा उपेक्षा-भावना ।

# १०. सुखिबहारी जातक

'यञ्च भ्रञ्जे न रक्खन्ति—' यह गाथा, बुद्ध ने श्रन्थिय नगर के समीप स्थित श्रन्थिय श्राम्र-वन मे विहार करते समय सुख पूर्वक विहार करनेवाले भिद्दय स्थिवर के बारे मे कही।

# क. वर्त्तमान कथा

सुख पूर्वंक विहार करनेवाले भिद्दिय स्थिवर छ क्षत्रियों तथा सातवे उपाली की प्रबच्या के समय, प्रबजित हुए थे। उन (सात) में से भिद्दिय स्थिवर किम्बल स्थिवर, भृगु स्थिवर तथा उपालि स्थिवर ग्रह्त्व पद को प्राप्त हुए। ग्रान्द स्थिवर श्रोतापन्न हुए। ग्रान्द स्थिवर दिव्य-चक्षु के लाभी हुए। ग्रान्द स्थिवर दिव्य-चक्षु के लाभी हुए। ग्रान्द स्थिवर दिव्य-चक्षु के लाभी हुए। ग्रान्दिय नगर तक छन्नो क्षत्रियों की कथा खण्डहाल जातक में ग्रायेगी। ग्रायुष्मान् भिद्द्य राज करने के समय, ग्राप्नी हिफ़ाजत के लिए, पहरेदारों तथा ग्रौर भी कई प्रकार की ग्रारक्षा के साथ रहते थे। महल के ऊपरले तल्ले पर, बडे पलंग पर लेटते समय भी, ग्राप्ने भय-भीत होने की बात स्मरण कर, तथा ग्रब ग्रहंत्पद प्राप्त कर लेने पर जङ्गल ग्रादि में, जहाँ तहाँ विचरते हुए भी, ग्रपने को निर्भय देख, प्रसन्नता से कहते थे— "ग्रहों! सुख! ग्रहों! सुख! ग्रहों! सुख।"

इसे सुन भिक्षुग्रो ने भगवान् से कहा कि—
"ग्रायुष्मान् भिद्दय ग्रपना ग्रहंत् होना (=ग्रञ्ज) कह रहे है।"

१ खण्डहाल जातक (५४२)

<sup>&</sup>lt;sup>९</sup> चुल्लवग्ग में भिद्दय का 'गृह-सुख' को याद करना लिखा है ।

भगवान् ने कहा, "भिक्षुग्रो ! भिद्दिय, केवल ग्रब ही सुख पूर्वक विहार करनेवाला नहीं है, यह पहले भी सुख पूर्वक ही विहार करनेवाला था।" भिक्षुग्रो ने भगवान् से, उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की । भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व-समय बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व ने (एक) प्रसिद्ध, महान् कुल में ब्राह्मण हो, जन्म लिया था। भोगो (=कामों) में लिप्त रहने के दुष्परिणाम (=ग्रादीनव) ग्रौर वैराग्य (निष्क्रमण) में लाभ देखकर, भोगो को छोड, हिमवन्त में प्रवेश कर, वह ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए। उन्होंने ग्राट समापत्तियों को प्राप्त किया। इनके अनुयायी ग्रनेक थे; पाँच सौ तो तपस्वी थे। इन्होंने वर्षा-काल ग्राने पर हिमवन्त से निकल, तपस्वियों के गण सहित, ग्राम, नगर (=िनगम) ग्रादि में घूमते हुए, बाराणसी पहुँच राजा के ग्राध्रित, राज-उद्यान में वर्षा-वास किया। वहाँ वर्षा के चारो मास रहकर, राजा से (चलने के लिए) पूछा। राजा ने प्रार्थना की—"भन्ते ग्राप बृद्ध है। ग्रापको हिमवन्त से क्या? शिष्यों को हिमवन्त भेजकर, ग्राप यही रहे।

बोधिसत्त्व ने ग्रपने प्रधान शिष्य को पाँच सौ तपस्वी सौंपकर कहा—
"जा। तू इनके साथ हिमवन्त मे रह। में यही रहूँगा।" (इस प्रकार) उनको चलता कर, ग्राप वही रहने लगे। इनका, वह प्रधान शिष्य राज-प्रव्नजित था। उसने बड़े भारी राज्य को छोड़, प्रव्नजित हो किसण-परिकर्म (=योग-अभ्यास) कर, ग्राठ समापित्तयाँ प्राप्त की थी। हिमवन्त मे तपिस्वयो के साथ रहते रहते एक दिन, उसने (ग्रपने) ग्राचार्य्य को देखने की इच्छा से तपिस्वयो को बुलाकर कहा—'तुम उत्कण्ठा रहित हो, यही रहो। में ग्राचार्य्य की वन्दना करके लौटूँगा'। ग्रौर ग्राचार्य्य के पास जाकर, प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ, एक चटाई फैलाकर, उसपर ग्राचार्य्य के समीप ही लेट रहा।

उस समय राजा तपस्वी को देखने की इच्छा से उद्यान मे जाकर, प्रणाम कर, एक स्रोर बैठ रहा। शिष्य-तपस्वी राजा को देखकर भी (स्रपने स्थान से) नही उठा। लेटा ही लेटा 'म्रहो! सुख! म्रहो! सुख'—इस प्रकार का उदान (—प्रीति-वाक्य) कहता रहा। राजा ने 'यह तपस्वी मुफ्ते देखकर भी नही उठा हैं' (सोच) म्रसन्तुष्ट हो बोधिसत्त्व से कहा—''भन्ते! मालूम होता है, इस तपस्वी को पेट भर खाने को मिला है। तभी तो 'उदान' कहता हुम्रा सुख-पूर्वक लेटा है।" "महाराज! पहले, यह तपस्वी भी तुम्हारे सदृश एक राजा था। सो 'मैंने राज्य-श्री का म्रानन्द लूटते कितने ही शस्त्रधारी पहरेदार मेरी रक्षा करते है, तो भी, इस प्रकार का सुख म्रनुभव नही किया' (सोच) यह म्रपने प्रव्रज्या-सुख के बारे मे इस प्रकार का उदान कह रहा है।"

यह कह बोधिसत्त्व ने राजा को धर्म-कथा कहने के लिए, यह गाथा कही---

> यञ्च ग्रञ्जे न रक्खन्ति यो च ग्रञ्जे न रक्खित, स वे राज! सुखं सेति कामेसु ग्रनपेश्खवा॥

[जिसकी न दूसरे रक्षा करते हैं, श्रौर जो न दूसरो की रक्षा करता है; राजन् ! वही भोगो (=कामो) मे श्रपेक्षा-रहित व्यक्ति सुख से सोता है।]

यञ्च ग्रञ्जे न रक्खन्ति का ग्रर्थं है, जिस व्यक्ति की दूसरे बहुत से व्यक्ति ग्रारक्षा नहीं करते । यो च ग्रञ्जे न रक्खित का ग्रर्थं है, जो ग्रकेला व्यक्ति, में राज्य का सञ्चालन करूँ, (सोच) दूसरे बहुत से व्यक्तियो की ग्रारक्षा (हिफाजत) नहीं करता है । स वे राज! सुखं सेति का ग्रर्थं है, महाराज! वह ग्रकेला, ग्रदितीय, प्रविविक्त (—एकान्तसेवी) व्यक्ति, शारीरिक तथा मानसिक सुख से समन्वित हो सोता है। यह तो देशना (—पॉति) का शब्दश. ग्रर्थं हुग्रा। नहीं तो, इस प्रकार का व्यक्ति सुख से केवल सोता ही नहीं है, वह सुख से चलता है, ठहरता है, बैठता है, सोता है—ग्रर्थात् सब ग्रवस्थाग्रो (—इर्य्यापथा) में वह सुखी ही रहता है। कामेसु ग्रनपेक्खवा—वस्तु-कामना तथा किलेस (—पापेच्छा)-कामना में ग्रासक्ति-रहित्र हो, जिसके छन्द —राग का नाश हो गाय है जो तृष्णा-रहित है हे राजन्। इस प्रकार का व्यक्ति सब शारीरिक ग्रवस्थाग्रो में सुख से विहार करता है।

राजा धर्म-देशना (=धर्मोपदेश) सुन, सन्तुष्ट-चित्त हो, प्रणाम कर, (अपने) निवास-स्थान पर गया। श्रौर (वह) शिष्य भी श्राचार्य्य को प्रणाम कर हिमवन्त को चला गया। लेकिन बोधिसत्त्व वही विहार करते हुए, ध्याना-वस्थित रह, काल करके ब्रह्म-लोक मे उत्पन्न हुए। शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखा, दोनो कहानियो को कह, तुलनाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय (का) शिष्य, भहिय स्थिवर था, श्रौर गण-शास्ता तो में ही था।

# पहला परिच्छेद

# २. सील वर्ग

#### ११. लक्खण जातक

'होति सीलवतं ग्रत्थों—इस गाथा को, राज-गृह के समीप वेळुवन में विहार करते हुए (बुद्ध ने), देवदत्त के बारे में कहा।

# क. वर्तमान कथा

देवदत्त का (भगवान् को) मारने का प्रयत्न करने तक का वृत्तान्त खण्डहाल जातक में, धनपाल (हाथी) के भेजने तक का वृत्तान्त चुल्लहंसजातक में, तथा पृथ्वी में प्रवेश करने तक का वृत्तान्त सोलहवे परिच्छेद में समुद्दवाणिज जातक में से स्रायेगा।

एक समय देवदत्त ने भगवान् से **पाँच बातें** ( $\Longrightarrow$ वस्तु) स्वीकार करने की प्रार्थना की । उन (पाँच बातों) के ग्रस्वीकृत होने पर, वह सड्घ में फूट पैदा कर, पाँच सौ भिक्षुग्रो को साथ ले गया-सीस में रहने लगा। (समय बीतने पर) उन भिक्षुग्रो को कुछ ग्रकल ग्राई। यह जानकर, बुद्ध ने (ग्रपने दोनो प्रधान शिष्यो, को कहा—

"सारिपुत्त ! तुम्हारे साथी पाँच सौ भिक्षु, देवदत्त के मत को पसन्द कर उसके साथ चले गये, लेकिन म्रब उनको म्रकल म्रा गई है। तुम बहुत से

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> ५४२ जातक । <sup>२</sup> ५३३ जातक । <sup>३</sup>४६६ जातक ।

<sup>\*</sup>सभी भिक्षु म्राजीवन म्रारण्य-वासी; वृक्षों के नीचे रहनेवाले (=घर में न रहें); पंसु-कूलिक (=गुदड़ी घारी); पिण्डपातिक (=भिक्षा पर ही जीवित रहना) तथा शाकाहारी (=म्रमांस भोजी) हों।

लक्खण ] १५७

भिक्षुम्रों के साथ वहाँ जाम्रो, ग्रौर उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का बोध करवा, साथ ले म्राम्रो।" तब वह वैसे ही (गयासीस) गये; ग्रौर उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का भ्रवबोध करवा, फिर एक दिन भ्ररुणोदय के समय उन भिक्षुम्रो को साथ लेकर, वेलुवन चले ग्राये। म्राकर, सारिपुत्र स्थविर भगवान् को प्रणाम कर एक म्रोर खड़े हुए। तब भिक्षुम्रो ने स्थविर की प्रशंसा करते हुए, भगवान् से कहा—

"भन्ते ! हमारे ज्येष्ठ-भ्राता, धर्मसेनापित (सारिपुत्र) पाँच सौ भिक्षुग्रों के बीच में ग्राते कैसे सुन्दर लगते हैं; लेकिन देवदत्त तो श्रनुयायियो (—परिवार) के बिना रह गया।"

"भिक्षुग्रो । जाति-सघ के बीच में ग्राते हुए सारिपुत्र, केवल ग्रब ही सुन्दर नहीं लगते हैं, पहले भी वह शोभा देते थे, ग्रौर देवदत्त, केवल ग्रब ही बे-जमाती (गण-रहित) नहीं हुग्रा, पहले भी हुग्रा है।"

भिक्षुस्रो ने भगवान् से उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की । भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की——

#### ख अतीत कथा

पूर्व समय मे मगध देश के राजगृह नगर में, कोई मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व ने मृग की योनि में जन्म ग्रहण किया था। बडे होकर वह (एक) हजार मृगों के दल के साथ, जंगल में वास करते थे। उनके लक्षण ग्रीर काल नाम के दो पुत्र थे। उन्होंने ग्रपने बूढा होने पर, "तात! में ग्रव बूढा हो गया, ग्रव तुम इस मृग-गण को सँभालों" कह एक एक पुत्र को पाँच पाँच सौ मृग सौप दिये। उस समय से, वह दोनो जने मृग-गण को लेकर घूमने लगे। मगध देश में खेती के दिनों में, खेती पकने के समय, जंगल में मृगों को खतरा होता था। खेती-खानेवाले मृगों को मारने के लिए लोग जहाँ तहाँ गढे खोदते, काँटे लगाते, पत्थर-यन्त्रों (च्णुलेल) को सँवारते, कूट-पाश ग्रादि बन्धन फैलाते थे, (जिससे) बहुत से मृग मारे जाते। बोधिसत्त्व ने खेती पकने का समय जान, पुत्रों को बुलवाकर कहा—"यह खेती पकने का समय है। (इस समय) बहुत से मृग मारे जाते हैं। हम बड़े (लोग) तो जिस

किसी ढंग से एक ही स्थान पर (रहते) दिन काट लेगे, लेकिन तुम ग्रपने ग्रपने मृग-गणको लेकर, जगल में, पर्वत में जाग्रो; ग्रीर (वहाँ रह) खेती कटने के समय (लौट) ग्राना।"

वे पिता के वचन को 'ग्रच्छा' (कह), ग्रपने ग्रनुयायियो सहित निकल पडे। उनके जाने के मार्ग मे रहने (वाले) मनुष्य, "इस समय मृग पर्वतो पर चढते है, इस समय पर्वतो से उतरते है" जानते थे श्रौर जहाँ तहाँ छिपने योग्य जगहों पर छिप कर वे बहुत से मुगो को मार डालते थे। काल (नामक) मृग ग्रपनी मूढता के कारण, यह जाने योग्य समय है (ग्रथवा) यह नहीं जाने योग्य समय है, न समभ, मृग-गण को ले पूर्वाण्ह के समय भी, सायकाल के समय भी, रात्रि के समय भी, (तथा) प्रात काल के समय भी ग्राम-द्वार के पास से ही निकलता था। जहाँ तहाँ प्रगट ही खड़े, ग्रथवा छिपे रह मनुष्य बहुत से मुगों को मार डालते । इस प्रकार ग्रपनी मूढता के काण (उसने) बहुत से मृगो को मरवा कर, बहुत थोड़े से ही मुगो के साथ आरण्य मे प्रवेश किया। लेकिन पण्डित = व्यक्त, उपायकुशल लक्षण (नामक) मृग, 'इस समय जाना चाहिए, इस समय नही जाना चाहिए' जानता था। वह न ग्राम-द्वार से जाता, न दिन में जाता, न रात्र ( = शाम ) के समय जाता, न प्रात काल के समय जाता; म्ग-गण को लेकर केवल ग्राधी-रात के समय जाता । इसलिए वह एक भी म्ग का नाश बिना होने दिये ही जंगल मे प्रविष्ट हुआ। वहाँ चार महीने रहकर वे (मुग) खेत कट जाने पर, पर्वत से उतरे। काल मुग, लौटते समय भी, पहली ही तरह से (लौटकर) बाकी मृगो को भी मरवा कर ग्रकेला ही (वापिस) श्राया। लेकिन लक्षण मृग की मडली का एक भी मृग नष्ट न हुश्रा श्रीर श्रपने पाँच सौ मुगो के साथ, माता पिता के पास (वापिस) ग्राया । बोधिसत्त्व ने दोनो पुत्रो को म्राता देख, मृग-गण से बात चीत करते हुए यह गाथा कही--

> होति सीलवतं ग्रत्थो पटिसन्यार वृत्तिनं, लक्खणं पस्स ग्रायन्तं जाति संघ पुरक्खतं; ग्रथ पस्सिस मं कालं सुविहीनं च जातिहि॥

[(सदाचारी) ग्रौर श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने वालो की उन्नति होती

लक्खणः ] १८६

है। जाति-सघ के ग्रागे ग्रागे ग्राते हुए लक्षण को देखो ग्रौर ञाति-सघ से रहित (ग्रकेले) ग्राते हुए इस काल को (तो) तुम देखते ही हो।)]

यहाँ सीलवत का ग्रर्थ है, शुक्ल-शील से युक्त, ग्राचार-युक्त ( —सदाचारी)। अयं = उन्नति । 'पटिसन्थार वृत्तिनं' धम्म-पटिसन्थार तथा ग्रामिष-पटि-सन्थार-इन दोनो की वृत्ति को कहते हैं पटिसन्थार-वृत्ति । सो उन पटि-सन्थारवृत्ति वालो का पाप निवारण सम्बन्धी उपदेश = ग्रनुशासन रूपी पटिसन्थार (=बात-चीत) ही धर्म-पटिसन्थार है। गोचर-लाभ, गिलानु-पट्टाक (=रोगी की सेवा), धार्मिक रक्षा के रूप मे सम्बन्धी पटिसन्थार ही म्रामिष-पटिसन्थार कहा जाता है। ऐसा कहा गया है कि इन दोनो पटिसन्थारो में जो स्थित है, सदाचारी है, पण्डित है; उनकी उन्नति होती है। ग्रब उस उन्नति को दिखाने के लिए, जैसे पुत्र माता को बुलाता हो वैसे 'लक्खणं पस्स' म्रादि कहा । संक्षेप मे इसका मर्थ है-(सदा-)म्राचार-पटिसन्थार युक्त, एक मृग को भी बिना खोये, बिरादरी के साथ ग्रागे ग्राते हुए ग्रपने पुत्र को देखो, ग्रौर उसी (सदा-) ग्राचार-पटिसन्थार सम्पत्ति से रहित, मूढ, एक भी जाति-भाई को बिना बचाये, सभी नातेदारो से रहित, ग्रकेले ग्राने-वाले इस काल मृग को देखो (ग्रथ पस्ससिम काल)। इस प्रकार पुत्र की प्रशसा करते हुए बोधिसत्त्व ग्रायु-भर (जीवित) रहकर कर्मानुसार परलोक सिधारे।

बुद्ध ने भी 'भिक्षुग्रो । जाति-सघ भाइयो के साथ ग्राता हुग्रा सारिपुत्र केवल ग्रब ही सुन्दर नही लगता, पहले भी शोभा देता था। ग्रौर देवदत्त, केवल ग्रब ही गण से रहित नही हुग्रा, पहले भी हुग्रा है'—इस धर्म देशना को दिखा, दोनो कहानियो को जोड, तुलनाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय का काल मृग (ग्रब का) देवदत्त था श्रौर उसकी परिषद् भी देव-दत्त परिषद् ही थी। लक्षण मृग सारिपुत्र है। लेकिन उसकी मण्डली बुद्ध की मण्डली ही है। माता, (ग्रब की) राहुल-माता हुई। श्रौर पिता तो में ही था।

[ १.२.१२

## १२. निग्रोध मृग जातक

"निग्रोधमेव सेवेय्य..." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, कुमार काश्यप स्थविर की माता के बारे मे कही।

## क. वर्त्तमान कथा

वह राजगृह नगर के (एक) महासम्पत्तिशाली सेठ की लडकी थी। 
ग्रांति स्वच्छ-विचार ( — ऊँचे कुशल-मूल), परिमार्जित-सस्कार, ग्रन्तिम-शरीर 
वाली (उस लड़की) के हृदय में मुक्त होने की इच्छा वैसेही प्रज्वित हो रही 
थी, जैसे घड़े के अन्दर प्रदीप। जब से होश सँभाला, तभी से उसका मन गृहस्थ 
में न लगता था। उसने प्रव्रजित होने की इच्छा से माता पिता से कहा—
"ग्रम्मा-तात! मेरा मन घर में नहीं लगता। में (मोक्ष की ग्रोर) ले जानेवाले 
बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित होना चाहती हूँ। ग्राप मुभे प्रव्रजित कराये।"

"ग्रम्म ! क्या कहती है ? यह धनी कुल, ग्रौर तू हमारी ग्रकेली लडकी ! तू प्रवृजित नहीं हो सकती।"

माता-पिता से बार-बार प्रार्थना करने पर भी, प्रव्रज्या की ग्राज्ञा न मिलने पर, वह सोचने लगी—"ग्रच्छा (= हो)। पित-कुल जाकर, स्वामी को मनाकर प्रव्रजित होऊँगी।" फिर ग्रायु-प्राप्त होने पर, पित-कुल जाकर, पित को देवता बना, शीलवान्, सदाचारिणी (—कल्याण धर्मा) हो गृहस्थ मे रहने लगी। उनके सहवास से उसकी कोख मे गर्भ प्रतिष्ठित हो गया। (लेकिन) उसको गर्भ के प्रतिष्ठित होने का पता नहीं लगा।

उस समय उस नगर में उत्सव ( = नक्षत्र) की घोषणा हुई । सब नगर-वासी उत्सव मनाने लगे । नगर देव-नगर की भाँति ग्रलंकृत किया गया । लेकिन उसने, इस प्रकार के विशाल उत्सव के रहने पर भी, न श्रपने शरीर पर (चन्दनादि का) लेप किया, न उसे ग्रलंकृत किया। स्वाभाविक वेष में ही घूमती रही।

उसके स्वामी ने उससे पूछा—"भद्रे । सारा नगर (तो) उत्सव मना रहा है, तू अपने को क्यो नहीं सजा रही है?"

"ग्रार्थ्यं! यह शरीर बत्तीस प्रकार की गन्दिगियो से भरा है, इसे ग्रलकृत करने से ही क्या? यह शरीर न तो देव का बनाया हुग्रा है, न ब्रह्म का बनाया हुग्रा है, न स्वर्णमय है, न मिणमय, न हरिचन्दनमय है, न ही पुण्डरीक, कमल, उत्पल (ग्रादि) के गर्भ से उत्पन्न हुग्रा है, न ग्रमृतौषिध से पूर्ण है। (यह) गन्दिगी मे पैदा हुग्रा, माता-पिता (के सयोग) से ग्रस्तित्व मे ग्राया है। ग्रनित्यता, मालिश तथा मर्दन की ग्रावश्यकता होना, टूटना, ध्वस्त होना—यही इसका स्वभाव है। यह श्मशान को बढ़ानेवाला है, तृष्णा से उत्पन्न है। शोको का निदान है। विलाप का कारण है। सब रोगो का ग्रालय है। (दण्ड-)कमों का भोगनेवाला है। ग्रन्दर से गन्दा है; बाहर नित्य (गन्दिगी) चूती रहती है। कीडों का निवासस्थान (=ग्रावास) है। श्मशान का यात्री है। मरना (ही) इसका ग्रन्त है। (यह शरीर) सब लोगो की दृष्टि मे रहता हुग्रा भी—

श्रद्ठी नहारु संयुत्ती तचमंस विलेपनी,
छिवया कायो पिटच्छन्नी यथाभूत न दिस्सित ॥
श्रन्तपूरो उदरपूरो यक पेलस्स वित्थनो,
हदयस्स पप्फासस्स वक्कस्स पिहकस्स च।
सिंघाणिकाय खेलस्स, सेदस्स, मेदस्स च
लोहितस्स, लिसकाय, पित्तस्स च वसाय च॥
श्रथस्स नवहि सोतेहि श्रमुचि सवित सब्बदा
श्रिकखम्हा श्रिक्खगूथको, कण्णम्हा कण्णगूथको॥
सिंघाणिका च नासातो मुखेन वमित एकदा
पित्तं सेम्हं च वमित कायम्हा सेदजिल्लका॥

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> केस, रोम, नख, दॉत, त्वच् भ्रादि (देखो सत्तीपट्टान सुक्त, मज्भिम निकाय)।

श्रयस्स सुसिरं सीसं मत्यलुङ्गेन पूरितं,
सुभतो नं मञ्जिति बालो श्रविज्जाय पुरक्खतो ।।
श्रनतादीनवो कायो विसक्क्ख समूपमो,
श्रावासो सब्बरोगानं पुञ्जो दुक्खस्स केवलो ॥
सचे इमस्स कायस्स श्रन्तो बाहिरतो सिया।
दण्डं नूनगहेत्वान काके सोणे च वारये॥
दुग्गन्थो श्रमुची कायो कुणपो उक्करूपमो,
निन्दितो चक्खूभूतेहि कायो बालाभिनन्दितो ॥

[यह हड्डी और नसों का संयोग है, ऊपर से त्वच् और मास का लेप है, अौर उसके ऊपर चमडी से ढका है। (इसलिए इस शरीर का) यथार्थ स्वरूप नहीं दिखाई देता। (यह) ग्राँतो, ग्रामाश्रय, यकृत्-पेल, उदरस्थ (वस्ती), हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, प्लीहा (पिहक) सीढ़, थूक, पसीना, वर (मेद), रक्त, लिसका पित्त और चर्बी (वस)—इन सबसे भरा हुग्रा है। इसके नौ स्रोतो से सदा गन्दगी बहती है—ग्राँखो से ग्राँख का मैल, कानो से कान का मैल, नाक से सीढ। कभी कभी मुँह से उल्टी, पित्त और कफ की भी, शरीर से पसीना (स्वेद जल)। इसका छिद्रो वाला शीस मत्थलुङ्गे से भरा है। ग्रविद्या से घरे हुए लोगो को यह (शरीर) ग्राकर्षक (स्थाभ) मालूम होता है। यह विष-वृक्ष सदृश शरीर ग्रांके दोषो (स्थादिनव) से युक्त है। सव रोगो का घर है। केवल दु ख का ढेर है। यदि (किसी तरह से) इस शरीर के ग्रन्दर का हिस्सा बाहर ग्रा जाये, तो निश्चय से डण्डा लेकर कौग्रो और कुत्तो को हटाना पड़े। (इसीलिए) पिडतो (स्विध्न की है। बाल (मूर्ख) ही इस पर रीभते हैं (स्प्रशंसा करते हैं।)]

१ विजय सुत्त (सुत्त निपात)।

<sup>े</sup> कोहनी भ्रादि जोड़ो में स्थित तरल पदार्थ ।

<sup>ै</sup> खोपड़ी के भीतर का गुद्दा ।

"ग्रार्य पुत्र । इस शरीर को ग्रलकृत करके क्या करूँगी ? इस शरीर का ग्रलकृत करना क्या वैसा ही नहीं हैं जैसा गन्दगी भरे घड़े के बाहर चित्र बनाना?" सेठ-पुत्र ने उसके इस वचन को सुनकर कहा—"भद्रे ! यदि तू इस शरीर में इतने दोष देखती हैं, तो प्रव्नजित क्यों नहीं होती ?" "ग्रार्य पुत्र ! यदि मुक्ते प्रव्नज्या मिले, तो में ग्राज ही प्रव्नजित होऊँ।" सेठ-पुत्र ने 'ग्रच्छा' में तुक्ते प्रव्नजित कराऊँगा, कह, महा-दान दे, महासत्कार कर, बहुत सी साथनो (परिवार) के साथ, उसे भिक्षुणी-विहार में ले जाकर, वहाँ देवदत्त के पक्ष की भिक्षुणियों के पास प्रव्नजित कराया। वह प्रव्नज्या प्राप्त कर, सकल्प पूर्ण होने के कारण सन्तुष्ट हुई। तब उसके गर्भ के परिपक्व होने से, उसकी इन्द्रियो (—ग्राकार-प्रकार) का परिवर्तन (—ग्रन्यथा होना); हाथ पैर तथा पीठ का भारीपन, तथा पेट (—उदर पटल) का मोटापन देखकर, भिक्षुणियों ने पूछा—"ग्रार्ये! तू गर्भिणी सी प्रतीत होती हैं। सो यह क्या है?"

"ग्रायें! मै इसे नही जानती कि यह क्या है, लेकिन मेरा शील (=सदा-चार) परिपूर्ण है।" -

तब उन भिक्षुणियों ने उसे देवदत्त के पास ले जाकर, देवदत्त से पूछा—
"ग्रार्य । इस कुलपुत्री ने बडी किठनाई से (ग्रपने) स्वामी को मना कर प्रव्रज्या
प्राप्त की । लेकिन ग्रब इसे गर्भ दिखाई देता है । हम नही जानती कि यह गर्भ
इसे गृहस्थ रहते समय से ही है, ग्रथवा प्रव्रजित होने पर रहा है ? ग्रब हम क्या
करे ?" देवदत्त ने बुद्ध न होने के कारण, तथा क्षान्ति मैत्री ग्रौर दया का भी
ग्रभाव होने के कारण, सोचा "मुक्ते चाहिए कि मैं इसका चीवर उतरवा दूँ
( = ग्रपप्रव्रजित करा दूँ), नही तो (लोग) मेरी यह कहकर निन्दा करेंगे
कि देवदत्त के पक्ष की एक भिक्षुणी कोख मे गर्भ लिये फिरती है ग्रौर देवदत्त
उसकी उपेक्षा करता है।"

तब उसने बिना सोचे विचारे, पत्थर के रोडे को उलटाने की तरह कहा— "जाग्रो, इसे ग्रप्रव्रजित कर दो।" वे, उसका वचन सुन, उठ, प्रणाम कर विहार (=उपाश्रय) चली गईं।

तब इस कम ग्रायु की भिक्षुणी ने दूसरियो से कहा—"ग्रार्ये ! न तो देव-दत्त स्थविर 'बुद्ध' है, न ही में उनकी ग्रनुयायी होकर प्रव्नजित हुई हूँ। में, जो लोकाग्र, सम्यक् सम्बुद्ध है, उनकी अनुयायी हो प्रव्नजित हुई हूँ। और यह 'प्रव्रज्या' मुक्ते बड़ी कठिनाई से मिली है, सो मेरी इस (प्रव्रज्या) का लोप मत करो। आओ, मुक्ते (साथ) लेकर, शास्ता के पास जेतवन चलो।'' वे उसे साथ ले, राजगृह से पैतालीस योजन मार्ग कम से चलकर, जेतवन पहुँची। बुद्ध को प्रणाम कर, उन्होंने वह बात निवेदित की। शास्ता ने सोचा— "यद्यपि इसको गृहस्थ के समय ही गर्भ रहा है, लेकिन फिर भी तैर्थिको को यह कहने को हो जायगा कि श्रमण गौतम, देवदत्त द्वारा छोड़ी (भिक्षुणी) को साथ लिये फिरता है। इसलिए इस कथा को शान्त करने के लिए, राजा सहित परिषद् के बीच मे, इस अधिकरण (=मुक्ह्मे) का फैसला होना चाहिए।"

फिर एक दिन, कोशल-नरेश, प्रसेनजित्, बडे ध्रनाथिपिण्डक, छोटे ध्रनाथिपिण्डक, महाउपासिका विशाखा, तथा ग्रन्य प्रसिद्ध प्रसिद्ध महाकुलो को बुलवाकर, सायकाल के समय चारो प्रकार की परिषद् के एकत्र होने पर, उपाली स्थविर को सम्बोधित किया—"जाग्रो । चारो प्रकार की परिषद् के बीच मे इस तरुण भिक्षणी के कर्म की परीक्षा करो।"

"भन्ते ! श्रच्छा" कह, स्थिवर ने परिषद् के बीच मे जाकर, श्रपने श्रासन पर बैठ, राजा के श्रागे उपासिका विशाखा को बुलवाकर, (उसे) यह श्रिषिकरण सौपा—"विशाखे । इस तरुणी ने श्रमुक महीने, श्रमुक दिन प्रव्रज्या ग्रहण की है। तू जाकर, इसका गर्भ प्रव्रज्या से पूर्व का है, श्रथवा पीछे का, इसे यथार्थ जान।"

उपासिका ने 'ग्रच्छा' कह, इसे स्वीकार कर, कनात तनवा दी। ग्रौर कनात के ग्रन्दर तरुण भिक्षुणी के हाथ, पाँव, नाभी तथा उदर तक देखकर, महीने ग्रौर दिनो का विचार कर, ठीक से जान लिया, कि गृहस्थ रहते यह गर्भ ठहरा। फिर स्थविर के पास जाकर, यह बात निवेदित की। स्थविर ने चारों प्रकार की परिषद् के बीच मे उस भिक्षुणी को बरी किया। वह बरी होकर भिक्षु-सघ तथा शास्ता को प्रणाम कर, भिक्षुणियो के साथ ही भिक्षुणी-विहार को गई। गर्भ के परिपाक होने पर उसने ऐसे महाप्रतापी, पुत्र को जन्म दिया जिसने पद्मोत्तर (बुद्ध) के चरणों मे प्रार्थना की थी।

तब एक दिन राजा ने भिक्षुणियों के विहार के समीप से जाते हुए, बालक

की म्रावाज सुनकर मन्त्रियो से पूछा। म्रमात्यो ने मालूम कर उसे कहा— "देव! उस तरुण भिक्षुणी के पुत्र हुम्रा है। यह उसकी म्रावाज है।"

"भणे । भिक्षणियो को बच्चो के पालन पोषण में कठिनाई होती हैं, इसलिए इस (बालक) को हम पालेगे" (कह) राजा ने उस बच्चे को नटी स्त्रियो को दिलवा कर, (राज-)कुमार की तरह पालन करवाया। नामग्रहण के दिन, उसका नाम काश्यप रक्खा। (राज-)कुमार की तरह पालन होने से, वह कुमार-काश्यप नाम से प्रसिद्ध हुग्रा। वह सात वर्ष की ग्रायु में शास्ता के पास प्रव्रजित हुग्रा। (बीस वर्ष की) ग्रायु पूरी होने पर उपसम्पदा प्राप्त कर, समय बीतने पर सुन्दर धर्मोपदेशक हुग्रा। शास्ता ने 'भिक्षुग्रो। मेरे सुन्दर (चित्र) धर्म-कथित श्रावको में कुमार-काश्यप सर्व-श्रेष्ठ हैं" (कह) उसे सर्व-श्रेष्ठ पद दिया। ग्रागे चलकर, विमाक सूत्र सुनने पर, उसने ग्रह्त्-पद प्राप्त किया। उसकी भिक्षणी माता ने भी विदर्शना-भावना (च्योगाभ्यास) द्वारा ग्रग्र-फल (च्याईत्व) प्राप्त किया। कुमार-काश्यप स्थविर, बुद्धो के शासन रूपी ग्राकाश में पूर्ण-चन्द्र की भाँति प्रकाशित हुए।

एक दिन तथागत, भिक्षाटन से लौटकर, भोजन करने के बाद, भिक्षुग्रो को उपदेश दे गन्धकुटी में प्रविष्ट हुए। भिक्षु उपदेश ग्रहण कर, ग्रपने ग्रपने रात-दिन रहने के स्थानों में दिन बिता कर, शाम के समय धर्म-सभा में एकत्रित हो, "ग्रावुसों। देवदत्त ने 'बुद्ध' न होने के कारण, तथा क्षमा, मैं त्री ग्रौर दया का ग्रभाव होने के कारण, कुमार काइयप स्थविर ग्रौर स्थविरी को क्षण में नष्ट कर दिया। लेकिन सम्यक् सम्बद्ध ने, धर्म-राज होने के कारण, तथा क्षमा, मैंत्री ग्रौर दया रूपी सम्पत्ति से युक्त होने के कारण, उन दोनों को ग्राश्रय दियां कहते हुए, बैठे बुद्ध-गुणों की प्रशसा कर रहे थे।

शास्ता ने बुद्ध-लीला से धर्म-सभा मे आ, बिछे आसन पर बैठकर पूछा, "भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे ?"

सभी ने उत्तर दिया, "भन्ते । ग्राप ही की गुण-कथा (कहने) मे लगे थे।"

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> भ्रंगुत्तर निकाय, एतदग्ग वग्ग ।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> मज्भिम निकाय।

"भिक्षुम्रो । तथागत केवल म्रब ही, इन दोनो के म्राश्रय (-दाता) तथा सहारा नहीं हुए, पहले भी हुए हैं।"

भिक्षुग्रो ने भगवान् से उस बात को प्रगट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की—

#### ख. अतीत कथा

"पूर्व समय ये बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने मृग की योनि में जन्म ग्रहण किया। वह माता की कोख से निकलते ही सोने के रग का था। उसकी ग्रांखे मणि की गोलियों के सदृश, उसके सीग रजत-वर्ण के (उसका) मुँहलाल रग के दुशाल की राशि के सदृश, हाथ पैर के सिरो पर जैसे लाख लगी हो, ग्रौर उसकी पूँछ चमरी (गाय) की सी थी। लेकिन उसका शरीर घोड़े के बच्चे जितना बडा था। वह पाँच सौ मृगों के साथ जगल में रहता था। ग्रौर उसका नाम था निग्रोध मृग-राज। वहाँ से थोडी ही दूर पर (=ग्रविदूर) पाँच सौ मृगों के साथ, एक दूसरा भी शाख-मृग रहता था। वह भी सुनहरे ही रग का था।

उस समय बनारस का राजा मृगो का वध करने पर तुला हुम्रा था। बिना मास के वह खाता ही न था। मनुष्यो के काम छुड़ा, सारे निगमो तथा जनपदो के लोगों को इकट्ठा करवा, प्रतिदिन शिकार के लिए जाता था। मनुष्यो ने सोचा—"यह राजा (प्रतिदिन) हमारा काम छुड़वाता है। क्यो न हम उद्यान में घास (==निवाप) बो, पानी रख, बहुत से मृगो को उद्यान में दाखिल करा, द्वार बन्द कर, राजा को सौप दे ?" उन सब ने उद्यान में मृगो के लिए घास भ्रौर तृण बो दिया, पानी रख दिया। फिर वे दरवाजे लगाकर, नगर के मनुष्यो के सहित, मुद्गर ग्रादि नाना प्रकार के हथियार हाथ में ले, जंगल में घुसे, मृगो को ढूँ ढते हुए, "(घरे के) बीच में ग्राये मृगो को पकड़ेगे सोच, योजन भर स्थान को घर, (उस घरे को) कम करते हुए, निग्रोध मृग तथा शाखा मृग के निवास, स्थानो को बीच में घर लिया। फिर, उस मृग यूथ को देख, वृक्ष, गुल्म ग्रादि तथा भूमि को मुद्गरों से पीटते हुए, मृगो के भुण्ड को छिपी छिपी जगहों से निकाला श्रौर तलवार, शक्त, घनुष श्रादि श्रायुधों को निकाल, कोलाहल करते

निग्रोध मृग ] १६७

हुए, उस भुड को उद्यान में दाखिल कर, द्वार को बन्द कर, राजा के पास जा, कहा—'देव । लगातार शिकार के लिए जाने से हमारे काम की हानि होती है। हमने जंगल से मृगों को लाकर (उनसे) ग्रापका उद्यान भर दिया। ग्रब से ग्राप उनका मांस खायें। फिर राजा से ग्राज्ञा मांग चले गये।

राजा ने उनकी बात सुन, उद्यान में जा, मृगो को देखते हुए, (उनमें) दो सुनहरी मृगो को देख, उन्हें ग्रभय-दान दिया। उस दिन से लगाकर, कभी वह स्वय जाकर, एक मृग को मार लाता, कभी उसका रसोइया ही जाकर मृग को मार लाता। मृग धनुष को देखते ही मरने के भय से डरकर भागते। दो तीन चोटे खाकर दु खित होते, जखमी (चरोगी) होते ग्रौर मर भी जाते। मृग यूथ ने यह बात बोधिसत्त्व से कही। उसने शाख मृग को बुलवा कर कहा—'सौम्य! मृग बहुत नष्ट हो रहे हैं। यदि मरना ग्रवश्य ही है, तो ग्रब से मृग तीर से न बेधे जाये। गर्दन काटने की जगह (धर्म-गण्डिक स्थान) पर मृगो की बारी बँध जावे। एक दिन मेरी परिषद् (मडली) में से एक की बारी हो एक दिन तेरी मंडली में से एक की। जिसकी बारी ग्रावे, वह मृग धर्म-गण्डिकत पर जाकर, सिर रखकर पड रहे। इस प्रकार मृग जखमी न होगे।"

उसने 'ग्रच्छा' कह स्वीकार किया। उस समय से जिसकी बारी ग्राती, वह मृग जाकर, धर्म-गण्डिका पर सीस रखकर पड रहता। रसोइया ग्राकर, वहाँ पडे को लेकर, जाता।

एक दिन शाख-मृग की टोली मे एक गिंभणी हिरणी की बारी आई। उसने शाख-मृग के पास जाकर कहा— "स्वामी । में गिंभणी हूँ। पुत्र पैदा होने पर, हम दो जने बारी बारी से जायेगे। आज मेरी जगह किसी और को भेज दो।" उसने उत्तर दिया, "मैं तेरी जगह, किसी दूसरे को नहीं भेज सकता जो तुक्त पर पड़ी है, उसे तू ही जान। जा।"

उसके दया न दिखाने पर, वह बोधिसत्त्व के पास गई, ग्रौर जाकर वही बात कही। वह उस (हिरणी) की बात सुन, 'ग्रच्छा तू जा, मैं तेरी बारी टाल दूँगा' कह, स्वय जाकर धर्म-गण्डिका पर सिर रखकर लेट रहा। रसोइये ने उसे देख, 'ग्रभय-प्राप्त मृग-राज गण्डिका पर पडा है, क्या कारण है ?' (सोच) जल्दी से जाकर राजा से कहा। राजा ने उसी समय रथ पर चढ, बहुत से जन-समूह (=परिवार) के साथ ग्राकर, बोधिसत्त्व को देखकर पृद्धा—

"सौम्यमृगराज । क्या मैंने तुभे स्रभय-दान नही दिया ? यहाँ तू किस लिए पडा है ?"

"महाराज । गिंभणी हिरणी ने ब्राकर कहा कि मेरी बारी किसी दूसरे पर डाल दो। मै एक का मरण-दुख किसी दूसरे पर न डाल सकता था। इसलिए ब्रापना जीवन उसे देकर, श्रीर उसका मरना ग्रपने ऊपर लेने के लिए, मैं यहाँ श्राकर पड़ा हूँ। महाराज । इसमें श्रीर कोई दूसरी शंका न करे।"

राजा ने कहा—"स्वामी । स्वर्ण-वर्ण मृग-राज । मैंने तेरे सदृश क्षमा, मैंत्री और दया से युक्त मनुष्यो में भी किसी को इससे पहले नहीं देखा। इसलिए मैं तुभ पर प्रसन्न हूँ। उठ, तुभे और उसको—दोनो को अभय देता हूँ।"

"महाराज ! हम दोनो को भ्रभय मिलने पर बाकी क्या करेगे ?"

"स्वामी । बाकियो को भी स्रभय देता हुँ।"

"महाराज ! इस प्रकार केवल उद्यान के ही मृगो को ग्रभय मिलेगी। बाकी क्या करेगे?"

"स्वामी । उनको भी श्रभय देता हुँ।"

"महाराज ! मृग तो श्रभय प्राप्त करे, बाकी चतुष्पाद ( = चौपाये) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी श्रभय देता हुँ।"

"महाराज विजुष्पाद तो स्रभय प्राप्त करे, बाकी पक्षी (=िद्विज) क्या करेगे?"

"स्वामी! उनको भी श्रभय देता हुँ।"

"महाराज ! पक्षी तो अभय प्राप्त कर, बाकी जल मे रहनेवाले जन्तु (=मच्छ) क्या करेगे ?"

"स्वामी! उनको भी ग्रभय देता हुँ।"

इस प्रकार महा-सत्व ( = बोधिसत्त्व) राजा से सब सत्वो के लिए ग्रभय की याचना कर, उठकर, राजा को पाँच शीलों में प्रतिष्ठित कर, "महाराज! धर्माचरण करो। न्याय करो माता पिता, पुत्र पुत्री, ब्राह्मण-गृहपित, निगम तथा जनपद के लोग, (सब के साथ) धर्म का व्यवहार = उचित व्यवहार करने से शरीर छूटने पर, मरने के बाद, सुगित, स्वर्ग लोक को प्राप्त होगे।" — इस प्रकार राजा को वुद्ध-लीला से धर्मोपदेश दे, कई दिन उद्यान में रह,

मृगों के भुड़ के साथ, ग्ररण्य में चला गया। उस हिरणी ने भी पुष्प सदृश पुत्र को जन्म दिया। वह खेलता खेलता शाख-मृग के पास चला जाता। उसकी माता उसे वहाँ जाता देख, 'पुत्र । ग्रब से उस के पास ना जाकर (केवल) निग्रोध (-मृग) के पास ही जाना' कह उपदेश देती हुई, यह गाथा कहती—

> निग्रोधमेव सेबेय्य न साखमुग्संवसे , नीग्रोधस्मि मतं सेय्यो यञ्चे सार्खास्म जीवितं ॥

[निग्रोध की ही सेवा करें। साख के समीप न जाये। साख (के ग्राश्रय) में जीने की ग्रपेक्षा निग्रोध (के ग्राश्रय) में मरना श्रेयस्कार हैं]।

निग्रोधमेव सेवेय्य का ग्रर्थं है कि तात । तू, ग्रथवा ग्रपना हित चाहनेवाला ग्रन्य कोई निग्रोध की ही सेवा करे—भजे—पास रहे। न साखमुपसंवसे का ग्रर्थं हैं कि साख-मृग के पास न रहे, पास जाकर न रहे, उसके ग्राश्रय में रह कर जीविका न चलाए। निग्रोधिंस्म मतं सेय्यो का ग्रर्थं हैं कि निग्रोध राजा के चरणो में मरना भी श्रेष्ठ है; ग्रच्छा है, उत्तम है। यञ्चे साखिंस्म जीवितं का ग्रर्थं है कि साख(-मृग)के पास जो जीना है, वह श्रेष्ठ नहीं है, ग्रच्छा नहीं हैं, उत्तम नहीं हैं।

उसके बाद से अभय-प्राप्त मृग मनुष्यों के खेत खाने लगे। मनुष्य 'यह, अभय-प्राप्त मृग है' (सोच) न उन्हें मारते थे, न भगाते थे। उन्होंने राजाङ्गण में इकट्ठे हो, राजा से इसकी शिकायत की। राजा ने उत्तर दिया—"मैने प्रसन्न चित्त हो, उस श्रेष्ठ निग्रोध मृग को वर दिया है। मैं राज्य छोड दूँगा, लेकिन उस प्रतिज्ञा को नहीं छोडूँगा। जाओ, मेरे राज्य में किसी को मृग मारने की छुट्टी नहीं है।"

निग्रोध मृग ने उस समाचार को सुन, मृगो के समूह को एकत्र कर, "ग्रब से दूसरो के खेत न खाये जाये" (कह) मृगो को (खेत खाने से) रोक मनुष्यों को कहलवाया कि ग्रब से लगाकर खेती करनेवाले खेती की रक्षा के लिए बाड न बाँधे। (केवल) खेत को घेर करके पत्तों की ऋण्डी (चिनशानी) वाँध दे। उस समय से खेतों में पत्तों की निशानी बाँधने की प्रथा ग्रारम्भ हुई। उसके बाद से कोई भी मृग पत्तों की निशानी को न लाँघता। (क्योंकि) बोधिन

सत्त्व ने उनको ऐसा करने का उपदेश दिया था। इस प्रकार मृग यूथ को उपदेश दे, बोधिसत्त्व ग्रायु पर्य्यंन्त जीवित रह, कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार पुण्य कर्म करके, कर्मानुसार (परलोक)को सिधारा।

शास्ता ने, 'भिक्षुग्रो । मैं केवल ग्रब ही इस स्थिवरी तथा कुमार-काश्यप का ग्राश्रय (-दाता) नहीं हुग्रा हूँ; पहले भी ग्राश्रय (-दाता) रहा हूँ,—इस धर्म देशना को लाकर, चार ग्रार्य-सत्य रूपी धर्म-देशना कर, दोनो कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय का साख-मृग (ग्रब का) देवदत्त था। उसकी परिषद् (=टोली) भी देवदत्त-परिषद् थी। हिरणी (ग्रबकी) थेरी (=स्थिवरी) हुई। पुत्र (ग्रबके) कुमार-काश्यप। राजा (ग्रबके) ग्रानन्द (स्थिवर)। लेकिन निग्रोध मृगराज तो मैं ही था।

#### १३. किएडन जातक

"विरत्यु कण्डिनं सल्लं"—यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, पूर्व-भार्य्या के लोभ के बारे मे कही।

वह (कथा) ग्राठवे परिच्छेद के इन्द्रिय-जातक भे ग्रायेगी।

## क. वर्तमान कथा

भगवान् ने उस भिक्षु को कहा—'भिक्षु ! पूर्व समय मे भी तू इस स्त्री (-जाति) के कारण, प्राणो से हाथ घो, बिना लाट के ग्रङ्गारों पर पकाया गया

१४२३ जातक।

था।" भिक्षुग्रो ने भगवान् से उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की——

ग्रब ग्रागे 'भिक्षुग्रो की प्रार्थना करना' तथा 'पूर्व-जन्म की छिपी बात होना' न कहकर केवल ग्रतीत की बात कही—इतना ही कहेगे। केवल इतना कहने पर भी 'प्रार्थना करना' तथा बादलो के गर्भ से चन्द्रमा के निकलने की तरह, 'पूर्व-जन्म की छिपी बात का प्रकट होना'—यह सब पूर्वोक्त प्रकार से ही जोडकर समभना चाहिए।

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे मगथ राष्ट्र के राजगृह (नगर) मे मगध-नरेश राज्य करते थे। मगध वासियों को खेती के समय मृगो से बडी हानि होती। वे (मृग) जंगल मे पर्वतों पर जाते। सो, एक जंगली पर्वत-िनवासी मृग, एक ग्राम वासिनी हरिणी के साथ संवास (चिमल) के कारण, उन मृगो के पर्वत से नीचे (च्यामान्त) उतरने के समय, उस हरिणी पर ग्रासक्त हो उन (मृगो) के साथ नीचे उतर ग्राया। उस (हरिणी) ने उससे पूछा, "ग्रायं तू पर्वतवासी मूर्ख मृग सा कौन हैं। ग्राम ग्राशन्द्वा तथा भय का स्थान है। (तू) हमारे साथ मत उतर।" लेकिन वह उस (हरिणी) पर ग्रासक्त रहने के कारण नहीं लौटा ग्रीर साथ ही गया।

मगध वासी, 'इस समय मृगों का पर्वत से उतरने का समय हैं' जान छिपे हुए स्थानों में (छिप कर) रहते। उन दोनों के ब्राने के मार्ग पर भी, एक शिकारी, एक छिपे स्थान पर खडा था। हरिणी (—मृगपोतिका) ने, मनुष्य-गन्ध सूँघ कर, 'एक शिकारी खडा होगा' सोच, उस बाल (—मूर्ख) मृग को ब्रागे कर पीछे पीछे हो ली। शिकारी ने एक ही बाण के प्रहार से, उस मृग को वहीं गिरा दिया। हरिणी, ब्राहत जान, छलाग मार कर, हवा की गित से भाग गई। शिकारी छिपे स्थान (—कोठे) से निकल, मृग को काट कर, श्रग्नि जलाकर, बिना लाट के ब्रङ्गारोपर मधुर मास को पका, खा कर, पानी पी, रक्त की बूँदें चूते शेष मास को बहुँगी पर रख, बच्चों को सन्तुष्ट करने के लिए घर ले गया। उस समय बोधिसत्व ने उस जगल में देवता होकर जन्म लिया था।

उन्होने उस घटना को देख, (सोचा), यह मूर्ख-मृग न तो माता के लिए मरा न पिता के लिए, (यह मरा तो) कामुकता के लिए। कामुकता के कारण प्राणी सुगित से (गिर कर) हाथों का कटना स्रादि दुर्गित, पाँच प्रकार के बन्ध-नादि (तथा) नाना प्रकार के दुख को प्राप्त होते हैं। दूसरों को मरने का दुख देना भी, इस लोक में निन्दनीय ही हैं। जिस देश पर स्त्री न्यायाधीश (चिवचारक) होती है, अनुशासन करती है, वह स्त्री की अधीनता में रहनेवाला देश भी निन्दनीय ही हैं। इस प्रकार एक गाथा से तीन निन्दनीय वस्तुओं को दिखाकर, वनदेवताओं को 'साधुकार' देकर गन्धपुष्पादि से पूजा करने के समय मधुर स्वर से उस बन-षण्ड को उन्नादित करते हुए, इस गाथा से धर्मोंपदेश दिया—

धिरत्थु कण्डिनं सल्लं पुरिसं गाळहवेधिनं, धिरत्थु तं जनपदं यत्थित्थी परिनायिका; ते चापि धिक्किता सत्ता ये इत्थीनं वसंगता ॥

[ कण्डेवाले तीर से, ज़ोर से बेधनेवाले मनुष्य को धिक्कार है। जिस जन-पद का स्त्रियाँ सञ्चालन करती है, उस जन-पद को धिक्कार है। जो सत्त्व (=प्राणी) स्त्रियों के वशीभूत हो जाते है, उन प्राणियों को धिक्कार है।

धिरत्थु गरहा — निन्दा के ग्रर्थ में 'निपात' है। सो इसे यहाँ त्रास ग्रौर उद्वेग के कारण गर्हा-वाचक समभना चाहिए। त्रसित ग्रौर उद्विग्न-चित्त होकर ही बोधिसत्व ने इस प्रकार कहा। 'कण्डा' जिसको है, सो कण्डी, उसको (—न) कण्डी को। उस 'कण्ड' को प्रवेश होने के ग्रर्थ में शल्य कहते हैं। इसलिए कण्डिनं सल्ल का ग्रर्थ है सल्लं कण्डिन। ग्रथवा शल्य वाला होने के कारण शल्य, ग्रौर शल्य बडा भारी जरूम करके, जोर का प्रहार देता तेजी से बीधता है, इसलिए 'गाळ्ह-वेधी'। उस गाळ्ह-वेधी को गाळ्ह-वेधिन। नाना प्रकार के कण्डे, कुमुद (—कंवल) के पत्ते के ग्राकार के तल (—नोक) वाले, सीधे जाने वाले शल्य से युक्त पुरुष को—गाळ्हवेधिनं पुरिसं धिरत्थु—धिक्कार है।

परिनाधिका का ग्रर्थ है स्वामिनी (=ईश्वरा), संविधान (=प्रबन्ध)

वातिमग ] २०३

करनेवाली। 'विकिता' का म्रर्थ है गहिता। शेष, यहा स्पष्ट ही है। इससे म्रागे, इतना भी न कहकर, जो जो म्रस्पष्ट है, उसीकी व्याख्या करेगे। इस प्रकार एक गाथा में तीन निन्दित-चीजे दिखाकर, बोधिसत्व ने वन को उन्नादित करते हुए बुद्ध की भॉति (बुद्ध लीला से) धर्मोपदेश किया।

बुद्ध ने इस धर्मोपदेश को लाकर (श्रार्य-)सत्यो को प्रकाशित किया। (श्रार्य-)सत्यो (के प्रकाशित होने) की समाप्ति पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोता-पत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुग्रा। शास्ता ने दोनो कथाये कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। इससे श्रागे 'दोनो कथाये कहकर'—यह शब्द बिना कहे, केवल 'मेल मिलाकर' (= श्रनुसन्धिघटेत्वा)—इतना ही कहेगे। लेकिन बिना कहने पर भी, उसे, पूर्वोक्त प्रकार से ही ग्रहण करना चाहिए। उस समय का पर्वतवासी मृग (श्रव का) उत्कण्ठित-भिक्षु था। मृग पोतिका (श्रव की) पूर्व-भार्या थी। कामुकता मे दोष दिखाकर, उपदेश करनेवाला देवता तो में ही था।

#### १४. वातमिग जातक

"न किरित्थ रसेहि पाषियों"—यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय वुल्लिपिण्डपातिक-तिष्य स्थिवर के वारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

शास्ता के राजगृह के समीप बेलुबन मे विहार करते समय, एक महा सम्पत्तिशाली सेठ-कुल के तिष्य-कुमार नामक पुत्र ने, एक दिन वेलुबन जा, शास्ता की धर्म-देशना सुन, प्रव्रजित होने की इच्छा से, प्रव्रज्या की याचना की। माता पिता की ग्राज्ञा न मिलने पर, रहुपाल स्थिवर की तरह सप्ताह भर भूखे रह, माता पिता से ग्राज्ञा ले, बुद्ध के पास प्रब्रज्या ग्रहण की । बुद्ध उसे प्रब्रजित करने के बाद, कोई ग्राघे महीने तक वेणुवन में विहार कर, जेतवन को चले गये। वहाँ वह कुल-पुत्र तेरह धुताङ्क द्वतों को ग्रहण कर, श्रावस्ती में कम से भिक्षा माँगते हुए, समय बिताने लगा। चुल्लिपण्डपातिक तिस्स स्थिवर का नाम लेने पर, वह बुद्ध मत में वैसे ही प्रगट —प्रसिद्ध था, जैसे ग्राकाश तल पर चन्द्रमा। उस समय राजगृह में उत्सव (—नक्षत्र-कीडा) था। स्थिवर के माता पिता, उन सब ग्राभरणों को, जिन्हें स्थिवर गृहस्थ में रहते पहनते थे, चाँदी की डिलिया में रख, (उसे) ग्रपनी छाती पर रख, 'ग्रन्य उत्सवों (—नक्षत्र-कीड़ाग्रों) के मौके पर हमारा पुत्र इन इन ग्राभूषणों से ग्रलकृत होकर मेले में जाता था। ग्रव हमारे उस ग्रकेले पुत्र को, लेकर श्रमण गौतम श्रावस्ती चला गया। इस समय वह कहाँ बैठा होगा, कहाँ खडा होगा कहते रोते थे। एक वेदया ने उसके घर जाकर, सेठानी को रोते देख पूछा—"ग्रार्थें। क्यों रोती हो?"

उसने सब बात कह दी।

"ग्रार्ये! ग्रार्य-पुत्र को क्या क्या प्यारा लगता था?"

"ग्रमुक ग्रमुक (चीजे)।"

"यदि तुम, इस घर का सब ऐश्वर्य मुक्ते दो, तो मैं ग्रार्य-पुत्र को ले ग्राऊँगी।" सेठानी ने 'ग्रच्छा' कह, स्वीकार कर, खर्चा दे, बहुत से ग्रनुयायियो के साथ उसे यह कहकर भेजा, "जा, ग्रपने बल से मेरे पुत्र को ला।"

तब वह परदे वाली गाडी में बैठ, श्रावस्ती पहुँची । (वहाँ) जिस गली में स्थिवर भिक्षा माँगने जाया करते थे उसमें घर लिया । फिर सेठ के नौकरों को स्थिवर की ग्रांख से ग्रोभल रख, ग्रपने ही ग्रादिमयों के साथ स्थिवर के भिक्षा के लिए ग्राने के समय, पहले कड़छी भर, फिर कटोरा भर (भिक्षा) देने लगी। (इस प्रकार) रस-तृष्णा से बाँध धीरे धीरे घर के भीतर बिठा कर

ध्वलो मिक्सिम निकाय सुत्त दर (३३०)

<sup>&</sup>lt;sup>र</sup> एक सिरे से, सभी घरों से ।

वातिमग ] २०५

भिक्षा देती थी। जब उसने (स्थिविरको) अपने वश में हुआ जाना, (तो एक दिन) रोगी होने का बहाना कर, वह घर के अन्दर जा लेटी। स्थिवर भिक्षा के समय, कम से भिक्षा माँगते हुए गृह-द्वार पर आये। नौकर-चाकरों ने स्थिवर का पात्र ग्रहण कर उन्हें घर में बिठाया।

स्थविर ने बैठते ही पूछा—"उपासिका कहाँ है ?"

"भन्ते ! रोगी है, ग्रापका दर्शन करना चाहती है।"

"रस-तृष्णा मे बँधे होने से वह अपनी प्रतिज्ञा ( = व्रतसमादान) तोड़ कर, उसके लेटे रहने की जगह चले गये। उसने अपने आने का (असली) कारण कह, उनके चित्त को लुभा लिया। फिर उसने रस-तृष्णा मे बाँध उनका चीवर उतरवा दिया, और अपने वश मे कर, गाड़ी में बिठा, बहुत से लोगों के साथ राजगृह चली गई। वह बात प्रसिद्ध हो गई। धर्म सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने कहना आरम्भ किया कि एक वेश्या चुल्ल पिण्डपतिक तिस्स थेर को रस-तृष्णा में बाँधकर (साथ) ले गई। बुद्ध ने धर्मसभा में जा, अलकृत आसन पर बैठ, पूछा—"भिक्षुओं! क्या बात चल रही हैं"? उन्होने वह समाचार कहा। भगवान् ने "भिक्षुओं! यह भिक्षु केवल अब ही रस-तृष्णा में बँधकर, उसके वशीभूत नहीं हुआ, पहले भी हुआ है," कह, अतीत की बात कही—

#### ख. ऋतीत कथा

"पूर्व-समय मे बाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त का (एक) सञ्जय नामक माली था। एक शीघ्रगामी मृग (वात-मृग) उस उद्यान मे ग्राता, (लेकिन) सञ्जय को देख कर भाग जाता। सञ्जय उसको उराकर निकालता था। वह बार बार ग्राकर उद्यान मे ही चरता था। माली प्रति दिन उद्यान से नाना प्रकार के फल-फूल राजा के पास ले जाता था। एक दिन राजा ने उससे पूछा— "सौम्य । उद्यानपाल । उद्यान मे कोई ग्राश्चर्य (की चीज) देखते हो?"

"देव  $^{\dagger}$  श्रीर तो कुछ नहीं देखता, हाँ यह देखता हूँ कि एक शीघ्र-गामी- मृग श्राकर उद्यान में चरता है।"

"क्या, उसे पकड सकोगे ?"

"यदि थोडा मधु मिले. तो उसे यहाँ राज-निवास के श्रन्दर भी ला सक्रूँगा।"

राजा ने उसे मधु दिलवा दिया। उसने मधु ले, उद्यान मे जाकर, शी घ्रगामीमृग के चरने की जगह (कुछ) तिनको को मधु से माख ( च्चुपड) दिया।
मृग श्राकर, मधु लगे तिनको को खाकर, रस-तृष्णा से बँधा हुग्रा, किसी दूसरी
जगह न जा, उद्यान मे ही ग्राता था। माली ने, उसके मधु-लिप्त तृण मे लुब्ध
हो जाने पर, धीरे घीरे ग्रपने को प्रगट किया।

उसने उसे देख, कुछ दिन तक भाग कर, फिर फिर देखने से विश्वास पैदा कर, धीरें धीरें माली के हाथ में रक्खे तृणों को भी खाना आरम्भ कर दिया। माली ने उसका 'विश्वास जीत लिया' जान, राज-भवन तक सडक पर चटाइयाँ विछ्वाईं। जहाँ तहाँ (पत्तों की) डालियाँ गिरवाईं। '(तब वह) मधु के कुप्पे को कन्धे पर लटका, तृणों की पूली को बगल में दबा, मधु से माखे तृण मृग के आगें आगें बखेरते राज-भवन के अन्दर चला गया। मृग के अन्दर दाखिल होने पर द्वार बन्द कर लिये गये। मृग मनुष्यों को देखकर, कॉपता हुआ, मरने से भयभीत (राज-)भवन के आङ्गण में इधर उधर भागने लगा। राजा ने प्रासाद से उतर, उसे कॉपते देख, (सोचा)—वात-मृग मनुष्य दिखाई देने की जगह एक सप्ताह तक नहीं जाता। और जहाँ से डरा दिया जाये, वहाँ तो जन्म-भर नहीं जाता। सो इस प्रकार छिपकर रहनेवाला वात-मृग रस-तृष्णा में बँधकर, अब ऐसी जगह आ गया। मो! लोक में रस-तृष्णा से बढ़कर बुरी चीज नहीं हैं। यह (सोच) इस गाया से धर्मोंपदेश की स्थापना की—

न किरित्थ रसेहि पापियो भ्रावासेहि वा सन्थवेहि वा । वातमिगं गेहिनिस्सितं वसमानेसि रसेहि सञ्जयो ।।

[ निवासस्थान वा मित्रों के मिलाप की भी ब्रासक्ति रस की ब्रासक्ति से बढकर खराब नहीं है। घोर जंगल मे रहनेवाले मृग को रस के द्वारा सञ्जय ने वश में कर लिया।

'किर' तो यो ही 'निपात' है। रसेहि का ग्रर्थं है जिह्वा से चले जानेवाले मीठे, खट्टे ग्रादि। पापियो —पापतर (—बहुत बुरी)। ग्रावासेहि वा सन्थवेहि वा का ग्रर्थं है दिल लगे हुए रहने के स्थान तथा मित्रों के मिलाप मे भी ग्रासिक्त बुरी ही है, लेकिन ग्रासिक्त-पूर्वंक परिभोग —ग्रावास से तथा मित्रों के मिलाप से सौगुणा, हजारगुणा बुरी है भोजन के रस में ग्रासिक्त; क्योंकि ग्राहार का

खरादिय ] २०७

सेवन निरन्तर करना होता है, (श्रौर) उसके बिना प्राणो की रक्षा नहीं हो सकती। बोधिसत्व ने इस ग्रर्थ को पूर्व श्रनृश्रुति के श्रनुसार कहा कि न करिस्थ रसेहि पायियो श्रावासेहि वा सन्थवेहि वा। यहाँ उनकी दोष-पूर्णता प्रदर्शित कर वातिमग श्रादि कहा। गेह निस्सितं का श्रर्थ है गहन स्थान में रहनेवाला।

भावार्थ यह है—देखो रसो की दोषपूर्णता—सञ्जय (नामक) माली ने ग्ररण्य निवासी वातमृग (=जगली-मृग) को मधु-रस (के लालच) से, ग्रपने वश में कर लिया। सब ही जगह रस-भोग की ग्रासिक्त के समान दोषपूर्ण =बुरी, दूसरी कोई (चीज) नहीं। इस प्रकार रस-तृष्णा के दोप कहकर, उस मृग को (फिर) जंगल में ही भेज दिया।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ । न केवल ग्रब ही, उस वेश्या ने इसे रस-तृष्णा से वॉधकर, ग्रपने वश में किया है बल्कि पहले भी किया था।' इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय (का) सञ्जय यह (श्रव की) वेश्या थी। वातमृग (श्रव का) चुल्लिपिण्डपातिक था। लेकिन बाराणतीं का राजा तो में ही था।

#### १५. खरादिय जातक

"अट्ठ खुरं खरादिये" यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, एक कटुभाषी भिक्षु के सम्बन्ध मे कही।

# क. वर्तमान कथा

वह कटुभाषी भिक्षु (किसी का) उपदेश न ग्रहण करता था। बुद्ध ने

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> 'ग्रगेह निस्सितं' पाठ ग्रधिक ग्रच्छा होता ।

उस से पूछा—"भिक्षु । क्या तू सचमुच कटुभाषी (है), (किसी का) उपदेश नहीं ग्रहण करता?"

"भगवान्! यह (बात) सच है।"

बुद्ध ने, 'पहले भी तू ने कटुभाषिता के कारण, पण्डितो का उपदेश नहीं ग्रहण किया; ग्रीर पाश से बँधकर, ग्रपने प्राणो का नाश किया' कह ग्रतीत की कथा सुनाई।

#### ख. श्रतीत कथा

"पूर्व समय मे, बाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व मृग की योनि मे पैदा हो, मृग-गण के साथ जंगल मे रहते थे। (एक दिन) उनकी बहन ने उन्हे हरिण-पुत्र दिखाकर कहा—"भाई! यह तुम्हारा भाजा है। इसे मृग-माया सिखाग्रो।" यह कह (उसे मृग-पुत्र) सौपा। उसने भाजे को कहा—ग्रमुक समय पर ग्राकर सीखना। वह कहे हुए समय पर न ग्राया। जैसे एक दिन, उसी प्रकार सात दिनो तक, सात उपदेशो (च्याज्ञाग्रो) का उल्लंघन कर, वह मृग-माया को बिना सीखे ही चरता हुग्रा पाश मे बँघ गया। माता ने भाई से ग्राकर पूछा—"क्यो भाई! तूने भाजे को मृग-माया सिखा दी थी?" बोधिसत्व ने, "उस बात न माननेवाले का सोच मत कर। तेरे पुत्र ने मृग-माया नहीं सीखी" कह, ग्रब भी उसे सिखाने का ग्रनिच्छुक ही हो, यह गाथा कही—

म्रटठखुरं खरादिये ! मिगं वङ्कातिवङ्किनं । सत्तिहि कलाहितक्कन्तं न तं भ्रोवदितुस्सहे ॥

[ हे खरादिये ! वङ्कातिवङ्क, सात कलाम्रो (=उपदेशो) का उल्लंघन करनेवाले, उस मृग को मेरी उपदेश देने की रुचि (=प्रेरणा) नहीं।]

श्रटठखुरं; एक एक पाँव में दो दो (खुर) होने से ग्राठ खुर। खरादिये; इस नाम से सम्बोधन करता हैं। मिगं—सब (मृगो) के लिए एक शब्द है। वङ्कातिवङ्किनं—ग्रारम्भ में टेढें, ग्रागे ग्रौर भी टेढ़ें, इस प्रकार वङ्कातिवङ्क (टेंढे ग्रति टेंढें); जिसके ऐसे सीग हो; वह वङ्कातिवङ्की, उस (=तं), वद्भातिवद्भी को । सत्ति कलाहितिक्कन्तं का अर्थ है, उपदेश के सात समयो पर उपदेश का उल्लंघन करने वाला । न तं स्रोविदतुस्सहे का अर्थ है, इस प्रकार के कटुभाषी मृग को उपदेश देने की मेरी प्रवृत्ति नही होती । ऐसे को उपदेश देने का मुभे विचार तक नही होता।'—यही स्पष्ट किया है।

सो शिकारी, उस पाश में बँघे हुए कटुभाषी मग को मारकर, मांस लेकर चला गया।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु । तू केवल ग्रब ही कटुभाषी नहीं है, पहले भी कटुभाषी ही रहा है।'—यह धर्म-देशना ला कर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया।

उस समय का भाजा मृग (ग्रब का) कटुभाषी भिक्षु था। बहन (ग्रब की) उत्पल-वर्णा (भिक्षुणी) थी। लेकिन उपदेश देनेवाला मृग तो मैं ही था।

#### १६. तिपल्लत्थमिग जातक

"मिगंतिपल्लत्यं..." यह गाथा, शास्ता ने कोसम्बी के बदरिकाराम में विहार करते हुए शिक्षा-कामी राहुल स्थविर के बारे में कहीं।

## क. वर्तमान कथा

एक समय, शास्ता के **श्रालिव नगर** के पास के श्रग्गालव चैत्य में विहार करते समय उपासिकाये श्रौर भिक्षुणियाँ घर्म सुनने के लिए विहार को जाती थी।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> इलाहाबाद से प्रायः तीस मील पश्चिम, जमुना के बायें किनारे वर्तमान कोसम (जिला इलाहाबाद, यु० प्रा०)।

धर्म-श्रवण दिन में होता था। समय बीतने पर, उपासिकाम्रो स्रौर भिक्षुणियों ने जाना छोड दिया। भिक्षु स्रौर उपासक ही (धर्म-श्रवणार्थ) रह गये। उसके बाद धर्म-श्रवण रात को होने लगा। धर्म सुनने के बाद स्थविर भिक्षु स्रपने ग्रपने निवास स्थान को चले जाते थे। दहर (=कम स्रायु वाले भिक्षु) उपासकों के साथ उपस्थान शाला (=दान-शाला) में सो जाते थे। उन के सो जाने पर, कोई कोई घुर घुर स्वास खैंचते हुए, दाँतों को कटकटाते हुए सोते। कोई कोई थोड़ी देर सोकर उठ खडे होते। उस विकार (=विकृति) को देखकर, उन्होंने बुद्ध से निवेदन किया। भगवान् 'जो भिक्षु (किसी) स्रमुप-सम्पन्न के साथ सोये, वह पाचित्तय (=प्रायश्चित्त करने योग्य दोष) का भागी होता है' शिक्षा-पद की घोषणा (=प्रज्ञप्ति) कर, कोसम्बी को चले गये।

भिक्षुग्रो ने श्रायुष्मान् राहुल को कहा— "श्रायुष्मान् राहुल । भगवान् ने शिक्षापद की घोषणा कर दी है । ग्रव तू ग्रपने लिए निवासस्थान ढूँढ ।" इससे पहले, भगवान् के प्रति गौरव रहने से, ग्रौर उस ग्रायुष्मान् राहुल के शिक्षा-कामी होने से, भिक्षु, ग्रायुष्मान् राहुल के ग्रपने निवास-स्थान पर ग्राने पर उसका बडा सत्कार करते थे । उसके लिए छोटी सी चारपाई बिछा देते, ग्रौर सिरहाना करने के लिए चीवर देते थे । लेकिन उस दिन शिक्षा-पद के भय से निवास-स्थान तक नहीं दिया । राहुल-भद्र भी दशबल (-धारी) मेरे पिता है, या धर्म सेनापति ( —सारिपुत्र) मेरे उपाध्याय है, या महामौदगल्यायन मेरे ग्राचार्य्य है या ग्रानन्द स्थविर मेरे चाचा है (सोच) उनमे से किसी एक के पास न जा दशबल (-धारी) के काम ग्रानेवाले शौचागार मे, ब्रह्मविमान में प्रविष्ट होने के सद्श, दाखिल हो, (वहीं) रहा ।

बुद्धों के शौचागार का द्वार भली प्रकार बन्द रहता है। भूमि सुगन्धियुक्त होती है, सुगन्धित मालाग्रों की लिड़ियाँ फैली ही होती हैं। तमाम रात दीपक जलता है। लेकिन राहुल-भद्र ने, उस शौच-स्थान (—कुिट) में इन सब चीजो (—सम्पत्ति) के होने के कारण, वहाँ वास नहीं किया, बिल्क भिक्षुग्रों के 'ग्रव तू ग्रपने स्थान को जा' कहने से, उनके उपदेश का गौरव रखनेवाला, तथा शिक्षा-कामी होने से वहाँ निवास किया। बीच बीच में, भिक्षु भी, उस ग्रायुष्मान् को दूर से ग्राता देख, उसकी परीक्षा लेने के लिए, मुट्ठ वाली भाडू ग्रथवा कूडा-फेकने-वाला, बाहर फेक देते। ग्रौर उसके ग्राने पर पूछते— "ग्रावुसो!

यह बाहर किसने छोड दिये ?" तब किसी के, 'राहुल । इस मार्ग से गया है' कहने पर, वह 'भन्ते । में यह नही जानता हूँ' न कहकर, उन्हे उचित स्थान पर रख, 'भन्ते । मुभे क्षमा करें कह क्षमा माँगकर जाता । यह ऐसा शिक्षा-कामी था । इस ग्रपनी शिक्षा-काम्यता के ही कारण, उसने वहाँ निवास किया ।

शास्ता ने ग्रहणोदय से पूर्व ही शौचालय के द्वार पर खडे होकर खाँसा । उस ग्रायुष्मान् ने भी खाँसा । "यह कौन है  $^{2}$ " "में राहुल हूँ" कह, निकलकर प्रणाम किया । "राहुल  $^{1}$  तू यहाँ किस लिए पड़ा है  $^{2}$ " "रहने का स्थान न मिलने के कारण । भन्ते  $^{1}$  भिक्षु पहले मेरा सत्कार (=सग्रह) करते थे, लेकिन ग्रब ग्रापत्ति (=दोषी होने) के भय से मुभ्ने निवास-स्थान नहीं देते । सो में "इस स्थान में ग्रौरो का दखल नहीं" सोच यहाँ लेटा हूँ ।"

भगवान् के मन में 'राहुल की (भी) इस प्रकार लापरवाही कर, भिक्षु, ग्रन्य कुल-पुत्रों को प्रव्रजित कर क्या करेंगे ?' (सोच) धर्म-सवेग उत्पन्न हुग्रा। सो प्रात काल ही, सब भिक्षुग्रों को एकत्र करवा, भगवान् ने धर्म-सेनापित से पूछा—"सारिपुत्र तुभे मालूम हैं कि ग्राज (रात) राहुल कहाँ रहा ?" "भन्ते! नहीं मालूम हैं।" "सारिपुत्र! ग्राज राहुल शौचालय (==वच्च कुटि) में रहा है। सारिपुत्र! तुम राहुल को इस प्रकार छोड़कर, ग्रौर वालकों को प्रव्रजित कर क्या करोंगे? यह (हाल) रहने पर तो, इस शासन में प्रव्रजित प्रतिष्ठित नहीं होंगे। इससे ग्रागे ग्रनुपसम्पन्न को एक दो दिन, ग्रपने पास रखकर, तीसरे दिन उनका निवासस्थान मालूम कर, उन्हें (वहाँ) बाहर बसाग्रों"— इस उप-नियम को बनाकर, फिर शिक्षा-पद की घोषणा की।

उस समय धर्म-सभा में बैठे भिक्षु, राहुल की प्रशसा कर रहे थे। "श्रायु-ध्मानों विश्वों यह राहुल कितना शिक्षा-कामी हैं! 'श्रपने निवास-स्थान को जा' कहने पर, 'में दशवल का पुत्र हूँ। तुम कौन लगते हो शयनासन के। निकलो, तुम ही निकलो।'—इस प्रकार, किसी एक भिक्षु को भी प्रत्युत्तर न दे, शौच-स्थान में जा (सो) रहा।" उनके इस प्रकार कहते समय, शास्ता ने धर्म-सभा में श्रा, श्रलकृत ग्रासन पर बैठ, पूछा—"भिक्षुग्रो! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?" "भन्ते! श्रौर कोई बात नहीं, राहुल के शिक्षा-कामी होने की बात।" शास्ता ने, "भिक्षुग्रो! राहुल केवल ग्रब ही शिक्षा-कामी नहीं है पूर्व पशु-योनि में भी शिक्षा-कामी ही रहा है" (कह) ग्रतीत की कथा कही—

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे राजगृह मे एक मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्व मृग की योनि मे उत्पन्न हो, मृग-गृण के सहित अरण्य मे रहते थे। उनकी बहन ने, अपने पुत्र को उनके पास ले जाकर, कहा—"भाई! (अपने) इस भाजे को मृग-माया सिखा।" बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, कहा—'जा तात! अमुक समय आकर सीखना।' उसने मामा के बताये हुए समय पर ही, उसके पास जाकर, मृग-माया सीखी। एक दिन जगल मे चरते हुए, उसने, पाश मे बँधकर, बँध जाने की चिल्लाहट (चबद्धराव) की। मृग-गण ने दौड़ आकर, उसकी माता को कहा—"तेरा पुत्र पाश मे बँध गया।" उसने भाई के पास जाकर पूछा—"भाई! क्या तेरे भाजे ने मृग-माया सीख रक्खी हैं?" बोधिसत्व ने, "तू पुत्र के विषय मे कुछ बुरी आशङ्का मत कर, उसने मृग-माया भली प्रकार सीख रक्खी हैं। वह, अभी हँसता हँसता चला आयगा" कह यह गाथा कही—

मिगं तिपल्लात्थ मनेकमायं, म्रटठखुरं म्रडढ रत्ताव पायं, एकेन सोतेन छमास्स सन्तो छहि कलाहतिभोति भागिणेय्यो॥

[तीन प्रकार से सोनेवाला, अनेक प्रकार की माया जाननेवाला, अठ खुरो वाला, ग्राधीरात को पानी पीनेवाला, (मेरा) भाजा, एक नासिका-छिद्र को पृथ्वी पर रक्खे स्वास लेते हुए छ कलाग्रो से (शिकारी को) धोखा देगा।

मृग — भाजा मृग । तिपल्लथं, पल्लत्थ कहते हैं (पालथी को), शयन को। दोनो पासों पर, श्रौर गौ के बैठने की तरह सीधा बैठना, इस तरह जिसका तीन प्रकार का ग्रासन ( — शयन) हो, वह 'तिपल्लथो'; उस तिपल्लत्थ को, 'तिपल्लत्थे'। श्रनेकमायं का ग्रर्थ हैं बहुत माया, बहुत घोखा। श्रट्ठखुरं एक एक पैर में दो दो खुर होने से श्राठ खुर। श्रडढरत्तावपायि, का श्रथं हैं पूर्व-याम के समाप्त होने पर, मध्यम-याम में जगल से लौटकर पानी के पीने से, 'श्राधी रात को जल पीता है' करके श्रडढरत्तावपायि, उस श्रडढरत्तावपायि को—

यही अर्थ है। मैने अपने भाजे मुग को अच्छी प्रकार मुग-माया सिखा दी है। कैसे ? एकेन सोतेन छमास्ससन्तो छहि कलाहितभोति भागिणेय्यो। इसका भावार्थ है कि मैने तेरे पुत्र को इस प्रकार सिखाया है। "ऊपर के एक नासिका-श्रोत की वाय को रोककर, पृथ्वी से लगे हुए, एक निचले नासिका छिद्र से. वहाँ पथ्वी ही में साँस लेते हुए, छ कलाग्रो से शिकारी को (ग्रतिभोति =छ प्रकार से म्रञ्भोत्थरित) घोखा देता है। कौन सी छ कलाम्रो से ? चारो पैर पसारकर, एक पासे पर सोने से, ख़ुरो से तिनके ग्रौर बाल खोदने से, जीभ निकालने से, पेट को फुलाने से, पाखाना-पेशाब करने से, हवा (स्वास) को रोकने से। दूसरा ऋम-पैरो को अगली श्रोर पसारने से, शरीर तानने से, दोनो म्रोर पलटने से, ऊपर उछलने से, नीचे पटकने से,-इन छ कलाम्रो से घोखा देता है: मर गया है, ऐसा ख्याल पैदा कर घोखा देता है। 'इस प्रकार, उसको मग-माया सिखाई'---प्रगट किया है। ग्रन्य कम---उसको ऐसे सिखाया, जैसे एकेन सोतेन छमास्ससन्तो छहि कलाह-दो प्रकार से कहे गये छ: छ: ढगो से (कलाहति = कलायिस्सति) शिकारी को घोखा देगा। 'भोति' शब्द से बहन को सम्बोधन किया है। भागिणेय्यो--इस प्रकार छः ढंग से धोखा दे सकनेवाले भाजे का निर्देश करता है।

इस प्रकार बोधिसत्व न, भाजे के सम्यक् मृग-माया सीखे रहने की बात कह बहन को सान्त्वना दी। वह हरिण-बच्चा भी पाश में बँधने पर, बिना हाथ पैर मारे ही, पृथ्वी पर महा-सुख पूर्वक टाँगे फैलाकर, लेट, पैरो के पास स्थान पर खुर-प्रहार से बालू तथा तृणो को उखाड, पेशाब पाखाना कर, सिर को गिरा, जीभ निकाल, शरीर को मुँह की भाग से भिगो, हवा से पेट को फुला, ग्राँखो को उलट, निचले नासिका-छिद्र से स्वास लेते हुए, ऊपर के नासिका-छिद्र से स्वांस लेना रोक, सारे शरीर को कडा कर, ग्रपने को मर गये के सदृश दिखाया। नीली मिक्खयो ने उसे घेर लिया। जहाँ तहाँ कौवे भी ग्रा जुटे। शिकारी ग्राकर, पेट पर हाथ फेर, 'प्रात काल ही फँस गया होगा, ग्रब सड़ चला' (सोच) उसकी बन्धन रस्सी खोल, 'ग्रब इसे यहीं काटकर, इसका मास ले जाऊँगा" (सोच) ग्राशङ्का रहित हो, डाल-पात लेने लगा। हिरिण-बच्चा उठकर, चारो पैरो पर खडा हो, शरीर को तान, गर्दन को पसार,

तेज वायु से उड़ाये गये बादल की तरह, जल्दी से माता के पास आ गया।
शास्ता ने, 'भिक्षुओं। राहुल (केवल) अब ही शिक्षा-कामी नहीं है, पहले
भी शिक्षा-कामी ही रहा है—इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का
साराश निकाल दिखाया। उस समय का भाजा-हिरण-बच्चा (अब का)
राहुल था। माता (अब की) उत्पल-वर्णा थी। और माया-मृग तो मै
ही था।

#### १७. मारुत जातक

'काले वा यदि वा जुण्हे.. 'इस गाथा को शास्ता ने जेतवन मे विहरते हुए, दो चिर-प्रज्ञजितो (==वृद्ध-प्रज्ञजितो) के बारे मे कहा।

## क वर्तमान कथा

वे (दोनो) कोशल जनपद के एक ग्ररण्य-वास मे रहते थे। एक का नाम था काल स्थिवर ग्रौर दूसरे का जुण्ह स्थिवर। एक दिन जुण्ह (स्थिवर) ने काल से पूछा—"भन्ते। काल ! सरदी किस समय पड़ती है ?" उसने उत्तर दिया—"काल ( कुष्ण पक्ष) मे पड़ती है।" तब एक दिन काल ने जुण्ह से पूछा—"भन्ते। जुण्ह। सरदी किस समय पड़ती है ?" उसने उत्तर दिया— "जुण्ह ( क्वें ते पक्ष) मे पड़ती है।" वे दोनो ग्रपनी शङ्का का निद्धारान कर सकने के कारण शास्ता के पास गये (ग्रौर) शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! सरदी किस समय पड़ती है ?" शास्ता ने उनकी कथा सुन "भिक्षुग्रो! मैंने पहले भी तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दिया है; लेकिन पूर्वजन्म से छिपा रहने के कारण, तुम उस उत्तर का ख्याल नही करते" कह, पूर्वजन्म की कथा कही—

#### ख. ऋतीत कथा

पूर्व समय में सिंह श्रीर व्याघ्न दो मित्र एक पर्वत-भाग की एक ही गुफा में रहते थे। उस समय बोधिसत्व भी ऋषि-प्रश्नज्या के अनुसार प्रश्नजित हो, उसी पर्वत-भाग में रहते थे। एक दिन उन (दोनो) मित्रो का शीत के बारे में विवाद चल पड़ा। व्याघ्न ने कहा—"काल (=कृष्ण पक्ष) में पड़ती हैं" सिंह ने कहा—"जुण्ह (=श्वेत पक्ष) में। उन दोनों ने श्रपनी शका न निवटा सकने के कारण, बोधिसत्व से पूछा। बोधिसत्व ने यह गाथा कही—

#### काले वा यदि वा जुण्हे यदा वायति मालुतो, वातजानि हि सीतानि उभोत्यमपराजिता॥

[काल-पक्ष मे, वा जुण्ह-पक्ष मे जब भी वायु (=मारुत) चलती हैं (सरदी पड़ती हैं)। शीत, हवा से उत्पन्न होता हैं। दोनो कथन (=ग्नर्थ) ही ठीक (=ग्नप्रापाजित) हैं।]

काले वा यदि वा जुण्हें का अर्थ है कृष्ण-पक्ष में वा क्वेत-पक्ष में । यदा वायित मालुतों का अर्थ है, जिस समय पुरवा आदि हवा चलती है, उस समय सरदी पड़ती है। किस कारण से वातजानि हि सीतानि, क्योंकि वायु के रहने पर ही शीत होता है, जिसका भावार्थ है कि कृष्ण-पक्ष वा शुक्ल-पक्ष का होना विशेष कारण नहीं। उभोत्थपराजिता का अर्थ है कि इस प्रक्त के बारे में तुम दोनो ही ठीक (=अपराजित) हो—इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उन मित्रों को समकाया।

शास्ता ने "भिक्षुग्रो । मैंने पहले भी तुम्हारे इस प्रश्न क उत्तर दिया है" कह, इस धर्म-देशना को लाकर आर्य (-सत्यो) को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यो के (प्रकाशन के) अन्त में दोनो स्थिवर श्रोतापित फल मे प्रतिष्ठित हुए। शास्ता ने मेल मिलाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का व्याघ्र (अब का) काल (स्थिवर) था। सिह (अब का) जुण्ह (स्थिवर) था! प्रश्नोत्तर देनेवाला तपस्वी तो मैं ही था।

#### १८. मतकभत्त जातक

"एवं चे सत्ता जानेय्युं—" इस गाथा को शास्ता ने जेतवन मे विहार करते हुए, श्राद्ध (=मतकभत्त) के बारे में कहा।

### क. वर्तमान कथा

उस समय मनुष्य बहुत सी भेड़ बकरी ब्रादि को मार, मृत-सम्बन्धियो की याद मे श्राद्ध (=मतकभत्त) करते थे। भिक्षुत्रों ने उन मनुष्यों को वैसा करते देख शास्ता से पूछा—"भन्ते! मनुष्य बहुत से प्राणियों की प्राण-हानि कर श्राद्ध करते हैं (=मृतक-भात देते हैं)। क्या भन्ते! इससे (ऐसा करनेवालों की) उन्नति (हो सकती) हैं ?" शास्ता ने कहा—"भिक्षुग्रो! श्राद्ध करने के विचार से भी प्राण-हानि करनेवाले की कुछ भी उन्नति नहीं हैं। पूर्व समय में पण्डितों ने ग्राकाश में बैठ, धर्मोपदेश कर, (प्राण-नाश) के दोष दिखा, सकल जम्बूदीपवासियों से, इस कर्म को छुड़वा दिया था। ग्रब (वह बात) पूर्व-जन्मों में छिप जाने के कारण, यह (कर्म) फिर प्रादुर्भूत हो गया।" (यह कह) ग्रतीत की कथा कही—

### ख. ग्रतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, एक त्रिवेदज्ञ, दिशा-प्रमुख (=लोक-प्रसिद्ध) ग्राचार्य्य-ब्राह्मण ने श्राद्ध करने के विचार से, एक भेड़ा मँगवा कर, ग्रपने शिष्यों को कहा—तात ! इस भेड़े को नदी पर ले जा, नहला, गले मे माला डाल, पञ्चाड्गुलियो (का चिन्ह) दे, सजा कर ले ग्राग्रो। उन्होने 'ग्रच्छा' कह, स्वीकार कर, उस (भेड़े) को नदी पर ले जा, (वहाँ) नहला, सजा, नदी के किनारे पर रक्खा। वह भेड़ा, ग्रपने

पूर्व-कर्म का विचार कर, 'ऐसे दु ख से ग्राज मुक्त हो जाऊँगा' सोच हर्षित हो, घड़े के फूटने की तरह, जोर से हँसा ग्रौर (फिर) 'यह ब्राह्मण मुफ्ते मारकर जिस दु.ख को मैंने भोगा है, उसे भोगेगा' सोच, ब्राह्मण के प्रति करुणा का भाव उत्पन्न कर, जोर से रोया। उन ब्रह्मचारियो (—माणवको) ने उससे पुछा—"सम्म! भेड़। तू जोर (—महाशब्द) से हँसा ग्रौर रोया! किस कारण तू हँसा? ग्रौर किस कारण रोया?" "तुम यह बात, मुफ्ते ग्रपने ग्राचार्य्य के पास ले जाकर पूछना।" उन्होने उसे ले जाकर, यह बात ग्रपने ग्राचार्य्य से जा कही।

श्राचार्य्य ने उनकी बात सुनकर भेड़े से पूछा—"भेड़ । तू किस लिए हँसा ? किस लिए रोया ?" भेड़े ने पूर्व-जन्म-स्मरण-ज्ञान से श्रपने पूर्व-कर्म का स्मरण कर ब्राह्मण को कहा—"हे ब्राह्मण । पूर्व-जन्म में मेंने तेरे सदृश ही मन्त्रपाठी ब्राह्मण हो, 'श्राद्ध करूँगा' (सोच) एक भेडा मारकर (मृतक-भात) दिया। सो, मेंने, उस एक भेड़े को मारने के कारण, एक कम पाँच सौ योनियों में श्रपना सीस कटवाया। यह मेरा पाँचसौवाँ, श्रन्तिम जन्म है। श्राज में इस दुख से मुक्त हो जाऊँगा' (सोच) हाषित हुग्रा (श्रीर) इस कारण से हँसा। श्रीर जो रोया? सो (तो यह सोचकर) कि में तो, एक भेड़े के मारने के कारण पाँच सौ जन्मो में (श्रपना) सीस कटा कर, ग्राज इस दुख से मुक्त हो जाऊँगा, (लेकिन) यह ब्राह्मण मुक्ते मारकर, मेरी तरह पाँच सौ जन्मो तक सीस कटाने के दुख को भोगेगा। सो, तेरे प्रति करुणा से रोया।" "भेड़ । डर मत। में तुमें नहीं मारूँगा।" "ब्राह्मण ! क्या कहते हो ? तुम चाहे मारो, चाहे न मारो, में ग्राज मरण दुख से नहीं छूट सकता।" "भेड़ ! डर मत। मैं तेरी हिफाजत (—श्रारक्षा) करता हुग्रा, तेरे साथ ही साथ घूमूँगा।" "ब्राह्मण ! तेरी हिफाजत श्रल्प-मात्र है; मेरा किया हुग्रा पाप बडा भारी है।"

ब्राह्मण, भेड़े को मुक्त कर, 'इस भेड़े को किसीको न मारने दूँगा' (सोच) शिष्यो को ले, भेड़े के साथ ही साथ घूमने लगा। भेड़े ने छूटते ही, एक पत्थर की शिला के पास उगी हुई भाडी की ग्रोर गर्दन उठाकर, पत्ते खाने शुरू किये। उसी क्षण, उस पत्थर-शिला पर विजली पडी। उसमे से पत्थर की एक फाँक ने छीज कर, भेड़े की पसारी हुई गर्दन पर गिर, गर्दन काट दी। जन (-समूह) एकत्र हो गया। उस समय बोधिसत्व, उस जगह वृक्ष-देवता हो कर उत्पन्न हुग्रा था। उसने उन लोगो को देखते ही, (ग्रपनी) दैव-शक्ति से ग्राकाश

मे पल्लथी मारकर बैठ, 'ग्रच्छा हो । यदि ये प्राणी, पाप-कर्म के इस प्रकार के फल को जानकर, प्राण-हानि न करें (सोच) मधुर स्वर से धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

#### एवं चे सत्ता जानेय्युं दुक्खायं जाति सम्भवो, न पाणो पाणिनं हुञ्जे पाणघाती हि सोचिति ॥

[यदि प्राणी, इस बात को समभ ले कि जाति (=जन्म लेना) दुख है, तो (एक) प्राणी दूसरे प्राणी की हत्या न करे। प्राण-घात करनेवाले को चिन्तित रहना पडता है।]

"एवञ्चे सत्ता जानेय्युं...." यदि प्राणी इस प्रकार जान ले; कैसे दुक्खायं जाति सम्भवो यह जहाँ तहाँ जन्म लेना तथा उत्पन्न (हुए) की कम-पूर्वक वृद्धि कहलाने वाला सम्भव (=होना)-यह, जाति, व्याधि, मरण, श्रप्रिय-सम्प्रयोग, प्रिय-विप्रयोग, हस्त-पाद छेदन श्रादि दू खो का कारण होने से दूख है--यदि इसे जान ले। न पाणो पाणिनं हुने का अर्थ है कि दूसरो का वध करनेवाले का वध होता है, पीडा देनेवाले को पीडा होती है, इस प्रकार दूसरे जन्म मे दू ख भोगना होता है, यदि इसे जान ले तो कोई प्राणी दूसरे प्राणी की हत्या न करे; एक सत्व दूसरे सत्व की हत्या न करे। किस कारण से ? प्राणवाती हि सोचित क्योंकि ग्रपने हाथ से मारना दूसरे के हाथ से मरवाना ग्रादि छ कर्मों मे से किसी भी एक कर्म से दूसरे को जीवितेन्द्रिय (=प्राण) के नाश करनेवाला प्राण-घाती व्यक्ति. ग्राठ महा-नरको मे, सोलह उस्सद-नरको मे, नाना प्रकार की पशु-योनियों मे, प्रेत-योनि मे, तथा ग्रसूर-योनि मे-इन चार प्रकार के अपायों में महा-दूख का अनुभव करते हुए, दीर्घ काल तक ग्रन्तर-दाह करने वाले शोक से चिन्तित रहता है। ग्रथवा, जैसे यह भेड़ मरने के डर से चिन्तित रहा, वैसे दीर्घ काल तक चिन्तित रहता है--यह जान कर भी कोई प्राणी प्राणियो की हत्या न करे। कोई भी प्राणातिपात (प्राण-घात) का कर्म न करे। लेकिन मोह से मृढ हुए, अविद्या से अन्धे हुए (लोग) इन दृष्परिणामो को न देखने के कारण प्राणातिपात करते हैं।

इस प्रकार महासत्व ने निरय (नरक) भय का डर दिखाकर धर्मोपदेश किया। मनुष्य, उस धर्मोपदेश को सुन, निरय से भयभीत हो, प्राणातिपात (जीव-हिसा) से हटे। बोधिसत्व, उपदेश दे, मनुष्यो को शील (सदाचार) मे प्रतिष्ठित कर, (ग्रपने) कर्मानुसार, (परलोक) गये। जन (-समूह) ने भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार ग्राचरण कर, दान देना ग्रादि पुण्य-कर्म कर, देव-नगर को भर दिया। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाल दिखाया "में हो उस समय वृक्ष-देवता था।"

#### १६. श्रायाचितभत्त जातक

'सचे मुञ्चे....'इस गाथा को, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते हुए, देवताग्रो की याचना सम्बन्धी बलिकर्म (=सुक्ख सुक्खना) के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

उस समय (ब्यापारी) लोग, व्यापार के लिए जाते समय, प्राणियों को मार, देवताग्रो की बिल चढा, 'हम (यिदि) बिना विष्न-बाधा के (श्रपनी) ग्रर्थ-सिद्धि करके लौटे, तो फिर ग्रापको बिल चढायेगे' कह, सुक्ख सुक्ख (—ग्रायाचना) कर जाते थे। फिर बिना विष्न-बाधा के ग्रर्थ (—मतलब) पूरा कर, लौट ग्राने पर, 'यह देव-कृपा से हुग्रा' सोच, बहुत से प्राणियो को मारकर, सुक्ख पूरी करने (—ग्रायाचना) से मुक्त होने के लिए, बिल-कर्म करते। उसे देख भिक्षुग्रो ने भगवान् से पूछा—भन्ते! इस (बिल-कर्म) से कुछ मतलब सिद्ध होता है? भगवान् ने ग्रतीत की कथा कही—

#### ख अतीत कथा

पूर्व समय मे काशी-राष्ट्र के एक गामडे मे, एक कुटुम्बी ने ग्राम-द्वार पर

खड़ें न्यग्रोध-वृक्ष के देवता की सुक्ख सुक्ख (=बिल-कर्म की प्रतिज्ञा) कर, बिना विष्न-बाधा के (वापिस) लौट, बहुत से प्राणियों का बध कर, सुक्ख पूरी करनी चाही। वह वृक्ष के नीचे गया। तब वृक्ष-देवता ने वृक्ष के टहने पर खड़ें होकर यह गाथा कही—

#### सचे मुञ्चे पेच्च मुञ्चे मुच्चमानो हि बज्भति, न हेवं धीरा मुच्चित्ति, मुत्ति बालस्स बन्धनं।

[यदि मुक्त होना है, तो ग्रागे (फिर फिर के जन्म) से मुक्त हो, तू तो मुक्त होने का प्रयत्न करता हुग्रा, ग्रौर भी बँधता है। धीरा (पण्डित) इस प्रकार मुक्त नहीं होत। बाल (=मूर्ख मनुष्य) का, मुक्ति (का प्रयत्न), ग्रौर भी, उसके बन्धन (का कारण) होता है।

सचे मुञ्चे पेच्च मुञ्चे—भो पुरुष । यदि तू मुक्त होवे, यदि मुक्त होने की इच्छा होवे, (तो) पेच्च मुञ्चे, तो जैसे परलोक से मुक्त हो सके, वैसे (मुक्त होवे) । मुच्चमानो हि बज्भिति, लेकिन जैसे तू प्राण-घात कर मुक्त होना चाहता है, वैसे तो मुक्त होने का प्रयत्न करनेवाला पाप-कर्म से बँधता है। न हेवं घीरा मुच्चिन्ति, जो पण्डित पुरुष है वह इस प्रकार जन्म-मरण से मुक्त नही होते। क्यो ? एव रूपा हि मुत्ति बालस्स बन्धनं इस प्रकार प्राणाति-पात करके प्राप्त की गई "मुक्ति" मूर्ख का बन्धन ही होती है—इस धर्म का उपदेश किया।

उस समय से ब्रारम्भ करके मनुष्यों ने इस प्रकार के जीव-हिसा-कर्म से हट धर्मानुसार ब्राचरण कर, देव-नगर की पूर्ति की । शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। "उस समय, मैं ही वृक्ष-देवता था।"

#### २०. नलपाण जातक

"दिस्वा पदमनुत्तिण्णं...." यह गाया, शास्ता ने कोशल (जनपद) मे चारिका करते हुए, नलक-पान ग्राम पहुँच, नलक-पान पुष्करिणी पर केतक वन मे विहार करते हुए नलदण्ड (सरकण्डों) के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

उस समय, भिक्षुग्रो ने नलक-पाण पुष्करिणी में नहा कर, सूई-घर ( — सूई रखने की नालियाँ) बनाने के लिए, श्रामणेरों से सरकण्डे मँगवा, उन के ग्रार पार छेद देख, शास्ता के पास ग्राकर पूछा—भन्ते ! हम ने सूई-घर बनाने के लिए सरकण्डे मँगवाए हैं, वह नीचे से ऊपर तक छिदे हुए हैं। इसका क्या कारण हैं? शास्ता ने "भिक्षुग्रो! यह मेरे पुराने ग्रधिष्ठान ( — निश्चय) (का फल) हैं" कह ग्रतीत की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

"पूर्व समय मे वह वन-षण्ड (एक) ग्ररण्य ही था। वहाँ की पुष्करिणी में रहनेवाला एक जल-राक्षस भी (पुष्करिणी में) उतरने वालों को खा जाता था। उस समय वोधिसत्व, रोहित मृग के बच्चे जितने बड़े, किप-राज हो, ग्रस्सी हजार बानरों से घिरे, किप-सेना के नायक हो ग्ररण्य में रहते थे। उसने वानर-गण को उपदेश दिया—"तात! इस ग्ररण्य में विष-वृक्ष हैं, ग्रमनुष्य-पिरगृहीत पुष्करिणियाँ हैं, इसलिए तुम किसी ऐसे फल-फूल को, जिसे पहले न खाया हो खाने के समय, किसी जल को, जिसे पहले न पिया हो पीने के समय मुक्ते पूछ लेना। वे "ग्रच्छा" (कह) स्वीकार कर, एक दिन ऐसे स्थान पर गये, जहाँ पहले कभी न गये थे। वहाँ दिन में

बहुत देर तक पानी ढूँढंते हुए, एक पुष्करिणी को देख, बिना पानी पिये, वहाँ बैठे, बोधिसत्व के म्राने की प्रतीक्षा करने लगे। बोधिसत्व ने म्राकर पूछा ' "तात ! क्यो पानी नहीं पीते ?" "म्रापके म्राने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" "तात ! म्रच्छा किया" (कह) बोधिसत्व ने पुष्करिणी के चारो म्रोर घूमकर, पद-चिन्हों को देखते हुए, (केवल) उतरने के ही चिन्हों को देखा। वापिस चढ़ने (के चिन्हों) को नहीं।

'यह पुष्करिणी, निश्चय-पूर्वंक ग्रमनुष्य-परिगृहीत है' जान, उसने कहा— "तात ! तुमने ग्रच्छा किया, जो पानी नहीं पिया । यह पुष्करिणी ग्रमनुष्य-परिगृहीत (ही) हैं।" जल-राक्षस ने भी यह जान, कि वह (पानी पीने के लिए) नहीं उतर रहे हैं, नीले पेट, सफेंद मुँह, ग्रौर लाल-हाय-पैर वाला वीभत्स रूप धारण कर, पानी को चीरकर, (बाहर) निकल कहा—"तुम किस लिए बैठे हो ? उतर कर, पानी पीग्रो ?"

बोधिसत्व ने पूछा——"तू यहाँ पैदा-हुग्रा जल-राक्षस है ?" "हाँ । में हैं।"

"तू ! यहाँ उतरने वालो को हडप लेता है ?"

"हाँ । मैं यहाँ उतरने वालो को लेता हूँ । श्रौर तो श्रौर, मैं पक्षियो तक को नहीं छोड़ता । तुम, सब को भी खाऊँगा ।"

"हम तुभे, श्रपने को खाने नहीं देगे।" "श्रौर पानी पीग्रोगे?" "हॉं! पानी पीयेगे, श्रौर तेरे वशी-भूत न होगे।"

तो, कैसे पानी पीम्रोगे ?।"

"क्या तू समभता है कि (पुष्करिणी मे) उतर कर पीयेगे ? हम ग्रस्सी हजार के ग्रस्सी हजार (पुष्करिणी मे) बिना उतरे, एक एक सरकण्डा ले, कवल की नाली से पानी पीने की तरह, तेरी पुष्करिणी का पानी पीयेगे ! इस प्रकार, तू हमे न खा सकेगा"—इस ग्रर्थ को जान, शास्ता ने, ग्रभिसम्बुद्ध होने की अवस्था मे, इस गाथा के पहले दोनों चरण कहे—

दिस्वा पदमनुत्तिण्णं दिस्वानोतरितं पदं, नळन वारि पिविस्साम नेव मे त्वं विधस्ससि । [ (पैरो के) नीचे जाने के चिन्ह को देख (ग्रौर) ऊपर ग्राने के चिन्ह को न देख, हम सरकण्डे से जल पीयेगे ग्रौर तू हमे नहीं मारेगा।

भिक्षुग्रो । उस किप-राज ने उस पुष्करिणी पर चढ़ने का एक भी पद-चिन्ह नहीं देखा । उतरने के पद-चिन्ह को उतरा ही देखा । इस प्रकार चढ़ने के पद-चिन्ह को न देख, ग्रौर उतरने के पद-चिन्ह को देख 'यह पुष्करिणी निश्चित-रूप से ग्रमनुष्य-परिगृहीता हैं' जान ग्रपने साथ बात-चीत करनेवाली परिषद् को कहा—नळेन वारि पिविस्साम, जिसका मतलब हैं कि हम तेरी पुष्करिणी से सरकण्डे से पानी पीयेगे । ग्रौर फिर बोधिसत्त्व ने ही कहा— नेव मं त्वं विधस्सिस—इस प्रकार नल से पानी पीते हुए सपरिषद् मुफे तू नहीं मारेगा ।

ऐसा कह बोधिसत्व ने एक सरकण्डा मँगवा, पारिमतास्रो का ध्यान करा, सत्य-किरिया कर, मुख से फूँका। सरकण्डा अन्दर कुछ गाँठ भी बाकी न रख एक सिरे से दूसरे सिरे तक खोखला हो गया। इस प्रकार दूसरे दूसरे सरकण्डे भी मँगवा कर फूँक कर दिये। लेकिन इस प्रकार तो खतम नही हो सकते थे। इसलिए यहाँ ऐसे नही समभना चाहिए। बोधिसत्व ने अधिष्ठान किया कि इस पुष्करिणी के चारो और उगे हुए सब सरकण्डे एक-छिद्र वाले हो जायँ। बोधिसत्वो का हितचिन्तन महान् होने के कारण उनके अधिष्ठान पूरे होते हैं। तब से उस पुष्करिणी के गिर्द जितने भी सरकण्डे उगे वे सभी एक-छिद्र वाले हुए।

इस कल्प में कल्प-भर तक रहने वाली चार ऋद्धियाँ हैं। कौन सी चार ? (१) चाँद कल्प भर खरगोश के चिन्ह वाला रहेगा। (२) वट्टक जातक में आग बुक्तने की जगह इस सारे कल्प भर आग नहीं जलेगी। (३) घटिकार के रहने की जगह इस सारे कल्प भर पानी नहीं वरसेगा । (४) इस पुष्करिणी के गिर्द उगने वाले सरकण्डे, इस सारे कल्प-भर एक-छिद्र वाले ही उगेगे। यह चार कल्प-भर तक रहने वाली ऋद्धियाँ हैं। बोधिसत्व ऐसा अधिष्ठान करके

एक सरकण्डे लेकर बैठे। वे ग्रस्सी हजार वानर भी एक एक सरकण्डा लेकर पुष्किरिणी को घेर कर बैठे। बोधिसत्व के सरकण्डे से खेच कर पानी पीने के समय उन्होने भी किनारे पर बैठे ही बैठे पिया। इस प्रकार उनके पानी पीने पर जल-राक्षस कुछ भी न पाकर ग्रसन्तुष्ट हो ग्रपने निवास-स्थान को गया। बोधिसत्व भी ग्रपने ग्रमुचरो सहित जगल मे प्रविष्ट हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुग्रो । इन सरकण्डो का एक-छिद्र वाले होना मेरे ही पुराने ग्रिधिष्ठान का फल है', कह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का साराज निकाल दिखाया।

उस समय जल-राक्षस देवदत्त था । ग्रस्सी हजार बानर बुद्ध-परिष**ट् ।** हाँ, उपाय-कुशल कपिराज में ही था ।

# पहला परिच्छेद

# ३. कुरुंग वर्ग

# २१. कुरुंगमिग जातक

"जातमेतं कुरुङ्गस्सा...." यह गाथा शास्ता ने, वेळुवन मे विहार करते समय, देवदत्त के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

एक समय धर्मसभा में बैठे भिक्षु, देवदत्त की निन्दा करते हुए कह रहे थे, "श्रावुसो! देवदत्त ने तथागत के मारने के लिए धनुधर नियुक्त किये, शिला फेकी, धनपालक (हाथी) को छोडा,—इस प्रकार सब तरह से तथागत के वध का प्रयत्न करता है।" बृद्ध ने आकर, बिछे आसन पर बैठ, भिक्षुओ से पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय क्या बात-चीत हो रही हैं?" "भन्ते ! देवदत्त, आपके वध के लिए प्रयत्न करता है, सो हम बैठे उसकी निन्दा कर रहे हैं।" शास्ता ने "भिक्षुओ ! देवदत्त केवल श्रव ही मेरे वध का प्रयत्न नही कर रहा है, पहले भी किया है, लेकिन (वह) समर्थ नही हुआ" कह श्रतीत की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व, कुरुङ्गमृग (की जून में उत्पन्न) हो, एक अरण्य में फल खाकर रहते थें। एक बार, वह फलदार सेपण्णि वृक्ष के सेपण्णि फल खाते थें। एक ग्रामीण, अटारी पर से शिकार खेलनेवाला शिकारी, फल-दार वृक्षों के नीचें मृगों के पद-चिन्ह देख, उन वृक्षों के ऊपर ग्रटारी बाँघ, उसपर से फल खाने के लिए

श्राये मृगो को शक्ति (श्रायुध) से बीध, उनका मास बेचकर गुजारा करता था। उसने एक दिन, उस वृक्ष के नीचे जा बोधिसत्व के पद-चिन्ह को देखा। उस सेपण्णी-वृक्ष पर श्रटारी बाँध, प्रात काल ही (खाना) खा, शक्ति ले, बन मे प्रवेश कर, उस वृक्ष पर चढ श्रटारी पर जा बैठा। बोधिसत्व भी प्रात काल ही श्रपने निवास-स्थान से निकल सेपण्णि फलो को खाने की इच्छा से उस वृक्ष के नीचे एक दम न जा, 'कभी कभी श्रटारी बाँध शिकार खेलने वाले शिकारी, वृक्षो पर श्रटारी बाँधते हैं' (सोच) कही इस तरह की कुछ गडबड (=उपद्रव) तो नहीं हैं (सोचते हुए) बाहर ही खडे रहे। शिकारी ने बोधिसत्त्व को न श्राता जान, श्रटारी पर बैठे ही बैठे, सेपण्णी-फलों को बोधिसत्त्व के श्रागे फेका। बोधिसत्त्व ने 'यह फल ग्रा ग्रा कर मेरे सामने गिरते हैं। शायद ऊपर शिकारी हैं' (सोच) बार बार ऊपर देखते हुए, शिकारी को देख, न देखे की ही तरह हो, कहा—'हे वृक्ष पहले तू लटका कर गिराते हुए की तरह, फलो को सीधे ही गिराता था। लेकिन, श्राज तूने श्रपना वृक्ष-स्वभाव छोड दिया। सो, जब तूने वृक्ष-स्वभाव छोड दिया, तो मैं भी (तुफे छोड) दूसरे वृक्ष के नीचे जा श्रपना श्रहार खोजुँगा।" यह कहकर, यह गाथा कही—

#### बातमेतं कुरुङ्गस्स यं त्वं सेपण्णि ! सेट्यिस, ग्रन्त्र सेपण्णिं गच्छामि न मे ते रुच्चते फलं।

[हे सेपिण्ण । यह जो तू (मेरे आगे) विशेष रूप से (फल) फेक रहा है, उससे कुरुङ्ग (मृग) को मालूम हो गया है। इसलिए में अब दूसरे सेपिण्ण-वृक्ष के नीचे जाऊँगा। मुफे तेरे फल अच्छे नहीं लगते]

जातं का अर्थ है प्रकट हो गया । एतं —यह । कुरुङ्गस्स —कुरङ्ग मृग को । यं त्वं सेपिण्ण ! सेय्यसि का अर्थ है कि हे सेपिण्ण नृक्ष ! यह जो तू (मेरे) आगे आगे फलो को बिखेर कर, श्रेष्ठता —िवशेषता धारण कर रहा है, फल-बिखेरने वाला हो रहा है, वह सब कुरङ्ग मृग को मालूम हो गया है । न मे ते रुच्चते फलं —"इस प्रकार फल देते हुए के, तेरे फल मुफे अच्छे नहीं लगते । तू ठहर ! में दूसरी जगह जाता हूँ" कह चला गया ।

शिकारी ने अटारी पर बैठे ही बैठे शिक्त फेक कर कहा—"जा। तू इस बार बच गया।" बोधिसत्व ने रुक कर, खडे हो कहा—"मैं तो अब जैसे तैसे बच गया, लेकिन तू आठ महा नरको से, सोलह उस्सदनरको से, पॉच प्रकार के बन्धन आदि दण्डो से, नहीं बचेगा।" इतना कह भाग कर, जिधर इच्छा थी, उधर चला गया। शिकारी भी उतर कर, यथारुचि चला गया।

बुद्ध ने, "भिक्षुग्रो । देवदत्त केवल ग्रब ही मेरे बध का प्रयत्न नहीं कर रहा है, पहले भी किया है, लेकिन (वह) सफल नहीं हुग्रा" कह इस धर्मोप-देश को लाकर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय ग्रटारी पर से शिकार खेलने वाला शिकारी (ग्रब का) देवदत्त था। (ग्रौर) कुरुङ्गमृग तो में था ही।

#### २२. कुक्कुर जातक

"ये कुक्कुरा .." इस गाथा को शास्ता ने, जेतवन मे विहार करते समय, जाति(-सम्बन्धियो) के बारे में कहा।

## क. वर्तमान कथा

वह (कथा) तो बारहवे परिच्छेद के भद्रसाल-जातक में भ्रायेगी। यहाँ तो (वर्तमान-)कथा की स्थापना के बाद की भ्रतीत की कथा कही गई है—-

<sup>ै</sup> सञ्जीव, कालसूत्र, सघात, रौरव, महारौरव, तपन, प्रतापन तथा स्रवीचि—यह स्राठ महानरक है। इनके स्रतिरिक्त स्रौर भी नरक है, जिनमें से कुछ 'उस्सद-नरक' कहलाते है।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> भद्रसाल जातक (४६५)

#### ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, (राजा) ब्रह्मदत्त के वाराणसी में राज्य करने के समय, बोधिसत्व, किसी वैसे कर्म के फलस्वरूप कुत्तों में पैदा हो, सैकडों कुत्तों को साथ लिये, महा इमशान में रहते थे।

एक दिन राजा उजले-घोडो वाले, सब ग्रलङ्कारो से ग्रलकृत रथ पर चढ, उद्यान मे जा, वहाँ दिन भर खेल, सुर्य्यास्त होने पर, (वापिस) नगर मे प्रविष्ट हम्रा। रथ को, उन्होने जैसे का तैसा कसा ही, राजाङ्गण मे खडा कर दिया। रात को वर्षा होने से, वह भीग गया। महल के ऊपर रहने वाले पारिवारिक कूत्ते उतर कर, रथ के चर्म और चमडे की रस्सी खा गये। अगले दिन राजा को खबर दी गई कि "देव म कुत्तों ने मोरी में से घुसकर, रथ के चर्म और चमड़े की रस्सी खा डाली है।" राजा ने कृत्तो पर कोधित हो श्राज्ञा दी कि "जहाँ-जहाँ कृत्ते दिखाई दे उन्हे मार डालो।" उस समय से कृत्तो पर बडी विपत्ति ग्राई। वे जहाँ जहाँ दिखाई दे, वहाँ वहाँ मारे जाते हए, भाग कर श्मशान मे बोधिसत्व के पास पहुँचे। बोधिसत्व ने पूछा-- "तुम बहुत सारे इकट्ठे होकर श्राये हो, क्या कारण है ?" उन्होने उत्तर दिया-- "ग्रन्त पर मे कूत्तो के रथ के चर्म श्रीर चमडे की रस्सी खा लेने से ऋद्ध हो राजा ने (सभी) कुत्तो के मारने की त्राज्ञा दी है। बहुत कुत्तो का नाश हो रहा है। महा-भय उत्पन्न हुन्ना है।" बोधि (-सत्त्व) ने सोचा--"पहरे के स्थान मे, बाहर के कुत्तो को तो (ऐसा करने का) मौका नही । राज-महल के अन्दर रहने वाले पारिवारिक कृत्तो की ही यह करनी होगी। लेकिन ग्रब चोरो को तो कुछ (दण्ड) नही। ग्रचोर मर रहे है। क्यों न मै राजा को (ग्रसली) चोर दिखाकर, (ग्रपने) बाति-संघ को जीवन-दान दिलवाऊँ ?" उसने कृत्तो को सान्त्वना दे, "तूम मत डरो। में 'ग्रभय-दान' ले ग्राऊँगा। जब तक में राजा से मिल (ग्राऊँ), तब तक तुम यही रहो।" (कह) पारमितात्रों का विचार कर, मैत्री-भावना को आगे कर, अधिष्ठान किया-कि मेरे ऊपर रोडा, मुद्गर वा अन्य कोई चीज कोई न फेके। (ग्रौर यह ग्रिषष्ठान कर) उसने, श्रकेले ही नगर के ग्रन्दर प्रवेश किया। सो, उसे देखकर, किसी एक जने ने भी, उसपर क्रोध नही किया। राजा कृत्तो के बध की ग्राज्ञा देकर, ग्रपने न्यायासन पर बैठा था। बोधिसत्व,

वही पहुँच, उछल कर, राजा के आ्रासन के नीचे चले गये। राज-पुरुष उसको निकालने को तैयार हुए। लेकिन, राजा ने रोक दिया। बोधिसत्व ने थोडी देर सांस ले, राज्यासन के नीचे से निकल, राजा को प्रणाम कर पूछा— "क्या आप कुत्तो को मरवाते हैं?" "हाँ! मैं (मरवाता हूँ)।" "राजन! उनका क्या अपराध है?" "उन्होंने मेरे रथ के ऊपर का चमडा और चमडे की रस्सी खा ली।" "मालुम हैं, किन कुत्तों ने खाई हैं?" "नहीं जानता।"

'देव ! 'इन्होने चर्म खाया है', इसे ठीक से न जान, जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दे, उन सभी को मरवाना उचित नहीं।"

"क्योकि, रथचर्म को कुत्तो ने खाया था, इसलिए मैंने ब्राज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दे, उन सभी को मार डालो।"

"तो, क्या मनुष्य, सभी कुत्तों को मारते हैं? या ऐसे भी कुत्ते हैं, जो नहीं मारे जाते?"

"है, हमारे घर के कुत्ते नही मारे जाते।"

"महाराज । ग्रभी तो ग्रापने कहा, "क्योकि, रथचर्म को कुत्तो ने खाया, इसलिए मैंने ग्राज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दे, उन सबो को मारो", ग्रौर ग्रभी ग्राप कहते हैं कि "हमारे घर के कुत्ते मारे नहीं जाते।" ऐसा होने पर, क्या ग्राप पक्षपाती हो, ग्रगित को नहीं प्राप्त हो रहे ? ग्रगित को प्राप्त होना ग्रनुचित है। यह राज-धर्म नहीं। राजा को बात की तह में जाने के विषय में तुला की सदृश निष्पक्ष होना चाहिए। सो, घर के कुत्ते तो मारे नहीं जाते, दुर्बल कुत्ते ही मारे जाते हैं। यदि ऐसा है, तो यह सब कुत्तों का घात करना नहीं है, केवल दुर्बल कुत्तों का घात करना है।" यह कह, बोधिसत्व ने मधुरस्वर से, "महाराज । यह जो ग्राप कर रहे हैं सो (राज-)धर्म नहीं" कहते हुए, यह गाथा कही—

ये कुक्कुरा राजकुलम्हि बद्धा, कोलेय्यका वण्ण बलूपपन्ना,

<sup>ै</sup> छन्द, दोष, भय तथा मूढ़ता के वशीभूत हो श्रकर्तव्य करना (श्रॅगुत्तर निकाय, चतुक्किनिपात तथा दीघनिकाय, सिगालोवाद सुत्त)।

#### ते मे न वज्भा मयमस्म वज्भा, नायं सघच्चा दुब्बलघातिकायं॥

[जो वर्ण भ्रौर बल से युक्त, राज-कुल मे पले, राज्य-कुल के कुत्ते है, सो तो मारे नही जाते, (केवल) हम ही मारे जाते है। यह (सब) कुत्तो का मारना नही है। (केवल) दुर्बल कुत्तो का मारना है]

येकुक्तुरा — जो कुत्ते । जैसे धारोष्ण पेशाब भी गन्दा मूत्र (कहलाता है); उसी दिन पैदा हुम्रा श्रुगाल भी पुराना ( — जर) श्रुगाल (कहलाता है), कोमल गडुच ( — गलोचि) बेल भी गन्दी-लता (कहलाती है); स्वर्ण-वर्ण काय भी 'गन्दा-शरीर' (कहलाता है), इसी प्रकार सौ वर्ष का कुत्ता भी कुक्तुर कहलाता है। इसलिए, बूढो, बडे बडे शरीर वालो को भी 'कुक्तुर' ही कहा गया है। वद्धा — विध्ता ( — पले)। कोलेयका — राजकुल मे पैदा हुए, पले। वण्णबलूपपन्ना' — शरीर-वर्ण श्रीर काय-बल से युक्त। ते मे न वज्भा — सो यह स्वामियो वाले, श्रारक्षा वाले (कुत्ते) बध्य नहीं हैं। मयमस्म वज्भा हम, जिनका कोई स्वामी नहीं, कोई हिफाजत करने वाला नहीं; हम ही बध्य हैं। नायं सघच्चा सो ऐसा होने पर, तो यह सब (कुत्तो) का मारना नहीं हैं, "दुब्बल घातिकायं" दुबंलो का घात करने से यह (केवल) दुबंलो को मारना है। राजाश्रो को चोरो का निग्रह करना चाहिए, श्रचोरो का नहीं। लेकिन यहाँ चोरो को तो कुछ नहीं, श्रचोर मारे जाते हैं। श्रोह! इस लोक मे श्रनौचित्य होता है। श्रोह! श्रधमं होता है।

राजा ने बोधिसत्त्व के वचन को सुनकर, पूछा—"पण्डित ! क्या तुभे मालूम है कि ग्रमुक (कुत्तो) ने रथ-चर्म खाया है ?"

<sup>&</sup>quot;हाँ ! जानता हूँ ।"

<sup>&</sup>quot;िकन्होने खाया है?"

<sup>&</sup>quot;तुम्हारे घर (ही) में रहने वाले कुत्तो ने।"

<sup>&</sup>quot;यह कैसे मालूम हो, कि उन्होने खाया है ?"

<sup>&</sup>quot;उनका खाना मै साबित करूँगा ( ≕दिखाऊँगा) ।"

238

"पण्डित <sup>।</sup> दिखा ।"

"ग्रपने घर के कुत्तो को मँगवा, थोडा महा ग्रौर दूब के तिनके मँगवा ले।" राजा ने वैसा किया। महासत्व ने कहा—इस मट्ठे मे, इन तिनको को मथकर, इन कुत्तो को पिलवा दे। राजा ने वैसे करा, महा पिलवा दिया। जिस ने पिया, उस उस कुत्ते ने चमड़े सिहत उल्टी कर दी। राजा ने इसे सर्वंज्ञ, बुद्ध के समफाने के समान जान, ग्रित प्रसन्न हो, श्वेत छत्र से बोधिसत्व की पूजा की। बोधिसत्व ने, "धम्मं चर महाराज! मातापितुसु खत्तिय ( —महाराज! हे क्षत्रिय माता पिता के प्रति धर्म का व्यवहार करे)" ग्रादि, तेसकुण जातक में ग्राई हुई दस धर्माचरण सम्बन्धी गाथाग्रो से राजा को धर्मोपदेश कर, "महाराज! ग्रब से ग्राप ग्रप्रमादी (हो) रहे" (कह), राजा को पाँचशीलो में प्रतिष्ठापित कर, श्वेत-छत्र राजा को ही लौटा दिया।

राजा महासत्व (=बोधिसत्व) की धर्म-कथा सुन, सभी प्राणियो को 'ग्रभय-दान' दे, बोधिसत्व-प्रमुख सब कुत्तो के लिए ग्रपने भोजन जैसे ही भोजन के नित्य मिलने का प्रबन्ध कर, बोधिसत्व के उपदेशानुसार ग्राचरण कर, ग्रायु रहते दान ग्रादि पुण्य-कर्म कर, मरने पर देवलोक मे उत्पन्न हुग्रा। कुक्कुरोवाद (=कुत्ते के उपदेश) का दस हजार वर्ष (तक प्रभाव) रहा। बोधिसत्व भी, जितनी ग्रायु थी, उतना जीवित रहकर, कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने, 'भिक्षुग्रो ! तथागत केवल ग्रब ही ग्रपने जाति-सम्बन्धियों का उपकार नहीं करते, पहले भी किया ही हैं कह, इस धर्म-देशना को ला मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का राजा (ग्रब का) ग्रानन्द था। शेष सब बुद्ध-परिषद् थी। लेकिन कुक्कुर में ही था।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> तेसकुण जातक (५२१)

### २३. भोजाजानीय जातक

"ग्र**पि पस्सेन सेमानो....**" यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक प्रयत्न-हीन भिक्षु के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उस भिक्षु को श्रामन्त्रण कर, 'भिक्षु ! पूर्व समय मे पिण्डित लोग सामर्थ्य से बाहर के (कार्य) मे भी प्रयत्नवान होते थे। चोट खाकर भी, प्रयत्न न छोड़ते थे' कह, श्रतीत की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, भोजाजानीय नाम के सैन्धव-कुल (सिन्धु पार के घोड़ो के कुल) मे उत्पन्न हो, बाराणसी नरेश के, सब अलकारो से अलकृत माङ्गलीक अश्व हुए। वह लाख के मूल्य की सोने की थाली ही मे नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसो से युक्त तीन वर्ष के पुराने चावल का (बना) भोजन खाते थे। चार प्रकार की सुगन्धि से लिपी भूमि पर खड़े होते थे। वह (खड़े होने का) स्थान, लाल कम्बल की कनात से घिरा था। उसके ऊपर, सोने के तारे लगा हुआ कपड़े का चन्दवा (तना) था। चारो और सुगन्धित पुष्प-मालाये (लटकती) थी और सदा सुगन्धित तेल का प्रदीप (जलता) रहता था। ऐसा कोई राजा नहीं हैं, जो बाराणसी के राज्य की इच्छा न करता हो। एक बार सात राजाओ ने बाराणसी को घेर कर बाराणसी के राजा के पास सन्देश भेजा "या तो हमे राज्य दे दो, अथवा युंद्ध करो।" राजा ने अमात्यो को एकत्रित कर, वह समाचार कह, पूछा— "कि तात! अब क्या करे?" "(अमात्यो ने उत्तर

भोजाजानीय ] २३३

दिया) "देव पहले तुम्हे युद्ध के लिए नही जाना चाहिए। पहले अमुक नाम के अश्वारोह को भेज कर युद्ध कराना चाहिए। उसके असमर्थ रहने पर, (हम) फिर सोचेगे ( — जानेगे)।" राजा ने उस (अश्वारोह) को बुलवा कर पूछा, "तात! क्या सात राजाओं के साथ युद्ध कर सकोगे?" "देव! यदि मुक्ते भोजाजानीय सिन्धव मिले, तो सात राजा तो क्या, में सकल जम्बूद्दीप के राजाओं से युद्ध कर सकूँगा।" "तात! भोजाजानीय सिन्धव हो, अथवा कोई और हो, जो अच्छा लगे, उसे लेकर युद्ध करो।"

उसने. 'देव । ग्रच्छा' कह, राजा को प्रणाम किया। फिर प्रासाद से उतर, सिंधदेशीय भोजाजानीय (घोडे) को मँगवा, उस पर कवच बॉघ अपने भी सब शस्त्र धारण कर, खडग बॉध, सिध् देशी (=धोडे) की पीठ पर सवार हम्रा। फिर नगर से निकल, बिजली की तरह घुमते हुए, पहले सेना के घेरे को तोड, एक राजा को जीवित ही पकड लिया। फिर नगर को बिना लौटे, (उस राजा को) भ्रपनी सेना को सौप, फिर जाकर, दूसरे सेना के घेरे को तोड़, दूसरे (राजा) को पकड लिया। इस प्रकार उसने पाँच राजा ्रो को जीवित ही पकड लिया। छठे सेना के घेरे को तोड कर छठे राजा को पकडने के समय भोजाजानीय को चोट ग्रा गई। लह बह रहा था। कडी वेदना हो रही थी। श्रश्वारोह भोजाजानीय को 'चोट लगी' जान, उसे राज-द्वार पर लेटा, साज ढीला कर, दूसरे घोड़े को कसने को तैयार हम्रा। बोधिसत्त्व ने म्रत्यन्त सुख के ढग से लेटे ही लेटे आँखे खोल, अश्वारोह को देख, सोचा-- "यह (अश्वा-रोह) दूसरे घोडे को कस रहा है। यह घोडा, सातवे सेना के घेरे को तोड. सातवे राजा को न पकड़ सकेगा। मेरा किया कराया (काम) नष्ट हो जायगा। यह अतुलनीय अश्वारोह भी नाश को प्राप्त होगा। राजा भी पराये हाथ चला जायगा। मुफ्ते छोड, कोई भी दूसरा घोडा, सातवे सेना के घेरे को तोड, सातवे राजा को नहीं पकड सकता।" (यह सोच) उसने लेटे ही लेटे ग्रश्वारीह को बुलवा, "मित्र ग्रश्वारोह । मुभे छोड, सातवे सेना के घेरे को तोड, सातवे राजा को पकड ला सकने वाला, अन्य कोई घोडा नही है। में अपने किये कराये काम को नष्ट न होने दूँगा। मुभे ही उठा कर, कस। " कह यह गाथा कही-

> ग्रिप पस्सेन सेमानो सल्लेहि सल्लली कतो , सेय्योव वळवा भोज्जो युञ्ज मञ्जेव सारिथ ॥

[शल्य से जखमी हो गये होने के कारण, एक करवट सोया हुर्ग्री भी भोजाजानीय-अश्व ही (किसी दूसरे) घोड़े से श्रेष्ठ हैं। इसलिए हे सारथी! तू मुभे ही, कस।

श्रिप पस्सेन सेमानो = एक पासे पर सोने वाला होता हुग्रा भी। सल्लेहि सल्लली कतो, शल्य से बिधा रहने पर भी। सेय्योव वळवा भोज्जो, वळवा कहते हैं सिन्धव-कुल में ग्रनुत्पन्न साधारण ग्रश्व को। भोज्ज = भोजाजानीय सिन्धव। इस साधारण घोडे की ग्रपेक्षा, शल्य से बिधा हुग्रा भी भोजाजानीय ग्रधिक श्रेष्ठ हैं = ग्रच्छा है = उत्तम है। युञ्ज मञ्जेव सारिथ, क्योंकि जब ऐसा होने पर भी, में ही ग्रधिक श्रेष्ठ हूँ, तो हे सारिथी! तू मुभे ही जोड, मुभे ही कस।"

सवार ने बोधिसत्त्व को उठा, जखमो को बाँधा, श्रौर ग्रच्छे प्रकार कस कर, उसकी पीठ पर जा बैठा। सातवे सेना के घेरे को तोड, सातवे राजा को जीवित ही पकड़, लाकर राज-सेना को सौपा। बोधिसत्त्व को भी राज-द्वार पर लाया गया। राजा, उसके दर्शन करने के लिए बाहर निकला। महा-सत्व ने राजा को कहा—''महाराज! (इन) सात राजाश्रो को मारे मत। शपथ करवा कर, छोड दे। मुफ्ते श्रौर ग्रश्वारोह को जो यश देना है, वह सब ग्रश्वारोह को ही दे। सात राजाश्रो को पकड ला देने वाला योधा नष्ट करने के योग्य नहीं है। ग्राप भी दान दे। शील (=सदाचार) की रक्षा करे। धर्म से ग्रौर पक्षपात रहित होकर राज्य करे।'' इस प्रकार बोधिसत्त्व के राजा को उपदेश कर चुकने पर, बोधिसत्त्व का साज खोल दिया गया। कहा, साज के खुलते ही खुलते चल बसा। राजा ने उसका शरीर-कृत्य करवा, ग्रश्वारोह को महान् यश दे, सात राजाश्रो से फिर दुबारा द्रोह न करने की शपथ करवा, उन्हें उन उनके स्थान पर भेज दिया। तदनन्तर, राजा, धर्म से तथा पक्षपात-रहित राज्य करते हुए, ग्रायु समाप्त होने पर, कर्मानुसार, (परलोक को) गया।

 श्राजञ्ज ] २३४

प्रयत्न को ढीला नही छोडा । तू, इस प्रकार के नैर्याणिक ( = मोक्षदायक) शासन में प्रव्रजित हीकर भी, क्यो प्रयत्न ढीला करता है ?" कह चार (ग्रार्थ-) सत्यो को प्रकाशित किया । सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर, प्रयत्न-हीन भिक्षु, ग्रह्तंत्व-फल में प्रतिष्ठित हो गया । शास्ता ने इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाल दिखाया । उस समय का राजा (ग्रब का) ग्रानन्द था । ग्रश्वारोह सारिपुत्र, (ग्रौर) भोजाजानीय सिन्धव (-घोडा) तो में ही था ।

#### २४. ग्राजञ्ज जातक

"यदा यदा .." यह भी गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय (एक) शिथिल-प्रयत्न भिक्षु के ही बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को ग्रामिन्त्रत कर— "भिक्षु । पूर्व समय मे पण्डितो ने सामर्थ्य से बाहर (बात) के लिए भी, जल्म खा कर भी, प्रयत्न किया है" कह, पूर्व की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, पूर्वोक्त अनुसार ही, सात राजाओं ने नगर को घेर लिया। एक रथ-सवार योद्धा ने, दो सहोदर-सैन्धव-घोडो को रथ मे जोत, नगर से निकल, छ सेना के घेरो को तोड, छ राजाओं को पकडा। उस समय (दो भ्रश्वो में से) ज्येष्ठ भ्रश्व पर प्रहार पड़ा। सारथी रथ को जोड, हॉकता हुआ राज-द्वार पर स्राया स्रौर

ज्येष्ठ-सहोदर को रथ से खोल, साज को ढीला कर, एक पासे पर लिटा, दूसरे घोड़े को कसने को तैयार हुग्रा। बोधिसत्त्व ने उसे देख, पूर्व प्रकार से ही सोच, सारथी को बुलवा, लेटे ही लेटे यह गाथा कही—

यदा यदा यत्थ यदा यत्थ यत्थ यदा यदा भ्राजञ्जो कुरुते वेगं हायन्ति तत्थ वाळवां ।।

[जब जब जहाँ, जब, जहाँ जहाँ, जब जब, भ्राजानीय (घोडा) प्रयत्न ( $\Longrightarrow$ वेग) करता है, उस समय ( $\Longrightarrow$ वहाँ) साधारण घोड़े (खलुक-श्रश्व) रह जाते है।

यदा यदा का अर्थ है कि पूर्वाण्ह समय श्रादि जिस किसी समय पर।
यत्थ — जिस स्थान पर, मार्ग मे वा सग्राम मे। यदा — जिस क्षण मे। यत्थ
यत्थ — सात सेना के घेरे के नाम के बहुत से युद्ध-मण्डलो मे। यदा यदा — जिस
जिस समय, प्रहार पड़े रहने के समय, वा न पड़े रहने के समय। आजञ्जो
कुरते वेगं सारथी के चित्त का भुकाव (— अच्छी लगने वाली बात) जानने
की सामर्थ्य रखने वाला आजञ्जो— श्रेष्ठ अश्व, शीझता करता है, प्रयत्न करता
है, हिम्मत करता है। हायन्ति तत्थ वाळवा — उस वेग (— प्रयत्न) के
किये जाते समय, शेष साधारण घोडे कहे जाने वाले खलुक अश्व रह जाते हैं
(— हास को प्राप्त होते हैं)। इसलिए कहा कि इस रथ मे मुभे ही जोत।

सारथी ने बोधिसत्व को उठा, (रथ मे) जोत, (उसे) हॉक, सातवे सेना के घेरे को तोड़, सातवे राजा को पकड ( =ले), रथ को हॉक, राज-द्वार पर सिन्धव-ग्रव्व को खोला। बोधिसत्व एक ही पासे पर लेटे लेटे, पूर्व प्रकार ही राजा को उपदेश दे, मरण को प्राप्त हुए। राजा, उस का शारीरिक-कृत्य करवा, सारथी का सम्मान कर, धर्मानुसार राज्य कर, यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को कह, चारो (ग्रार्य-सत्यो) को प्रकाशित कर, जातक का साराश निकाल दिखाया। सत्यो के प्रकाशन की समाप्ति पर, वह भिक्षु ग्रह्तिव मे प्रतिष्ठित हुग्रा। उस समय राजा (ग्रव के) श्रानन्द स्थिवर थे। श्रीर ग्रश्व थे सम्यक् सम्बुद्ध।

#### २५. तित्थ जातक

"ग्रञ्जमञ्जिह तित्थेहि..." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, धर्मसेनापित (=सारिपुत्र) के शिष्य, एक सुनार-पुत्र भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

दूसरों के ग्राशय (=िचत्तावस्था) का ज्ञान केवल बुद्धों को ही होता है, ग्रन्यों को नहीं। इसलिए सारिपुत्र ने, ग्रएने में दूसरों की चित्तावस्था जानने की सामर्थ्य न होने के कारण, ग्रपने साथी के चित्त की ग्रवस्था न जान कर, उसे ग्रश्न कर्मस्थान के बताया। उसकों वह कर्मस्थान ग्रमुकूल नहीं पडा। क्यों? उसने पाँच सौ जन्म तक नियम से सुनार के ही घर में जन्म ग्रहण किया था। सो चिरकाल तक परिशुद्ध सोने को ही देखते रहने का ग्रभ्यास रहने से, ग्रश्नुभ (कर्मस्थान) उसको ग्रमुकूल नहीं पडा। उसने (ग्रभ्यास करते) चार महीने बिता दिये, (लेकिन) वह निमित्त मात्र भी पैदा नहीं कर सका। धर्मसेनापित, जब ग्रपने साथी को स्वयं ग्रह्तंव न दे सके, तो उन्होंने सोचा कि 'यह निश्चय से बुद्ध-वैनेय हैं, "में इसे तथागत के पास ले चलूँगा।" यह सोच, प्रात काल ही वह उसे लेकर तथागत के पास गये।

शास्ता ने पूछा, "सारिपुत्र ! क्यो, एक भिक्षु को लेकर श्राये हो ?" "भन्ते । मैंने इसे कर्मस्थान दिया। चार महीनो मे यह निमित्त-मात्र भी पैदा न कर सका। 'यह बुद्धवैनेय होगा' सोच, मैं इसे श्रापके पास लेकर श्राया

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> शरीर की गन्दिगयों का ख्याल कर, योगाभ्यास करना।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> द्वारीर के ३२ हिस्सों में से किसी का भी काल्पनिक श्राकार।

हूँ ।" "सारिपुत्र ! तूने श्रपने शिष्य को कौन सा **कर्मस्थान** दिया था <sup>?</sup>" "भगवान् ! <mark>श्रशुभ-कर्मस्थान</mark> ।"

"सारिपुत्र ! तेरी (चित्त-)सन्तिति मे स्राशयानुशय-ज्ञान नही । जा, शाम को स्राना स्रीर स्रपने शिष्य को साथ ले जाना ।"

इस प्रकार स्थिवर को अनुज्ञा कर, शास्ता ने उस भिक्षु को सुन्दर निवास-स्थान और चीवर दिलवा, (फिर) उसे साथ ले, भिक्षाचार के लिए प्रवेश कर, प्रणीत भोजन ( च्लाद्य-भोज्य) दिलवा, महाभिक्षुसघ सहित विहार को लौट दिन का समय गन्धकुटी में बिताया। शाम को उस भिक्षु को साथ ले, विहार चारिका करते हुए, आम्रवन मे, (दिव्य शक्ति से) एक पुष्करिणी; उसमें पद्मों का एक गुच्छा, और उनमें भी एक बड़ा कमल-फूल निर्माण कर, उस भिक्षु को, "भिक्षु व दू इस फूल को देखते हुए बैठा रह" (कह) बिठा कर, स्वय गन्धकुटी में प्रविष्ट हुए।

वह भिक्षु, उस फूल को बार बार देखने लगा। भगवान् ने उस फूल को कुम्हला दिया। उसके देखते ही देखते, वह फूल कुम्हला कर कुरूप हो गया। उसके सिरे पर के पत्ते गिरते गिरते थोडी ही देर में सब के सब गिर गये। उसके बाद रेणु गिरी। केवल डोडा शेष रह गया। उस भिक्षु को उसे देखते देखते ख्याल ग्राया—"यह पुष्प ग्रभी सुन्दर था, दर्शनीय था। ग्रभी, इसका रग बदल गया, पत्ते ग्रौर रेणु गिर पडे। केवल डोडा रह गया। जब इस प्रकार का यह फूल कुम्हला गया, तो मेरे शरीर को क्या नहीं हो जायगा?" (यह सोचते सोचते) सभी सस्कारों की ग्रनित्यता का विचार कर, विदर्शना में स्थापित हुग्रा। शास्ता ने, 'उसका चित्त विदर्शनारूढ हो गया' जान, गन्ध-कुटी में बैठे ही बैठे, (ग्रपने) तेज को फैला, यह गाथा कही—

उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं व पाणिना , सन्तिमग्गमेव बूहय निब्बाणं सुगतेन देसितं॥ १

[हाथ से शरद ऋतु के कमल की तरह, ग्रपने राग ( —स्नेह) की जड उखाड फेको। सुगत द्वारा उपदिष्ट निर्वाण रूपी शान्ति-मार्ग मे ही उन्नति करो।]

१ धम्मपद, महावग्ग (२८४)

उस भिक्षु ने गाथा के अन्त मे अर्हत्व प्राप्त कर, 'मैं सब भवो ( =ससार) से मुक्त हो गया हूँ' सोच निम्नलिखित गाथाग्रो मे उदान ( =प्रीति-वाक्य) कहा-

सो वुत्थवासो परिपुण्ण मानसो, खीणासवो ग्रन्तिमदेहधारी, विसुद्ध सीलो सुसमाहितिन्द्रियो चन्दो यथा राहुमुखा पमुत्तो। समोततं मोहमहन्धकारं विनोदींय सब्बमलं ग्रसेसं, ग्रालोकमुज्जोतकरो पभद्धरो सहस्सरंसी विय भानुमा नभे॥

[वह ग्रर्हत वसित-वास, परिपूर्णमानस, क्षीणास्रव, ग्रन्तिमदेहधारी, विशुद्धशील, सयत ( —सुसमाहित-) इन्द्रिय, राहु के मुख से मुक्त हुए चन्द्रमा की तरह होता है।

मेरा विस्तृत महा मोहान्धकार नष्ट हो गया। मैने सारे के सारे मैल को हटा दिया, जैसे प्रभास्वर, ग्रालोक को उत्पन्न करने वाला, सहस्र रक्ष्मी सूर्य्य ग्राकाश में (सब ग्रन्धकार को मिटा देता है)

इस प्रकार, उदान कह, जाकर भगवान् की वन्दना की । स्थिवर भी भ्रा शास्ता को प्रणाम कर, ग्रपने सिष्य को साथ ले गये । यह बात भिक्षुग्रो में प्रगट हो गई । वे धर्म-सभा में बैठे बैठे, दश-बल (-धारी) बुद्ध का गुणानुवाद करने लगे—''ग्रावुसो । सारिपुत्र-स्थिवर ग्राशयानुशय ज्ञान न होने के कारण ग्रपने साथी के चित्त की ग्रवस्था नही जानते थे । लेकिन शास्ता ने (उसे) जानकर, एक ही दिन में, उस (भिक्षु) को प्रतिसम्भिदा-ज्ञान के साथ ग्रहंत्व दे दिया । ग्रोह । बुद्धो की शक्ति (=महानुभाव) ।"

बुद्ध ने ग्रा बिछे ग्रासन पर बैठकर, पूछा——"भिक्षुग्रो । यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" "भगवान् ग्रौर कुछ नही । ग्रापकी ही, धर्मसेनापित की (ग्रपने) शिष्य के ग्राशयानुशय-ज्ञान की वात-चीत ।"

बुद्ध ने, ''भिक्षुग्रो ! इसमे कुछ ग्राश्चर्य्य नही, यदि इस समय मैं 'बुद्ध'

होकर, उसका म्राशय जानता हूँ। मैं पहले भी, उसका म्राशय जानता ही था" कह पूर्व की कथा कही—

## ख अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व उस समय, राजा को प्रर्थ तथा धर्म सम्बन्धी उपदेश देनेवाले थे। उस समय राजा कै माङ्गलिक घोडे के नहाने के स्थान पर एक खलङ्कु घोडे को नहला लिया। माङ्गलिक ग्रश्व को दूसरे घोडे द्वारा नहाये गये तीर्थ (चपट्टन) पर उतारने लगे, तो उसने घृणा से उतरना न चाहा। साईस (च्याइवगोपक) ने जाकर राजा से कहा—'देव! माङ्गलिक ग्रश्व तीर्थ पर नही उतरना चाहता है।'

राजा ने बोधिसत्व को भेजा, "पण्डित ं जाकर मालूम कर कि माज़िलिक अश्व तीर्थ पर उतारने पर क्यो नही उतरता ?" बोधिसत्व ने 'देव । अच्छा' कह नदी के तीर पर जाकर, अश्व को देख, उसका निरोगी होना जान सोचा, 'यह किस कारण से इस तीर्थ पर नही उतरता ?' यह सोचते हुए, उसे सूभा, 'कि यहाँ पहले किसी और को नहलाया होगा। उसीसे यह घृणा करके तीर्थ पर नही उतरता।" यह सोच, उसने अश्व-गोपको से पूछा—"भो। इस तीर्थ पर पहले किसे नहलाया?" "स्वामी! एक दूसरे घोडे को।" बोधिसत्व ने "यह (माज़िलिक अश्व) अपनी शुचिता (—पिवत्रता) के कारण यहाँ नहाना नही चाहता, इसे अन्य तीर्थ पर नहलाना चाहिए"—इस प्रकार उसका आशय जान, उसने अश्व-गोपको को कहा—"भो अश्वगोपक! घृत-मधु-शक्कर मिला दूध भी बार बार पीने से (—भोजन करने से) तृप्ति हो जाती है। यह अश्व अनेक बार इस तीर्थ पर नहाया है। सो, इसे किसी दूसरे तीर्थ पर उतार कर नहलाओ, और जल पिलाओ।" यह कह, यह गाथा कही—

#### अञ्जमञ्जेहि तित्थेहि अस्सं पायेहि सारिथ ! अच्चासनस्स पुरिसो पायासस्स पि तप्पति ॥

[हे सारथी ! इस घोडे को किसी दूसरे तीर्थं पर (नहलाओं और) जल पिलाओं। आदमी, खीर भी बहुत खाने से तृप्त हो जाता है।]

ग्रञ्जमञ्जेहि — ग्रन्य से, ग्रन्य से। पायेहि; यह तो पिक्त है, ग्रर्थं, नहला ग्रौर पिला। ग्रन्चासनस्स तृतीया ( — करणविभिक्त) के ग्रर्थं में षष्ठी। श्रिति ग्रश्नेन — बहुत खाने से। पायासस्सपि तप्पितः घी ग्रादि से ग्रभि-सस्कृत ( — छौका हुग्रा) मधुर खीर से भी तृप्ति हो जाती है। घृति (होती है) सुख (होता है); खाने की इच्छा फिर उत्पन्न नहीं होती। इसलिए यह अश्वभी यहाँ (रोज रोज) नियम से नहाने से ऊब गया होगा। इसे दूसरी जगह नहलाग्रो।

उन्होने उसका कथन सुन, ग्रश्व को दूसरे तीर्थ पर उतारकर (जल) पिलाया ग्रौर नहलाया । बोधिसत्व, ग्रश्व के पानी पी कर नहाने के समय राजा के पास चले ग्राये । राजा ने पूछा—"क्यो तात । ग्रश्व ने नहाया वा पिया ?" "देव । हाँ।"

"पहले क्यो नही (नहाना) चाहता था ?"

"इस कारण से", सब कह सूनाया।

राजा 'ग्रहो ! बोधिसत्व की पिष्डताई । यह ऐसे पशुग्रो तक के ग्राशय को जानता है।" सोच, बोधिसत्त्व को बहुत सम्पत्ति दे, ग्रायु समाप्त होने पर, यथा-कर्म (परलोग) सिधारा।

बुद्ध ने, "भिक्षुग्रो । मैं केवल ग्रब ही, इसका ग्राशय नहीं जानता हूँ। पूर्व में भी जानता था" कह, इस धर्म-देशना को लाकर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का माङ्गिलिक ग्रश्व, यह (ग्रब का) भिक्षु था। राजा (ग्रब का) ग्रानन्द था। लेकिन पण्डित-ग्रमात्य तो मैं ही था।

## २६. महिलामुख जातक

"पुराण चोरान वचो निसम्म .."यह गाथा, बुद्ध ने वेळुवन मे विहार करते समय, देवदत्त के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

देवदत्त, राजकुमार श्रजातशत्रु को अपने प्रति श्रद्धावान् कर, (अपने लिए) लाभ-सत्कार उत्पन्न करता था। (राज-)कुमार श्रजातशत्रु, गिया-शिषं मे देवदत्त के लिए विहार बनवा, (वहाँ) प्रति दिन, नाना प्रकार के रसो से युक्त, तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित चावलो से बने भोजन की पाँच सौ थालियाँ, लिवा जाता था। लाभ-सत्कार (मिलने) के कारण देवदत्त के अनुयायियो की सख्या बढ गई। देवदत्त (अपने) अनुयायियो के साथ विहार में ही रहता। उस समय, राजगृह-निवासी दो मित्रो में से एक तो शास्ता के पास प्रज्ञजित हुआ, और दूसरा देवदत्त के। वह एक दूसरे को जहाँ तहाँ मिलते ( —देखते) और विहार में जाकर भी मिलते।

एक दिन देवदत्त के आश्रय मे रहने वाले (मित्र) ने, दूसरे से पूछा— आवुसो ! क्या तुम रोज रोज पसीना बहाते हुए भिक्षा मॉगते हो ? देवदत्त गया-शीर्ष विहार मे बैठा ही बैठा, नाना प्रकार के रसो से युक्त सुन्दर भोजन खाता है । क्या इस प्रकार का कोई उपाय नहीं है ? तुम किस लिए दुख भोगते हो ? क्या तुम्हारे लिए, यह अच्छा नहीं है कि तुम प्रात.काल ही गया-शीर्ष पर आओ, (वहाँ) जल-पान सहित यागु पी, अट्ठारह प्रकार का खाद्य

<sup>ै</sup> वर्तमान ब्रह्धयोनि पहाड़ (गया) ।

खा, नाना रसो से युक्त सुभोजन करो। "बार बार कहने से, वह जाने का इच्छुक हो गया। उस दिन से, वह गया-शीर्ष पर जाता, श्रौर खाकर समय रहते ही बेळुवन लौट श्राता । इस बात को वह देर तक छिपा कर नहीं रख सका कि वह गया-शीर्ष जाता है, श्रौर देवदत्त का जुटाया हुश्रा भोजन खा कर श्राता है। थोडे ही समय मे, यह बात प्रगट हो गई। उसके साथियो ने उसे पूछा— "श्रायुष्मान् । क्या तुम सचमुच, देवदत्त का जुटाया हुश्रा भोजन खाते हो?" "ऐसा, किसने कहा?।" "श्रमुक, श्रमुक (व्यक्ति) ने (कहा)।" "श्रावुसो । में सचमुच गया-शीर्ष जाकर, भोजन करता हूँ। लेकिन मुभे, देवदत्त भोजन नहीं देता, दूसरे ही मनुष्य देते हैं।" "श्रायुष्मान् ! देवदत्त बुद्धों का विरोधों है, दुश्शील है। (वह) श्रजातशत्र को श्रपने प्रति श्रद्धावान् कर, श्रधमं से श्रपने लिए लाभ-सत्कार उत्पन्न करता है। इस प्रकार के कल्याणकारी शासन मे प्रव्रजित होकर भी तू, देवदत्त का श्रधमं से पैदा किया हुश्रा भोजन ग्रहण करता है। श्रा, तुभे बुद्ध के पास ले चले", (कह) वे उसे लेकर धर्म-सभा में पहुँच।

शास्ता ने देखकर पूछा, "भिक्षुश्रो । क्यो इस (ग्राने के) ग्रनिच्छक भिक्षु को लेकर ग्राये हो ?"

"भन्ते । हाँ, यह भिक्षु श्रापके पास प्रत्रजित होकर, देवदत्त द्वारा श्रधमें से उत्पन्न भोजन ग्रहण करता है।"

"भिक्षु । क्या तू सचमुच देवदत्त का ग्रधर्म से कमाया हुग्र भोजन ग्रहण करता है ?"

"भन्ते । देवदत्त, मुफ्ते भोजन नही देता, ग्रन्य मनुष्य देते है, मैं उसे ही ग्रहण करता हूँ।"

बुद्ध ने, "भिक्षु । बहाना मत बना । देवदत्त ग्रनाचारी है, दुश्शील है । इधर प्रत्रजित हो, मेरे सघ ( ==शासन) मे रहता हुग्रा तू कैसे देवदत्त का भोजन ग्रहण करता है ? तू सदा से ऐसा ही सगित-प्रेमी चला ग्राया है । जहाँ जो सगित मिलती है, उसीमे पड़ जाता है ।" (कह) पूर्व-समय की कथा कही —

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> कथाकार को शायद यह मालूम नहीं कि वेळुवन ग्रौर गया**शीर्ष में** कितना ग्रन्तर है ?

#### ख. अतीत कथा

पर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोध-सत्व उसके ग्रमात्य थे। उस समय राजा के महिलामुख नाम का एक माजुलिक हाथी था, शीलवान और सदाचार सम्पन्न। किसी को कष्ट नही देता था। एक दिन ग्राधीरात के समय, चोरो ने उसकी शाला के समीप ग्राकर, उससे थोडी ही दूर पर चोर-मन्त्रणा (=चोरी की बात-चीत) की--"ऐसे सूरग लगानी चाहिए। ऐसे सेघ लगानी चाहिए। 'सूरंग' भ्रौर 'सेघ' मार्ग-सदश है, तीर्थ सदश है। उन्हे रुकावट-रहित, बाधा-रहित करके ही सामान चराना चाहिए। श्रीर सामान ले जाते समय (श्रादिमयो को) मारकर ही सामान ले जाना चाहिए। ऐसा करने से कोई उठ (कर पकड़) नहीं सकेगा। चोर को शीलवान नहीं होना चाहिए। उसे बद-मिजाज, कठोर श्रौर जोर जबरदस्ती करने वाला होना चाहिए।" इस प्रकार श्रापस मे सलाह कर, और एक दूसरे को सिखाकर (वे चोर वहाँ से) गये। इसी तरह फिर एक दिन, फिर एक दिन (करके) बहुत दिन तक वे (चोर) वहाँ ग्राकर मन्त्रणा करते रहे । उस (हाथी) ने उनकी बात-चीत सून, यह समभ कि यह मभे सिखा रहे हैं, सोचा कि अब से मुभे बद-मिजाज, कठोर और जोर जबरदस्ती करने वाला होना चाहिए। सो, वह वैसा ही हो गया। प्रात काल ही स्राये हथवान को सुँड मे पकड, जमीन पर पटक कर मार डाला। दुसरे को भी, तीसरे को भी, जो जो आता सभी को मार डालता। (लोगो ने) राजा को लबर दी कि "'महिला-मुख' उन्मत्त हो गया है। जिसे जिसे देखता है, सब को मार डालता है।" राजा ने बोधिसत्व को भेजा--"पण्डित ! जा, मालुम कर, हाथी किस कारण से दृष्ट हो गया है।" बोधिसत्व ने यह देख कि हाथी के शरीर मे कोई रोग नही है, विचार किया कि किस कारण से यह दृष्ट हो गया ? उसे सभा कि निश्चय से पास मे किसी को बात-चीत करते सुन, यह समभ कर कि 'यह मुभे ही सिखा रहे हैं' यह दृष्ट हो गया। यह सोच, उसने हथवानो ( ==हित्थगोपके) से पूछा--क्या किसी ने हाथी-शाला के समीप रात को कुछ बात-चीत की थी ? "स्वामी! हाँ ! चोरो ने म्राकर बात-चीत की थी।" बोधिसत्व ने जाकर राजा को सूचना दी, "देव ।

हाथी के शरीर में श्रौर कोई विकार नहीं हैं। चोरों की बात-चीत सुनकर दुष्ट हो गया हैं।" "तो श्रब क्या किया जाना चाहिए?" "सदाचारी (च्रीलवान्) श्रमण-ब्राह्मणों को हाथी-शाला में विठवा, सदाचार सम्बन्धी वात-चीत करवानी चाहिए।" "तो तात! ऐसा करवाश्रो।" बोधिसत्व न जाकर, सदाचारी श्रमण-ब्राह्मणों को हाथी-शाला में विठवाकर कहा— "भन्ते! सदाचार सम्बन्धी वात-चीत करे।" उन्होंने हाथी से कुछ ही दूर बैठकर सदाचार सम्बन्धी वात-चीत की— "किसी को तग नहीं करना चाहिए। किसी को मारना नहीं चाहिए। सदाचारी (होकर) तथा शान्ति-मैंत्री श्रोर करणा से युक्त होकर रहना चाहिए।" उसने इसे सुन, सोचा, कि यह मुफे ही सिखा रहे हैं। इसलिए श्रव से मुफे सदाचारी होकर रहना चाहिए। श्रौर वह सदाचारी हो गया। राजा ने बोधिसत्व से पूछा—क्यो तात! क्या वह शीलवान् हो गया। राजा ने बोधिसत्व से पूछा—क्यो तात! क्या वह शीलवान् हो गया। शैं बोधिसत्व ने 'देव! हाँ, इस प्रकार का दुष्ट हाथी पण्डितो (की सगति) के कारण, श्रपने पुराने-स्वभाव में ही प्रतिष्ठित हो गया' कह, यह गाथा कही—

पुराण चोरान वचो निसम्म,
महिलामुखो पोथयमानुचारि,
सुसञ्जतानं हि वचो निसम्म
गज्तमो सब्बगुणेसु ग्रद्ठा॥

[ महिलामुख (हाथी) पुराने चोरो की बात सुन, उनका अनुकरण करने वाला (लोगो को) मारने वाला हो गया। (ग्रौर वही) गजुत्तम सयमी मनुष्यो की बात सुन सब गुणो मे प्रतिष्ठित हो गया।

पुराण चोरान —पुराने चोरो की । निसम्म —सुनकर । मतलब हैं, कि पहले चोरो की बात सुन । मिहलामुख हिथनी के जैसा मुँह होने से मिहलामुख, अथवा जैसे मिहला आगे से देखने पर सुन्दर लगती हैं, न कि पीछे से, उसी प्रकार वह भी आगे से देखने पर ही सुन्दर लगने के कारण, उसका नाम मिहलामुख पड गया । पोथयमानुचारि, पोथ देते हुए अथवा मार देते हुए, अनुकरण किया । अथवा अन्वचारि ही पाठ । सुसञ्जतानं का अर्थ हैं

सम्यक् सयत —सदाचारी (पुरुषो) का । गजुत्तमो —उत्तम गज —माङ्गलिक हाथी । सन्ब गुणेसु श्रद्ठा सब पुराने-गुणो मे प्रतिष्ठित हो गया ।

राजा ने यह देख 'िक यह पशुग्रो तक के ग्राशय ( — मन की ग्रवस्था) को जानता है', बोधिसत्व को बहुत सा ऐश्वर्य्य ( — यश) दिया। फिर वह ग्रायु पर्य्यन्त जीवित रहकर, बोधिसत्व सिहत कर्मानुसार (परलोक) सिधारा। शास्ता ने 'भिक्षु! पहले भी जिस जिस को देखा, तू उस उसकी संगति मे पड़ गया। चोरो की बात सुनकर, तू उनका अनुयायी हो गया। धार्मिक लोगो की बात सुनकर धार्मिक लोगो का ग्रनुयायी हो गया'— यह धर्मदेशना कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का महिलामुख (ग्रव का) विपक्षी-दल मे चला जाने वाला भिक्षु था।

राजा (ग्रब का) श्रानन्द था ग्रीर ग्रमात्य तो में ही था।

## २७. श्रमिएह जातक

"नालं कबलं पदातवे " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक उपासक और एक वृद्ध स्थविर के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे दो मित्र रहते थे। उनमे से एक प्रब्रजित होकर (भी) प्रति दिन दूसरे के घर जाता। वह, उसको भिक्षा दे, स्वयं खा, उसके साथ ही विहार श्राता, श्रौर सूर्य्यास्त होने तक बात-चीत करने के बाद, नगर को वापिस लौटता। दूसरा भी उसे नगर-द्वार तक पहुँचा श्राता। उनके परस्पर-प्रेम ( — विश्वास) की बात भिक्षुश्रो को मालूम हुई। सो, एक दिन भिक्षु धर्म-सभा मे बैठे, उनके परस्पर-प्रेम की बात-चीत कर रहे थे। बुद्ध ने श्राकर

ग्रभिण्ह ] २४७

पूछा— "भिक्षुग्रो । इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" उन्होने कहा, 'भन्ते । यह बात-चीत कर रहे थे ।' शास्ता ने 'हं भिक्षुग्रो ! यह दोनो केवल ग्रभी के परस्पर-प्रेमी नही है, यह पहले भी परस्पर-प्रेमी रहे हैं कह पूर्व-जन्म की कथा कहीं—

#### ख अतीत कथा

"पूर्वसमय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व (उसके) ग्रमात्य थे। उस समय एक कुत्ता माङ्गिलिक हाथी की शाला मे जाकर, माङ्गिलिक हाथी के खाने के स्थान पर गिरे हुए चावलो को खाता। उसी भोजन पर पलता पलता वह माङ्गिलिक हाथी का विश्वास-पात्र बन गया। वह हाथी के पास ही (ग्राकर) खाता। दोनो पृथक् पृथक् न हो सकते। वह हाथी की सूँड पकड कर, (उसे) इधर उधर करके खेलता। एक दिन एक ग्रामीण-मनुष्य ग्राया ग्रौर हाथीवान् को मूल्य दे, उस कुत्ते को ग्रपने गाँव ले गया।

उस समय से वह हाथी कुत्ते को न देखने के कारण, न खाता, न पीता, न नहाता। (लोगो ने) राजा को, इस बात की खबर दी। राजा ने बोधिसत्व को भेजा—"पण्डित । जा। मालूम कर कि किस कारण से हाथी ऐसा करता है ?" बोधिसत्व ने हस्ति-शाला मे जा हाथी के दु खित-चित्त होने को जान, देखा—"कि इसको कोई शारीरिक रोग तो है नही। अवश्य ही इसकी किसी न किसी से मित्रता होगी। मालूम होता है, उस (मित्र) के न दिखाई देने से यह शोकग्रस्त हो गया है।" (यह सोच), उसने हथवानो से पूछा—"क्या इसकी किसी के साथ दोस्ती है ?"

"स्वामी हाँ <sup>।</sup> एक कुत्ते के साथ बड़ी पक्की दोस्ती है ।"

"वह कुत्ता ग्रब कहाँ है ?"

"एक ग्रादमी ले गया।"

"उस (ग्रादमी) का निवास-स्थान जानते हो ?"

"स्वामी । नही जानते।"

बोधिसत्व ने राजा के पास जाकर, "देव । हाथी को श्रीर कोई पीड़ा

( = आबाधा) नहीं है। उसकी एक कुत्ते से बडी दोस्ती है। मालूम होता है, उसीको न देखने से, नहीं खाता है" कह, यह गाथा कही—

## नालं कबलं पदातवे न च पिण्डं न कुकुसे न घंसितुं मञ्जामि श्रभिण्ह दस्सना नागो सिनेहमकासि कुक्कुरे।

[न कबल (=ग्रास) न पिण्ड, न तृण (=कुश) खा सकता है; न ही मलने देता है। मालूम होता है कि निरन्तर मिलते रहने से हाथी ग्रौर कुत्ते का प्रेम हो गया।

नालं —सामर्थ्यं नहीं । कबलं, भोजन से पहले दिया जाने वाला कडुवा कौल ( —ग्रास) पदातवे, सिंध के कारण ग्राकार लुप्त हुग्रा जानना चाहिए, नहीं तो पादातवे; ग्रर्थं, ग्रहण करने के लिए। न च पिण्डं, खाने के लिए गोले बनाकर दिया जाने वाला भात-पिण्डं भी नहीं ग्रहण कर सकता। न कुसे, दिये जाने वाले तृण भी नहीं ग्रहण कर सकता। न धंसितुं; नहाते समय शरीर को मलने भी नहीं देता। इस प्रकार जो जो हाथी नहीं कर सकता, वह सब राजा को कह उस (हाथी) के ग्रसमर्थं होने के विषय में ग्रपना ग्रनुभव कहते हुए 'मञ्जामि' ग्रादि कहा।

राजा ने उसकी बात सुन, पूछा, "पण्डित ! ग्रब क्या करना चाहिए ?" "देव । ग्राप यह मुनादी फिरवा दे कि हमारे माङ्गलिक हाथी के मित्र कुत्ते को कोई मनुष्य ले गया है। जिसके घर, वह कुत्ता दिखाई देगा, उसको यह यह दण्ड (मिलेगा)।"

राजा ने वैसा ही किया। उस समाचार को सुन, उस ग्रादमी ने, उस कुत्ते को छोड दिया। कुत्ता जोर से दौड कर, हाथी के ही पास ग्रा गया। हाथी ने उसे सूण्ड पर ले, माथे पर रख, रो कर, पीट कर, माथे पर से उतार, उसके खा लेने पर ग्रपने खाया। 'इसने पशु का भी ग्राशय ( — मन की बात) जान लिया' सोच, राजा ने बोधिसत्व को बहुत ऐश्वर्य्य दिया।

बुद्ध ने "भिक्षुग्रो । यह (दोनो) केवल ग्रब ही परस्पर-प्रेमी नहीं रहें हैं। पहले भी रहे हैं कह, धर्म-देशना ला, चार ग्रार्य-सत्यों के साथ ग्रनुकूलता दिखा, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। यह चार ग्रार्य-

सत्यों के साथ ग्रनुकूलता दिखाना सभी जातकों में हैं, लेकिन हम इसे वही वहीं दिखावेगे, जहाँ इस का कुछ फल हैं।] उस समय का कुत्ता (ग्रव का) उपासक था। हाथी (ग्रव का) वृद्ध स्थविर था। ग्रमात्य-पण्टिन तो मैं ही था।

## २८. नन्दिविसाल जातक

"मनुञ्जमेव भासेय्य "यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, छ वर्गीय भिक्षुग्रो की कठोर-वाणी के सम्बन्ध मे कही।

## क. वर्तमान कथा

उस समय छ वर्गीय भिक्षु कलह करते, शान्ति-प्रिय भिक्षुग्रो को तग करने, उनकी निन्दा करते, उन्हे खिजाते, दस श्राक्रोश-वस्तुग्रो से गाली देते । भिक्षुग्रो ने भगवान् से कहा। भगवान् ने छ वर्गीय भिक्षुग्रो को बुलवा, 'भिक्षुग्रो ने क्या यह सच हैं ?' पूछ 'सच हैं' कहने पर, उनको धिक्कारते हुए कहा—''भिक्षुग्रो ने कठोर-वाणी पशुग्रो तक को ग्रहिचकर होती है।'' पूर्व समय मे एक पशु ने, ग्रपने को कठोर-शब्द से पुकारनेवाले के हजार (मुद्रा) हरा दिये।'' (यह कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे गन्धार राज्य स्थित तक्षिला ( तक्षाशिला) मे गान्धार-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्व बैल की जून में पैदा हुए थे।

<sup>ै</sup>जाति, नाम, गोत्र, कुल, कर्म, शिल्प (चपेशा), भावाध (चर्मे) लिङ्ग क्लेश (चित्तविकार) तथा भापत्ति (चसवोषता)।

सो, बोधिसत्व के तरुण बछड़ा होने की अवस्था ही मे, एक ब्राह्मण ने गो-दक्षिणा देने वाले दाता के पास जा, उन्हें प्राप्त कर, निदिबसाल नाम रख, पुत्र की तरह बड़े लाड-प्यार से यागु-भात इत्यादि खिलाकर पाला। आयु प्राप्त होने पर बोधिसत्व ने सोचा— "मुफे इस ब्राह्मण ने बड़ी कठिनाई से पाला है। सकल जम्बूद्धीप में, मेरे साथ एक धुर में जुतने वाला दूसरा बैल नहीं है। क्यों न में अपना बल दिखाकर, इस ब्राह्मण को पालने पोसने का खर्ची दूँ?"

एक दिन उसने ब्राह्मण को कहा—ब्राह्मण । जा, गो-धन (वाले) सेठ के पास जाकर, "मेरा बैल एक साथ बँधी हुई सौ गाडियो को (एक साथ) खैंच लेता है" कह एक हजार की शर्त लगा।

उस ब्राह्मण ने सेठ के पास जा, बात-चीत चलाई— ''इस गाँव में किसके बैल (सबसे) तगड़े हैं ?'' उस सेठ ने, 'ग्रमुक के (बैल तगड़े) है, ग्रमुक के (बैल तगड़े) हैं कह, (ग्रन्त में) कहा कि सकल नगर में हमारे बैलों के सदृश कोई बैल नहीं।'' ब्राह्मण ने कहा— 'मेरा एक बैल, एक साथ बँधें सौ छकड़ों को खीच सकता हैं।'

सेठ ने कहा, 'ऐसा बैल कहाँ है ?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, ''मेरे घर है ।''

"तो शर्त लगाम्रो।" 'म्राच्छा ! शर्त लगाता हूँ" कह, उसने एक हजार की शर्त लगाई।

एक सौ छकडो को बालू, कड्कर तथा पत्थरो से भर, (उन्हे) कम से खडा कर, तमाम ग्रक्षो ( च्धूरो) को बॉधने के जूये से एक साथ बाँध, निन्दिवसाल को नहला, सुगन्धि से पाञ्च ग्रड्गुलियो का चिन्ह कर, गले मे माला डाल, ग्रगले छकडे के धुर मे उसे ग्रकेला ही जोड, ग्रपने ग्राप धुर पर बैठ कहा, "ग्रच्छा! तो कूट, ढो कोट।"

बोधिसत्व यह सोच कि 'यह मुफ्त ग्रकूट को कूट कह कर पुकारता है' चारो पैरो को स्तम्भ की तरह निश्चल करके खडे रहे।

सेठ ने उसी समय ब्राह्मण से (एक) हजार (मुद्रा) धरवा ( —मँगवा) लिये।

ब्राह्मण (एक) हजार हार कर, बैल को छोड, घर जाकर शोकाभिभूत

हो पड रहा । निन्दिविसाल ने (घास) चरकर, ग्राकर, ब्राह्मण को शोक-निमग्न देख पूछा— "ब्राह्मण ! क्या सोच रहे हो ?"

"(एक) हजार हारने वाले को मुभे निद्रा कहाँ ?"

"ब्राह्मण ! मैंने इतने चिर तक, तेरे घर मे रहते समय क्या कभी कोई भाजन तोडा ? क्या कभी किसीको कुचला ? क्या कभी किसी ध्रनुचित स्थान पर गोबर-पेशाब किया ?"

"तात <sup>!</sup> नही ।"

"तो फिर तू मुभे 'कूट' कह कर क्यो पुकारता है ? यह तेरा ही दोष हैं, मेरा दोष नहीं। जा (इस बार) उससे दो हज़ार की शर्त लगा। केवल मुभ अकुट (—अदुष्ट) को कूट कह कर न पुकारना।"

ब्राह्मण ने उसकी बात सुन, जाकर दो हजार की बाजी लगा, पूर्वोक्त प्रकार से ही सौ छकड़ो को एक साथ बॉध, निव्विसाल को सजाकर, अ्रगले छकड़े के धुर मे जोता। कैसे जोता? युग को धुर मे पक्की तरह बॉध कर, धुर के एक सिरे पर निव्विसाल को जोत, धुर के दूसरे सिरे को धुर की रस्सी से लपेट, युग के सिरे ग्रौर ग्रक्षों के बीच मे मुण्ड-वृक्ष का एक दण्ड देकर, उसे रस्सी से पक्की तरह वॉध दिया। ऐसा करने से जुग्रा, इधर उधर नहीं होता था। (उसे) एक ही बैल खेच सकता था। तब उस ब्राह्मण ने धुर पर बैठ, निव्विसाल की पीठ पर हाथ फेर कहा— "ग्रच्छा, तो भद्र! (ले) ढो भद्र!" बोधसत्व ने एक साथ बँघे हुए सौ छकड़ों को एक ही फटके में खेंच, (सबसे) पीछे खड़ी गाड़ी को, (सबसे) ग्रागे खड़ी गाड़ी की जगह पर ला कर खड़ा कर दिया। गो-धन (वाले) सेठ ने पराजित हो, ब्राह्मण को दो हजार दिये। ग्रौर दूसरे मनुष्यों ने भी बोधिसत्व को बहुत धन दिया। (वह) सब धन ब्राह्मण का ही हुग्रा। इस प्रकार बोधिसत्व के कारण, (उसे) बहुत धन मिला।

बुद्ध ने "भिक्षुम्रो । कठोर-वचन किसीको म्रच्छा नही लगता" कह, छः वर्गीय भिक्षुग्रो को धिक्कारते हुए, शिक्षा-पद ( = नियम) बना, म्रभिसम्बुद्ध हुए रहने के समय ही यह गाथा कही—

मनुञ्जमेव भासेय्य नामनुञ्जं कुराचन मनुञ्जं भासमानस्स गरुम्भारं उदद्धरी, घनञ्च नं ग्रलभेसि तेन चत्तमनो ग्रहु ॥ [जब बोले मनोज्ञ (-वाणी) ही बोले, ग्रमनोज्ञ कभी न बोले । मनोज्ञ-वाणी बोलने से, (बैल ने) भारी-भार ढो दिया। उस (ब्राह्मण) को धन मिला, जिससे वह ग्रत्यन्त सन्तुष्ट हुग्रा।]

मनुञ्जमेव भासेय्य का ग्रर्थ है कि किसी दूसरे के साथ बोलते हुए, चार प्रकार के दोषों से रहित, मधुर, सुन्दर, चिकनी, मृदु, प्रिय वाणी ही बोले। गरम्भारं उदद्धरी, निन्दिविसाल बैल ने ग्रप्रिय-वचन बोलने वाले (ब्राह्मण) के भार को न खैच, पीछे प्रिय-वचन बोलने पर (उसी) ब्राह्मण के भारी-भार को खैच दिया, खैच कर, निकाल कर, रास्ते पर चला दिया। 'द' केवल व्यञ्जन सन्धि के कारण है।

इस प्रकार शास्ता ने 'मनुञ्जमेव भासेय्य " इस धर्म-देशना को लाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का ब्राह्मण (श्रव का) श्रानन्द था। श्रीर, निदिवसाल तो में ही था।

#### २६. कएह जातक

"यतो यतो गरुधुरं..." यह गाथा, शास्ता ने, जेतवन मे विहार करते समय, यमक प्रातिहार्य के बारे मे कही । वह तेरहवे परिच्छेद मे 'देवारोहण' के साथ, सरभमृग जातक मे स्रायेगी ।

<sup>ै</sup> दुर्भाषित न हो, ग्रप्रिय न हो, ग्रधर्म न हो तथा ग्रसत्य न हो (सुभा-षित सूत्र, सुत्तनिपात)

<sup>े</sup>एक ओर से पानी दूसरी ओर से आग निकलना, इस प्रकार की जोड़ी-दार अलौकिक किया। ै४८३ जातक।

## क. वर्तमान कथा

सम्यक् सम्बुद्ध के यमक प्रातिहार्यं कर, देव-लोक मे रह, महापवारणा के बाद संकिस्स-नगर- द्वार पर उतर, बहुत से अनुयायियों के साथ जेतवन में प्रविष्ट होने पर, धर्म-सभा में बैठे भिक्षु तथागत की गुण-कथा कहने लगे— "श्रावुसो । तथागत असम-धुर हैं। तथागत जिस धुर को ढोते हैं, उसे ढोने वाला कोई और नहीं। (शेष) छ शास्ता 'हम ही प्रातिहार्यं करेगें', 'हम ही प्रातिहार्यं करेगें' कहकर, एक भी प्रातिहार्यं न कर सके। ग्रहों। (हमारे) शास्ता ग्रसम-धुर हैं।"

शास्ता ने श्राकर पूछा—"भिक्षुश्रो । इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" "भन्ते । श्रीर कोई (बात-चीत) नहीं, इस तरह से श्राप ही की गुण-कथा कह रहे हैं।" शास्ता ने "भिक्षुश्रो । श्रब मेरे खेंचे (=ढोये) धुर को कौन खैंचेगा ? पूर्वजन्म मे पशु-योनि मे उत्पन्न हुए रहने पर भी, मुभे श्रपने 'सम-धुर' कोई नहीं मिला' कह, पूर्व-जन्म की कथा कहीं—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व बेल की योनि में पैदा हुए। सो उसके स्वामियों ने, उसके तरुण बछडा ही रहते, उसे एक बूढी के घर में रहने के किराये के स्वरूप में, उस बुढिया को दे दिया। उसने यवागु-भात श्रादि खिलाकर उसका पुत्र की तरह पालन किया। उस (बछडे) का नाम श्रार्थका-कालक पडा। श्रायु-प्राप्त होने पर, वह सुरमे के रग का (काला) हो, ग्राम के (ग्रन्य) बैलों के साथ चरने लगा। वह सुशील स्वभाव का था। ग्राम-बालक सीग, कान तथा गले को पकड कर लटक जाते। पूँछ तक को पकड कर खेल करते। पीठ पर बैठ जाते।

उसने एक दिन सोचा--"मेरी माता दिरद्र है। उसने मुभे बडी कठि-

१ देखो पटिसम्भिदामग्ग ।

 $<sup>^{</sup> extsf{3}}$ संकिसा वसंतपुर, स्टेशन मोटा (  $extsf{E.}$   $extsf{I.}$   $extsf{Ry}$  ) जिला फ़र्र**खाबाद ।** 

नाई से पुत्र की तरह पाला है। मैं क्यों न मजदूरी करके इसकी गरीबी दूर कहूँ?" सो, उसके बाद से, वह मजदूरी ढूँढता हुम्रा विचरने लगा। एक दिन एक सार्त्थ-वाह-पुत्र के पाँच सौ छकड़े एक विषम-तीर्थ (=-पट्टन) पर म्रान (फँसे)। उसके बैल गाड़ियों को न निकाल सके। पाँच सौ गाड़ियों के बैल एक युग में जोतने पर वे, एक भी गाडी न निकाल सके।

बोधिसत्व भी ग्राम के गोरुग्रो के साथ तीर्थ ( = पट्टन) के पास ही चरते थे। सार्त्थ-वाह-पुत्र, गो-शास्त्रज्ञ था। उसने 'इन बैलो में' इन गाडियो को निकाल सकने वाला कोई वृषभ-ग्राजानीय है वा नहीं ?' सोचते हुए, बोधि-सत्व को देख, 'यह ग्राजानीय (वृषभ) है, यह मेरे शकटो को निकाल सकेगा' सोच, ग्वालो से पूछा—''इसका स्वामी कौन है ? मैं इसे शकटो में जोत कर, शकटो के निकल ग्राने पर स्वामी को मजदूरी ( = वेतन) दूँगा।" उन्होंने उत्तर दिया—''इस स्थान पर, इसका स्वामी नहीं है। पकड कर जोत ले।" वह, बोधिसत्व को, नाक में रस्सी से बाँघ, खैच कर न चला सका। बोधि-सत्व, 'मजदूरी कहने पर जाऊँगा' सोच न गये। सार्त्थ-वाह-पुत्र ने उसका ग्राभिप्राय जान कर कहा—'स्वामी। तुम्हारे पाँच सौ गाडियो को खैच कर निकाल देने पर, एक एक गाडी की मजदूरी दो कार्षापण करके, एक हजार (कार्षापण) दूँगा।' तब बोधिसत्व ग्रपने ग्राप चले गये। लोगो ने उसे गाडियो में जोता। उसने एक ही एक भटके में गाडियो को निकाल कर स्थल पर रख दिया। इस प्रकार सब गाड़ियाँ निकाल दी।

सार्त्थ-वाह-पुत्र ने एक गाड़ी के लिए एक के हिसाब से पाँच सौ (कार्षा-पणो) की पोटली बनाकर, उसके गले में बाँध दी। बोधिसत्व 'यह मुफे निश्चित मज़दूरी नहीं देता है, सो मैं ग्रब इसे जाने नहीं दूँगा" सोच, जाकर, सबसे ग्रगली गाड़ी के सामने मार्ग रोक कर खड़ा हो गया। उसको हटाने के बहुत प्रयत्न करने पर भी न हटा सके।

सार्त्थ-वाह-पुत्र ने सोचा, 'मालूम होता है यह प्रपनी मजदूरी की कमी को पहचानता है'; सो एक कपड़े में एक हजार की गाँठ बाँध, 'यह तेरी गाडियाँ निकालने की मजदूरी है' कह, उसे, उसकी गर्दन में लटका दिया।

वह हजार की गाँठ लेकर माता के पास गया । ग्राम के लड़के, 'श्रार्यं-का-कालक' के गले मे यह क्या बँधा है (जानने के लिए) समीप ग्राने लगे। वह उनका पीछा कर, उन्हें दूर से ही भगा, माता के पास गया। पाँच सौ गाडियों को उतारने के कारण लाल हुई ग्राँखों से थकावट प्रगट हुई। उपासिका उसके गले में एक हजार की थैली देख "तात। यह तुभे कहाँ से मिली?" पूछ (फिर) ग्राम-दारकों से वह (सब) समाचार जान बोली, "तात। में क्या तेरी मजदूरी से जीने की भूखी हूँ तूने किस लिए ऐसा कष्ट उठाया है?" (यह कह) उसने बोधिसत्व को गर्म-जल से नहला, सारे शरीर पर तेल लगा, पानी पिला, अनुकूल भोजन खिलाया। बाद में श्रायु सम्पूर्ण होने पर वह बोधि-सत्व सहित कर्मानुसार (परलोक को) गई।

शास्ता ने, "भिक्षुग्रो! तथागत (केवल) ग्रब ही ग्रसम-धुर नहीं है. पहले भी ग्रसम-धुर ही रहे हैं"—यह धर्म-देशना कह, मेल मिला, ग्रभिसम्बुद्ध होने की ही ग्रवस्था में यह गाथा कही—

#### यतो यतो गरुधुरं यतो गम्भीर वत्तनी, तदस्सु कण्हं युञ्जन्ति स्वास्सु तं वहते धुरं ॥

[जहाँ जहाँ पर धुर भारी होती है, जहाँ जहाँ पर मार्ग कठिन होता है, वहाँ वहाँ कृष्ण (=काले बैल) को जोतते हैं। ग्रीर वह उस धुर को ढो देता है।]

यतो यतो गरुधुरं — जिस जिस स्थान पर धुर भारी होता है, ग्रन्य बैल नही उठा सकते। यतो गम्भीर वत्तनी, जो वर्ते वह वर्त्तनी, मार्ग का पर्य्याय-वाची। जिस स्थान पर पानी-कीचड की ग्रधिकता से, वा तट के विषम तरह से टूटा-फूटा रहने से, मार्ग कठिन होता है। तदस्सु कण्हं युञ्जन्ति; ग्रस्सु, केवल निपात है। ग्रर्थ है कि उस समय कृष्ण (बैल) को जोतते है। साराश यह है कि जिस समय धुर भारी होता है, मार्ग गम्भीर होता है, उस समय ग्रन्य बैलो को हटा कर, कृष्ण(-बैल) को ही जोतते हैं। स्वास्सु तं वहते धुरं; यहाँ भी ग्रस्सु तो केवल निपात है। ग्रर्थ है कि वह उस धुर को ढोता ( — खीचता) है।

इस प्रकार भगवान ने 'भिक्षुग्रो । कृष्ण (-बैल) ही उस धुर को खेंचता

(=वहन करता) है' दिखाकर, मेल मिलाकर, जातक का साराश निकाल दिखाया । उस समय की वृद्धा (ग्रब की) उत्पलवर्णा थी । ग्रार्थ्यका-कालक तो में ही था ।

## ३०. मुनिक जातक

"मा मुनिकस्स . " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक प्रौढ कुमारी के प्रति स्रासक्ति ( — लोभ) के बारे मे कही। वह (कथा) तेरहवे परिच्छेद ( — निपात) की चुल्लनारदकस्सप जातक में स्रायेगी।

## क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा, "भिक्षु  $^{\parallel}$  क्या तू सचमुच उत्तेजित है  $^{?}$ " "भन्ते  $^{\parallel}$  हाँ  $_{\parallel}$ "

"किस लिए <sup>?</sup>"

"भन्ते । प्रौढ-कुमारी के लोभ के कारण।"

बुद्ध ने, "भिक्षु । यह (कुमारी) तेरा ग्रनर्थ-करने वाली है । पूर्व-जन्म मे भी तू, इसके विवाह के दिन प्राणो से हाथ घोकर, महा जन (-समूह) का सालन बना" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधि- , सत्व एक गाँवडे ( = गामक) में एक कुटुम्बि के घर गो-योनि में पैदा हुए।

<sup>&</sup>lt;sup>°</sup> चुल्लनारद जातक (४७७)

उनका नाम महालोहित था, श्रौर उनका एक छोटा भाई भी चुल्ललोहित नामक हुन्रा। इन दोनो भाइयो के कारण ही, उस परिवार का काम-काज उन्नति पर था। उसी कूल में एक कुमारी भी थी। उसे एक नगरवासी कुलपुत्र ने अपने पुत्र के लिए वरा। उस (कुमारी) के माता पिता, 'कुमारी के विवाह के अवसर पर ग्राने वाले ग्रागन्तुको के लिए सालन की सामग्री रहेगा' सोच, एक सुग्रर को यवागु-भात खिला खिला कर पालते थे। उसे देख चुल्ललोहित ने अपने भाई से पुछा-- "इस परिवार के काम-काज को उन्नत बनाने वाले हम है। हम दोनो भाइयो के कारण ही यह उन्नति पर है। लेकिन यह घर वाले हमे तो केवल तुण-पराल ग्रादि ही देते हैं, ग्रौर सुग्रर को यवागु-भात खिला कर पालते है। किस कारण से इसको यह सब मिलता है?" उसके भाई ने उत्तर दिया "तात । चुल्ललोहित ! तू इसके भोजन की ईर्षा मत कर । यह सूत्र्यर ग्रपना मरण-भोजन खा रहा है। 'इस कुमारी के विवाह के ग्रवसर पर ग्राने वाले ग्रागन्तुको के लिए सालन की सामग्री होगा' सोच, यह (घर वाले) इस सुग्रर को पोष रहे है। ग्रब से कुछ ही दिन के बाद वे लोग ग्रा जायेगे। तब, तू देखेगा कि (यह) इस सूत्रर को पैरो से पकड़, घसीटते हुए, सूत्रर के निवास-स्थान से निकाल, प्राण-नाश कर, भ्रागन्तुको के लिए सप-व्यञ्जन बनायेगे।" यह कहकर, उसने यह गाथा कही--

#### मा मुनिकस्स पिहयि श्रातुरस्नानि भुञ्जति, श्रप्पोस्युक्को भुसं खाद एतं दीघायुलक्खणं॥

[मुनिक (सूग्रर के भोजन) की ईर्षा (  $\Longrightarrow$  च्छा) मत कर। वह मरणान्त भोजन खाता है।  $(\pi)$  उत्सुकता-रहित होकर भूसे को खा। यह दीर्घायु का लक्षण है।

मा मुनिकस्स पिहयि — मुनिक (स्थ्रर) के भोजन की इच्छा मत उत्पन्न कर, "यह अच्छा भोजन खाता है" (करके) मा मुनिकस्स पिहयि — में भी कब ऐसा सुखी होऊँगा, इस प्रकार सोच, मुनिक-भाव की प्रार्थना मत कर। अयं हि आतुरन्नानि भुञ्जित; आतुरन्नानि का अर्थ है मरण भोजन। अप्पोस्सुक्को भुसं खाद, उसके भोजन के प्रति उत्सुकता (— आशा)-रहित

होकर, ग्रपने को जो भूसा मिला है, उसे खा, एतं दीघायुलक्खणं—यह दीर्घायु होने का कारण है।

उसके थोडी देर बाद ही, वे मनुष्य ग्रा गये। (उन्होने) मुनिक को मार कर, (उसे) नाना प्रकार से पकाया। बोधिसत्व ने चुल्ललोहित से पूछा—
"तात! तूने मुनिक को देखा?" भाई! मैंने देख लिया मुनिक को मिलने वाले भोजन का फल। इसके भात (=भोजन) से हमारा तृण-पराल-भूसा लाख दर्जा ग्रच्छा है, दोष-रहित है, दीर्घायु का लक्षण है।

बुद्ध ने, "हे भिक्षु ! तू इस प्रकार, पूर्वजन्म मे भी, इस कुमारी के कारण प्राणो से हाथ घो, लोगो का सालन बना"—यह धर्म-देशना कह, ग्रार्य (-सत्यो) को प्रकाशित किया । (ग्रार्य-)सत्यो के (प्रकाशन के) ग्रन्त मे उत्कण्ठित भिक्षु श्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुग्रा । शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया । उस समय का मुनिक सूग्रर (ग्रब का) उत्कण्ठित भिक्षु था । तरुण-कुमारी, यह (प्रौढ-कुमारी) ही, चुल्ल-लोहित (ग्रब के) ग्रानन्द; (ग्रौर) महा-लोहित तो में ही था ।

## पहला परिच्छेद

# **४. कुलावक वर्ग**

### ३१. कुलावक जातक

"कुलावका.. " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, बिना कपड-छान किये पानी पीने वाले भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती से दो मित्र तरुण-भिक्षुग्रो ने (कोशल) जन-पद मे, सुख-पूर्वक रह सकने योग्य किसी स्थान मे, यथेच्छा वास किया। फिर सम्यक् सम्बुद्ध को देखने की इच्छा से, वहाँ से निकल, जेतवन की ग्रोर प्रस्थान किया। एक के पास छन्ना ( —पानी छानने का कपडा) था, दूसरे के पास नहीं, (इसलिए) दोनो एक ही छन्ने से छान कर पानी पीते थे। एक दिन उन दोनो मे वियाद हो गया। छन्ने के स्वामी ने दूसरे (भिक्षु) को छन्ना न दे, ग्रकेले ग्रपने पानी छान कर पिया। दूसरे ने छन्ना न मिलने से, ग्रौर प्यास भी न सह सकने से, बिना छाने ही पानी पिया। दोनो कम से जेतवन पहुँच कर, बुद्ध को प्रणाम कर बैठे।

बुद्ध ने कुशल-समाचार सम्बन्धी बात-चीत करते हुए पूछा, "कहाँ से ग्राये हो ?"

"भन्ते । हम कोशल जन-पद के एक गाँव मे रह, वहाँ से निकल, श्रापके दर्शन करने के लिए श्राये हैं।"

"क्या मेल मिलाप पूर्वक स्राये हो ?"

जिस भिक्षु के पास छन्ना नही था, उसने कहा, "भन्ते । इसने रास्ते में मेरे साथ विवाद किया, (श्रौर फिर ग्रपना) छन्ना नही दिया।"

दूसरे ने कहा, "भन्ते । इसने जान-बूभ कर, बिना छाने, जीवो सहित जल पिया।"

"भिक्षु । क्या तूने सचमुच जान-बूभ कर जीवो सहित जल पिया ?"
"भन्ते । हाँ, मुभसे बिना छना पानी पिया गया ।"

शास्ता ने, "भिक्षु । पूर्व समय मे देव-नगर मे राज्य करते हुए पण्डितो ने युद्ध मे पराजित हो, समुद्र की सतह पर भागते हुए, 'हम ऐश्वर्य के लिए प्राण-वध न करेंगे' सोच, महान् ऐश्वर्य का त्याग कर, गरुड-बच्चो को प्राण-दान दे, रथ को रोक दिया", कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

'पूर्व-समय मे मगध-राज्य के राजगृह नगर मे, एक मगध-नरेश राज्य करते थे। जैसे वर्तमान समय के शक (=इन्द्र) देव, (ग्रपने) पूर्व-जन्म मे, मगध-राष्ट्र के मचल ग्राम मे पैदा हुए थे, उसी प्रकार बोधिसत्त्व उस समय, उसी मचल ग्राम के एक महान् कुल मे उत्पन्न हुए थे। नामकरण के दिन, उसका नाम मध-कुमार रक्खा गया । श्रायु-बढने पर, वह मध-माणवक के नाम से प्रसिद्ध हुमा। उसके माता पिता ने, भ्रपने समान जाति के कूल से, (उसके लिए) एक लडकी ला दी । पुत्र-पुत्रियो सहित उसकी बढती होते होते, वह दानपित हो गया। वह पाँच-शीलो की आरक्षा करता। उस गाँव मे (कुल) तीस ही कुल थे। वे तीसो कुलो के मनुष्य एक दिन गाँव के बीच मे खडे होकर ग्राम-कृत्य कर रहे थे। बोधिसत्त्व जहाँ खडे थे, वहाँ के रेत को पाँव से हटा, उस स्थान को रमणीक बनाकर, वहाँ पर खड़े हुए । एक दूसरा श्रादमी स्राकर, उस स्थान पर खडा हो गया। बोधिसत्त्व दूसरी जगह को रमणीय बनाकर, वहाँ खडे हो गये। वहाँ भी एक श्रौर श्रादमी श्राकर खडा हो गया। बोधिसत्त्व ने श्रीर दूसरा, श्रीर दूसरा करते, सभी के खडे होने के स्थान को रमणीय बनाकर, फिर वहाँ एक मण्डप बनवा दिया। (फिर) मण्डप को हटाकर, एक शाला बनवाई। उसमे पटड़ो के स्रासन बिछवा कर, (पानी) पीने की चाटी रखवाई। कुछ समय बीतने पर, वह तीस के तीस जने, बोधिसत्त्व के समान विचार के हो गये। बोधिसत्त्व उन्हे पाँच शीलों में प्रतिष्ठित कर, उसके बाद से उनको साथ ले पुण्य करते विचरते रहे।

कुलावक ] २६१

वे भी बोधिसत्त्व के साथ पुण्य करते हुए प्रात काल ही उठ कर वसुला, ( = वासी) परुष, ( = कुल्हाडा) तथा मूसल हाथ में ले, चौरस्तो ( = चतुमहापथो) पर जा, वहाँ मूसल से पत्थरों को उलट रास्ते से हटा देते ( = पवट्टेन्ति)। गाड़ियों के ग्रक्षों में बाधक वृक्षों को हटाते। ऊँच-नीच को बराबर करते। पुल बनाते। पुष्करिणियाँ खोदते। शालाये बनाते। दान देते। शील की ग्रारक्षा करते। इस प्रकार प्राय सभी ग्रामवासी, बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार सदाचारी बन गये।

तब उनके ग्राम-भोजक ने सोचा कि पहले जब यह लोग शराब पीते थे, जीव-हिसा करते थे, तो मुभे इनसे चाडी, कार्षापण के रूप मे तथा दण्ड-बलि ( — जुर्माने) ग्रादि के रूप मे धन मिलता था। लेकिन ग्रब यह मघ, माणवक 'शील ग्रारक्षा कराता हूँ', (करके) लोगो को जीव-हिसा नहीं करने देता। "ग्रच्छा । ग्रब तुभे पाँच-शील रखाऊँगा।" (कह) कुद्ध हो, उसने राजा से जाकर कहा—

"देव ! बहुत से चोर ग्राम-घात ग्रादि करते घूम रहे हैं।" राजा ने उसकी बात सुन ग्राज्ञा दी—"जा, उन्हें (पकड) ला।" उसने जाकर, सब को बाँघ ला कर राजा से कहा—"देव ! चोरों को लें ग्राया।" राजा ने उनके कमें की परीक्षा किये बिना ही ग्राज्ञा दी कि उन्हें हाथी से रौदवा दो। सब को राजाङ्गण में लिटा कर हाथी को लाया गया।

बोधिसत्त्व ने लोगो को उपदेश दिया—"तुम ग्रपने शील का विचार करो। चुगल-खोर के प्रति, राजा के प्रति, हाथी के प्रति ग्रौर ग्रपने शरीर के प्रति एक जैसी मैत्री भावना करो।" उन्होंने वैसा ही किया। उन्हें रौदने के लिए हाथी को ग्रागे बढाया गया। ग्रागे बढाया जाने पर भी, वह उनके ऊपर से नहीं जाता था। चिघाड मार कर भागता था। दूसरे, तीसरे हाथी को लाया गया। वे भी, वैसे ही भागे।

राजा ने सोचा, 'इनके हाथ मे कोई श्रौपध होगी', इसलिए श्राज्ञा दी कि इनकी तलाशी लो। तलाशी लेने वालो ने (कुछ) न देखकर कहा ''देव । नहीं है।" राजा ने सोचा, 'कोई, मन्त्र जपते होगे'। (सो श्राज्ञा दी) पूछो कि क्या कोई जपने का मन्त्र है ? राज-पुरुषो ने पूछा। बोधिसत्त्व ने कहा,

"(मन्त्र) है।" राजपुरुषो ने सूचना दी, "देव । (यह कहता है) कि (मन्त्र) है।" राजा ने सब को बुला कर कहा—"तुम्हे जो मन्त्र मालूम है, सो कहो।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"देव ! हमारे पास दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। हम तीस जने जीव-हिसा नहीं करते, चोरी नहीं करते, मिथ्या ग्राचार ( =व्यिभ-चार) नहीं करते, भूठ नहीं बोलते, शराब नहीं पीते, मैत्री-भावना करते हैं, दान देते हैं, (ऊँचे-नीचे) रास्तों को बरावर करते हैं, पुष्करिणियाँ खोदते हैं, शालाये बनाते हैं, —यहीं हमारा मन्त्र हैं, यहीं हमारी ग्रारक्षा (=पित्त) हैं, ग्रौर यहीं हमारी वृद्धि हैं।"

राजा ने उन पर प्रसन्न हो, चुगल-खोरके घर की सब दौलत उनको दिलवा चुगल-खोर को उनका दास बना दिया। वह हाथी ग्रौर ग्राम भी उन्ही को दे दिया । उस समय से उन्होने यथेच्छ पुण्य करते हुए, चौरास्ते पर एक बडी भारी शाला बनवाने की इच्छा से, बढई को बुलाकर, (उससे) शाला की नीव रखवाई । स्त्रियो ( —मातुगाम) के प्रति श्रासिक्त न होने के कारण, उन्होने उस शाला (के निर्माण) में स्त्रियों को हिस्सेदार नहीं बनाया। उस समय बोधिसत्त्व के घर में सुधम्मा, चित्ता, नन्दा श्रौर सुजाता नाम की चार स्त्रियाँ थी। उनमे से सुधर्मा ने बढई के साथ मिल, 'भाई ! इस शाला (के निर्माण) में, मुभे मीरी ( = ज्येष्ठकी) कर' (कह) उसे रिशवत दी। उसने 'भ्रच्छा' कह, स्वीकार कर, पहले से ही कर्णिक ( ==शहतीर के योग्य)-वृक्ष को सुखवाकर, छीलकर, बीधकर, शहतीर बना तैयार करके, वस्त्र से लिपटवा कर, रखवाया। फिर शाला को समाप्त कर, कर्णिका रखने के समय कहा--'म्रोह $^{\, |}$  स्रार्यो $^{\, |}$  एक बात याद न रही  $_{\, |}$ " "भो $^{\, |}$  क्या  $_{\, |}$ " "कर्णिका  $_{\, |}$  =(=राहतीर) चाहिए $^{\prime\prime}$  ''ग्रच्छा  $^{!}$  ले ग्रायेगे  $_{!}$ " ''ग्रब के (ताजे) कटे वृक्ष से न बन सकेगी। पहले से ही काट कर, छील कर, बीध कर, रक्खी हुई कींणका मिलनी चाहिए।" "तो ग्रब क्या किया जाये?" "यदि किसीके घर मे बेचने के लिए रक्खी हुई कर्णिका हो, तो उसे खोजना चाहिए।'' ढूँढते हुए, उन्हें सुघर्मा के घर में (कर्णिका) मिली, (लेकिन वह उसे) मूल्य देकर न ले सके। "यदि मुफ्ते शाला (के निर्माण) मे हिस्सेदार बनाम्रो, तो दूँगी" कहने पर, उन्होंने कहा कि हम स्त्रियो को हिस्सा ( =पित्त ) नही देते । तब बर्ट्ड ने उन्हे कहा—'ग्रार्यों । क्या कहते हो ? ब्रह्मलोक को छोड ग्रीर कोई ऐसी

जगह नहीं, जहाँ स्त्रियाँ न हो । (इससे) किंणिका को ले लो । ऐसा होने पर, हमारा काम सम्पूर्ण हो जायगा।" उन्होने 'ग्रच्छा' (कह), किंणिका ले, शाला को समाप्त कर, ग्रासन तथा पटडे बिछवा, पानी की चाटियाँ रखवा, यागुभात (का सदा-व्रत) बाँघ दिया। शाला को चार-दीवारी से घेर, (उसमे) दरवाजा लगा, चार-दीवारी के ग्रन्दर बालू-रेत बखेर, उसके बाहर ताड के वृक्षों की पिक्त लगाई। चित्रा ने भी वहाँ उद्यान लगाया। कोई ऐसा फलफ्लदार वृक्ष नहीं होगा, जो उस उद्यान में न हो। नन्दा ने भी उसी स्थान पर पाँच वर्णों के कमलों से ग्राच्छादित, रमणीय पुष्करिणी बनवाई। सुजाता ने कुछ न किया। बोधिसत्त्व मातृ-सेवा, पितृ-सेवा, ग्रपने से बडो का ग्रादर, सत्य-भाषण, मृदु-भाषण, चुगल-खोरी-रिहत भाषण, मात्सर्यं (=ईषां) का न होना, इन सात व्रतों को पूरा कर—

"माता पेत्तिभरं जन्तुं कुले जेट्ठापचायिनं, सण्हं सिखल सम्भासं पेसुण्णेय्यपहायिनं मच्छेर विनये युत्तं सच्चं कोघाभिभुं नरं तं वे देवा तार्वातसा श्राह सप्पुरिसो"

[माता पिता की सेवा करने वाले, बडो का ब्रादर करने वाले, प्रिय-मृदु बोलने वाले, चुगल-खोरी-रहित बात कहने वाले, मात्सर्य्य के नाश में लगे हुए, सत्य-वादी ब्रक्नोधी नर को ही, त्रयस्त्रिश (=तावितस) -लोक के देवता सत्पुरुष कहते हैं]

इस प्रकार प्रशसा के भागी हो, जीवन समाप्त होने पर, त्रयस्त्रिश्च-भवन में देवेन्द्र शक होकर, उत्पन्न हुए। उसके साथी भी वही उत्पन्न हुए। उस समय त्रयस्त्रिश लोक में ग्रसुर रहते थे। देवेन्द्र शक ने सोचा, 'इनके बराबरी के राज्य से हमें क्या (लाभ)?।" सो, उसने ग्रसुरो को दिव्य पान पिलवा कर, उनके बेहोश होने पर, उन्हें पैरो से पकड़वा सुमेरु पर्वत के प्रपात पर से फिकवा दिया। वे ग्रसुर-भवन को प्राप्त हुए। ग्रसुर-भवन, सुमेरु(=पर्वत) के निचले तल पर (है) ग्रीर त्रयस्त्रिश देव-लोक जितना ही

<sup>&#</sup>x27; संयुत्तनिकाय, सक्क संयुत ।

बडा है। देवताओं के पारिजात वृक्ष की भाँति, वहाँ असुरो का चित्रपाटली नामक कल्पस्थायी वृक्ष है। उन (असुरो) को चित्रपाटली वृक्ष के पृष्पित होने पर पता लगा कि यह हमारा देव-लोक नहीं हैं, क्योंकि देव-लोक में तो पारि-जात वृक्ष फूलता है। सो, उन्होंने यह जान कि "बूढे शक ने, हमें बेहोश करके, महासमुद्र की सतह पर फेक हमारा देव-नगर लें लिया हैं" निश्चय किया कि हम उसके साथ युद्ध करके अपना देव-नगर लेंगे। खम्भे पर च्यूँटियों के चढने की तरह, वे सुमेरु पर्वंत के साथ साथ चढते हुए (ऊपर) उठे। शक ने 'असुर उठे' सुन, समुद्र-पृष्ठ पर ही आकर उनसे युद्ध करते हुए, उनसे हार कर, डेढ सौ योजन (लम्बे-चौड़े) वैजयन्त रथ में दक्षिण समुद्र के ऊपर ऊपर भागना आरम्भ किया। समुद्र-तल पर वेग से चलता हुआ उसका रथ, सिम्बलि वन के पास से गुजरा। उसके रास्ते में आया सिम्बलि वन, ताड-के पत्तो की तरह टूट टूट कर, समुद्र-तल पर गिरने लगा। समुद्र-तल पर उलटते पलटते गरुड-बच्चे महा चीत्कार करने लगे। शक ने (अपने सारथी) मातिल से पूछा—"मातिल ! यह अत्यन्त करुणाजनक क्या शब्द हैं?"

"देव ! ग्रापके रथ के वेग से चूर्णित होकर गिरते हुए सिम्बलि वन के कारण, मरने के भय से भयभीत गरुड-पोतक एक साथ चीतकार कर रहे हैं।"

महासत्त्व ने कहा—"सम्म मातिल । हमारे कारण इन्हें कष्ट न हो । ऐरवर्य्य के लिए, हम जीविहसा नहीं करते । इनके लिए, हम ग्रपने प्राणो का परित्याग कर, (उन्हें) ग्रसुरो को दे देगे । इस रथ को लौटाग्रो ।" कह, यह गाथा कही—

कुलावका मातिल ! सिम्बलिस्मि, ईसा मुखेन परिद्यन्जयस्मु; कामं चजाम ग्रसुरेसु पाणं, मायिमे दिजा विकुलावा ग्रहेसुं'।।

[ मातिल ! सिम्बिल वन में जो गरुड-बच्चे हैं, (उन्हें रथ के) ग्रगले सिरें (=इषामुख) से (हानि पहुँचने से) बचाग्रो । हम ग्रसुरो को ग्रपने प्राण भले ही दे दे । लेकिन इन पक्षियों के घोसले नष्ट न हो । ]

कुलावका = गरुड के बच्चे । मातिल ! — यह सारथी का सम्बोधन है । सिम्बिलिंसि इस शब्द से रपष्ट है कि देख, यह सिविम्ल-वृक्षो मे लटक रहे है । ईसामुखेन परवज्जयस्सु; इनको ऐसे बचायो, जिससे यह इस रथ के ग्रगले सिरे (=ईसामुख) से नष्ट न हों । कामं चजाम ग्रसुरेसु पाणं पिंद हमारे ग्रसुरो को ग्रपने प्राण देने से, इनका कल्याण होता हो तो हम ग्रवश्य ही प्रसन्नता पूर्वक ग्रसुरो को ग्रपने प्राण दे देगे । मायिमे विजा विकुलावा ग्रहेसुं; लेकिन यह पक्षी (=द्विज), यह गरुड-बच्चे, ग्रपने घोसलो के विध्वस, विचूर्णं हो जाने के कारण ग्राश्रय-रहित (=विना घोसले के) न हों । हमारा दुख उनके ऊपर मत डाल । रथ को लौटा । रथ को लौटा ।"

यह शब्द सुन, मातलि-सारथी ने, रथ को रोक दूसरे मार्ग से, देव-लोक की ग्रोर हॉक दिया। ग्रसुरो ने रथ को लौटता देख सोचा, "निश्चय से दूसरे चक्रवालो से भी शक्र ग्रा रहे हैं। सेना की सहायता (==वल) मिलने से ही रथ लौटाया गया होगा।" यह सोच मरने से भय-भीत हो भाग कर ग्रसुर-भवन में छिप गये। शक्र भी देव-नगर में प्रवेश कर, दो देव-लोको के देवताश्रों सिहत नगर के बीच में खड़े हुए। उसी क्षण पृथ्वी फूटी, (ग्रीर) उसमें में सहस्र योजन ऊँचा वेजयन्त प्रासाद (==महल) निकला। विजय के ग्रन्त में निकलने के कारण, उसका नाम वेजयन्त रक्खा गया। शक्र ने, ग्रसुरो का फिर दुबारा ग्राना रोकने के लिए पाँच जगहो पर पहरा (---ग्रारक्षा) स्थापित किया। जिसके बारे में कहा है—

# ग्रन्तरा द्विनं ग्रयुज्भपुरानं पञ्चिवधा ठिपता ग्रभिरक्खा, उरग करोटि पयस्स च हारी मदनयुता चतुरो च महन्ता ॥

[दोनो अयुद्ध-पूरो के बीच मे पाँच प्रकार की आरक्षा स्थापित की गर्छ— सर्पों की, गरडो की, कुम्भाण्ड ( ==दावन राक्षसो) की, यक्षा की तथा चारो महाराजास्रो की ]

दोनो नगर युद्ध से अजेय होने के कारण स्रमद्भ-पुर करनाये—ियनगर तथा असुर नगर। जब असुर बलावन् होते, तब देवताओं के भाग कर देव-नगर में प्रविष्ट हो द्वारों के बन्द कर लेने पर एक लाग असुर भी उनका कुछ न कर सकते। जब देवना बलवान् होते, तब ग्रसुरो के भाग कर, ग्रसुर नगर के द्वार बन्द कर लेने पर, एक लाख शक भी (उनका) कुछ न कर सकते। इस-िलए यह दोनो नगर ग्रयुद्ध-पुर कहलाये। इन दोनो (नगरो) के बीच मे, शक ने पाँच स्थानो पर पहरा (=ग्रारक्षा) स्थापित किया।

'उरग' शब्द से नागो का ग्रहण है। वे जल मे बल-शाली होते हैं। इस-लिए सुमेर पर्वत के प्रथम चक्कर मे उनका पहरा है 'करोटि' शब्द से गरुडों का ग्रहण है। उनका 'नाम' 'करोटि' इसलिए पड़ा, क्योंकि वह जीवों को खाते हैं। दूसरे चक्कर मे उनका पहरा है। 'पयस्स हारी' शब्द से कुम्भाण्डों का ग्रहण किया गया है। यह दानव-राक्षस (होते) है। तीसरे चक्कर मे उनका पहरा है। 'मदन युत' शब्द से यक्षों का ग्रहण है। वे विषम-ग्राचरण वाले (तथा) युद्ध-प्रिय होते हैं। चौथे चक्कर मे उनका पहरा है। 'चतुरों च महन्ता' का ग्र्यं है चारों महाराजा। पाँचवे चक्कर मे उनका पहरा है। सो यदि ग्रमुर कुद्ध होकर (ग्रथवा) मन बिगाड़ कर देव-पुर पहुँचते, तो उरग उन्हें सुमेर पर्वत के पाँच प्रकार के घेरों में से जो प्रथम-घेरा है, उससे बाहर निकाल देते। इसी प्रकार बाकी चक्करों में शेष।

इन पाँच स्थानो मे पहरा स्थापित करके, देवेन्द्र (शक) के दिव्य सम्पत्ति का उपभोग करते समय, सुधर्मा ने च्युत हो (=मर) कर, उस शक की ही भार्य्या वन कर जन्म ग्रहण किया। किष्णका (=शहतीर) दिये रहने के फलस्वरूप, उसके लिए पाँच सौ योजन (लम्बी चौडी) सुधर्मा नामक देव-मणि-सभा (-शाला) उत्पन्न हुई, जिसमे दिव्य श्वेत छत्र के नीचे, योजन भर के काञ्चन पलग के ऊपर बैठ कर, देवेन्द्र शक देव मनुष्यो के कर्तव्य-कृत्यो (का सम्पादन) करते थे। चित्रा भी मर कर, उसी की भार्य्या होकर उत्पन्न हुई। उद्यान लगाये रहने के फलस्वरूप इसके लिए चित्र-लता-वन नाम का उद्यान उत्पन्न हुग्रा। नन्दा भी च्युत होकर, उसीकी भार्य्या होकर उत्पन्न हुई। पुष्करिणी बनवाने के फलस्वरूप इसके लिए नन्दा नाम की पुष्करिणी पैदा हुई।

कोई भी शुभ-कर्म न किया रहने के कारण सुजाता एक अरण्य की किसी कन्दरा में बगुला-पक्षी की योनि में उत्पन्न हुई। शक्र ने, 'सुजाता नहीं दिखाई देती, वह कहाँ उत्पन्न हुई ?' विचार करते हुए, उसे देखा। वहाँ जाकर कुलावक ] २६७

उसे साथ लाया ग्रौर उसे रमणीय देव-नगर, सुर्धम देवसभा, चित्र-लता-वन ग्रौर नन्दा पुष्करिणी दिखाई। फिर 'यह शुभ-कर्म करके मेरी स्त्रियाँ होकर उत्पन्न हुई, लेकिन तू शुभ-कर्म न किये रहने के कारण पशु-पक्षी ( —ितरक्चीन) की योनि मे उत्पन्न हुई। ग्रव से सदाचार की रक्षा कर'—यह उपदेश देकर, उसे पाँच शीलो मे प्रतिष्ठित किया ग्रौर उसे वही ले जाकर छोड़ दिया। वह भी उस समय से सदाचार ( —शील) की रक्षा करने लगी। कुछ दिनो के बाद 'वह शील की रक्षा कर सकती है, (वा नही)?' जानने के लिए, जाकर उसके सामने मच्छ की योनि मे चित-पड़े प्रगट हुए। उसने मृत मच्छ समभ सीस पर प्रहार किया। मच्छ ने पूँछ हिलाई। उसने 'जीता है' समभ, उसे छोड़ दिया। शक 'साधु साधु' (कह) 'शील की रक्षा कर सकेगी' (सोच) चला गया। वहाँ से च्युत होकर वह बाराणसी मे कुम्हार के घर पैदा हुई।

शक्र ने 'कहाँ पैदा हुई ?' (सोच) 'वहाँ पैदा हुई' जान, सोनहरी खीरो की गाडी भरकर, गाँव के बीच में एक बूढे के वेष में बैठ चिल्लाना शुरू किया—— ''खीरे ले लो, खीरे ले लो।''

मनष्यो ने ग्राकर कहा--"तात । दो।"

"मैं केवल सदाचारियो को देता हूँ। तुम सदाचार की रक्षा करते हो ?" "हम शील (-वील) नही जानते, मूल्य से दो।"

"मुभे कीमत की जरूरत नहीं, मैं केवल सदाचारियों को ही देता हूँ।" "कौन हैं यह लाल-बुभक्कड ( = लालको) !" कहते मनुष्य चले गये। सुजाता ने उस समाचार को सुन, 'मेरे लिए लाये गये होगे' सोच, जाकर कहा— "तात । दो।"

"ग्रम्म । क्या सदाचार की रक्षा करती हो ?"

"हाँ । रक्षा करती हूँ।"

"यह (सब) मैं तेरे ही लिए लाया हूँ" (कह) गाडी सहित गृह-द्वार पर छोड चला गया। वह भी जीवन पर्यंन्त सदाचार की रक्षा कर, वहाँ से च्युत हो, वेपचित्ति ग्रसुरेन्द्र की लडकी होकर उत्पन्न हुई। सदाचार (की रक्षा करने) के फलस्वरूप सुन्दरी हुई। ग्रसुरेन्द्र ने उसकी उमर होने पर, 'मेरी लडकी ग्रपनी इच्छा के ग्रनुकूल स्वामी ग्रहण करे'—इस इच्छा से—ग्रसुरो

को एकत्रित किया । शक 'वह कहाँ उत्पन्न हुई', देखते हुए, 'वहाँ उत्पन्न हुई' जान, सुजाता यथेच्छा स्वामी को चुनने (का ग्रवसर मिलने) पर, मुफे ही चुनेगी' सोच ग्रसुर का रूप बनाकर वहाँ गया । सुजाता को सजाकर, सभा मे लाकर कहा गया कि यथारुचि स्वामी को चुनो । उसने देखते हुए शक को देख, ग्रपने पूर्व स्नेह के भी कारण 'यह मेरा स्वामी हैं' (करके) ग्रहण किया। वह उसे देव-नगर मे ला, वहाँ उसे ढाई करोड नटनियो (नृत्यबालाग्रो) की मुखिया बना, ग्रायु पर्य्यन्त रहकर, यथा-कमं (परलोक) सिधारा।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह 'हे भिक्षु । पूर्व समय मे देव राज्य करते हुए पण्डितो ने, इस प्रकार ग्रपने जीवन का परित्याग करते हुए भी (जीवहिसा) नहीं की । ग्रौर तू इस प्रकार के कल्याण-कारी शासन में प्रव्रजित होकर भी छाने बिना, जीव-सहित जल पीयेगा" (कह) उस भिक्षु को भिड़क, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का मातलि (नामक) सारथी (ग्रव का) ग्रानन्द था। शक तो में ही था।

#### ३२. नच्च जातक

"रुदं मनुञ्जं.." यह गाथा बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, एक बहुत सामान रखने वाले भिक्षु के बारे मे कही। कहानी पूर्वोक्त देवधम्म जातक के सदृश ही है।

### क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा— 'भिक्षु । क्या तू सचमुच बहु-सामान वाला है  $^{?}$ "

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातक (६)

"भन्ते <sup>!</sup> हाँ।"

"भिक्षु । तू किस लिए बहु-भाण्डिक हो गया ?"

वह इतनी ही बात से कुद्ध हो, पहनना-म्रोढना छोड़ 'म्रब इस ढग से विच-हँगा' (कह) बुद्ध के सामने ही नङ्ग-धडङ्ग खडा हो गया। मनुष्यों ने कहा— "धिक्कार है। धिक्कार है।" उसने वहाँ से भाग जाकर सन्यास छोड़ दिया। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु 'यह बुद्ध के सम्मुख भी ऐसा करेगा!' (कह) उस भिक्षु की निन्दा कर रहे थे।

बुद्ध ने स्राकर पूछा—भिक्षुस्रो । इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे ?

"भन्ते । वह भिक्षु श्रापके सामने (श्रौर) चारो प्रकार की परिषद् के बीच में लज्जा-भय छोड गाँव के बच्चो की तरह नङ्गा खडा रह, लोगो के घृणा करने पर, गृहस्थ हो (बुद्ध) शासन से गिर गया (कहते हुए) बैठे उस भिक्षु की निन्दा कर रहें थे।"

शास्ता ने, 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रब ही वह भिक्षु लज्जा ग्रौर भय के ग्रभाव से शासन रूपी रत्न से पतित हो गया है, किन्तु पूर्व-जन्म मे भी उसे स्त्री-रत्न के लाभ से हाथ धोना पडा' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे, प्रथम कल्प मे चौपायों ने सिंह को (ग्रपना) राजा बनाया। मत्स्यों ने श्रानन्द मत्स्य को। पिक्षयों ने सुवर्ण हस को। उस सुवर्ण हसराज की लडकी, हस-बच्ची सुन्दरी थी। उस (हंस-राज) ने उसे वरदान दिया। उसने ग्रपनी इच्छानुकूल स्वामी (चुनने की ग्राज्ञा) माँगी। हस-राज ने उसे वरदान दे, हिमवन्त (-प्रदेश) के सब पिक्षयों को एकत्रित करवाया। नाना प्रकार के हस, मोर ग्रादि पिक्षी-गण ग्राकर, एक बडे पाषाण-तल के नीचे इकट्ठे हुए।

हस-राज ने लडकी को बुलाया—"ग्राकर, ग्रपनी इच्छा के श्रनुकूल स्वामी को चुन लो।' उसने पक्षी-समूह को देखते हुए, मणि के रग की ग्रीवा तथा चित्रित पखो वाले मोर को देख कर इच्छा प्रगट की कि यह मेरा स्वामी हो। पक्षियों ने मोर के पास जाकर कहा—"सम्म मोर! इस राज-धीता ने इतने पक्षियो के बीच मे स्वामी खोजते हुए, तुभे चुना है।"

मोर ने, "तो क्या वह ब्राज भी मेरे बल को न देखती" (कह) ब्रित प्रसन्न हो, लज्जा-भय छोडकर, उतने बड़े पिक्ष-सघ के बीच मे पखो को पसार कर, नाचना ब्रारम्भ कर दिया। नाचते समय वह नगा (=िबना ढका) हो गया। सुवर्ण हंस-राज ने लिज्जित हो, 'इसको न तो ब्रन्दर की लज्जा है, न बाहर का भय है। इस लज्जा-भय रहित को मैं (ब्रपनी) लडकी न दूँगा' (कह) पिक्षयो के सघ के बीच मे यह गाथा कही—

> रुदं मनुञ्जं रुचिरा च पिट्ठी वेलुरियवण्णूपनिभा च गीवा, व्याम-मत्तानि च पेखुणानि नच्चेन ते धीतरं नो ददामि॥

[ (यद्यपि तेरा) स्वर मनोहारी है, पीठ सुन्दर है, गर्दन बिलौर के रग की है, पखडियाँ दो हाथ ( ==व्याम) भर की है; (तो भी) तेरे नाचने के कारण, तुभे लडकी नहीं देता हूँ ]

रुदं मनुञ्जं, 'रुद' मे 'त' का 'द' कर दिया गया। रुद, मनाप का अर्थ है कि उच्चारित शब्द मधुर। रुचिरा च पिट्ठों, तेरी पीठ भी चित्रित तथा शोभासम्पन्न है। वेलुरियवण्णूपिनभा —िबल्लौर मणि के वर्ण सदृश। व्याम-मत्तानि; एक व्याम (—दो हाथ) भर। पेरवुणानि-पखड़ियाँ नच्चेन ते धीतरं नो ददामि—"लज्जा-भय छोड कर नाचने के कारण ही, तुभे, ऐसे निर्लज्ज को लडकी नहीं देता हूँ" कह, हंस-राज ने उसी परिषद् के बीच मे अपने भाजे हंस-बच्चे को लड़की दे दी। मोर हस-बच्ची को न पा, लज्जित हो, वहाँ से उड कर भाग गया। हस-राज भी अपने निवास-स्थान को चला गया।

बुद्ध ने "भिक्षुग्रो! न केवल ग्रब ही यह लज्जा-भय छोड़ने के कारण (बुद्ध-)शासन रूपी रत्न से पितत हुग्रा है, पूर्व-जन्म मे भी स्त्री-रत्न की प्राप्ति से इसे हाथ घोना पड़ा था। यह धर्म-देशना कह, मेल मिला, जातक का साराश

सम्मोदमान ] २७१

निकाल दिखाया । उस समय का मोर (ग्रब का) बहुत सामान रखने वाला (भिक्षु) था ग्रौर हस-राज तो मैं ही था ।

## ३३. सम्मोदमान जातक

"सम्मोदमाना" यह गाथा शास्ता ने किपलवस्तु के समीप निग्रो-धाराम मे रहते समय चुम्बट-कलह के बारे मे कही। वह कथा कुणाल-जातक में भे श्रायेगी।

## क. वर्तमान कथा

उस समय बुद्ध ने रिश्तेदारों को आमिन्त्रित कर, "महाराजाओं। रिश्तेदारों को एक दूसरें से लंडना-भगड़ना उचित नहीं। पूर्व समय में तिरश्चीन ( चिपशु-पक्षी) योनि में पैदा हुए भी, एकमत रहने के समय शत्रु को पराजित किया था, और जब विवाद में पड़ गये, तो महाविनाश को प्राप्त हुए' कह, रिश्तेदार राजाओं के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधि-सत्त्व (एक) बटेर की योनि में उत्पन्न होकर, ग्रनेक सहस्र बटेरों के साथ जगल में रहते थें। उस समय बटेरों का एक शिकारी उनके रहने के स्थान पर जाता। वह बटेरों का सा शब्द करता। जब बटेरे इकट्ठी हो जाती तो उन पर जाल फेकता, ग्रौर सिरों पर से दबाते हुए, सब को एक जगह करके, पेटी में

१ कुणाल जातक (५३६)

भर लेता । घर जाकर, उन्हे बेच , उस म्रामदनी (=मूल्य) से जीविका चलाता था ।

तब एक दिन बोधिसत्त्व ने उन बटेरो को कहा—'यह चिड़ीमार हमारी जात-विरादरी का नाश करता है। में एक उपाय जानता हूँ, जिससे यह हमें न पकड सकेगा। श्रव से, जैसे ही यह तुम्हारे ऊपर जाल फेके, वैसे ही जाल की एक एक गाँठ में सिर रख कर, जाल के सहित उडकर, उसे यथेष्ट स्थान पर ले जाकर, किसी काँटे-दार भाड़ी के ऊपर डाल दो। ऐसा होने पर, हम नीचे से जहाँ तहाँ से भाग जायेगे।'' उन सब ने 'श्रच्छा' कहा। दूसरे दिन ऊपर जाल फेकने पर, (वे) बोधिसत्त्व के कथनानुसार जाल को उड़ा कर, एक काँटेदार भाड़ी पर फेक, श्रपने श्राप नीचे से, जहाँ तहाँ से निकल भागे।

चिडीमार को भाडी में से जाल निकालते ही निकालते विकाल हो गया। वह लाली हाथ ही (घर) लौटा। अगले दिन से लगाकर बटेर (रोज) वैसा ही करते। वह (चिड़ीमार) भी सूर्य्यास्त होने तक जाल को ही छुड़ाते रह कर, कुछ भी न पा, लाली हाथ ही घर लौटता। तब उसकी भार्य्या ने कुछ होकर कहा—"तू रोज रोज खाली हाथ लौटता है। मालूम होता है बाहर किसी और की भी परविरश्च कर रहा है।" चिडीमार ने "भद्रे! मुभे किसी और को पालना पोसना नहीं है। केवल वह बटेर एक मत होकर चुगते हैं। मेरे फेके जाल को लेकर, कॉटो की भाड़ी पर डाल चले जाते हैं। लेकिन वह सदैव एक मत होकर नहीं रहेंगे। तू चिन्ता मत कर। जिस समय वह विवाद में पड़ेगे, उस समय उन सब को लेकर तुभे हँसाता हुआ घर लौटूंगा।" कह, भार्य्या को यह गाथा कही—

#### सम्मोदमाना गच्छन्ति जालमादाय पिन्खनो, यदा ते विवदिस्सन्ति तदा एहिन्ति मे वसं॥

[(ग्रभी) पक्षी एक राय होने के कारण जाल को लेकर (उड) जाते है, लेकिन जब वह विवाद करेगे, तभी वह मेरे वश मे श्रा जायेगे।]

यदा ते विविदस्सन्ति, जिस समय वह बटेर, नाना मत के, नाना (प्रकार की) राय के, होकर विवाद करेंगे =कलह करेंगे। तदा एहिन्ति में वसं—

सम्मोदमान ] २७३

उस समय वह सभी मेरे वश मे या जायेगे। यौर में उन्हें लेकर तुभे हँसाता हुया, ब्राऊँगा (कह) भार्य्या को ब्राश्वासन दिया।

कुछ ही दिन के बाद चुगने की भूमि ( —गोचर-भिम) पर उतरता हुमा एक बटेर गलती से ( —स्याल न रहने से) दूसरे के सिर पर से लॉघ गया। दूसरे ने कोध से कहा, "मेरे सिर पर से कौन लॉघा ?" "में गलती से लॉघ गया। कुद्ध मत हो।" कहने पर भी वह कोध ही करता रहा। बार बार बोलते हुए, वह एक दूसरे को ताना देने लगे, "मालूम होता है, जैसे तू ही जाल को उठाता है।"

उन्हें विवाद करते देख, बोधिसत्त्व ने सोचा—''विवाद करने वालो का कुशल नही। ग्रब यह जाल न उठायेंगे, ग्रौर महान् विनाश को प्राप्त होगे। चिड़ीमार को ग्रवसर मिल जायगा। में ग्रब यहाँ नही रह सकता। ''(यह सोच) वह ग्रपनी परिषद् ( —जमात) को ले दूसरी जगह चला गया। चिड़ीमार ने भी कुछ दिन के बाद ग्रा, बटेरों की बोली बोल, उनके एकत्र होने पर, उन पर जाल फेका। तब एक बटेर ने दूसरे को कहा, 'जाल ही उठाते उठाते तेरे सिर के बाल गिर पड़े, ले, ग्रब तो उठा।' दूसरे ने कहा—"जाल ही उठाते उठाते तेरे दोनो पखों की पखडियाँ गिर पड़ी। ले, ग्रब तो उठा।' सो उनके 'तू उठा', 'तू उठा', विवाद करते करते ही, चिडीमार जाल को उठा, उन सब को एकत्रित कर, पेटी भर भार्य्या को प्रसन्न करता हुग्ना, घर लौटा।

बुद्ध ने, 'सो हे महाराजाम्रो । बाति-सम्बन्धियो का कलह उचित नही है। कलह विनाश का ही कारण होता हैं', यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का मूर्ख ( — प्रपिडत) बटेर (ग्रब का) देवदत्त था। ग्रौर पण्डित-बटेर तो में ही था।

#### ३४. मच्छ जातक

"न मं सीतं न मं उण्हं...." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, पूर्व-भार्य्या के लुभाने के बारे मे कही।

# क. वर्तमान कथा

उस समय बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा— भिक्षु । क्या तू सचमुच उत्किष्ठित है ?"

"भगवान् । सचमुच ।"

"तुभे किस ने उत्कण्ठित किया ?"

"भन्ते । मेरी पूर्व-भार्या के हाथो मे माधुर्य है। उसे नही छोड सकता हूँ।"

तब बुद्ध ने, "हे भिक्षु । यह स्त्री तेरा ग्रनर्थं करने वाली है। पूर्व-जन्म में भी तू इसके कारण मरते मरते, मेरी शरण ग्राने से मरने से बचा" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व उसके पुरोहित थे। मछुत्रो ने नदी मे जाल फेका। एक महामत्स्य अपनी मछली के साथ रित-कीडा करता हुआ आ रहा था। उसके आगे आगे जाती वह मछली जाल-गन्ध सूँघ कर जाल से हट कर निकल गई। लेकिन वह कामासक्त, लोभी मत्स्य जाल के भीतर ही जा फँसा। मछुत्रो ने उसे जाल मे प्रविष्ट हुआ जान, जाल को उठा, मत्स्य को बिना मारे ही ले जा बालू के ऊपर डाल दिया। (उन्होने) सोचा इसे अङ्गारो पर पका कर खायेगे।

इसिलए अङ्गार बनाने लगे और सलाई ( = कॉटे) को छीलने लगे। मत्स्य ने, 'म्रङ्गार पर तपने का, कॉटे से बिधने का वा अन्य कोई दुख मुफे पीडा नहीं देता, लेकिन वह जो मछली सोचेगी कि वह किसी दूसरी मछली के पास चला गया, उसीसे मुफे दुख होता है, उसीसे मुफे बाधा होती है', (कह) रोते पीटते यह गाथा कही—

> न मं सीतं न मं उण्हं न मं जालस्मि बाधनं, यं च मं मञ्जते मच्छी, ग्रञ्जं सो रितया गतो'॥

[न मुभे शीत की पीडा है, न ऊष्णता की पीडा है, न जाल में बँधने की पीडा है। (मुभे दुख है तो यह है) कि मेरी मछली, मेरे बारे में समभेगी कि वह रित के मारे किसी दूसरी मछली के पास चला गया।

'न मं सीतं न मं उण्हं ' मत्स्यो को पानी से बाहर निकालने के समय शीत लगता है, पानी में जाने पर गरमी लगती हैं। सो दोनो के बारे में 'न तो मुभे शीत ही पीडा देता हैं, न गरमी।' (कह) रोता हैं। (ग्रौर) जो ग्रङ्गार में पकने का दु.ख होगा, उसके बारे में भी 'न मुभे गरमी पीडा देती हैं' (कह) रोता ही हैं। न मं जालिस्म बाधनं, और जो मेरा जाल में बँधना हुन्ना, वह भी मुभे पीडा नहीं देता (कह) रोता है। यं च मं ग्रादि का सक्षेपार्थ यह हैं—वह मछली मेरे जाल में फँसने और इन मछ्यो द्वारा पकड लिये जाने की बात न जानकर, मुभे न देखती हुई सोचेगी कि वह मत्स्य कामरित के मारे ग्रब दूसरी मछली के पास चला गया होगा—यह उसका मेरे प्रति बुरा-भाव होना मुभे पीडा देता हैं (कह) बालू के ऊपर पडा पड़ा रोता पीटता हैं।

उस समय दासो से घिरा हुया पुरोहित, स्नान करने के लिए नदी के किनारे ग्राया। उसे सब प्राणियों की बोली समक्त में ग्राती थी। सो, इस मत्स्य का रोना पीटना सुन कर, उसके मन में यह (विचार उत्पन्न) हुम्रा—यह मत्स्य कामासिक्त के दु ख से पीडित होकर रोता हैं। इस प्रकार ग्रातुर (=दु खित) चित्त होकर मरने पर भी, यह नरक में ही उत्पन्न होगा। मैं इसका उद्धार करने वाला होऊँगा।" (यह सोच) मछुओं के पास जाकर कहा—

"भो ! तुमने हमे एक दिन भी सालन (==व्यञ्जन) के लिए मछली नहीं दी ?"

मंछ्यों ने कहा— "स्वामी क्या कहते हैं ? श्रापको जो मछली श्रच्छी लगे, उसे ले जाइये "

"हमे ग्रौर किसी मछली से काम नहीं, यही (मत्स्य) दे दो ।" "स्वामी <sup>|</sup> ले जाये ।"

बोधिसत्त्व, उसे दोनो हाथो से ले, नदी के किनारे बैठ "भो । मत्स्य । यदि में ग्राज तुभे न देखता, तो तेरे प्राण जाते रहते । ग्रब से क्लेश ( क्लामा-सिक्त) के वशीभूत न होना"—यह उपदेश कर, पानी मे छोड, नगर मे प्रविष्ट हुए ।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को कह (ग्रार्य-)सत्यो को प्रकाशित किया। (ग्रार्य-)सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु श्रोतापित-फल में प्रतिष्ठित हुग्रा। बुद्ध ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय की मच्छी (ग्रब की) पुरानी भार्य्या थी। मत्स्य (ग्रब का) उत्कण्ठित भिक्षु। (ग्रौर) पुरोहित तो में ही था।

#### ३५. वट्टक जातक

"सन्ति पक्खा.. " यह गाथा, बुद्ध ने मगध मे चारिका करते समय, दावाग्नि के बुफ़ने के सम्बन्ध मे कही।

### क. वर्तमान कथा

एक समय बुद्ध ने मगध मे चारिका करते हुए मगध के गामडे मे भिक्षाटम कर, भिक्षाटन से लौटकर, भोजनोपरान्त भिक्षुगण सहित रास्ता लिया। उस समय महादावाग्नि उठी। (शास्ता के) आगे पीछे बहुत भिक्षु थे। वह आग भी एक-धुआँ, एक ज्वाला हो फैलती ही चली आ रही थी। कुछ मरने से भयभीत अज्ञ (—पृथज्जन) भिक्षु 'हम प्रति-आग्नि जलायेगे, जिससे जले स्थान पर दूसरी आग न फैल सकेगी' (सोच) अरिण निकाल कर आग जलाने लगे। दूसरो ने कहा—"आवुसो । तुम क्या करते हो ? गगनमध्य स्थित चन्द्रमा को (न देखते हुए की तरह), पूर्व दिशा मे उगने वाले, सहस्र रिहमधारी सूर्य्यमण्डल को (न देखते हुए की तरह), समुद्र के तट पर खडे होकर समुद्र को (न देखते हुए की तरह), सुमेरु पर्वंत के पास खडे होकर सुमेरु पर्वंत को (न देखते हुए की तरह) क्या तुम लोक मे सदैव अग्र व्यक्ति, सम्यक् सम्बुद्ध को अपने साथ न जाते देखकर ही कहते हो कि हम प्रति-अग्नि देगे (—जला-येगे)? क्या तुम बुद्ध-बल को नहीं जानते ? (चलो) बुद्ध के पास चलेगे।" आगे पीछे जाते हुए वे सभी इकट्ठे होकर दसबल(-धारी) के पास गये।

महाभिक्षुसघ को साथ लिये बुद्ध एक जगह खडे थे। दावाग्नि (सब को) परास्त करती हुई की भाँति, घोषणा करती ग्रा रही थी।

जिस स्थान पर तथागत खड़े थे, वहाँ पहुँच, उस स्थान से चारो ग्रोर सोलह करीस भर दूरी के स्थान पर, वह वैसे ही बुभ गई, जैसे तिनको की मशाल (=उल्का) पानी में डुबोने पर। (बुद्ध के) ग्रासपास से वत्तीस करीस की दूरी में (वह ग्राग) न फैल सकी।

भिक्षु बुद्ध का गुणानुवाद करने लगे—"ग्रहो । बुद्धो का सामर्थ्यं (—गुण)! यह ग्रचेतन ग्राग भी बुद्धो के खडे होने की जगह पर न फैल सकी, (ग्रौर) पानी में तिनको की मशाल की तरह बुभ गईं। ग्रहो ! बुद्धो का प्रताप !"

शास्ता ने उनकी वात-चीत सुनकर कहा— "भिक्षुग्रो । यह मेरा ग्रब का बल नहीं हैं, जिसके कारण यह ग्राग इस भूमि-प्रदेश में पहुँच कर वुभ गई हैं। किन्तु यह मेरी पुरानी सत्य-क्रिया का वल ह। इस प्रदेश में इस सारे कल्प भर ग्राग न जलेगी। यह कल्प भर स्थिर रहने वाली प्रातिहार्य

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> उतना रक़बा जिस में एक करीस बीज (चार भ्रम्मन) <mark>बोया जा</mark> सके ।

२७८ [ १.४.३४

( = ग्रलौकिक किया) है।" ग्रायुष्मान् ग्रानन्द ने शास्ता के बठने के लिए चौतही सघाटी बिछा दी। शास्ता पल्लथी मारकर बैठ गये। भिक्षुसंघ भी तथागत को प्रणाम कर तथा घेरकर बैठ गया। तब बुद्ध ने भिक्षुग्रो के यह याचना करने पर कि 'भन्ते। यह जो (ग्रब की बात) है, सो तो हमें प्रगट है। अतीत की जो बात छिपी हुई है, उसे प्रगट करे। पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. अतीत कथा

"पूर्व समय मे, मगध राष्ट्र के उसी प्रदेश मे, बोधिसत्त्व, बटेर की जून में जन्म ग्रहण कर, माता की कोख से निकल, ग्रण्डे को फोड, निकलते समय ही, एक बड़े भेद जितना (बड़ा) बटेर हुम्रा। सो (उसके) माता पिता उसे घोसले में लिटा, चोच से चोगा ला, उसे पालते थे। उसमे, न तो पर फैला कर स्राकाश मे उड़ने का सामर्थ्य था, न टॉग उठा कर पृथ्वी पर चलने का सामर्थ्य । उस प्रदेश में प्रति वर्ष दावाग्नि लग जाती। (ग्राग लग जाने के) समय भी, वह चिल्लाता हुम्रा, उसी स्थान ( =प्रदेश) पर रहा। पक्षी-गण भ्रपने ग्रपने घोसले से निकल, मरने से भयभीत, चिल्लाते हुए भागे। बोधिसत्त्व के माता पिता भी मरने से भयभीत (हो) बोधिसत्त्व को छोड (ग्रपने) भाग गये। बोधिसत्त्व ने घोसले में पड़े पड़े गर्दन उठाकर, फैलती स्राती स्राग को देख, सोचा--- "यदि मुक्त में परो को फैला कर श्राकश-मार्ग से जाने का सामर्थ्य हो, तो उडकर दूसरी जगह चला जाऊँ, यदि पैरो पर खडे होकर जाने का सामर्थ्य हो, तो पैदल दूसरी जगह चला जाऊँ। मेरे माता-पिता भी मरने से भय-भीत (हो) मुभे स्रकेला छोडकर, ग्रपने प्राण लेकर भाग गये। श्रव मुभे किसी की शरण नहीं। में त्राण-रहित हूँ; शरण-रहित हूँ। मुभे म्राज क्या करना चाहिए ?" तब उसके (मन मे) यह हुग्रा—"इस लोक मे सदा-चार ( = शीलगुण) है, सत्य है, पूर्व समय मे पारिमताभ्रो को पूरा कर बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ अभिसम्बुद्धत्त्व प्राप्त कर, शील-समाधि-प्रज्ञा-विमुक्ति--विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन से युक्त, सत्य-दया-करुण-शान्ति से समन्वित, सब सत्वो के प्रति समान मैत्री-भावना रखने वाले, सर्वज्ञ बुद्ध है, उनके द्वारा साक्षात किये गये धर्म-तत्व ( = गुण) है, मुक्त मे भी एक सत्य है (ग्रर्थात्) (मुक्त

मे भी) एक विद्यमान् स्वाभाविक धर्म दिखाई देता है। इसलिए मुभे चाहिए कि मै पूर्व समय के बुद्धो, और उनके द्वारा साक्षात् किये गये धर्म-तत्वो का विचार करूँ; और अपने मे विद्यमान सत्य-स्वाभाविक धर्म को लेकर सत्य-किया कर अग्नि को वापिस लौटा, आज अपना और शेष (सब) पक्षियो का कल्याण करूँ। इसीलिए कहा गया है—

श्रित्थ लोके सीलगुणो सच्चं सोचेथ्यानुद्द्या, तेन सच्चेन काहामि सच्चिकिरियमनुत्तमं, श्राविज्जित्वा धम्मबलं सिरत्वा पुब्बके जिने, सच्च बलमपस्साय सच्चिकिरियं श्रकासहं॥

[लोक में सदाचार (  $\Longrightarrow$ शील-गुण) है, सत्य (है), शौच (है), दया (है); —में उस सत्य से उत्तमतम सत्य-क्रिया को करता हूँ। धर्म-बल तथा पूर्व समय के बुद्धो (  $\Longrightarrow$  जिनो) का स्मरण कर, श्रौर सत्य-बल को देखकर, मैने सत्य-क्रिया की।

सो बोधिसत्त्व ने पूर्व समय मे परिनिर्वाण को प्राप्त बुद्धो के गुणो का ध्यान घर, ग्रपने मे विद्यमान सत्य-स्वभाव के बारे मे सत्य-क्रिया करते हुए यह गाथा कही—

> सन्ति पक्खा भ्रपतना सन्ति पादा भ्रवञ्चना, माला पिता च निक्खन्ता जातवेद ! पटिक्कम ।।

[पद्ध है (लेकिन उनसे) उडा नहीं जाता, पैर है (लेकिन उनसे) चला नहीं जाता । मेर माता-पिता (मुभे छोड) चले गये । इसलिए हे ग्रग्नि पीछे हट जा।]

सन्ति पक्खा श्रपतना; मेरे पक्ष है, लेकिन इनसे में उछल नही सकता = श्राकाश-मार्ग से जा नही सकता, इसलिए श्रपतना । सन्ति पादा श्रवञ्चना, मेरे पाँव भी है, लेकिन में उनसे वञ्चना = पाँव से चलना नही कर सकता, इसलिए श्रवञ्चना । माता पिता च निक्खन्ता, जो मुक्ते श्रन्यत्र ले जाते, वह

<sup>&#</sup>x27; देखो चरिया-पिटक (वट्टकपोत चरिया)।

ि १.४.३५

माता-पिता भी मरने के डर से भाग गये। जातवेद । यह श्रग्नि का सम्बोधन है। वह जात ( चउत्पन्न) होते ही, वेदियति ( चप्रगट होती है) इसलिए 'जातवेद' कहलाती है। पटिक्कम, वापिस जा चलौट जा (कह) जातवेद को श्राज्ञा देता है।

सो (इस प्रकार) महासत्त्व ने 'यदि मेरा पङ्क्षो-सहित होना सत्य है, श्रौर उनको फैलाकर श्राकाश में न उड़ सकने (की बात) सत्य है, यदि मेरा पॉव-सहित होना, श्रौर उनको उठाकर न चल सकने की तथा माता-पिता की मुफ्ते घोंसले में ही छोड कर चले जाने (की बात) सत्य है, स्वभाव-भूत है, तो हे जातवेद ! इस सत्यता के कारण तू यहाँ से लौट जा' कह घोसले में पड़े ही पड़े सत्य-किया की । उसके सत्य-किया (करने) के साथ ही श्रग्नि १६ करीय भर स्थान से (दूर) हट गई। लौटती हुई श्रौर न बुफ्ती हुई (वह) ग्राग (शेष) जगल में चली गई, (लेकिन) उस स्थान पर पानी में डाले मशाल की तरह, बुफ्त गई—

#### सह सच्चकते मय्हं महा पज्जिलतो सिखी, वज्जेसि सोलस करीसानि उदकं पत्वा यथा सिखी ।।

[मेरे सत्य(-िकया) के साथ ही, महाप्रज्वलित आग ने, सोलह करीष (भूमि) को वैसे ही छोड दिया, जैसे पानी में पडने पर आग।]

सो यह स्थान इस सारे कल्प के लिए स्रग्नित से सुरक्षित हो गया, यह कल्प भर स्थिर रहनेवाली प्राति-हार्य हुई। इस प्रकार बोधिसत्त्व सत्य-क्रिया करके, जीवन की समाप्ति पर, कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने "भिक्षुग्रो । यह जो इस जगल का ग्रग्नि से न जलना है, यह मेरा ग्रब का बल नही; किन्तु यह पूर्व-जन्म में बटेर-बच्चा होने के समय का मेरा सत्य-बल हैं"—यह धर्म-देशना कह (ग्रार्य-)सत्यो को प्रकाशित किया । सत्यो के ग्रन्त में कोई श्रोतापन्न हुए, कोई सकुदागामी हुए, कोई ग्रनागामी हुए, कोई ग्रह्त् हुए । बुद्ध ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया । उस समय के माता-पिता (ग्रब के) माता-पिता ही थे । बटेर राज तो में ही था।

<sup>ै</sup>देखो चरियापिटक, (बट्टकपोत चरिया) ।

#### ३६. सकुगा जातक

"यं निस्सिता " यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, दग्ध-पर्णशाल ( =जिसकी पर्णशाला जल गई थी) भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु, शास्ता के पास से कर्मस्थान ग्रहण कर, जेतवन से निकल, कोशल (जनपद) के एक सीमान्त ग्राम के समीप, एक ग्ररण्य में रहता था। (वर्षा-वास) के पहले ही महीने मे उसकी पर्णशाला जल गई। उसने मनुष्यो से कहा---"मेरी पर्णशाला जल गई। में कष्ट-पूर्वक रहता हूँ।" मनुष्यो ने कहा--- 'ग्रभी हमारे खेत सूखे हैं, (उन्हें) पानी देकर (पर्ण-शाला) बना-येगे" पानी दे चकने पर, "बीज बोकर" बीज बो चुकने पर, "मेढ बॉध कर," मेढ बॉध चुकने पर, ''गुडाई करके'' (गुडाई कर चुकने पर), ''काट कर,'' (काट चकने पर), दौरी करके-इस प्रकार, यह, वह काम दिखाते हुए, उन्होने तीन महीने गुजार दिये। वह भिक्षु तीन महीने तक खुले में कष्ट से रहने के कारण कर्मस्थान के अभ्यास मे उन्नति न कर, अर्हत्व (=विशेष) न प्राप्त कर सका । पवारणा के पश्चात्, वह, वुद्ध के पास पहुँच, प्रणाम कर, एक श्रोर बैठा। शास्ता ने उससे बात-चीत करते हुए पूछा—"भिक्षु। क्या वर्षा-वास सुख-पूर्वक व्यतीत किया <sup>?</sup> क्या कर्मस्थान सफल हुग्रा <sup>?</sup>" उसने वह समा-चार कह, उत्तर दिया कि निवास-स्थान के ग्रनुकूल न होने से मेरा कर्मस्थान सफल नहीं हुआ। बुद्ध ने, "भिक्षु । पहले समय में तिरश्चीन प्राणी भी अपनी अनुकूलता, अननुकूलता पहचानते थे, तूने क्यो न पहचानी ?" कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> वर्षावास समाप्त कर ।

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे, बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधि-सत्त्व पक्षी-योनि मे उत्पन्न हो, पक्षी-गण सहित, अरण्य मे, शाखा-टहिनयो से युक्त (एक) बड़े वृक्ष के आश्रय मे रहते थे। एक दिन उस वृक्ष की एक दूसरे से रगड खाती हुई शाखाओं से चूर्ण (सा) गिरने (तथा) धुआं उठने लगा। इसे देख, बोधिसत्त्व ने सोचा—"यह इस प्रकार रगड खाती हुई दो शाखाये आग पैदा करेगी (—फेकेगी), जो गिर कर पुराने पत्तो मे लग जायगी, (और) फिर इस वृक्ष को भी जला देगी। हम यहाँ नही रह सकते। हमे यहाँ से भाग कर, अन्यत्र जाना चाहिए।" (यह सोच) उसने पक्षी-गण को यह गाथा कही—

#### यं निस्सिता जगित रुहं विहङ्गमा स्वायं श्रींग पमुञ्चित, दिसा भजथ वक्कङ्गा । जातं सरणतो भयं ॥

(जिस वृक्ष का पिक्षयों ने आश्रय लिया है, सो यह वृक्ष आग छोडता है। (इसलिए) हे पिक्षयों । (अन्य अन्य) दिशाओं को जाओं। (हमारे) शरण(-गत) स्थान से ही भय उत्पन्न हो गया।

जगित रहं; जगित कहते हैं पृथ्वी को । वहाँ उत्पन्न होने वाला रुक्ख, जगितरह । विहङ्गमा, विह कहते हैं ग्राकाश को, वहाँ (=ग्राकाश में) गमन करने से पक्षी को विहङ्गम कहते हैं । विसा भज्य; इस वृक्ष को छोड़, ग्रन्थत्र भाग कर चारो दिशाग्रो में विचरो । वक्कङ्गा—पिक्षयो का सम्बोधन । वे (ग्रपने) उत्तमाङ्ग को, गले को कभी कभी वङ्क (=टेढा) करते हैं, इसलिए 'वक्कङ्गा' कहलाते हैं, ग्रथवा उनके दोनो ग्रोर पह्च वङ्क होने से भी, वह 'वक्कङ्गा' कहलाते हैं । जातं सरण तो भयं; हमारे ग्राश्रय-स्थान वृक्ष से ही भय पैदा हो गया । ग्राग्रो ! ग्रन्थत्र चले ।

बोधिसत्त्व की बात मानने वाले बुद्धिमान् पक्षी. उसके साथ एक ही उडान में उड कर श्रन्यत्र चले गये। लेकिन जो मूर्ख थे वे 'यह ऐसे ही एक बुँद पानी तित्तिर ] २५३

मे मगर-मच्छ देखा करता है' (सोच), उसकी बात न मान वही रहे। उसके थोडे ही काल बाद, जैसे बोधिसत्त्व ने सोचा था, वैसे ही ग्राग पैदा होकर, उस वृक्ष मे लग गई। धुएँ और ज्वालाओं के उठने पर, धुएँ से अन्धे पक्षी अन्यत्र न जा सके। (वही) ग्राग मे गिर कर विनाश को प्राप्त हुए।

बुद्ध ने 'भिक्षु । पहले समय मे तिरक्चीन योनि मे पैदा हुए भी, वृक्ष के ऊपर रहते हुए, अपनी अनुकूलता, अननुकूलता को जानते थे। तूने क्यो न पहचानी ?"—यह धर्म-देशना कह, (आर्य-)सत्यो को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर, वह भिक्षु श्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। बुद्ध ने भी मेल मिला कर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय बोधिसत्त्व की बात मानने वाले पक्षी (अब) बुद्ध-परिषद हुए। (और) बुद्धिमान-पक्षी तो में ही था।

### ३७. तित्तिर जातक

"ये वद्धमपचायन्ति . " यह गाथा बुद्ध ने श्रावस्ती को जाते समय सारिपुत्र स्थिवर के लिए शयनासन (=निवास-स्थान) न मिलने के सम्बन्ध में कही।

### क. वर्तमान कथा

श्रनाथिपिण्डक के विहार बनवा कर, दूत भेजने पर, बुद्ध राजगृह से निकल वैशाली पहुँच वहाँ इच्छानुसार विहार कर, श्रावस्ती जाने के विचार से चारिका के लिए निकले । उस समय छ -वर्गीय भिक्षुग्रों के शिष्य ग्रागे श्रागे जाकर स्थविरों के शयनासन न ग्रहण किये रहने पर भी, 'यह शयनासन हमारे उपाध्याय के लिए होगा, यह हमारे श्राचार्य्य के लिए होगा; यह हमारे लिए होगा' (कह) शयनासन दखल कर लेते थे । पीछे ग्राने वाले स्थविरो

को शयनासन न मिलते। सारिपुत्र के शिष्यों को भी स्थिवर के लिए शयनासन हूँ ढने पर शयनासन न मिला। स्थिवर ने शयनासन न मिलने से, बुद्ध के शयनासन से कुछ ही दूर, एक वृक्ष के नीचे, बैठ कर ग्रौर चल-फिर कर (रात) बिताई। बुद्ध ने तडके ही निकल कर खाँसा। स्थिवर ने भी खाँसा। "यह कौन है ?" "भन्ते। में सारिपुत्र हूँ।" "सारिपुत्र! तू इस समय यहाँ क्या कर रहा है ?" उसने वह (सब) हाल कह दिया। बुद्ध को स्थिवर की बात सुन, यह सोचते सोचते कि, 'जब मेरे जीते जी ही भिक्ष एक दूसरे के प्रति गौरव तथा सम्मान पूर्वक नहीं विचरते, तो मेरे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर यह क्या करेगें धर्म-सवेग उत्पन्न हुग्रा। उन्होंने प्रभात होने पर, भिक्षुसघ को इकट्ठा करवा भिक्षुग्रों से पूछा—"भिक्षुग्रों वया सचमुच छ-वर्गीय भिक्षु ग्रागे ग्रागे जा कर स्थिवरों के शयनासन दखल कर लेते हैं?"

"भगवान् । सचमुच ।"

तब (भगवान् ने) छ -वर्गीय भिक्षुग्रो को धिक्कार, धार्मिक कथा कह (सब) भिक्षुग्रो को सम्बोधित किया—"भिक्षुग्रो ! प्रथम ग्रासन, प्रथम जल, ग्रौर प्रथम परोसे के योग्य कौन है ?"

कुछ भिक्षुग्रो ने कहा—"जो क्षत्रीय कुल से प्रव्रजित हुग्रा हो।" कुछ ने, "जो ब्राह्मण-कुल से, जो गृहपित-कुल ( चैरय-कुल) से।" ग्रौरो ने, 'विनय-धर, धर्म-कथित, प्रथम ध्यान के लाभी, द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ ध्यान के लाभी।" ग्रौरो ने कहा—"श्रोतापन्न, सकुदागामी, ग्रनागामी, ग्रह्तं, त्रि-विद्याग्रो का ज्ञाता, छ ग्रभिज्ञा-प्राप्त।"

इस प्रकार उन भिक्षुग्रो के ग्रपनी ग्रपनी रुचि के ग्रनुसार ग्रग्र-ग्रासन ग्रादि के योग्यो के कहने के समय, बुद्ध ने कहा— "भिक्षुग्रो । मेरे शासन में अग्रासन ग्रादि प्राप्त करने के लिए न क्षत्रीय-कुल में से प्रव्रजित होना प्रमाण है, न ब्राह्मण-कुल से, न वैश्य-कुल से प्रव्रजित होना प्रमाण है, न विनयधर (होना), न सूत्र-धर (होना), न ग्रभिधम्मं का ज्ञाता (होना), न प्रथम-ध्यान ग्रादि का लाभी (होना), न श्रोतापन्न ग्रादि (होना)। हे भिक्षुग्रो । इस शासन में प्रणाम, सेवा, हाथ जोड़ना, ग्रौर ग्रन्य उचित-क्रिया—यह सब बड़प्पन के कम से किया जाना चाहिए। ग्रग्रासन, ग्रग्र-जल ग्रौर ग्रग्रपरोसा इस 'बडप्पन' के ही कम से मिलना चाहिए। यही यहाँ प्रमाण है। इस

लिए इन सब मे से जो सबसे बडा है, वही यहाँ योग्य है। हे भिक्षुओ । अब इस समय सारिपुत्र मेरा अग्र-श्रावक है, मेरे बाद धर्म-चक्र प्रवर्तित करने वाला है, मेरे बाद वही शयनासन पाने का ग्रधिकारी है। सो, उसीने शयनासन न मिलने के कारण ग्राज की रात वृक्ष के नीचे बिताई। जब तुम अभी से इस प्रकार ग्रगौरव-युक्त तथा असम्मान-युक्त हो, तो समय बीतने पर क्या करके विच-रोगे ?" फिर उनको उपदेश देने के लिए बुद्ध ने, "भिक्षुओ । पूर्व समय मे तिरश्चीन योनि मे उत्पन्न हुग्रो ने भी 'हमारे लिए यह उचित नहीं है कि हम एक दूसरे का ग्रादर न कर, सत्कार न कर, अनुचित ढग से विचरते रहे। हम ग्रपने मे से जो बड़ा है, उसे जानकर, उसे प्रणाम ( — ग्रभिवादन) ग्रादि करेगे। सो उन्होने ग्रच्छी प्रकार परीक्षा कर, यह मालूम किया कि उनमे कौन बड़ा है। उसे प्रणाम ग्रादि करते हुए, देव-पथ को भरते हुए (परलोक) गये" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे हिमालय के पास एक बडा बर्गद था। उसको ग्राश्रय कर, तित्तिर, बानर ग्रौर हाथी—तीन मित्र विहार करते थे। वे तीनो एक दूसरे का ग्रादर न करने वाले, सत्कार न करने वाले, साथ जीविका न करने वाले थे। तब उनके मन मे यह (विचार) हुग्रा—हमारे लिए इस प्रकार रहना उचित नही। जो हम लोगो मे बडा है, उसे प्रणाम ग्रादि करते हुए रहे। फिर 'हम मे कौन जेठा है?' इसे सोचते हुए, एक दिन 'एक ऐसा उपाय है' (जिससे मालूम हो सके कि कौन जेठा है) सोच, तीनो जने बड के नीचे बैठे।

वहाँ बैठने पर तित्तिर ग्रौर बन्दर ने हाथी से पूछा——"सौम्य हाथी! तू इस बड वृक्ष को किस समय से जानता है?"

उसने उत्तर दिया—सौम्यो । जब मै बच्चा था, तो इस बर्गद के वृक्ष को मै जाँघ के बीच करके लाँघ जाता था । बीच करके खडे होने के समय, इसकी फुनगी मेरे पेट को छूती थी । सो, मैं इसे, इसके गाछ होने के समय से

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> भिक्षुग्रो में पूर्व प्रक्रजित बड़ा होता है।

जानता हूँ।" फिर दोनो जनो ने पूर्व प्रकार से बन्दर से पूछा।

वह बोला—सौम्यो । जब मैं बच्चा था, तो भूमि पर बैठ कर, बिना गर्दन उठाये, इस बर्गद के पौधे के फुनगी के अकुरों को खाता था। सो मैं इसे छोटा होने के समय से जानता हूँ। शेष दोनो ने पूर्व प्रकार से ही तित्तिर से पूछा। वह बोला—''सौम्यो । पहले अमुक स्थान पर एक बडा बर्गद का पेड़ था। मैंने उसके फल खाकर इस स्थान पर बीट की। उससे यह वृक्ष पैदा हुआ। सो मैं इसे इसके अनुत्पन्न-काल से जानता हूँ। इसलिए, मैं तुम (दोनो) से जन्म से जेठा हूँ।"

ऐसा कहने पर बन्दर और हाथी ने तित्तिर पण्डित को कहा—सौम्य । तू हम में जेठा हैं। इसलिए ग्रब से हम तेरा सत्कार करेगे, गौरव करेगे, मानेगे, वन्दना करेगे, पूजा करेंगे, ग्रिभवादन करेगे, सेवा करेगे, हाथ जोडेगे और भी सब उचित-कर्म करेगे, तथा तेरे उपदेशानुसार चलेगे। (इसलिए) ग्रबसे तू हमे उपदेश देना और ग्रनुशासन करना।" उस समय से तित्तर उन्हें उपदेश देने लगा। (उसने) उन्हें (पॉच) शीलो में प्रतिष्ठित किया। ग्रपने ग्राप भी उसने शील ग्रहण किये। वे तीनो जने पॉच शीलो में प्रतिष्ठित हो, एक दूसरे का ग्रादर करते, सत्कार करते, साथ जीविका करते हुए रह कर, जीवन के ग्रन्त में देव-लोक गामी हुए।

उन तीनो का यह समभौता तैत्तिरीय-ब्रह्मचर्य्य कहलाया । भिक्षुग्रो । वह तिर्यग् योनि के प्राणी थे । (तो भी) वे, एक दूसरे का गौरव करते, सत्कार करते विहरते थे । तुम इस प्रकार के सु-ग्राख्यात धर्म-विनय मे प्रब्रजित हो कर भी किस लिए एक दूसरे का गौरव न करते, सत्कार न करते विहरते हो ?"

भिक्षुग्रो ! ग्रब से तुम्हे वृद्ध-पन ( — जेठे-पन) के अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, (बडे के सामने खड़े होना), हाथ जोडना, कुशल प्रश्न, प्रथम-प्रासन, प्रथम-जल, प्रथम-परोसा देने की अनुज्ञा करता हूँ। ग्रब से किनष्ठतर भिक्षु द्वारा ज्येष्ठ-तर का शयनासन दखल नहीं किया जाना चाहिए। जो दखल करेगा, उसे 'दुष्कृत' की श्रापत्ति (होगी)। इस प्रकार शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, ग्रभिसम्बुद्ध हो कर (ही) यह गाथा कही—

ये वद्धमपचायन्ति नरा धम्मस्स कोविदा, दिद्ठेव धम्मे पासंसा सम्पराये च सुगाति ॥ [ जो धर्म के ज्ञाता नर, बड़ो की पूजा करते हैं; वे ६सी जन्म मे प्रशंसा के भागी तथा पर-लोक मे सुगति के भागी होते हैं।]

ये वद्धमपचायन्ति; जाति-वृद्ध, वयो-वृद्ध, गुण-वृद्ध—तीन प्रकार के बड़े होते हैं। जनमें (ऊँची) जाति वाला जाति-वृद्ध, (अधिक) स्रायु वाला वयो-वृद्ध, गुण (-विशेष) से युक्त गुण-वृद्ध। जनमें से यहाँ 'वृद्ध' शब्द से गुण-सम्पन्न स्रौर वयो-वृद्ध का ही मतलब हे। स्रपचायन्ति, बड़ों के सत्कार करने के कर्म से पूजते हैं। धम्मस्स कोविदा, बड़ों की पूजा के काम में दक्ष — हुशियार। दिट्ठेव धम्मे, इसी जन्म में। पासंसा, प्रजसा के स्रधिकारी। सम्पराये च सुगति, इस लोक को छोड़ कर जो गन्तव्य पर-लोक हैं, वहा भी जनकी सुगति ही होती हैं। साराश यह हैं—िक हें भिक्षुस्रों! चाहे क्षत्रिय हो, चाहे बाह्मण; चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्ध; चाहे गृहस्थ हो, वा प्रव्रजित; चाहे तिर्थम् योनि के ही प्राणी हो—जो कोई भी प्राणी, स्रपन से बड़ों की पूजा करने के कर्म में दक्ष, हुशियार होते हैं, गुणसम्पन्नों की, वयो-वृद्धों की पूजा करते हैं, वे इस जन्म में 'बड़ों का स्रादर करने वाला हैं'—इस प्रकार की प्रशंसा, स्तुति को प्राप्त करते हैं, श्रौर शरीर-भेद होने पर स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने 'ज्येष्ठो के सत्कार' करने के कर्म की प्रशसा कर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का हस्ति-नाग (ग्रव का) मोगालान (स्थिवर)था। बानर सारिपुत्र था। तित्तिर-पण्डित तो मैं ही था।

### ३८. बक जातक

"नाच्चन्त निकतिष्पञ्जो.." यह गाया, शास्ता ने जेनवन में विहार करते समय चीवर बनाने (=बढ़ाने) वाले भिक्षु के वारे में कही।

### क. वर्तमान कथा

एक जेतवन-वासी भिक्षु, चीवर सम्बन्धी काटना, रफ़ करना. . . बिठाना तथा सीना श्रादि जो जो कृत्य है, उन सब के करने में दक्ष था । अपने इस दक्ष-पन से वह चीवर बनाता था। इसलिए वह चीवर-वर्द्धक नाम से प्रसिद्ध हुआ। लेकिन यह क्या करता था ? पुराने चिथडो मे, हुशियारी का हाथ लगा, उनके मुद्र, सुन्दर चीवर बना, रँगने के बाद, उन्हे कफ दे ( ==श्राटे वाले पानी से रँग कर), शह्ल से रगड़, उज्ज्वल, मनोज्ञ करके रखता था। जो चीवर बनाना नही जानते, वह भिक्षु नया कपडा लेकर, उसके पास ग्राते ग्रोर कहते--- 'हम चीवर बनाना नही जानते । हमे चीवर बना दे ।'' वह 'श्रावसो ! चीवर बना कर समाप्त करने में बहुत चिर लगता है। मेरे पास बना बनाया चीवर पड़ा है। इस कपड़े को रख कर (उस बने बनाये) चीवर को ले जाम्रो" (कह चीवर) लाकर दिखाता । वह उसके रंग की तडक-भड़क देख, अन्दर के बारे मे कुछ न जानते हुए, (कपड़ा) पक्का है, मान, वह चीवर ले. ग्रीर चीवर-वर्द्धक को नया कपडा दे कर चले जाते। थोडा मैला होने पर, गरम पानी से घोया जाने पर, वह चीवर ग्रपनी श्रसलियत दिखा देता। जहाँ तहाँ पुराना-पन दिखाई देने लग जाता । वे (भिक्षु) पछताते थे। इस प्रकार श्राने वालो को पुराने चिथडो से ठगने के कारण, वह भिक्ष सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। जैसे यह जेतवन मे वैसे ही एक गाँव मे भी एक (भ्रौर) चीवर-वर्द्धक भिक्षु संसार को ठगता था। उसे मिलने वाले भिक्षम्रो ने कहा-"भन्ते ! जेतवन मे एक चीवर-वर्द्धक भिक्षु इस प्रकार ससार को ठगता है।"

उस भिक्षु के मन में हुम्रा—"मैं उस जेतवन-वासी भिक्षु को ठगूँ।" सो वह चीथडों का म्रच्छा चीवर बना कर, सुन्दर रग से रँग कर, उसे पहन जेतवन गया। दूसरे ने उसे देखते ही (चित्त में) लोम उत्पन्न कर पूछा— "भन्ते! क्या यह चीवर म्रापने बनाया है?"

"ग्रावुसो ! हाँ (मैने बनाया है)।"

"भन्ते ! यह चीवर मुभे दे दे । श्रापको दूसरा मिलेगा ।"

"ग्रानुसो! हम ग्रामवासी है। हमे प्रत्यय ( = चीवर ग्रादि ग्रावश्यकताये) ग्रासानी से नही मिलते। मैं यह चीवर तुभे देकर, स्वय क्या पहनूँगा?" "भन्ते । मेरे पास नया वस्त्र हैं। उसे ले जाकर श्राप श्रपना चीवर बना ले।" "श्रावुसो । मैने इसमे हाथ की मेहनत (=काम) की हैं, लेकिन तुम्हारे ऐसा कहने पर, मैं क्या कर सकता हूँ ? ले ले।" (कह) वह चीथडो का चीवर उसे दे, (उससे) नया कपड़ा ले, उसे ठग चल दिया। जेतवनवासी (भिक्षु) को वह चीवर पहन, कुछ दिन के बाद गरम पानी से धोने से पता लगा कि वह चीथडो का चीवर है। उसे देख वह लज्जित हुग्रा कि ग्रामवासी चीवर-वाले ने जेतवनवासी चीवर-वाले को ठग लिया। उसका ठगा जाना (भिक्षु-)सघ मे प्रगट हो गया।

एक दिन धर्म-सभा मे बैठे भिक्षु, उस कथा को कह रहे थे। बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ । अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" उन्होने वह बात कही।

बुद्ध ने "भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी जेतवनवासी चीवर वाला ग्रौरो को ठगता (रहा) है, पहले भी ठगता रहा है, ग्रौर न केवल ग्रभी ग्रामवासी (चीवर वाले) ने, इस जेतवनवासी चीवर वाले को ठगा है, पहले भी ठगा है" कह, पूर्व-जन्म की कथा ग्रारम्भ की—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्त्व, एक जगल में एक कमल के तालाब के पास खड़ें वृक्ष पर एक वृक्ष-देवता की योनि में उत्पन्न हुए। तब गर्मी के मौसम में एक दूसरें छोटे तालाब में पानी की कमी हो गई। इस तालाब में बहुत सी मछिलयाँ रहती थी। एक बगुला 'एक तरीकें से इन मछिलयों को ठग कर खाऊँगा' सोच, जाकर, पानी के किनारे, चिन्तित सा (मुँह बनाकर) बैठ गया। उसे देख मछिलयों ने पूछा—"ग्रार्यं! चिन्तित क्यों बैठें हो?"

"बैठा, तुम्हारे लिए चिन्ता कर रहा हूँ ।" "ग्रार्य <sup>।</sup> हमारे लिए क्या चिन्ता कर रहे हो <sup>?</sup>"

"इस तालाब में पानी नपा-तुला है, भोजन की कमी है, गरमी की ग्रधि-कता है, में बैठा तुम्हारे लिए सोच रहा हूँ कि ग्रब यह मछलियाँ क्या करेगी ?" "तो ग्रार्यं । (हम) क्या करे ?"

"यदि तुम मेरा कहना करो, तो में तुम्हे, एक एक करके, चोच से पकड, गंच-वर्ण के कमलो से श्राच्छन्न, एक महातालाब में ले जाकर छोड़ श्राऊँ।"

₹€0 [ १.४.३=

"ग्रार्य ! प्रथम कल्प से लेकर (ग्राज तक) मछिलियो की चिन्ता (= हित) करने वाला (कोई) बगुला नही हुग्रा । क्या तू हमे एक एक करके खाना चाहता है ?"

"मैं ग्रपने पर विश्वास करने वालो को—तुम्हे—नही खाऊँगा। लेकिन यदि मेरी तालाब के होने की बात पर विश्वास न हो, तो मेरे साथ एक मछली को (पहले) तालाब देखने के लिए भेजो।"

मछिलियों ने उसकी बात पर विश्वास कर, यह जल और स्थल दोनो जगहों पर समर्थ हैं (सोच) एक काणी महामछिली दी, और कहा इसे ले जाओ। उसने उसे ले जाकर, तालाव मे छोड दिया, और सब तालाब को दिखा कर, फिर (वापिस) लाकर उन मछिलियों के पास छोड दिया। उसने उन मछिलियों से तालाब के सौन्दर्य (सम्पत्ति) की प्रशसा की। उन्होंने उसकी बात सुन, जाने की इच्छक हो, (बगुले से) कहा—"भ्रच्छा। श्रार्य हमें लेकर चलो।"

बगुला पहले उस काणे महामत्स्य को तालाब के किनारे ले जाकर, तालाब दिखा कर, तालाब के किनारे उत्पन्न वरुण-वृक्ष पर जा बैठा। फिर उस (मछली) को शाखाग्रो के बीच मे डाल, चोच से कोच कोच कर मारा, श्रौर मास खा (मछली के) काँटो को वृक्ष की जड मे डाल दिया। फिर जाकर 'उस मछली को में छोड श्राया। श्रब दूसरी श्राये' (कह), इस उपाय से एक एक को ले जा, सब को खाकर, श्राकर देखा तो वहाँ एक भी बाकी न थी।

केवल एक केकडा वहाँ बाकी रह गया था। बगुले ने उसे भी खाने की इच्छा से कहा—भो। कर्कटक। मैं उन सब मछलियों को ले जाकर महा-तालाब में छोड ग्राया। ग्रा, तुभे भी ले चर्नुगा।"

"ले कर जाते हुए, मुभे कैसे पकड़ोगे ?"

"डस कर (चिचोच मे पकड कर) लेकर जाऊँगा।"

"तू । इस प्रकार ले जाते हुए, मुक्ते गिरा देगा । मैं तेरे साथ न जाऊँगा ।"

"डर मत! मैं तुभे अच्छी प्रकार पकड़ कर ले जाऊँगा।"

केकड़े ने सोचा—''इसने मछिलयो को (तो) तालाब में ले जाकर नहीं छोड़ा है। यदि मुभे तालाब में ले जाकर छोड़ देगा, तो इस में इसकी कुशल है; यदि नहीं छोड़ेगा, तो इसकी गर्दन छेद कर, इसका प्राण हर लूँगा।'' सो उसने कहा—"सौम्य बगुले ! तू ठीक से न पकड सकेगा । लेकिन हमारा जो पकडना होता है, वह पक्का होता है । इसलिए यदि मुभे अपने डंक से तू अपनी गर्दन पकड़ने दे, तो तेरी गर्दन को अच्छी तरह पकड़े, में तेरे साथ चलूंगा।" उसने उसकी ठगने की इच्छा को, 'न जानते हुए' 'अच्छा' कह, स्वीकार किया। केकडे ने अपने डक से, लोहार की सडासी की तरह, उसकी गर्दन को अच्छी तरह पकड़ कर कहा—"अब चल।" वह उसे ले जाकर, तालाब दिखा कर वरुण-वृक्ष की ओर उडा।

केकड़ ने कहा—''मामा । तालाब तो यहाँ हैं; लेकिन तू यहाँ से ले जा रहा है।" बगुले ने कहा—''मालूम होता है कि तू समभता है कि 'में प्यारा मामा और तू मेरी बहन का प्रिय-पुत्र हैं' कह उठाये फिरते हुए में तेरा दास हूँ। देख इस वरुण-रूख के नीचे पड़े (मछलियों के) कॉटो के ढेर को। जैसे में इन सब मछलियों को खा गया, वैसे ही तुभे भी खाऊँगा।"

केकड़े ने उत्तर दिया—"यह मछिलियाँ अपनी मूर्खता से तेरा आहार हुईं। में तुभे अपने को खाने न दूंगा। किन्तु तेरा ही विनाश करूँगा। तू अपनी मूर्खता के कारण नहीं जानता कि तू मुभसे ठगा गया। मरना होगा, तो दोनों मरेगे। देख, में तेरे सिर को काट कर भूमि पर फेक दूँगा।" (कह) उसने सडासी की तरह अपने डक से उसकी गर्दन भीची। बगुले ने चौडे मुँह, आँखों से आँसू गिराते हुए मरने से भयभीत हो, कहा—"स्वामी मुभे जीवन दे। में तुभे नहीं खाऊँगा।"

"यदि ऐसा है, तो उतर कर मुफ्ते तालाब में छोड़ ।"

उसने रुक कर, तालाब पर ही उतर, केकडे को तालाब के किनारे कीचड पर रक्खा। केकडा केंची से कुमुद की डठल काटने की तरह, उसकी गर्दन काट कर पानी में घुस गया। वरुण-वृक्ष के देवता ने उस म्राश्चर्य को देख, साधुकार देते हुए, (तथा) वन को उन्नादित करते हुए, मधुर स्वर से यह गाथा कही—

नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति,

#### श्राराधेति निकतिप्पञ्जो बको कक्कटकामिव।।

धूर्त-बुद्ध (श्रादमी) श्रपनी श्रधिक धूर्तता से सदैव सुख नही पा सकता। धूर्त-बुद्ध (श्रपने किये का फल) भोगता है, जैसे बगुले ने केकड़े (के द्वारा)।

नाच्चन्त निकतिप्पञ्जो निकत्या सुखमेधित, निकित कहते हैं ठगी को। निकितिप्पञ्जो, ठगने वाला श्रादमी (च्धूर्त) उस धूर्तता से (च्उस ठगी से); न श्रच्चन्तं सुखमेधित, सदैव सुख मे प्रतिष्ठित नही रह सकता, श्रवश्य ही विनाश को प्राप्त होता है। श्राराधेति —प्राप्त करता है। निकितिप्पञ्जो, धूर्तता सीखा हुग्रा श्रादमी —पापी श्रादमी, ग्रपने किये पाप-कर्म का फल पाता है, भोगता है। कैसे ? बको कक्कटकािमव, जैसे वगुले ने केकड़े से गर्दन छिदवाई, इसी प्रकार पापी पुरुष इस जन्म मे, वा श्रगले जन्म मे, श्रपने किये पाप के फलस्वरूप, भय का भागी होता है। इस श्रर्थ को प्रकाशित करते हुए, महासत्त्व ने वन को उन्नादित करते हुए धर्मोपदेश किया।

शास्ता, 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी ग्रामवासी चीवर-वाले (भिक्षु) ने इसे ठगा, पूर्व जन्म में भी ठगा है' कह, इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का वह बगुला (ग्रब का) जेतवन वासी चीवर-वाला हुग्रा। केकडा (ग्रब का) ग्रामवासी चीवर-वाला। वृक्ष-देवता तो में ही था।

#### ३६. नन्द जातक

"मञ्जे सोवण्णयो रासि .. "यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, सारिपुत्र स्थविर के शिष्य के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु सुभाषी था, बात सह लेने वाला था, श्रौर वडे उत्साह से स्थविर की सेवा करता था। एक समय (सारिपुत्र) स्थविर, शास्ता की ग्राज्ञा ले, चारिका करते हुए, दक्षिणागिरिं जनपद पहुँचे। वहाँ पहुँच कर वह भिक्षु ग्रिभमानी हो गया। स्थिवर का कहना नहीं मानता था। 'ग्रावुस! यह कर' कहने पर स्थिवर का विरोधी हो जाता था। स्थिवर उसका ग्राशय (=िचत्त की बात) न समभते (=जानते)। वह, वहाँ चारिका कर, फिर (वापिस) जेतवन लौट ग्राये। स्थिवर के जेतवन-विहार पहुँचने के समय से वह भिक्षु फिर पूर्ववत् हो गया। स्थिवर ने शास्ता से निवेदन किया—"भन्ते! मेरा एक शिष्य एक स्थान पर (रहते समय) सौ (मुद्रा) के खरीदे हुए गुलाम की तरह रहता है, दूसरे स्थान पर (रहते हुए) ग्रिभमानी हो, 'यह कर' कहने पर विरोधी हो जाता है।"शास्ता ने कहा—"सारिपुत्र! इस भिक्षु का यह स्वभाव ग्रब ही नहीं है, यह पहले भी एक स्थान पर तो सौ (मुद्रा) से खरीदे गुलाम की तरह रहता था, एक स्थान पर प्रतिपक्षी, (प्रति-)शत्रु हो जाता था।" यह कह स्थिवर के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने एक कुटुम्ब मे जन्म लिया। एक गृहस्थ उसका मित्र था। गृहस्थ अपने बूढा था, लेकिन उसकी स्त्री तरुण थी। उसको स्त्री से एक पुत्र पैदा हुग्रा। उसने सोचा—(कदाचित्) यह तरुण स्त्री, मेरी पृत्यु के बाद किसी दूसरे पुरुष को लेकर, इस धन को नष्ट कर दे। मेरे पुत्र को न दे। सो, मैं इस धन को पृथ्वी मे गाड दूँ।" (यह सोच) घर के नन्द नामक नौकर को ले, जगल मे जा, एक स्थान पर धन को गाड, उसको बता कर कहा—"तात! नन्द! मेरे मरने पर, मेरे पुत्र को यह धन बता देना। उसकी स्रोर से लापरवाह न होना।" (इस प्रकार) उपदेश दे कर मर गया।

कम से उसका पुत्र बडा हो गया। माता ने कहा—"तात । तेरे पिता ने नन्द को ले जाकर, धन गाडा था। सो, उसे मँगवाकर कुटुम्ब को पाल।" उसने एक दिन नन्द से पूछा—"मामा। क्या मेरे पिता ने कही कुछ धन गाड़ा है ?"

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> राजगृह के श्रास-पास ।

"स्वामी <sup>!</sup> हाँ।"

"वह कहाँ गडा है <sup>?</sup>"

"स्वामी ! जंगल मे ।"

"तो चले" कह, कुदाल टोकरी ले, जहाँ धन गडा था, वहाँ पहुँच कर पूछा—"मामा ! धन कहाँ है ?"

नन्द ने धन के ऊपर जा कर, उस पर खडे हो, धन के कारण अभिमानी हो कुमार को गाली दी—अपरे । दासी पुत्र । चेटक । यहाँ तेरा धन कहाँ से आया ?"

कुमार ने उसके कठोर वचन को सुन कर, ग्रनसुने की तरह कहा—"तो चले।"

उसको साथ ले, लौट कर, फिर दो तीन दिन गुजरने पर गया। नन्द ने वैसे ही गाली दी।

कुमार ने उसके साथ कठोर बात न बोल लौट कर सोचा—"यह दास, 'इस बार धन बता दूँगा' कह कर जाता है। लेकिन (वहाँ) जाकर गाली देता है। न मालूम, इसका क्या कारण है ने मेरे पिता का एक कुटुम्बिक मित्र है। उसे पूछ कर, (इसका कारण) मालूम करूँगा।" (यह सोच) बोधिसत्त्व के पास जा, सब हाल कह, पूछा—"तात! क्या कारण है?"

बोधिसत्त्व ने, 'तात ! जिस स्थान पर खडा हो कर नन्द गाली बकता है, उसी स्थान पर तेरे पिता का धन है। इस लिए जब नन्द तुभे गाली दे, तो 'ग्रा रे! दास । क्या गाली बकता है' कह, उसे खेच, कुदाली ले, उस स्थान को खोद, कुल से प्राप्त धन को निकाल, दास से उठवा कर, "(घर) ले जा" कह, यह गाथा कही—

#### मञ्जे सोवण्णयो रासि सोवण्णमाला च नन्दको , यत्थ दासो ग्रामजातो ठितो शुल्लानि गज्जति ॥

[जहाँ पर ग्राम दासी-पुत्र चन्दक खडा हो कर कठोर शब्दो की गर्जना करता है, में समभता हूँ (वही) स्वर्णमय (ग्राभरणो) का ढेर है, वहीं सोने की माला (है)।

मञ्जे, ऐसा में मानता हूँ। सोवण्णयो, सुन्दर वर्ण होने से सोवण्ण (वस्तुये)। वह कौन कौन सी? चाँदी, मणि, सोना, मूँगा आदि रत्न। इस

स्थान में 'सोवण्ण' से इन सब का मतलब है। उनका ढेर, सोवण्ण का ढेर। सोवण्णमालाच, तेरे पिता के पास, जो सुवर्ण माला थी, वह भी में मानता हूँ कि यही है। नन्दको यत्थ दासो जिस स्थान पर दास नन्दक खडा है, श्राम-जातो, हॉ (=श्राम)में दासी हूँ, इस प्रकार दासत्व के भाव को प्रगट करने वाली दासी का पुत्र। ठितो थुल्लानि गज्जित, वह जिस स्थान पर खड़ा हो कर स्थूल (वचन) =कठोर वचन बोलता है, वही, में समभता हूँ कि तेरा कुल-धन है।

बोधिसत्त्व ने कुमार को धन लाने का उपाय बताया। कुमार बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, घर गये; श्रौर फिर नन्द को ले, धन के गडे होने की जगह गये। श्रौर जैसे कहा था, वैसे ही किया। फिर उस धन को ला, कुटुम्ब को पाला। वह बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार दान श्रादि पुण्य कर्म करके, जीवन की समाप्ति पर, यथाकर्म (परलोक) सिधारा।

बुद्ध ने, 'पहले भी इस (भिक्षु) का यही स्वभाव था' कह, यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का नन्द (ग्रब का) सारिपुत्र का शिष्य था। लेकिन पण्डित-कुटुम्बिक तो में ही था।

# ४०. खदिरंगार जातक

"कामं पतामि निरयं...." यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, श्रनाथिपिण्डक के सम्बन्ध मे कही।

## क. वर्तमान कथा

श्रनाथिपिण्डिक ने केवल विहार बनवाने के लिए ही चौवन करोड धन, बुद्धशासन के निमित्त त्याग दिया — बिखेर दिया। वह तीन रत्नो ( — बुद्ध, धर्म, सघ) को रत्न समभ, ग्रौर किसी (रत्न) को रत्न ही न समभ, शास्ता के जेतवन मे विहार करने के समय, प्रति दिन तीन बार दर्शनार्थ जाता था। एक बार प्रात काल ही जाता, दूसरी बार जल-पान करके जाता, तीसरी बार शाम को जाता। श्रौर भी बीच बीच मे जाता ही था। जाते समय 'सामणेर' वा ग्रन्य बच्चे मेरे हाथ की ग्रोर देखेंगे कि क्या ले कर ग्राया है' सोच, वह कभी खाली हाथ नही गया। प्रात काल जाते समय यवागु लिवा कर जाता, जलपान करके जाते समय घी, मक्खन, मधु, गुड़ म्रादि म्रौर शाम को जाते समय गन्ध, माला, वस्त्र स्रादि ले कर जाता । इस प्रकार प्रति दिन परित्याग करते करते इसने कितना परित्याग किया, इसका (कोई) माप नहीं। बहुत से व्यापारियो ने भी, हाथ की लिखित देकर, इससे ग्रद्वारह करोड धन ऋण लिया था। महा-सेट्ठी उनसे वह धन नहीं मँगवाता था। ग्रौर भी, इसका कुलायत ग्रहारह करोड धन नदी के किनारे गाडा हुम्रा था। जल-वायु से नदी के कूल के ट्टने से वह समृद्र में बह गया। वहाँ वे लोहे की गागरे, जैसी की तैसी मुहर लगी हुई, समुद्र में बहती घूमती थी। ग्रौर, इस के घर में पॉच सौ भिक्षुग्रो को नित्यभात बँधा ही था। सेठ का घर भिक्षसघ के लिए चौरस्ते पर खोदी गई पुष्करिणी की तरह था। वह सब भिक्षुग्रो के लिए माता-पिता तुल्य था। सो, उसके घर, सम्यक सम्बद्ध भी जाते, अस्सी महास्थविर भी जाते, शेष जाने वाले भिक्षुत्रो की तो गणना ही न थी। वह घर सात तल्लो का स्रौर सात डचो-ढियो वाला था। उसकी चौथी डचोढी मे एक मिथ्या-धारणा वाली देवी रहती थी। सम्यक् सम्बुद्ध के घर में प्रवेश करते समय वह ग्रपने कोठे (=विमान) पर बैठी न रह सकती थी। बच्चो को साथ ले उतर कर, वह जमीन पर खडी होती । ग्रस्सी महास्थविर तथा ग्रन्य स्थविरों के भी प्रविष्ट होते, तथा निकलते समय उसे वैसा ही करना पडता। उसने सोचा जब तक श्रमण गौतम, अथवा उसके श्रावक इस घर में आते-जाते रहेगे, तब तक मुभे सुख नही। मैं नित्य-प्रति उतर उतर कर जमीन पर नहीं खडी हो सकती, सो मुक्ते ऐसा (प्रबन्ध) करना चाहिए, जिसमे ये (लोग) इस घर मे प्रवेश न करे।

<sup>ै</sup>भिक्षु बनने से पूर्व "ब्रह्मचारी" की ग्रवस्था ।

सो एक दिन वह लेटे हुए महाकर्मचारी के पास जाकर, (श्रपना) प्रकाश फैला कर खड़ी हो गई। "यहाँ कौन है ?" पूछने पर उत्तर दिया, "मैं चौथी डचोढ़ी में रहने वाली देवी हूँ।"

"किस लिए ग्राई है ?"

"क्या तुम सेठ की करनी को नहीं देखते? वह ग्रपने भविष्य का कुछ भी ख्याल न कर, धन ले जाकर, केवल श्रमण गौतम की पूजा करता है। धन को न व्यापार में लगाता है, न कर्मान्त ( = खेती) में। तुम सेठ को उपदेश करो, जिसमें वह ग्रपने काम में लगे, जिससे श्रावको सहित श्रमण गौतम, इस घर में प्रवेश न किया करें।"

उस (=महाकर्मचारी) ने उसे उत्तर दिया—"मूर्ख देवी । सेठ जो धन खर्च करता है, वह कल्याणकारी बुद्ध-शासन के लिए खर्च करता है। यदि वह (मेरी) चोटी पकड कर मुक्ते बेच भी देगा, तो भी मैं कुछ न कहूँगा। तूजा।"

इसी तरह, एक दिन, उसने सेठ के पुत्र को जाकर उपदेश दिया। सेठ के पुत्र ने भी उसे पूर्वोक्त प्रकार से भाड बताई। सेठ को तो वह जाकर, कुछ कह ही न सकती थी।

सेठ के निरन्तर दान देते रहने में, व्यापार न करने के कारण श्रामदनी कम हो जाने से, धन में बहुत न्यूनता श्रा गई। (श्रौर) ऐसे ही कम से होते रहने से, उसके दिद्र हो जाने पर, उसके पहनने के वस्त्र, बिस्तर, भोजन श्रादि भी पूर्व-सदृश न रहे। ऐसा होने पर भी, वह भिक्षुसघ को दान देता, लेकिन हा, श्रब प्रणीत (श्राहार) न दे सकता। एक दिन वन्दना करके बैठे उसे, शास्ता ने पूछा—"गृहपित । तुम्हारे घर से दान दिया जाता है?"

"भन्ते । दिया जाता है, लेकिन वह होता है (केवल) कणी का चावल श्रौर मद्रा  $^{?}$ "

गृहपित । 'मैं रूखा-सूख दान दे रहा हूँ' सोच सकुचित न हो, प्रसन्न ( = पित्र ) चित्त से बुद्धो, प्रत्येक-बुद्धो तथा बुद्ध-श्रावको को दिया हुम्रा दान रूखा-सूखा दान नहीं होता, क्यो ? (उसका) बडा फल होने से । चित्त प्रसन्न ( = पित्र ) रख सकने वाले का दान 'रूखा-सूखा-दान' नहीं होता—यह इस प्रकार जानना चाहिए—

नित्थ चित्ते पसन्निम्ह ग्रप्पिका नाम दिक्खणा, तथागते वा सम्बद्धे ग्रथवा तस्स सावके ॥ न किरित्थ ग्रनोमदिसससु पारिचरिया बुद्धेसु ग्रप्पिका, सुक्खाय ग्रलोणिकाय च पस्स फलं कुम्मासिपण्डिया ॥

[चित्त प्रसन्न हो, तो तथागत —सम्बुद्ध ग्रथवा उसके श्रावक को दी गई दक्षिणा 'थोड़ी' नही होती । श्रौर न ही ग्रनोमदर्शी ग्रादि बुद्धों की की हुई सेवा (—पारिचरिया) "थोडी" होती हैं । सूखे, श्रलूणे, कुल्माश-पिण्ड के (ही दान के) फल को देख ।]

उसे और भी कहा कि हे गृहपित । तू अपना 'रूखा-सूखा' दान देता हुआ ही आठ आर्य-पुद्गलो को दे रहा है; लेकिन वेलाम (ब्राह्मण) के जन्म में उत्पन्न होने के समय, सारे जम्बुद्धीप के हलों को रुकवा कर सात रत्न देते हुए, पाँच महा निदयों को एक साथ, एक प्रवाह करने की तरह (चित्त को प्रसन्नता से भर कर) महादान देने के समय, कोई त्रिशरण-गत वा पञ्च-शील रक्षक (—सदाचारी) न मिला। इस प्रकार दान का अधिकारी पुद्गल मिलना भी दुर्लभ है। सो ''मेरा दान रूखा-सूखा है'' समक्ष, तू संकुचित मत हो। यह कह वेलामसूत्र' कहा।

सो वह देवी (यद्यपि) पहले, सेठ के साथ बात भी न कर सकती थी, (तो भी) अब सेठ के दुर्गति-प्राप्त होने से, '(शायद) वह मेरी बात मान ले' सोच, आधी रात के समय, (सेठ के) शयनागार में प्रविष्ट हो, (अपना) प्रकाश फैला आकाश में खडी हुई।

सेठ ने उसे देख कर पूछा—"यह कौन है ?"
"सेठ ! में चौथी डघोढी में रहने वाली देवी।"

"किस लिए आई है ?"

"तुभे नेक-सलाह देने की इच्छा से।"

"ग्रच्छा । तो कह।"

''बडे सेठ<sup>।</sup> तू भविष्य की चिन्ता नही करता। बेटे-बेटी की ग्रोर नही

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> यह सूत्र त्रिपिटक में नहीं मिला।

खिंदरंगार ] २६६

देखता। तूने श्रमण गौतम के शासन के लिए बहुत धन खर्च कर दिया। सो, तू चिरकाल तक धन खर्च करते रहने से तथा (खेती ग्रादि) नवीन कर्मान्तों के न करने से, श्रमण गौतम के कारण निर्धन हो गया। ऐसा होने पर भी तू श्रमण गौतम (का पीछा) नहीं छोडता। ग्राज भी श्रमण तेरे घर मे ग्राते ही है। जो कुछ वह ले गये, सो ग्रब वापिस नहीं मँगवाया जा सकता, वह ले जाये। लेकिन ग्रब से, तू श्रमण गौतम के पास जाना, ग्रौर उसके श्रावकों को इस घर मे ग्राने देना—बन्द कर दे। (चलते चलते जरा) रुक कर भी, श्रमण गौतम को बिना देखें, (ग्रपने) व्यापार ग्रौर वाणिज्य को करते हए, (ग्रपने) कुटुम्ब को पाल।"

उसने उसे पूछा—"जो नेक-सलाह तू मुभे देना चाहती है, वह यही है ?" "हाँ । यही है ।"

"तुभ जैसे (चैसे) सौ, हजार (ग्रौर) लाख देवताग्रों (के उपदेश) से भी मैं हिलने वाला नहीं। दस-बल(-धारी) के प्रति मेरी श्रद्धा सुमेरु पर्वत की तरह ग्रचल (है), सुप्रतिष्ठित (है)। मैंने कल्याण-कारी (त्रि-)रत्न-शासन के लिए जो धन खर्च किया है, उसे तूने 'ग्रनुचित' कहा। तूने बुद्ध-शासन को दोष दिया। इस प्रकार की ग्रनाचारिणी, दुश्शीला ग्रौर मनहूस के साथ में एक घर में नहीं रह सकता। निकल, मेरे घर से, शीध्र निकल ग्रौर (किसी) दूसरी जगह जा।"

श्रोतापन्न, ग्रार्य-श्रावक (ग्रनाथिपिण्डक) की बात सुन कर, न ठहर सकने के कारण, वह ग्रपने निवास-स्थान पर गई ग्रौर बच्चो को हाथ से पकड़े हुए, (वहाँ से) निकल ग्राई। (लेकिन) निकल कर, ग्रन्थ निवास-स्थान न मिलने के कारण, 'सेठ से क्षमा माँग, वही रहूँगी' सोच, नगर-रक्षक देवपुत्र के पास जा, उसे प्रणाम कर, खडी हुई।

'किस लिए ब्राई ?' पूछने पर, वह बोली—स्वामी ! मैंने बिना सोचे समभे, सेठ को (कुछ) कह दिया। उसने कुद्ध हो, मुभे निवास-स्थान से निकाल दिया। सेठ के पास ले जा, उससे क्षमा दिलवा मुभे रहने के लिए स्थान दिलवाइए (=दीजिए)।

"तूने सेठ को क्या कहा?"

स्वामी ! मैंने सेट को कहा कि अब से बुद्ध-उपस्थान ( = सेवा), संघ-

उपस्थान मत करो। श्रमण गौतम को घर मे मत ग्राने दो।"

"तूने अनुचित कहा। (बुद्ध-)शासन की निन्दा की। मैं तुभे ले कर सेठ के पास जाने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

वह, उससे कुछ सहायता न पा, चारो महाराजाग्रो के पास गई। उनसे भी वैसा ही इनकार मिलने पर शक देवेन्द्र के पास जा, वह हाल कह, बडी नम्रता से याचना करने लगी—"हे देव । निवास-स्थान न मिलने से, मैं बच्चो को हाथ से पकडे पकडे, ग्रशरणा हो घूमती हूँ। ग्रपनी कृपा से, मुभे निवास-स्थान दिलवाइए।"

उसने भी कहा—तूने अनुचित किया जो बुद्ध-शासन की निन्दा की । मैं भी तेरे पक्ष में सेठ के साथ बातचीत तो नहीं कर सकता, लेकिन एक ऐसा उपाय बताता हुँ कि जिससे सेठ क्षमा कर दे।

"ग्रच्छा देव कहे।"

"मनुष्यों ने तमस्सुक दे कर सेठ के हाथ से ग्रट्ठारह करोड (की) सख्या में घन लिया है। तू सेठ के मुनीम (=ग्रायुक्तक) का भेष बना, िकसी को बिना जनाये, उन लेखों को ले, कुछ यक्षतरुणों के साथ, एक हाथ में लेख ग्रीर एक हाथ में कलम ले कर, उन (ग्रादिमियों) के घर जा, ग्रीर घर के बीच में खड़े हो, ग्रपने यक्ष-बल (=ग्रानुभाव) से उन्हें डरा, 'यह तुम्हारें लेख हैं। हमारें सेठ ने ग्रपने एश्वर्य के समय में तुम्हें कुछ नहीं कहा, लेकिन ग्रब वह निर्धन (=दुर्गिति-प्राप्त) हो गया है। तुमने जो कार्षापण लिए हैं सो दो' (कह) ग्रपनी यक्ष-पन की सामर्थ्य दिखा कर, वह सब ग्रट्ठारह करोड सोना वसूल (=साध) कर सेठ के खाली कोठें को भर। दूसरें ग्रिचरवती ने नदी के किनारें गड़ा धन, नदी-कूल के टूट जाने से समुद्र में बह गया है, उसे भी ग्रपने सामर्थ्य से लाकर, खाली कोठें भर। ग्रीर भी, ग्रमुक स्थान पर बिना मलकीयत का ग्रट्ठारह ही करोड धन है, उसे भी ला कर खाली कोठें भर। इस चौवन करोड धन से इन खाली कोठों को भरने से दण्ड-कर्म करके, महासेठ से क्षमा माँगना।"

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> रापती ।

खदिरंगार ] ३०१

वह 'देव <sup>!</sup> ग्रच्छा' कह, उसके कथन को म्वीकार कर, तदनुसार सब धन लाकर, ग्राधी रात के समय, सेठ के शयनागार में प्रविष्ट हो, (ग्रपना) प्रकाश फैला, ग्राकाश में खडी हुई।

"यह कौन है ?" पूछने पर बोली—"सेठ जी । मैं तेरी चौथी डघोढी में रहने वाली अधी-मूर्ख देवी हूँ। मैंने अपनी महामोह (भरी) मूढता के कारण, बुद्ध-गुणो को न जानकर, पिछले दिनो में आपसे (जो) कुछ कहा, मेरे उस दोष को क्षमा करे। मैंने देवेन्द्र शक के कथनानुसार आपका ऋण वसूल (=साध) कर अट्ठारह करोड, समुद्र में बहा हुआ अट्ठारह करोड, जिस किसी स्थान में बिना मलकीयत का अट्ठारह करोड, —इस प्रकार चौवन करोड़ लाकर, खाली कोठों को भरने से, दण्ड चुका दिया, जेतवन विहार के (निर्माण) में जितना धन खर्च हुआ, उतना एकत्र कर दिया। निवास-स्थान न मिलने से मैं कष्ट पा रही हूँ। सेठ जी । मैंने अज्ञान से जो (भूल) कर दी, उसे क्षमा करे।"

श्रनाथिपिण्डक ने, उसकी वात सुन, यह कहती है—'मैने दण्ड भुगत लिया, श्रौर श्रपने दोप को स्वीकार करती हूँ' सोच विचार किया कि इसे सम्यक् सम्बुद्ध के पास ले चलना चाहिए, इसका ख्याल कर तथागत श्रपने गुणो को जनायेगे। सो उसे कहा, "श्रम्म । देवी । यदि तू मुक्त से क्षमा प्रार्थना करना चाहती है, तो शास्ता के सम्मुख क्षमा-प्रार्थना करना।"

"ग्रच्छा । ऐसा करूँगी, लेकिन मुफ्ते शास्ता के पास ले चलना।" उसने 'ग्रच्छा' कह, रात्रि समाप्त होने पर प्रात काल ही उसे ले, शास्ता के पास जा, शास्ता को उसका सब किया-कराया कह सुनाया। शास्ता ने, "हे गृहपति! जब तक पाप-कर्म करने वाले का पाप पकता नहीं है, तब तक वह सुख भोगता है, लेकिन जब उसका पाप-कर्म पकता है ( —फल देता है), तब से वह दुख ही दुख भोगता है। (इसी प्रकार) जब तक पुण्य-कर्म ( —भद्र) करने वाले का पुण्य पकता नहीं, तब तक वह दुख भोगता है, लेकिन जब उसका पुण्य-कर्म पकता है, तव से वह सुख ही सुख भोगता है" कह, धम्मपद की इन दो गाथाग्रो को कहा—

पापोपि पस्सिति भद्रं याव पापं न पच्चिति, यदा च पच्चिति पापं ग्रथ पापो पापानि पस्सिति ॥

#### भद्रोपि पस्सिति पापं याव भद्रं न पच्चति, यदा च पच्चति भद्रं ग्रथ भद्रो भद्रानि पस्सिति ॥

इन गाथाश्रो के (कहे जाने के) श्रन्त में, वह देवी श्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुई। उसने शास्ता के चकािद्धत चरणों में गिर कर कहा—"भन्ते! मैंने राग में श्रनुरक्त हो, दोष (=कोष) से दूषित हो, मोह से मूढ हो, श्रविद्या से श्रधी हो, श्रापके गुणों को न जानने के कारण श्रप-शब्दों का प्रयोग किया, सो वह मुभे क्षमा करें।" शास्ता से क्षमा माँग, उसने सेठ से क्षमा माँगी।

उस समय **श्रनाथिपिण्डक** ने शास्ता के सम्मुख श्रपना गुण वर्णन किया— "भन्ते । यह देवी 'बुद्ध-सेवा श्रादि मत कर' (कह) मना करने पर भी, मुफे रोक नहीं सकी, 'दान नहीं देना चाहिए' कह रोकने पर भी, मैने दान दिया ही। भन्ते । क्या यह मेरा गुण नहीं ?"

शास्ता ने, "हे गृहपित । तू श्रोतापन्न (है), श्रायं-श्रावक (है), श्रचल श्रद्धा वाला (है), विशुद्ध-दृष्टि (=िवचार) है, यदि यह श्रल्प-शाक्य देवी तुभे (दान देने से) रोकने पर भी, नहीं रोक सकी, तो यह श्राश्चर्य्य (की बात) नहीं। श्राश्चर्य्य तो यह है कि बुद्ध के श्रनुत्पन्न हुए रहने पर (भी), (उनके) ज्ञान के श्रपरिपक्व रहने पर भी, पूर्व समय में पण्डितों ने, कामावचर-लोक के स्वामी मार (=शैतान) के श्राकाश में खडे हो कर 'यदि दान दोगे, तो इस नरक में पकोगे' (कहते हुए) श्रस्सी हाथ गहरा श्रङ्गारों का ढेर दिखाकर 'दान मत दो' मना करने पर भी, पद्म की किल के बीच में खड़े हो कर दान दिया।" यह कह, श्रनाथिपिष्डक के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व बाराणसी सेठ के घर में उत्पन्न हो, नाना प्रकार की सुख-सामग्री (=भोगो) में देव-कुमार की तरह परविरिश पा, क्रम से ज्ञान प्राप्त कर, सोलह वर्ष की ही ब्रायु में सब शिल्पों में दक्ष हो गये। वे, पिता के मरने पर,

सेठ का स्थान ग्रहण कर, नगर के चार द्वारो पर चार दान-शालाये, नगर के बीच मे एक, ग्रपने निवासस्थान के द्वार पर एक—छ दान-शालाये बनवा कर महा-दान देते, सदाचार की रक्षा करते तथा व्रत (=उपोसथ कर्म) रखते थे। सो एक दिन, प्रात काल का जल-पान करने के समय, बोधिसत्त्व के लिए नाना प्रकार के ग्रग्न रसो से युक्त, मनोज्ञ भोजन लाये जाने पर, एक सप्ताह के बाद ध्यान से उठ कर, एक प्रत्येक-बुद्ध, भिक्षा माँगने के समय का ख्याल कर, 'ग्राज मुफे (भिक्षा के लिए) बाराणसी सेट के गृह-द्वार पर जाना चाहिए' (सोच), नाग-लता की दातुन कर, ग्रनोतप्त-दह (भील) पर मुँह धो, मनोशिला तल पर खडे हो (चीवर) पहन, काय-बन्धन (=पट्टी) बाँध, चीवर धारण कर, ऋद्विमय-मिट्टी का बर्तन (=पात्र) ले, ग्राकाश से ग्राकर, बोधिसत्त्व का भोजन लाये जाने के ठीक समय, (उसके) गृहद्वार पर ग्राकर खडे हुए।

बोधिसत्त्व ने उसे देखते ही, ग्रासन से उठ, सत्कार कर सेवक की ग्रोर देखा। (उसको) "स्वामी क्या कहूँ ?" पूछने पर कहा— "ग्राय्यं का पात्र लाग्नो।" उसी क्षण पापी मार ने थरित हुए उठ कर 'इस प्रत्येक-बुद्ध को ग्राज से सात दिन पहले ग्राहार मिला है, ग्राज न मिलने पर, इसका विनाश हो जायगा सो, में इसका विनाश करूँगा ग्रौर सेठ के दान देने में क्कावट डालूँगा' (सोच), उसी क्षण ग्राकर देहली के बीच में ग्रस्सी हाथ गहरा ग्रङ्गारों से भरा गढा बनाया। वह खदिर ग्रङ्गारों से परिपूर्ण, प्रज्वलित, ज्योतिमान् गढा, ग्रवीची महा-नरक सदृश प्रतीत होता था। उसे बना कर, ग्रपने ग्राप ग्राकाश में ठहरा। पात्र लेने के लिए जाने वाला ग्रादमी उसे देखते ही भयभीत हो कर लौटा। बोधिसत्त्व ने पूछा— "तात । लौट क्यो ग्राया ?"

"स्वामी । आ्राङ्गन (देहली) में जलते हुए, दहकते हुए अ्राङ्गारों का बडा भारी गढ़ा है।" दूसरा, तदनन्तर तीसरा—इस प्रकार जितने आये, सभी भयभीत होकर भाग गये।

बोधिसत्त्व ने सोचा— "ग्राज वशवर्ती मार मेरे दान मे रुकावट डालने के लिए उद्यत हुग्रा होगा। यह नही जानता कि मुक्ते सौ मार, हजार मार भी (मिलकर) नही हिला सकते। ग्राज मालूम करूँगा कि मार में ग्रौर मुक्त मे— हम दोनो मे— कौन ग्रधिक शक्तिशाली है, कौन ग्रधिक प्रतापवान् है ?।" सो उसने जैसी की तैसी परोसी हुई थाली को ग्रपने (सिर पर) ले, घर से निकल,

श्रङ्गारों के गढ़े के किनारे पर खड़े हो, श्राकाश की श्रोर देखते हुए, मार को देख कर पूछा—"तू कौन है ?"

"मै मार हूँ।"

"यह ग्रङ्गारो का गढा तुने बनाया है ?"

"हाँ, मैने।"

"किस लिए <sup>?</sup>"

"तेरे दान देने मे रुकावट डालने के लिए, तथा प्रत्येक-बुद्ध का जीवन विनाश करने के लिए।"

बोधिसत्त्व ने, "न तो में तुभे अपने दान में रुकावट डालने दूँगा, और न में तुभे प्रत्येक-बुद्ध का जीवन विनाश करने दूँगा। मुभ में और तुभ मे—दोनो मे—कौन अधिक शिक्तशाली हैं, इसकी आज परीक्षा करूँगा" (कह) अङ्गारो के ढेर के किनारे खडे हो, "भन्ते प्रत्येक-वर-बुद्ध में इस अङ्गारो के गढे में मुँह के बल (—िसर नीचे) गिरने पर भी, नही रुकूँगा, आप केवल मेरे दिये हुए भोजन को स्वीकार करे।" (कह) यह गाथा कही—

#### कामं पतामि निरयं उद्धपादो श्रवंसिरो, नानरियं करिस्सामि हन्द पिण्डं पटिग्गह ॥

[भले ही मैं, सिर नीचे, पैर ऊपर (होकर) इस नरक में क्यों न गिरूँ, लेकिन मैं अनार्य (कर्म) न करूँगा। हन्त ! ग्राप मेरे पिण्ड-पात (=भिक्षान्न) को स्वीकार करे।]

गाथा का साराश यह है—भन्ते प्रत्येक-वर-बुद्ध । यदि में तुम्हे पिण्ड-पात (=भिक्षा) देते हुए, निश्चित रूप से भी इस नरक मे पैर-ऊपर सिर नीचे (=निरय उद्धपादो अवंसिरो) होकर गिरूँ (=पतामि), तो भी यह जो अदान है, अशील है, आर्यों (=श्रेष्ठ) का अकृत्य तथा अनार्यों का कृत्य होने से, अनार्य कहलाता (=वृच्चिति) है, उस अनार्य (-कर्म) को नहीं करूँगा (= न तं अनिरयंकरिस्सामि) हन्त (=हन्द) ! इस मेरी दी भिक्षा को ग्रहण करे (=पिण्डं पटिग्गह) । हन्त (=हन्द) केवल निपात है। खिंदरंगार ] ३०५

यह कह दृढ-निश्चय पूर्वक बोधिसत्त्व, भोजन की थाली को ले, अङ्गारो के गढे के ऊपर से चले। उसी समय, अङ्गारो के ग्रस्सी हाथ गहरे गढे के तल के ऊपर ही ऊपर, (छ पद्मो के ग्रितिरिक्त) एक सातवे महापद्म ने उत्पन्न होकर, बोधिसत्त्व के पैरो को स्पर्श किया। फिर एक महा-तूम्बा भर रेणु उठी। ग्रीर उसने महासत्व के सिर पर से गिर कर, उसके सारे शरीर को स्वर्ण-चूर्ण से ग्राकीर्ण की तरह कर दिया। उसने पद्म की कली में खंडे होकर नाना (प्रकार के) ग्रग्न रसो (से युक्त) भोजन, प्रत्येक-बुद्ध के पात्र में रक्खा। प्रत्येक-बुद्ध, उसे स्वीकार कर, (दान-) ग्रनुमोदन कर, पात्र को ग्राकाश में फेक, जन (-समूह) के देखते ही देखते, ग्रपने ग्राप भी ऊपर जाकर, नाना प्रकार की बादलो की पिक्तयों को मिदत करते हुए से, हिमवन्त को चले गये। मार भी पराजित हो, दु खित-चित्त ग्रपने निवास-स्थान को चला गया। बोधिसत्त्व पद्म की कली में खंडे ही खंडे, जन(-समूह) को दान-शील ग्रादि की बडाई करके, धर्मोपदेश दे, जनसमूह के साथ ही, ग्रपने निवास-स्थान में प्रविष्ट हो जीवित रहते, दानादि पुण्य-कर्म करते हुए, कर्मानुसार (परलोक) गए।

बुद्ध ने, 'गृहपित । यह ग्राश्चर्य (की वात) नहीं कि तू दृष्टि (=विचार) सम्पन्न होकर, उस देवी (के उपदेश) से चञ्चल (=किम्पित) नहीं हुग्रा, पूर्व पिंडतों का कृत्य ही ग्राश्चर्य-कारक है' (कह), इस धर्मदेशना को ला मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय के प्रत्येक-बुद्ध तो वहीं परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। मार को पराजित कर, पद्म-कली में खडें हो प्रत्येक बुद्ध को भिक्षा देने वाला बाराणसी सेट तो में ही था।

# पहला परिच्छेद

# ५. अत्थकाम वर्ग

## ४१. लोसक जातक

**"यो ग्रत्थकामस्स** ." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन मे** विहार करते समय, लोसकतिस्स नामक स्थविर के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

यह लोसकतिस्स नामक स्थविर कौन था ? कोशल राष्ट्र मे एक स्वकीय कुलनाशक, ग्रलाभी (=जिसे कुछ न मिले), मछ्त्र्या-पुत्र भिक्षु । उसने (अपने) पूर्व-जन्म के स्थान से च्युत हो कोशल राष्ट्र में सहस्र घरो वाले मछुत्रो के एक गाँव मे, एक मछुवे की स्त्री की कोख मे प्रवेश किया। उसके गर्भ में ग्राने के दिन वे सहस्र परिवार जाल-हाथ में लेकर (मछली) ढूँढने के लिए गए। उन हजार कुलो को नदी श्रौर तालाब श्रादि मे एक छोटी सी मछली भी न मिली। उस समय से उन मछुत्रो की ग्रवनित ही होती रही। उसीके गर्भ प्रवेश करने के समय से लेकर, वह गाँव, सात बार ग्राग से जला, सात बार राजा से दण्डित हुआ। इस प्रकार दिन प्रति दिन (=कम से) दुर्गति को प्राप्त हो, उन्होने सोचा--"पूर्व समय मे हमे ऐसा नही (होता) था। लेकिन श्रब प्रति दिन ग्रवनत हो रहे हैं। हमारे ग्रन्दर कोई (एक) मनहूस (हो गया) होगा। हम दो भागो ( = वर्गों) में बँट जाये।" सो, पॉच पाँच सौ कुल एक एक जगह हो गए। तब से, जिस हिस्से मे उसके माता पिता थे, उसीकी अवनित होने लगी, दूसरे की उन्नति । उन्होने फिर उस कुल को भी दो मे बॉट, ग्रीर फिर उस (से अगले कुल) को भी दो में बॉट, इस प्रकार जब तक वह एक (मन-हूस) कुल ही अकेला रह गया, तब तक बाँट, "वही कुल मनहूस है"—ऐसा मालुम कर, उसे थपेड कर निकाल दिया।

सो उसकी माँ ने बडी किठनाई से दिन काटते हुए गर्भ के परिपक्व होने पर, एक स्थान पर प्रसव किया। ग्रन्तिम शरीर-धारी (व्यक्ति) को नष्ट नहीं किया जा सकता। उसके हृदय में ग्रह्तिव का उपनिश्रय ( कारण) वैसे ही प्रकाशित रहता है, जैसे घड़े में दीपक। वह उस बालक को पाल, उसके भाग दौड कर चल सकने के समय, उसके हाथ में एक खोपड़ी दे 'पुत्र । एक घर में प्रवेश कर' (कह) उसके एक घर में प्रवेश करने पर, ग्रपने भाग गई। वह उस दिन से, वहाँ ग्रकेला ही भीख माँग, एक स्थान में पड़ा रहता था। न नहाता, न शरीर साफ करता, धूलि-पिशाच की तरह बड़ी किटनाई से जीवन बिताता। इसी प्रकार, कम से सात वर्ष का होकर वह एक गृह-द्वार पर उक्खिल-धोवन फेकने के स्थान पर पड़े हुए चावल के दानों को, कौए की तरह एक एक चुन कर खाता था।

श्रावस्ती मे भिक्षा-चार करते समय धर्मसेनापित (=सारिपुत्र) ने, उसे देख 'इस प्राणी की दशा श्रत्यन्त करुणाजनक है, यह किस गाँव का रहने वाला है  $^{?}$ ' सोच, उसके प्रति मैत्री-भाव की वृद्धि कर, उसे बुलाया—''ग्ररे । ग्रा।" वह जाकर, स्थिवर को प्रणाम कर, खडा हो गया। स्थिवर ने उसे पूछा—''तू किस गाँव का रहने वाला है  $^{?}$  तेरे माता-पिता कहाँ है  $^{?}$ "

"भन्ते । में प्रत्यय ( =ग्रावश्यक वस्तु)-रहित हूँ । मेरे माता-पिता 'हम इसके कारण कष्ट पाते हैं' (सोच), मुक्ते छोड भाग गये।"

"तु प्रव्रजित होगा ?"

"भन्ते । मैं तो प्रव्रजित हो जाऊँ, लेकिन मुभ दरिद्र (=कृपण) को कौन प्रव्रजित करेगा ?"

"मै प्रव्रजित करूँगा।"

"ग्रच्छा <sup>!</sup> तो प्रव्रजित कर ले।"

स्थिवर ने उसे खाद्य-भोज्य दे, विहार ले जा, श्रपने ही हाथ से नहला, प्रक्रजित कर, वर्ष सम्पूर्ण होने पर उपसम्पन्न किया। वृद्ध होने पर, वह लोसकितस्स स्थिवर कहलाया—श्रपुण्यवान् तथा श्रल्पलाभी हुग्रा। श्रसाधारण दान मे भी उसे पेट भर खाने को न मिला, उतना ही मिला, जितना जीवित

<sup>ै</sup>बीस वर्ष से कम श्रायु रहने पर कोई उपसम्पन्न नही हो सकता।

रहने भर के लिए पर्य्याप्त हो। उसके पात्र मे एक ही कडछी यवागू डालने पर भी, उसका पात्र लबालब भरा प्रतीत होता। सो, मनुष्य 'इसका पात्र भर गया' सोच, उससे स्रागे यवागू बॉटते। ऐसा भी कहते हैं कि उसके पात्र मे यवागू डालने के समय, मनुष्यों के (ही) पात्र से यवागू स्रन्तध्यान हो जाता। खाद्य स्रादि के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही (होता)। श्रागे चल कर, विदर्शना-भावना (—योग) की वृद्धि करके स्रईत्व (नामक) स्रम्रफल मे प्रतिष्ठित होकर भी वह स्रत्पलाभी ही रहा। इस प्रकार कम से, उसके स्रायुसस्कारों के नाश होने पर, उसका परिनिर्वाणदिवसं भी स्रा गया।

धर्मसेनापित ने ध्यान लगा कर, उसके परिनिवृत्त होने की बात जान, 'यह लोसकितस्स स्थिवर ग्राज परिनिर्वाण को प्राप्त होगे, इसिलए मुफे चाहिए िक में इन्हे ग्राज यथावश्यकता भोजन दूँ' सोच, उसे साथ लेकर, श्रावस्ती में पिण्डपात के लिए प्रवेश किया। उस (लोसकितिस्स) स्थिवर के साथ होने के कारण, इतने ग्रधिक मनुष्यो की श्रावस्ती में, स्थिवर को किसी ने हाथ पसार कर, प्रणाम तक न किया। स्थिवर ने उसे, 'ग्रयुष्मान्! जा कर ग्रासनशाला में बैठें' (कह) भेज, ग्रपने को जो ग्राहार मिला था, उसे 'इसे लोसक को दो' कह कर भेजा। ले जाने वाले (ग्रादमी) लोसक स्थिवर को भूल (उस ग्राहार को) ग्रपने ही खा गये।

स्थिविर के उठ कर विहार को जाते समय, लोसकितस्स स्थिविर ने जाकर, स्थिविर की वन्दना की। स्थिविर ने रुक कर खड़े ही खड़े पूछा—"ग्रायुष्मान् तुम्हें भोजन मिला ?" "भन्ते । नहीं मिला।" स्थिविर ने सवेग-प्राप्त हो समय की ग्रोर देखा। (भोजन कर सकने) का समय बीत चुका था। स्थिविर 'ग्रायुष्मान् । यहीं बैठे' कह लोसक स्थिवर को ग्रासनशाला में बिठा (ग्रपने) कोशल नरेश के घर गये। राजा ने स्थिविर का पात्र लिवा, भोजन का ग्रसमय देख, पात्र को चार-मधुर पदार्थों से भरवा (स्थिवर को) दिलवाया।

स्थविर, उसे ले जाकर, 'ग्रायुष्मान् तिस्स ! ग्राग्रो, इन चतु-मधुरो का

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> क्षीणास्रवों के मरने को परिनिर्वृत्त होना कहते हैं ।

<sup>े</sup>घी, मक्खन, राब तथा मधुर ।

भोजन करों कह, पात्र को (ग्रपने ही हाथ में) लिए खडे रहे। लोसक स्थिवर के गौरव से, शर्म के मारे नही खाते थे। स्थिवर ने कहा—"ग्रायुष्मान् तिस्स । ग्राग्रो, मैं इस पात्र को लेकर खडा रहूँगा। तुम बैठ कर भोजन करो। यदि मैंने इस पात्र को हाथ से छोड दिया, तो (कदाचित्) इसमें कुछ न रहे।" सो ग्रायुष्मान् लोसकितस्स स्थिवर ने, ग्रग्रेश्वर धर्मसेनापित के हाथ में पात्र लिए खडे रहते, चारो प्रकार के मधुर का भोजन किया। स्थिवर के ऋद्धि-बल के कारण, वह भोजन समाप्त नहीं हुग्रा। उस समय लोसकितस्स स्थिवर ने, जितना चाहिए था, उतना पेट भर भोजन किया। ग्रौर उसी दिन वह उपाधि-रहित निर्वाण-धातु को प्राप्त हुए। सम्यक् सम्बुद्ध ने पास खडे होकर शरीर की दाह-किया करवाई। (शरीर-)धातु लेकर चैत्य बनाया गया।

उस समय धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षु, (ग्रापस में) बैठे बैठे कहने लगे—"ग्रायुष्मानो । लोसकितस्स स्थिवर ग्रपुण्यवान् (थे), ग्रल्प-लाभी, (थे) इस प्रकार ग्रपुण्यवान्, ग्रल्पलाभी ने किस प्रकार ग्रार्य-धर्म (=ग्रहिंत्व) प्राप्त कर लिया ?" बुद्ध ने धर्म-सभा में जाकर पूछा—"भिक्षुग्रो । बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" उन्होने कहा "भन्ते । यह बात-चीत ।" बुद्ध ने, "भिक्षुग्रो । इस भिक्षु ने ग्रपने ग्रापको स्वय ही ग्रल्प-लाभी बनाया, ग्रौर स्वय ही ग्रहेत् । पूर्व-जन्म में ग्रौरो की प्राप्ति में बाधक होने के कारण, यह ग्रल्प-लाभी हुग्रा, ग्रौर ग्रनित्य, दु ख, ग्रनात्म—की विदर्शना युक्त भावना (=योगाभ्यास) के फल स्वरूप ग्रार्यधर्म-लाभी (=ग्रहेत्) हुग्रा' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व-काल में काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय मे, एक भिक्षु एक गृहस्थ पर विशेष रूप से निर्भर हो, एक गाँव के निवासस्थान में रहता था। वह स्वभाव से ही सदाचारी (=शीलवान्) था, श्रौर योगाभ्यास (=विदर्शना) में लगा रहता था। (उसी समय) एक क्षीणाश्रव स्थविर, श्रपने कर्तव्यो की ग्रवहेलना न कर, एक एक स्थान में टहरते हुए, कम से, उस भिक्षु के उपस्थायक गृहस्थ के ही गाँव में पहुँचे। गृहस्थ ने स्थविर के उठने बैठने (=इर्या-पथ) पर ही प्रसन्न हो, (उनका) पात्र ले, (उन्हे) घर में प्रवेश करा, श्रच्छी प्रकार *₹*१० [ *१.*५.४*१* 

भोजन खिला, कुछ धर्म-कथा सुन, स्थविर को प्रणाम कर कहा—"भन्ते ! हमारे समीप के विहार को जाये, हम शाम को श्रापके दर्शनार्थ श्रायेगे।" स्थिविर विहार में जा, उसमें रहने वाले स्थिविर को प्रणाम कर श्रौर (उनसे कुशल क्षेम) पूछ कर एक ग्रोर बैठें। उस (स्थिवर) ने भी उनसे कुशल-क्षेम सम्बन्धी बात-चीत कर, पूछा—"ग्रायुष्मान । ग्राज ग्रापको भोजन मिला?" "हाँ मिला।" "कहाँ मिला?" "ग्रापके ग्राम के गृहस्थी के घर में।" यह कह कर, ग्रपना शयनासन पूछ, (उसे) भाड सँवार कर, पात्र चीवर को ठीक से रख कर, ध्यान-सुख तथा फल-सुख से (समय) बिताते हुए बैठें।

उस गृहस्थ ने शाम को गन्ध-माला, (तथा) तेल-प्रदीप लिवा कर, विहार जाकर, निवासिक स्थविर को प्रणाम कर, पूछा—"भन्ते । यहाँ एक ग्रागन्तुगक स्थविर ग्राया है ?"

"हाँ । स्राया है।"

"इस समय कहाँ है ?"

"ग्रमुक शयनासन पर।"

वह उनके पास जाकर, प्रणाम कर, एक स्रोर बैठ, धर्म-कथा सुन, ठण्डा हो जाने पर, चैत्य स्रौर बोधि (-वृक्ष) की पूजा कर, दिये जला कर, दोनो स्थिवरों को (भोजन के लिए) निमन्त्रित कर, लौट स्राया। स्थानीय स्थिवर ने सोचा— "यह गृहस्थ बदल रहा है। यदि यह भिक्षु इस विहार मे रहेगा, तो यह (गृहस्थ) मेरी कुछ गिनती न करेगा।" (उसने) स्थिवर के प्रति मन मे स्रसन्तोप उत्पन्न कर, "मुभे ऐसा करना चाहिए, जिससे यह इस विहार मे न बस सके"— इस विचार से उपस्थान-वेला( = सेवा के कृत्य करने) के समय, उनके स्राने पर, उनसे कुछ बात-चीत न की। क्षीणाश्रव स्थिवर ने उनके मन का विचार जान कर 'यह स्थिवर नहीं जानते कि मेरी न तो (भिक्षु-)गण में स्रासिक्त हैं, न (गृहस्थ-)कुल में सोचते हुए, स्रपने स्थान पर जाकर, ध्यानसुख स्रौर फल-सुख मे समय बिताया।

ग्रगले दिन स्थानीय भिक्षु ग्रपने नाखून से (हलके से) घटी बजा ग्रौर नाखून से ही (ग्रागन्तुक भिक्षु) के द्वार पर टक टक कर, (उस) गृहस्थ के घर गया। उसने उसका पात्र ले, उसे बिछे ग्रासन पर बिठा, पूछा—"भन्ते! ग्रागन्तुक स्थविर कहाँ हैं?"

"मुभे नही मालूम । तेरे उस कुलूपक' का हाल; घटी बजाते, द्वार खटखटाते भी मैं उसे नही जगा सका। कल तेरे यहाँ का प्रणीत-भोजन खाकर, हज़म न कर सकने के कारण पड़ा सोता होगा। तेरी भी, जब श्रद्धा होती है, तो ऐसो पर ही होती है।"

क्षीणाश्रव स्थविर अपना भिक्षा माँगने का समय (आया) देख, शरीर (पर के चीवर) को सँवार, पात्र चीवर ले, आकाश मे उड कर अन्यत्र चले गये।

उस गृहस्थ ने स्थानीय स्थिवर को घी, मधु तथा शक्कर मिली खीर पिला कर, पात्र पर सुगन्धित-चूर्ण लगाकर, (उसे) फिर भर कर 'भन्ते । वह स्थिवर मार्ग चलने के कारण थके होगे । यह (उनके लिए) ले जाये' कह दिया । दूसरे ने बिना अस्वीकार किये, लेकर जाते हुए सोचा, "यि वह भिक्षु इस खीर को पीयेगा, तो गर्दन से पकड़ कर निकालने पर भी न जायेगा, यि मैं इस खीर को (किसी) आदमी को दूँगा, तो मेरा यह कर्म प्रगट हो जायगा; यि पानी में जँडेलूँगा, तो पानी के ऊपर घी तैरेगा, यि भूमि पर फेकूँगा, तो कौओ के इकट्ठे होने से पता लग जायगा । इसे कहाँ फेकूँ ?" सोचते हुए, उसने एक आग जलते खेत को देख, अङ्गारो को हटा कर, (खीर को) वहाँ डाल, ऊपर अङ्गारो से ढक दिया, और विहार को चला गया । (विहार पहुँच कर) उस भिक्षु को न देख, सोचने लगा—'निश्चय से, वह क्षीणाश्रव भिक्षु मेरे अभिप्राय को जान कर किसी दूसरी जगह चले गये होगे । अहो ! मैंने इस पेट के कारण अनुचित किया ।" (यह सोचने से) उसी समय, उसे बडा भारी पश्चात्ताप हुआ । तभी से वह मनुष्य प्रेत होकर, थोड़े ही समय बाद मर कर नरक में पैदा हुआ ।

लाखो वर्ष नरक की ग्राग में जल कर, बचे कर्म का फल भुगतने के लिए, उसने कम से पाँच सौ यक्ष योनियों में उत्पन्न होकर, एक दिन भी पेट भर कर भोजन न पाया। हाँ । एक दिन गर्भ मैल (=गर्भ से निकला मैल) पेट भर कर मिला। फिर पाँच-सौ जन्मों में कुत्ता हुग्रा। तब भी एक दिन (किसी

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> कूलुपक —कूल में श्राने जाने वाला।

की) उल्टी (वमन) पेट भर कर मिली। बाकी समय में उसको कभी भी पेट भर कर खाने को न मिला। कुत्ते की योनि से च्युत होकर, काशी राष्ट्र में एक ग्राम में एक दरिद्र-कुल में उत्पन्न हुग्रा। उसकी उत्पत्ति के बाद से वह कुल अत्यन्त दरिद्र हो गया। वहाँ, उसे नाभी से ऊपर (पेट भरने के लिए) काञ्जीका पानी भी नहीं मिला। (उस समय) उसका नाम मित्तविन्दक था। माता पिता ने सतान-दुख को न सह सकने के कारण, 'निकल मनहूस' कह, उसे धौले मार कर निकाल दिया। वह ग्रशरण हो, घूमता हुग्रा, बाराणसी पहुँचा।

उस समय बोधिसत्त्व, बाराणसी में लोक-प्रसिद्ध ग्राचार्य्य होकर, पाँच सौ शिष्यो को शिल्प सिखाते थे। तब बाराणसी-निवासी, दरिद्र छात्रो को छात्र-वृत्ति दे कर शिल्प सिखाते थे। यह मित्रविन्दक भी बोधिसत्त्व के पास निःशुल्क शिक्षा<sup>१</sup> सीखने लगा। लेकिन वह कठोर (स्वभाव का) तथा उपदेश न मानने वाला था। जिस किसी को मारता रहता। बोधिसत्त्व के उपदेश करने पर भी कहना न मानता। उसके कारण बोधिसत्त्व की ग्रामदनी भी कम हो गई। (अन्य) शिष्यो से भगडा कर, उपदेश न मान, वहाँ से भाग कर, वह, घुमता घुमता एक प्रत्यन्तग्राम ( = सीमा से वाहर के ग्राम) मे पहुँच, मजदूरी (वा नौकरी) करके जीने लगा। वहाँ, उसने एक दरिद्र स्त्री के साथ सहवास किया, जिससे उसे दो बालक पैदा हुए । ग्रामवासियो ने 'तूम हमे अच्छी बुरी खबर देते रहना' (कह) मित्रविन्द्रक की नौकरी लगा, उसे ग्राम-द्वार पर कृटिया मे बसाया। उस मित्रविन्दक के कारण, उन प्रत्यन्त-ग्राम-वासियों को सात बार राज्य-दण्ड देना पड़ा, सात बार आग लगी और सात बार तालाब टूटा । उन्होने सोचा—"इस मित्रविन्दक के स्राने से पहले, हमारा यह (हाल) नहीं था, लेकिन ग्रब इसके ग्राने के समय से हमारी म्रवनित ही हो रही है।" (यह सोच) उन्होने उसे धौले मार कर निकाल दिया। वह अपने बच्चो को ले, दूसरी जगह जाते हुए, एक अमनुष्य-परिगृहीत जगल मे से गुजरा । वहाँ ग्रमनुष्यो ( = यक्ष ग्रादि ) ने, उसकी स्त्री, बच्चों को मार, उनका मास खा लिया।

१ पुण्य-शिल्प ।

वहाँ से भाग कर, वह जहाँ तहाँ घूमता हुआ गम्भीर नामक एक बन्दर-गाह में नौकाये छुटने के दिन ही पहुँचा, (श्रीर) नौकर बन कर नौका पर चढ गया । नाव सात दिन समुद्र में जाकर, सातवे दिन, कीलो से गांड दी जैसी-की तरह रुक गई। उन्होने मनहूस (ग्रादमी चुनने की) तीली (=शलाका) बॉटी। वह सात बार मित्रविन्दक के ही पास निकली। मनुष्यों ने उसे एक बाँसो का गट्टा दे, हाथ से पकड समुद्र में फेक दिया। उसके फेकते ही नाव चल पडी । मित्रविन्दक ने काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध के समय मे सदाचारमय जीवन व्यतीत किया था। उसके फलस्वरूप, उसे (श्रव) बॉसो के गट्ठे पर, समुद्र में लेटे ( = तैरते) जाते हए, एक स्फटिक-विमान में चार देव-कन्याये मिली। एक सप्ताह तक, वह, उनके पास सुख भोगता हुन्ना रहा। वह विमान-प्रेतिनयाँ, एक सप्ताह तक सुख भोगती थी, एक सप्ताह तक दुख। दुख भोगने के लिए जाने के समय, 'जब तक हम लौट कर ग्राये, तब तक यही रहो' कह, वह चली गईं। उनके जाने के बाद, बॉसो के गट्ठे पर लेटे जाते हुए मित्रविन्दक को, ग्रागे जाने पर रजत-विमान मे ग्राठ देव-कन्याये मिली, उससे भी ग्रागे जाने पर, मणि-विमान में सोलह, स्वर्ण-विमान में बत्तीस देव-कन्याये मिली । उनकी भी बात न मान, ग्रागे जाने पर उसने (एक) द्वीप के ग्रन्दर एक यक्ष-नगर देखा। वहाँ एक यक्षिणी (एक) बकरी की शकल मे घूमती थी। मित्र-विन्दक ने यह न जान कि वह यक्षिणी है, बकरी का मास खाने के ख्याल से, उसे पैर से पकडा। उसने (ग्रपने) यक्ष बल से, उसे उछाल कर फेका। उसका फेका हुम्रा, वह समुद्र तल को लॉघ, बाराणसी की चारदीवारी पर, एक कॉटो के भाड पर गिर, वहाँ से लुढकता लुढकता जमीन पर ग्राया।

उस समय उस चारदीवारी पर चरती हुई, राजा की बकरियों को चोर उड़ा लें जाते थे। बकरियों के रखवालें चोरों को पकड़ने के ख्याल से, एक श्रोर छिपे रहते थे। मित्रविन्दक ने उलट कर, जमीन पर खड़े होने पर, उन बकरियों को देख सोचा "मैंने समुद्र के एक द्वीप में एक बकरी के पैर पकड़े, उसका फेका हुग्रा, यहाँ ग्राकर गिरा। यदि ग्रव में यहाँ एक बकरी के पैर पकड़ूँगा, तो वह मुफ्ते उस पार समुद्र में विमान-देवता ग्रो के पास फेक देगी।" (सो) ऐसी उल्टी-बात मन में कर, उसने बकरी के पाँव पकड़े। बकरी ने पैर पकड़ते ही "मैं मैं" किया। बकरियों के रखवालों ने इधर उधर से ग्रा, 'यह इतने दिनो तक राजकीय बकरियाँ खाने वाला चोर हैं' (सोच) उसे पकड, ठोक-पीट, बाँघ कर राजा के पास ले गये।

उस समय बोधिसत्त्व ने पाँच सौ शिष्यो सिहत नगर से निकल, नहाने के लिए जाते समय, मित्रविन्दक को देख, पहचान, उन मनुष्यो से पूछा—"तात! यह हमारा शिष्य है, इसे किस लिए पकडा है ?" "ग्रार्यं! यह बकरी-चोर है। इसने एक बकरी पैर से पकडी थी, इसीलिए इसे पकडा है।"

"तो इसे हमारा 'दास' बना कर, हमे दे दो, हमारे पास जीयेगा।" वे "ग्रार्थ्यं! ग्रच्छा! " कह, उसे छोड कर चले गये। तब बोधिसत्त्व ने मित्र-विन्दक से पूछा—"तू इतने समय तक कहाँ रहा ?" उसने ग्रपनी सब ग्रापबीती सुनाई। "हितैषियो की बात न मानने वाले इसी प्रकार दुख पाते हैं" कह, बोधिसत्त्व ने यह गाथा कही—

> यो ग्रत्थकामस्स हितानुकम्पिनो ग्रोवज्जमानो न करोति सासनं, ग्रजिया पादमोलुब्भ मित्तको विय सोचित ॥

[जो (ग्रपना) भला चाहने वाले, हितैषी, के उपदेश देने पर, उस उपदेश के श्रनुसार श्राचरण नहीं करता, वह बकरी के पैर पकडने वाले मित्र (-विन्दक) की तरह शोक को प्राप्त होता है।

ग्रत्थकामस्स — उन्नति की इच्छा करने वाले का । हितानुकम्पिनो — हित से अनुकम्पा ( — दया) करने वाले का । ग्रोवज्जमानो, मृदु, हितैषी चित्त से उपदेश दिये जाने पर । न करोति सासनं, अनुसार आचरण नही करता, वचन — उपदेश न मानने वाला होता है । मित्तको विय सोचिति, जिस प्रकार यह मित्रविन्दक बकरी के पैर पकड कर सोचता है, कष्ट पाता है, इसी प्रकार सदैव सोचता है । इस गाथा से बोधिसत्त्व ने धर्मोपदेश किया ।

इस प्रकार उस स्थविर को इतने समय मे, केवल तीन ही जन्मो में पेट भर खाने को मिला। यक्ष होने की ग्रवस्था में एक दिन गर्भ-मैल मिला, कुत्ते के जन्म में एक दिन खाये हुए की उल्टी, श्रौर परिनिर्वाण के दिन धर्मसेनापित के प्रताप (=श्रानुभाव) से चार-प्रकार का मधुर मिला। सो इससे जानना चाहिए कि दूसरे के लाभ (=मिलने की वस्तु) को रोकने में वडा दोष हैं।

उस समय वह आचार्य्य और मित्रविन्दक भी—दोनो (अपने अपने) कर्मानुसार (परलोक) गये। बुद्ध ने, 'सो हे भिक्षुग्रो! इसने अपना अल्पलाभी-पन और अर्हत्व-प्राप्ति—दोनो अपने ही की' कहा, इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का मित्र-विन्दक (अब का) लोसक-तिस्स स्थविर था। लोक-प्रसिद्ध (—दिशा-प्रमुख) आचार्य्य तो में ही था।

## ४२. कपोत जातक

यो अत्थकामस्सं . यहगाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहरते समय, एक लोभी भिक्षु के सम्बन्ध मे कही। उसके लोभ-पन (की कथा) नौवे परिच्छेद मे, काक जातकं मे आयेगी। उस समय भिक्षुग्रो ने बुद्ध से कहा— "भन्ते । यह भिक्षु लोभी है।" तब बुद्ध ने उसे पूछा— "हे भिक्षु! क्या तू सचमुच मे लोभी है?" "भन्ते । हाँ।" बुद्ध ने, "हे भिक्षु! तू पूर्व-जन्म मे भी लोभी था। लोभ के कारण (तूने) जान गँवाई और तेरे कारण पण्डितो को भी अपने निवासस्थान से विञ्चत होना पडा" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय,

<sup>&#</sup>x27;काक जातक १४०,१४६,३६५; नौवें परिच्छेद में कोई काक जातक नहीं।

बोधिसत्त्व कबूतर की योनि मे पैदा हुए। उस समय बाराणसी निवासी पुण्येच्छा से, जगह जगह पर पिक्षयों के सुख-पूर्वक वास करने के लिए छीके लटकाते थे। बाराणसी के सेठ के रसोइये ने भी अपने रसोई-घर में एक छीका लटका रक्खा था। बोधिसत्त्व वही रहता था। वह प्रात काल ही निकल, चुगने की जगहों पर चुग, शाम को वहाँ आकर, रहते हुए समय बिताता था। एक दिन एक कौवे ने बडे जोर से (उडते) जाते हुए, खट्टे-मीठे मत्स्य-मास के छौक की गन्ध सूँघ कर, उसमें लोभ उत्पन्न कर, सोचा "मुफ्ते यह मत्स्य-मास कैसे मिलेगा?" कुछ दूर पर बैठ कर विचारते हुए, उसने शाम को बोधिसत्त्व को आकर रसोई में प्रवेश करते देख, सोचा—'इस कबूतर के जिरये (मुफ्ते) मत्स्य-मास मिलेगा।' अगले दिन प्रात काल ही बोधिसत्त्व के निकल कर चुगने के लिए जाने के समय (उसके) पीछे पीछे हो लिया।

तब बोधिसत्त्व ने उससे पूछा——"सौम्य  $^{\dagger}$  तू किस लिए हमारे साथ साथ फिरता है  $^{?}$ "

"स्वामी <sup>।</sup> मुफ्ते स्रापकी (जीवन-)चर्य्या स्रच्छी लगती है । स्रब से मैं स्रापकी सेवा मे रहूँगा ।"

''सौम्य । तुम्हारा चुगना दूसरा होता है, हमारा दूसरा, तुम्हारा हमारी सेवा में रहना कठिन है।"

"स्वामी  $^{\rm I}$  तुम्हारे चोगा लेने के समय, मैं भी चोगा लेकर, तुम्हारे साथ ही (वापिस) लौटूँगा ।"

"म्रच्छा । तुभ्ने केवल प्रमाद-रहित रहना चाहिए"—बोधिसत्त्व ने कौवे को उपदेश दिया।

उसे उपदेश दे बोधिसत्त्व चुगने के समय चुगने जाते, तृग-बीज श्रादि खाते, श्रौर कौश्रा उसी समय मे जा, गोबर का पिड ले, उसमे से कीडे खा, पेट भर, बोधिसत्त्व के पास श्राकर कहता—"स्वामी । तुम देर तक चुगते हो। श्रीधक खाना उचित नहीं।" वह, बोधिसत्त्व के चोगा ले, शाम को वापिस लौटने पर, उसके साथ ही रसोई मे प्रवेश करता। रसोइये ने यह देख कि हमारा कबूतर (एक) दूसरे साथी को भी लाया है, उस कौवे के लिए भी छीका टाँग दिया। उस समय से दोनो जने (वही) रहने लगे।

एक दिन सेठ के लिए बहुत सा मत्स्य-मास लाया गया। रसोइये ने उसे

लेकर, रसोई-घर में जहाँ तहाँ लटका दिया। कौवा उसे देख, (मन में) लोभ पैदा कर, श्रौर वह 'कल चुगने न जाकर, मुभे यह (मत्स्य-मास) ही खाना चाहिए सोच, रात को छटपटाता हुआ लेट रहा। अगले दिन बोधिसत्त्व ने चुगने के लिए जाते समय कहा—"सौम्य । काक। आ।"

"स्वामी । श्राप जाये । मुभे पेट मे दर्द है ।"

"सौम्य । कौ ग्रो को, पहले कभी पेट-दर्द नहीं हुग्रा है। वे (भूख के मारे) रात्रि के तीन पहरों में से एक एक पहर में मूच्छित होते हैं। केवल दीपक की बत्ती निगलने पर, उन्हें मुहूर्त्त भर के लिए तृष्ति होती है। तू इस मत्स्य-मास को खाना चाहता होगा। ग्रा, जो मनुष्य के खाने की चीज है, उसका खाना तेरे लिए ग्रनुचित हैं। ऐसा मत कर, मेरे साथ चुगने के ही लिए चल।"

"स्वामी <sup>।</sup> (चल) नही सकता ।"

"ग्रच्छा । तो तू ग्रपने कर्म को प्रगट करेगा। लोभ के वशीभूत मत हो, प्रमाद-रहित रह।" उसे उपदेश दे, बोधिसत्त्व चुगने के लिए गया। रसोइया नाना प्रकार की मत्स्य-मास की चीजे बना, भाप निकलने के लिए बरतनो को थोडा खोल, कडछी को बरतनो पर रख, (ग्रपने) पसीना पोछता हुग्रा, बाहर जाकर खड़ा हो गया।

उसी समय कौवे ने, छीके मे से सिर निकाल, रसोई-घर को देखते हुए, रसोइए को बाहर निकला जान, सोचा—"ग्रब, यह मेरे लिए मन भर कर मास खाने का समय हैं। में बडा बडा मास खाऊँ, या मास का चूरा निस्तास का चूरा निस्तास का चूरा लगे से पेट जल्दी नहीं भरा जा सकता। (इसलिए) एक बडे (से) मास के टुकडे को, छीके पर ले जाकर, वहाँ रख, पडा पडा खाऊँगा।" (यह सोच) छीके मे से उड, उस कडछी पर जा लगा। कडछी ने 'किली किली' शब्द किया। रसोइये ने उस शब्द को सुन, 'यह क्या है ?' (करके) प्रविष्ट हो, उस कौवे को देख, 'यह दुष्ट-कौग्रा मेरा, सेठ के लिए बनाया मास खाना चाहता है। में सेट्ठी की नौकरी करके, जीता हूँ, इस मूर्ख की नहीं। मुफे इससे क्या ?" (कह) दरवाजा बन्द कर, कौवे को पकड, (उसके) सारे शरीर से पर नोच, कच्चे ग्रदरक, निमक तथा जीरे को कूट, (उसे) खट्टे मट्ठे में मिला, (उससे) उसके सारे बदन को चोपड, उस छीके में फेक दिया। वह ग्रत्यन्त पीडा ग्रनुभव करता हुग्रा, छटपटाता पडा रहा। बोधिसत्त्व ने

शाम को ग्रा, उसे पीडा-ग्रस्त देख, 'लोभी कौवे । मेरी बात न मान, ग्रपने लोभ के कारण तू इस दुख मे पडा' कह यह गाथा कही---

> यो ग्रत्थकामस्स हितानुकम्पिनो ग्रोवज्जमानो न करोति सासनं, कपोतकस्स वचनं ग्रकत्वा ग्रमित्तहत्थत्थगतोव सेति॥

[जो भला चाहने वाले, हितैषी, के उपदेश देने पर, उस उपदेश के अनु-सार आचरण नहीं करता, वह कबूतर का वचन न मान कर अमित्र के हाथ में पड कर (दुख भोगने वाले) की तरह, (दुखित हो) सोता है।

कपोतकस्स वचन श्रकत्वा — कबूतर की हित की बात न मान कर । श्रमित्तहत्थत्थगतो व सेति; श्रमित्रो के — ग्रनर्थ करने वालो के — दु ख उत्पादन करने वाले श्रादमियो के, हाथ में पड कर, इस कौवे की तरह, (वह) ग्रादमी, महान् दु ख को प्राप्त हो, चिन्ता करता हुग्रा सोता है।

बोधिसत्त्व, यह गाथा कह कर, 'ग्रब में इस जगह नहीं रह सकता' सोच, श्रन्यत्र चला गया। कौवा वहीं मर गया। रसोइए ने उसे छीके सहित, उठा कर कूडे पर फेक दिया।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु । तू अब ही लोभी नहीं हैं, पूर्व-जन्म में भी लोभी रहा हैं।(और)तेरे उस लोभ के कारण, पिंडतों को अपना घर छोड़ना पड़ा हैं"—इस धर्म-देशना को ला, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के (प्रकाशित होने के) अन्त में, उस भिक्षु ने अनागामी फल प्राप्त किया। शास्ता ने मेल मिला कर, जातक का साराश निकाला। उस समय का कौआ, (अब का) लोभी भिक्षु था। (और) कबूतर तो मैं ही था।

## ४३. वेळुक जातक

"यो श्रत्थकामस्स . " यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहरते समय एक भी बात न मानने वाले भिक्षु के बारे मे कही।

## क वर्तमान कथा

सो भगवान् ने उस भिक्षु से, 'भिक्षु । क्या तू सचमुच बात न मानने वाला है ?' पूछ, उसके 'भन्ते । सचमुच' कहने पर, 'भिक्षु । तू केवल ग्रब ही बात न मानने वाला, नहीं है, पूर्व-जन्म में भी बात न मानने वाला ही रहा है। ग्रौर बात न मानने के स्वभाव के ही कारण, (तूने) पण्डितों की बात न मान, सर्प के मुँह में पड कर, जीवन गँवाया' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने, काशी राष्ट्र मे एक महा-सम्पत्तिशाली कुल मे उत्पन्न हो, जब होश सँमाला, तो काम-भोगो मे हानियाँ देख, ग्रौर नैष्क्रम्य मे लाभ देख, काम भोगो को छोड, हिमवन्त मे प्रविष्ट हो, ऋषि-प्रब्रज्या के ग्रमुसार प्रव्रजित हुग्रा। (प्रव्रजित हो) वह योगाभ्यास कर, पाँच ग्रभिज्ञा तथा ग्राठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-सुख मे समय बिताने लगा। ग्रागे चल कर, पाँच सौ तपस्वियो का नेता बन, गण का शास्ता होकर रहने लगा।

(एक दिन) एक विषैले सॉप का बच्चा, ग्रपने स्वभाव से घूमता घूमता एक तपस्वी के ग्राश्रम के पास ग्राया। तपस्वी ने, उस (सर्प के बच्चे) मे पुत्र-स्नेह उत्पन्न कर, उसे एक बॉस की फोफी मे सुला, पालना शुरू किया। बॉस (वेळु) की पोरी मे सोने के कारण, उसका नाम वेळुक, ग्रौर वेळुक को

पुत्र-स्नेह से पालने के कारण, उस तपस्वी का नाम वेळुक-पिता ही पड गया। तब बोधिसत्त्व ने यह सुन कि एक तपस्वी विषैले सर्प को पालता है, उसे बुला, 'क्या तू सचमुच विषैले सर्प को पालता है ?'' पूछ, उसके 'हॉ, सचमुच' कहने पर, उससे कहा—"विषैले सर्प का विश्वास नहीं किया जा सकता। उसे मत पाल।''

तपस्वी ने कहा—-''म्राचार्य । वह मेरा पुत्र है । में उसके बिना नही रह सकता ।"

"ग्रच्छा । तो इसीसे तेरे प्राणो का नाश होगा।" तपस्वी ने न बोधिसत्त्व की बात मानी, (ग्रौर) न ही विषैले-सर्प को छोडा।

उसके कुछ ही दिन बाद सभी तपस्वी फल-मूल (ढूँढने) के लिए गये। वहाँ फल-मूल की सुलभता देख, दो तीन दिन वहीं रह गये। वेळुक-पिता भी उन्हीं के साथ जाते समय, विषैले सपें को, बाँस की पोरी में सुला, ढक कर गया। दो तीन दिन के बाद तपस्वियों के साथ लौट कर, उसने 'वेळुक को खाद्य दूँगा' (सोच), बाँस की पोरी को उघाड 'ग्रा पुत्र! क्या तू भूखा है'? (कह) हाथ पसारा। विषैले सपें ने दो तीन दिन ग्राहार न मिलने से कुद्ध हो, तपस्वी को हाथ पर डँसा, जिससे तपस्वी वहीं मर गया। तपस्वी को मार, विषैला सपं जगल में चला गया। (ग्रन्य) तपस्वियों ने उसे देख, बोधिसत्व को सूचना दी। बोधिसत्त्व ने उसका शरीर-कृत्य करवा, ऋषिगण के मध्य बैठ ऋषियों को उपदेश देते हुए यह गाथा कहीं—

यो ग्रत्थकामस्स हितानुकम्पिनो, ग्रोवज्जमानो न करोति सासनं। एवं सो निहतो सेति, वेळुकस्स यथा पिता।।

[जो (ग्रपना) भला चाहने वाले, हितैषी के उपदेश देने पर, उस उपदेश के ग्रनुसार ग्राचरण नहीं करता, वह वेळुक के पिता की तरह नाश को प्राप्त होता है।]

एवं सो निहतो सेति, जो ऋषियो के उपदेश को ग्रहण नही करता, वह, जैसे यह तपस्वी विषैले सर्प के मुँह मे पड़, विकृत-भाव को प्राप्त हो, विनष्ट हो सोता है, वैसे ही, महाविनाश को प्राप्त हो, नष्ट हो सोता है। यही ग्रर्थं है। इस प्रकार बोधिसत्त्व, ऋषि-गण को उपदेश दे, चारो ब्रह्मविहारो की भावना कर, ग्रायु का ग्रन्त होने पर, ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुग्रा।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु । तू केवल ग्रब ही बात न मानने वाला नही है, पूर्व-जन्म में भी तू बात न मानने वाला ही था। और वात न मानने के स्वभाव के ही कारण, तू विषैले-सर्प के मुँह में पड़, विकृत-भाव को प्राप्त हुग्रा'—यह धर्म-देशना ला, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाला। उस समय का वेळ्क-पिता (ग्रब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। शेष परिषद् (ग्रब की) बुद्ध परिषद् थी। गण का शास्ता तो में ही था।

#### ४४. मकस जातक

"सेय्यो ग्रमित्तो...." यह गाथा, शास्ता ने मगध (देश) मे विचरते समय, एक ग्राम के मूर्ख, गँवार मनुष्यो के सम्बन्ध में कही।

## क. वर्तमान कथा

एक समय, तथागत श्रावस्ती से मगध राष्ट्र जा कर, वहाँ विचरते हुए, एक ग्राम में पहुँचे । वह गाँव श्रधिकतर श्रत्यन्त मूर्खं मनुष्यों से ही भरा पड़ा था । सो एक दिन उन श्रत्यन्त मूर्खं मनुष्यों ने इकट्ठे हो कर (श्रापस में) सलाह की—"भो । जगल में जाकर काम करते समय, हमें मच्छर काटते हैं । उससे हमारे काम में विघ्न पडता हैं । हम सब, धनुष श्रौर श्रायुध लेकर चले । चलकर, मच्छरों से युद्ध कर, सब मच्छरों को बेध कर, छेद कर मार डाले।" यह सलाह कर, जंगल में जा, वहाँ मच्छरों को बेधने के ख्याल से एक

दूसरे को बेघ कर, प्रहार कर, दुखी हो, म्राकर, गाँव के भ्रन्दर, मध्य मे, तथा बाहर—सभी जगह—पड रहे।

भिक्षुसघ सहित शास्ता ने उस गाँव मे भिक्षा के लिए प्रवेश किया। अविशिष्ट पण्डित ( —बुद्धिमान्) मनुष्य भगवान् को देख, ग्राम-द्वार पर मण्डप बना, बुद्ध-सहित भिक्षुसघ को महादान दे, शास्ता को प्रणाम कर, बैठे। शास्ता ने जहाँ तहाँ पडे हुए मनुष्यो को देख कर, उन उपासको से पूछा— "यह बहुत से मनुष्य रोगी (जल्मी) है। इन्होने क्या किया है?"

"भन्ते ! यह मनुष्य "मच्छरो से युद्ध करेगे" (विचार) जाकर, एक दूसरे को म्राहत कर अपने ही जरूमी हो गये।" शास्ता ने, 'न केवल म्रभी म्रत्यन्त मूर्ख मनुष्यो ने मच्छरो को मारने के लिए जाकर ग्रपने को घायल किया है, पूर्व समय मे भी 'मच्छर को मारेगे' सोच, यह एक दूसरे को मार देने वाले मनुष्य थे' कह, उन मनुष्यो के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व व्यापार करके (श्रपनी) रोजी चलाते थे। उस समय काशी देश के एक सीमान्त के ग्राम में बहुत से बढ़ई रहते थे। वहाँ एक बूढा बढ़ई वृक्ष छीलता था। उसकी ताँबेकी थाली के तल सदृश खोपडी पर, एक मच्छर ने बैठ कर, उसके सिर को अपने डंक से ऐसे बीधा, जैसे कोई शक्ति (-श्रायुध) से चोट करता हो। उसने श्रपने पास बैठे हुए पुत्र को कहा—'तात । मेरे सिरको एक मच्छर, शक्ति से चोट करते की तरह काट रहा है, उसे हटा।''

"तात ! सबर करे । एक (ही) प्रहार से उसे मारूँगा ।" उस समय बोधिसत्त्व भी अपने लिए सौदा ढूँढते हुए, उस गाँव में पहुँच, उस बढई-शाला में बैठे थे । सो, उस बढई ने पुत्र को कहा—"तात ! इस मच्छर को हटा ।" उसने 'तात ! हटाता हूँ' कह, तेज कुल्हाडे को उठा, पिता की पीठ की ओर खडे हो, "मच्छर को मारूँगा" (सोच) पिता के सिर के दो टुकडे कर दिये । बढ़ई वही मर गया । बोधिसत्त्व ने उसके उस कमें को देख कर सोचा— "बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है । वह दण्ड से भयभीत होकर भी मनुष्यों को नहीं मारेगा।" यह सोच, यह गाथा कही—

सेय्यो श्रमित्तो मितया उपेतो, नत्वेव मित्तो मितिविष्पहीनो, मकसं विधस्सन्ति हि एळमूगो पुत्तो पितु श्रब्भिदा उत्तमङ्गं॥

[बुद्धिमान् शत्रु (=ग्रमित्र) भी ग्रच्छा है। मूर्ख मित्र ग्रच्छा नही। जड़-मित पुत्र ने "मच्छर को मारूँगा" सोच पिता के सिर को फाड दिया।]

सेय्यो —प्रवर — उत्तम । मितया उपेतो —प्रज्ञा से युक्त । एळमूगो — लार-मुख — मूर्ख । पुत्तो पितु श्रिब्भिदा उत्तमङ्गं श्रपनी मूर्खता के कारण पुत्र हो कर भी, "मच्छर को मारूँगा" (करके) पिता के सिर के दो टुकड़े कर दिये। इसलिए मूर्ख-मित्र की श्रपेक्षा बुद्धमान् शत्रु भी श्रच्छा है।

यह गाथा कह, बोधिसत्त्व, उठ कर, यथा-कर्म गये । बढई के रिश्तेदारो ने उसका शरीर-कृत्य किया ।

शास्ता ने, 'उपासको । पूर्व समय मे भी मच्छर को मारेगे' (करके) एक दूसरे को मार डालने वाले मनुष्य थे—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाला। उस समय गाथा कह कर चले जाने वाला व्यापारी तो में ही था।

## ४५. रोहिग्गी जातक

"सेय्यो श्रमित्तो ." यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, श्रनाथिण्डिक सेठ की एक दासी के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

स्रनाथपिण्डिक की एक रोहिणी नाम की दासी थी। (एक दिन) उसकी वृद्धा

माता, उस (दासी) के धान कूटने के स्थान पर श्राकर लेट गई। मिक्खियाँ, उसे घेर कर, सूई के बीधने की तरह काटने लगी। उसने लड़की (—दासी) को कहा—"श्रम्म । मुफ्ते मिक्खियाँ काटती है। इन्हें हटा।" उसने "श्रम्म । हटाती हूँ" कह, 'मूसल उठा कर माता के शरीर पर (बैठी) मिक्खियों को मार कर नष्ट करूँगी' (सोच) माता को मूसल का प्रहार दे, (उसे) मार डाला। उसे (मरा) देख, 'माता मर गई' (सोच) रोना श्रारम्भ किया। वह बात सेट को कहीं। सेट ने उसका शरीर-कृत्य करवा, विहार जा कर, वह सब बात शास्ता को कहीं। शास्ता ने, गृहपति। न केवल श्रभी इसने, 'माता के शरीर की मिक्खियों को मारूँगी' (सोच) उसे, मूसल से मार डाला है, पूर्वं (-जन्म) में भी मार डाला है कह, सेठ के याचना करने पर, पूर्वं जन्म की कथा कहीं—

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) सेठ के कुल में उत्पन्न हुए थे। पिता की मृत्यु पर वह श्रेष्ठी के पद पर आरूढ हुए। उसकी भी रोहिणी नाम की दासी थी। उसने भी अपने धान कूटने के स्थान पर, आकर लेटी माता के, 'अम्म! मेरी मिक्खयाँ हटा' कहने पर, इसी प्रकार मूसल का प्रहार दे, माता के जीवन का नाश कर, रोना शुरू किया। बोधिसत्त्व ने इस वृत्तान्त को सुन, 'बुद्धिमान शत्रु भी अच्छा है' सोच, यह गाथा कही—

## सेय्यो श्रमित्तो मेधावी यञ्चे बालानुकम्पको, पस्स रोहिणिकं जींम्म मातरं हन्त्वान सोचती॥

[मूर्ख दयालु (=िमत्र) की अपेक्षा बुद्धिमान् शत्रु अच्छा है। मूर्ख रोहिणी को देखो। माता को मारकर (अब) सोचती है।]

मेधावी —पण्डित —ज्ञानी —बुद्धिमान् । यञ्चे बालानुकम्पको —इसमें 'यं' मे लिङ्ग-परिवर्तन कर दिया । 'चे' निपात है । अर्थ यही है कि जो मूर्ख मित्र है, उसकी अपेक्षा बुद्धिमान (श्रादमी) शत्रु होने पर भी, सौ गुना,

हजार गुना ग्रच्छा है। ग्रथवा 'यं', प्रतिषेधार्थ निपात है, तो इसका ग्रर्थ हुग्रा कि मूर्खिमित्र नही। जिंम्म —जड-बृद्धि। मातरं हत्वान सोचिति, 'मिक्खियो को मारूँगी' करके माता को मार, ग्रब यह मूर्खी, ग्रपने ग्राप ही रोती है, पीटती है। इस कारण से, 'इस लोक में बुद्धिमान् शत्रु भी ग्रच्छा है' कह, बोधिसत्त्व ने बुद्धिमान की प्रशसा करते हुए, इस गाथा से धर्मोपदेश किया।

शास्ता ने, 'गृहपति । न केवल श्रभी इसने 'मिक्खियो को मारूँगी' (सोच), माता को मार डाला है, पहले भी मारा था'—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला कर, जातक का साराश निकाला। उस समय, माता ही माता थी, लडकी ही लड़की, श्रौर महाश्रेष्ठी तो मैं ही था।

#### ४६. श्रारामदूसक जातक

"न वे म्ननत्थकुसलेन .." यह गाथा शास्ता ने कोसल (देश) के एक गामड़े के बाग-बिगाड़ने वाले के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

शास्ता कोसल में विचरते हुए एक गाँव मे पहुँचे । वहाँ एक गृहस्थ ने भगवान् को निमन्त्रित कर, श्रपने उद्यान में बिठा, बुद्ध-सहित भिक्षु-सघ को (भोजन-)दान देकर कहा—-"भन्ते ! इस उद्यान में यथारिच विहार करे।"

भिक्षुग्रो ने उठ कर, माली को (साथ) ले, उद्यान मे घूमते हुए एक ग्रॉगन जैसी जगह को देख कर माली से पूछा— "उपासक । इस उद्यान मे ग्रौर (सब) जगह घनी छाया है। लेकिन इस जगह कोई वृक्ष वा गाछ नहीं है। इसका क्या कारण है ?"

"भन्ते ! इस बाग के लगाने के समय, एक गॅवार लडका पानी सीचते हुए, इस जगह के पौदो को उखाड उखाड कर उनकी जड़ो की गहराई के अनुसार पानी सीचता था। सो वह पौदे कुम्हला कर मर गये। इसी कारण से यह स्थान आँगन (सा) हो गया।"

भिक्षुत्रो ने शास्ता से जाकर, यह बात कही । शास्ता ने, "भिक्षुत्रो ! न केवल श्रभी वह गँवार लडका बाग-बिगाडने वाला है, पहले भी वह बाग-बिगाडने वाला था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बाराणसी में उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणा की गई। उत्सव-भेरी के शब्द सुनने के बाद से, सभी नगर निवासी उत्सव की मस्ती में घूमने लगे। उस समय राजा के उद्यान में बहुत से बन्दर रहते थे। माली ने सोचा— "नगर में उत्सव की घोषणा हुई है। इन बानरों को 'पानी सीचों' कह कर, में उत्सव में खेलने जाऊँगा।" उसने ज्येष्ठ बानरों के सर्दार के पास जाकर पूछा— "सौम्य बानरराज इस उद्यान से तुम्हें भी बहुत फायदा हैं। तुम इसके फल-फूल-पत्ते खाते हो। नगर में उत्सव उद्घोषित हुग्रा हैं। में उत्सव में खेलने जाना चाहता हूँ। जब तक में लौट कर श्राऊँ, क्या तुम तब तक इस उद्यान के पौदों में पानी सीच सकते हो?"

"ग्रच्छा । सीचेगे।"

"तो श्रालस्य-रहित रहना," (कह) वह (उन्हे) पानी सीचने के लिए चरसा श्रौर लकड़ी के बरतन देकर चला गया। चरसा श्रौर लकड़ी के बरतन लेकर, बानर पौदो में पानी सीचने लगे। तब उन्हें बानरों के सर्दार ने कहा— "बानरों! जल रक्षणीय हैं। तुम पौदों में पानी सीचते समय (उन्हें) उखाड़ उखाड़ कर, (उनकी) जड़े देख कर, गहरी जड़ वाले पौदों में बहुत पानी सीचों, जिनकी जड़े गहरी नहीं हैं, उनमें थोड़ा। पीछें हमें पानी मिलना दुर्लभ हो जायगा।"

उन्होने 'ग्रच्छा' कह स्वीकार कर, वैसा ही किया। उस समय एक बुद्धि-मान् श्रादमी ने उन बानरो को राजोद्यान मे वैसा करते देख, पूछा—''बानरो! तुम किस लिए पौदो को उखाड उखाड, उनकी जड (की गहराई) के ब्रनुसार पानी सीच रहे हो ?"

उन्होने जवाब दिया—"हमारे सर्दार ने हमे, ऐसा ही करने को कहा है।" उसने उन (बानरो) की बात सुन, 'ग्रहो । मूर्ख (लोग) उपकार करने का मन करके, ग्रपकार ही करते हैं (सोच) यह गाथा कही—

#### न वे म्रनत्थकुसलेन म्रत्थचरिया सुखावहा, हापेति म्रत्थं दुम्मेधो कपि म्रारामिको यथा ॥

[ उपकार( = ग्रनर्थ) = करने मे श्रवतुर श्रादमी का उपकार( = ग्रर्थ) करना भी सुखदायक नहीं होता। माली-बन्दर की तरह, मूर्ख ग्रादमी, काम की हानि ही करता है।]

वे, निपात मात्र है। श्रनन्त्थकुसलेन, ग्रनर्थ — ग्रनायतन मे दक्ष, ग्रथवा ग्रायतन — कारण ( — मतलब की बात) मे ग्रदक्ष। श्रत्थचिरया ( — उन्नति) वृद्धि-क्रिया। सुखावहा, इस प्रकार के ग्रनर्थ करने मे दक्ष (ग्रादमी) से शारीरिक-मानसिक सुख नामक ग्रर्थ की चरिया सुख-कारक नहीं होती, मतलब है कि प्राप्त नहीं की जा सकती। किस वजह से ? सर्व प्रकार से ही हापेति श्रत्थं दुम्मेधो, मूर्ख ग्रादमी, उपकार करूँगा (करके) उपकार का नाश कर, ग्रपकार ही करता है। किप ग्रारामिको यथा, ग्राराम ( — बाग ) मे नियुक्त, बाग का रक्षक बन्दर, उपकार करूँगा (करके) ग्रपकार ही करता है। इस प्रकार जो ग्रर्थ-कुशल नहीं है, वह भलाई का काम ( — ग्रत्थचरिया) नहीं कर सकता, वह निश्चय से ग्रपकार ही करता है।

इस प्रकार, उस बुद्धिमान् श्रादमी ने, इस गाथा से, ज्येष्ठ बानरो के सर्दार की निन्दा की (ग्रौर) श्रपनी परिषद् को लेकर उद्यान से निकल श्राया। शास्ता ने, "भिक्षुग्रो! न केवल ग्रभी यह गँवार लड़का बाग-विगाड़ने वाला हुग्रा है, पहले भी बाग-विगाड़ने वाला ही हुग्रा है" (कह) इस धर्म-देशना को लाकर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिखाया। उस समय का बानरो का सर्दार (ग्रब का) बाग-विगाडने वाला लड़का था; श्रौर बुद्धिमान् श्रादमी तो में ही था।

## ४७. वारुगी जातक

"न वे श्रनत्थकुसलेन . . . ." यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक शराब बिगाड़ देने वाले के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

एक शराब का व्यापारी श्रनाथिपिण्डक का मित्र तेज शराब बनाकर, हिरण्य, सोना श्रादि लेकर बेचता था। (एक दिन) वह बेचते बेचते, बहुत श्राहको के इकट्ठे हुए रहने के समय, श्रपने शिष्य को, "तात । तू (इनसे) मूल्य ले ले कर शराब दे" कह, (श्रपने) नहाने चला गया। शागिर्द ने लोगो को शराब देते हुए देखा कि (लोग) बीच बीच मे नमक की डली मँगवा कर, खाते हैं। यह देख, उसने 'शराब श्रलूनी होगी' (सोच) 'इसमे निमक डालूँगा' (करके) शराब की चाटी मे नालिका भर कर निमक डाल, लोगो को शराब दी। उन्होने मुँह भर कर थूक, (कर) पूछा—"यह तने क्या किया ?"

"तुम्हे शराब पीते पीते निमक मँगवाते देखकर, (इसमे) निमक मिला दिया।"

"ऐसी अच्छी शराब को खराब कर दिया। मूर्ख कही का" कह, उसकी निन्दा करते, उठ कर चले गये।

शराब के व्यापारी ने ग्राकर, एक को भी न देख, पूछा— "शराब के पीने वाले कहाँ चले गये?"

शागिर्द ने सब हाल कहा । उसके मालिक ने, 'मुर्खं <sup>।</sup> तूने इतनी म्रच्छी शराब बिगाड़ दी' कह, उसकी निन्दा कर, यह वृत्तान्त **ग्रनाथपिण्डिक** से कहा ।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> श्रनाज का एक नाप।

म्रानाथिपिण्डिक ने 'कहने के लिए बात हैं' सोच, जेतवन जा, शास्ता को प्रणाम कर, यह बात कही। शास्ता ने, 'गृहपित । न केवल म्राभी यह शराब बिगाडिन वाला हुम्रा है, पहले भी यह शराब बिगाडिन वाला था" (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, बाराणसी के सेठ थे। उनके ग्राश्रित एक शराब का व्यापारी जीविका करता था। वह तेज शराब बनाकर शागिर्द को 'इसे बेच' कह कर, (ग्रपने) नहाने चला गया। उसके जाते ही शागिर्द ने शराब मे निमक डाल कर, इसी प्रकार शराब खराब कर डाली। सो उसके गुरु ने ग्राकर, वह हाल मालूम कर श्रेष्ठी को कहा। श्रेष्ठी ने उपकार करने मे ग्रदक्ष मूर्ख (लोग) उपकार करेगे (करके) ग्रपकार ही करते हैं, (कह) यह गाथा कही—

न वे श्रनत्थकुसलेन श्रत्थचरिया सुखावहा, ूर्ट्सू हापेति श्रत्थं दुम्मेघो कोण्डञ्जो वार्रीण यथा ॥

[ उपकार ( = ग्रनर्थं) करने मे ग्रदक्ष ग्रादमी का उपकार ( = ग्रर्थं) करना भी सुखदायक नहीं होता। कोण्डज्ज (नामक) ग्रन्तेवासिक के शराब बिगाड़ देने की तरह, मूर्खं ग्रादमी ग्रर्थं ( = काम) की हानि कर डालता है।

कोण्डञ्जो वारुणिं यथा, जैसे इस कोण्डञ्ज नामक अन्तेवासिक ने 'भ्रच्छा करता हूँ' (करके) निमक डाल कर, शराब बिगाड़ दी, खराब कर दी, विनाश कर दी। इस प्रकार सभी अनर्थ-कुशल अर्थ (=काम) को बिगाड़ डालते हैं। बोधिसत्त्व ने इस गाथा से धर्मोपदेश दिया।

शास्ता ने भी, "गृहपति । न केवल ग्रभी यह शराव बिगाडने वाला हुग्रा है, पहले भी यह शराब बिगाडने वाला ही था" कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का शराब-बिगाडने वाला, ग्रब का भी शराब-बिगाडने वाला हुग्रा। लेकिन वाराणसी का श्रेष्ठी तो मैं ही था।

## ४८. वेदब्भ जातक

"ग्रनुपायेन यो ग्रत्थं . " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय (एक) बात न मानने वाले भिक्षु के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को, शास्ता ने, "भिक्षु । न केवल स्रभी तू बात न मानने वाला है, पहले भी तू बात न मानने वाला ही था। उसी कारण से, बुद्धिमानो की बात न मान, तेज तलवार से दो टूक हो रस्ते पर गिरा। स्रौर तेरे एक के कारण एक हजार स्रादिमयो के प्राण की हानि हुई।" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, एक गाँव में, एक ब्राह्मण वैदर्भ नामक मन्त्र जानता था। वह मन्त्र बेश-कीमत था, महामूल्यवान् था। नक्षत्रों का योग होने पर, उस मन्त्र का जप कर, ग्राकाश की ग्रोर देखने से सात रत्नों की वर्षा होती थी। उस समय बोधिसत्त्व उस ब्राह्मण के पास विद्या सीखते थे। सो एक दिन वह ब्राह्मण किसी भी काम से, बोधिसत्त्व को (साथ) लेकर, ग्रपने ग्राम से निकल चेतिय राष्ट्र (की ग्रोर) ग्रा। रास्ते में, एक जंगल की जगह में, पाँच सौ 'पेसनक चोर' मुसाफिरो पर डाका डालते थे। उन्होंने बोधिसत्त्व ग्रौर वैद्वर्भ ब्राह्मण को पकड़ लिया। यह चोर, 'पेसनक चोर' क्यो कहलाते थे? वह दो जनों को पकड़ कर, उनमे

<sup>ै</sup> वर्तमान पूर्वी बुन्देलखण्ड।

से एक को धन लाने के लिए भेजते थे, इसलिए पेसनक ( —प्रेषनक —भेजने वाले) चोर कहलाते थे। वे, पिता-पुत्र को पकड कर, पिता को कहते, 'तू हमारे लिए धन लाकर, पुत्र को ले जाना, इसी प्रकार माँ-बेटी को पकड कर, माँ को भेजते, ज्येष्ठ-किनष्ठ भाइयो को पकड कर ज्येष्ठ भाई को भेजते, (ग्रौर) गुरु-शिष्य को पकड़ कर शिष्य को भेजते। सो, उस समय भी, उन्होने वैदर्भ- बाह्मण को पकड़े रख कर, बोधिसत्त्व को भेजा।

बोधिसत्त्व ने श्राचार्य्य को प्रणाम कर, कहा—''मैं एक दो दिन में श्रा जाऊँगा। श्राप डिरयेगा नहीं। श्रीर मेरा कहना करना। श्राज धन वर्षाने का नक्षत्रयोग होगा। श्राप दुख को न सह सकने के कारण, मन्त्र का जाप कर, धन मत बरसाना। यदि बरसाश्रोगे, तो तुम श्रीर यह पाँच सौं चोर—सभी—नाश को प्राप्त होगे।'' इस प्रकार श्राचार्य्य को उपदेश (—सलाह) देकर, वे धन लाने के लिए चले गये। चोरो ने सूर्यास्त होने पर ब्राह्मण को बाँध कर डाल दिया। उसी समय पूर्व दिशा की श्रोर से परिपूर्ण चन्द्रमण्डल उगा। ब्राह्मण ने तारो की श्रोर देखते हुए धन बरसाने के नक्षत्र-योग को देख, सोचा—''मैं किस लिए दुख श्रनुभव कहूँ? क्यो न मन्त्र का जाप कहूँ श्रीर रत्नो की वर्षा वर्षाकर चोरो को धन देकर, सुख पूर्वक चला जाऊँ।'' उसने चोरो को सम्बोधित किया—''चोरो । तुमने मुभे किस लिए पकड रक्खा है?''

"ग्रार्य ! धन के लिए।"

"यदि, धन की स्रावश्यकता है, तो शीघ्र ही मुक्ते बन्धन से खोल, सिर से नहला, नवीन वस्त्र पहना, सुगन्धियो का लेप कर, फूल-मालाये पहिना कर, बिठास्रो।" चोरो ने उसकी बात सुन, वैसा ही किया।

ब्राह्मण ने नक्षत्र-योग जान, मन्त्र जाप कर म्राकाश की स्रोर देखा । उसी समय म्राकाश से रत्न गिरे। चोर उस धन को इकट्ठा कर, (म्रपने भ्रपने) उत्तरीय मे गठरी बाँध, भागे। ब्राह्मण भी उनके पीछे ही पीछे गया। तब उन चोरो को दूसरे पाँच सौ चोरो ने पकड लिया।

"हमे किस लिए पकडा है ?" पूछने पर, उत्तर मिला, "धन के लिए पकडा है।" "यदि धन की ग्रावश्यकता है, तो इस ब्राह्मण को पकड़ो। यह, श्राकाश की ग्रोर देख कर धन वर्षावेगा। हमे भी यह धन इसी ने दिया है।"

चोरों ने उन चोरों को छोड़ कर ब्राह्मण को पकड़ा, श्रौर कहा—"हमें भी धन दो।" ब्राह्मण ने कहा—"में तुम्हें धन दूँ, लेकिन धन बरसाने का नक्षत्रयोग (श्रव) एक वर्ष बाद होगा। यदि धन से मतलब है, तो सबर करो, में तब धन की वर्षा बरसाऊँगा।" चोरों ने ऋद्ध होकर, 'श्ररे। दुष्ट ब्राह्मण! श्रौरों के लिए श्रभी धन वर्षा कर, हमें श्रगले वर्ष तक प्रतीक्षा कराता हैं कह, (वही) तेज तलवार से ब्राह्मण के दो टुकड़े कर, (उसे) रास्ते पर डाल दिया। (फिर) जल्दी से उन चोरों का पीछा कर, उनक्रे साथ युद्ध किया; श्रौर उन सब को मार कर, धन ले फिर (श्रापस में) दो हिस्से हो, एक दूसरें से युद्ध किया, श्रौर ढाई सौं जनों को मारा। इस प्रकार जब तक (केवल) दो जने बाकी रह गये, तब तक एक दूसरें को मारते रहें।

इस प्रकार उन (एक) सहस्र म्रादिमयों के विनष्ट होने पर, उन दोनों जनों ने उपाय से धन को लाकर, एक ग्राम के समीप, जगल में छिपाया। (उन दोनों में से) एक खड्ग लेकर धन की हिफाजत करने लगा। दूसरा, चावल लेकर, भात पकवाने के लिए गाँव में गया। लोभ विनाश का मूल ही हैं। धन के पास बैठे हुए ने सोचा— "उसके म्राने पर धन के दो हिस्से करने होगे। क्यों न में, उसे म्राते ही खड्ग के प्रहार से नार दूँ।" सो वह खड्ग को तैयार कर, बैठा, ग्रौर उसके ग्राने की प्रतीक्षा करने लगा। दूसरे ने भी सोचा— "उस धन के दो हिस्से (करने) होगे। सो, में, भात में विष मिला कर, उस ग्रादमी को खिलाऊँ, इस प्रकार उसका प्राण नाश कर, सारे धन को म्रकेला ही ले लूँ।" उसने भात के तैयार हो जाने पर, ग्रपने खा, शेष भात में विष मिला, (उसे) लेकर वहाँ गया। उसके भात उतार कर रखते ही, दूसरे ने खड्ग से दो टुकड़े करके, उसे छिपी जगह में छोड़, ग्रपने भी उस भात को खा, वहीं प्राण गँवाये।

इस प्रकार, उस घन के कारण सभी विनाश को प्राप्त हुए। बोधिसत्त्व भी एक दो दिन में घन लेकर ग्रा गये। (उन्होंने) वहाँ ग्राचार्य्य को न पा, ग्रौर बिखरे धन को देख (सोचा)—'ग्राचार्य्य ने मेरी बात न मान धन बरसाया होगा। ग्रौर सब विनाश को प्राप्त हुए होगे।' (यह सोच) महा-मार्ग से चले। चलते चलते ग्राचार्य्य को, सडक पर दो टुकड़े हुए पडा देख, 'मेरा कहना न मान कर मरा' (सोच) लकडियाँ चुन, चिता बना, ग्राचार्य्य का दाह-कर्म

किया और उसे वन-पुष्पो से पूजा। ग्रागे चलकर, पाँच सौ मरे हुए, उससे ग्रागे ढाई सौ, इसी प्रकार कम से ग्रालीर मे दो जनो को मरा देख कर, सोचा— "यह दो कम एक हजार (जने) विनाश को प्राप्त हुए। दूसरे दो जने (भी) चोर होगे और वे भी सँभल न सके होगे। वे कहाँ गये?" सोचते हुए उनके धन लेकर जगल मे घुसने के मार्ग को देख, जाकर, गठरी बँधी धन की राशि को देखा। वहाँ एक को भात की थाली को परोस कर, मरा पाया। तब इन्होने 'यह यह किया होगा'—यह सब जान, 'वह (दूसरा) ग्रादमी कहाँ है " सोचते हुए उसे भी जंगल मे फेका पडा देख, सोचा—हमारे ग्राचार्य्य ने मेरी बात न मान, ग्रपने बात न मानने के स्वभाव के कारण, ग्रपने भी प्राण गँवाये, और दूसरे हजार जनो का भी नाश किया। ग्रनुचित मार्ग से ग्रपनी उन्नति चाहने वाला, हमारे ग्राचार्य्य की तरह महाविनाश को ही प्राप्त होता हैं। यह सोच, यह गाथा कही—

#### श्रनुपायेन यो श्रत्थं इच्छति सो विहञ्जति, चेता हींनसु वेदब्भं सब्बे ते व्यसनमज्भगु॥

[जो अनुचित मार्ग से अर्थ (=धन) चाहता है, वह विनाश को प्राप्त होता है। चेतिय-देश के चोरो ने वैदर्भ ब्राह्मण को मार डाला। (श्रीर) वे सब भी मरण को प्राप्त हुए।]

सो विहञ्जिति, अनुचित रीति से, अपना अर्थ, वृद्धि, सुख चाहता हूँ (करके) अनुचित समय पर प्रयत्न करने वाला आदमी मरता है, दुख पाता है, महाविनाश को प्राप्त होता है। चेता, चेतिय-राष्ट्र वासी चोर। हींनसु वेदब्सं, वैदर्भ मन्त्र वाला होने के कारण, वैदर्भ नाम पड जाने वाले बाह्मण को मार दिया। सब्बे तेव्यसनमज्भगु वे भी सारे के सारे, एक दूसरे को मार कर दुख (=व्यसन) को प्राप्त हुए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने 'जैसे हमारे श्राचार्य्य श्रनुचित स्थान मे प्रयत्न करके, धन वर्षा कर ग्रपने प्राण नाश को प्राप्त हुए, श्रौर दूसरो के भी विनाश के कारण हुए; इसी प्रकार श्रौर भी जो कोई श्रनुचित रीति से श्रपनी उन्नति की इच्छा करके, प्रयत्न करेगे, वे सब के सब ग्रपने विनाश को प्राप्त होगे, तथा ग्रीरो के विनाश के कारण बनेगें (कह) बन को उन्नादित कर देवताग्रो के "साधु-साधु" कहते समय, इस गाथा से धर्मोपदेश कर, उस घन को उपाय से ग्रपने घर मँगवा लिया। (फिर) वे दानादि पुण्य करते हुए, जितनी ग्रायु थी, उतने समय तक जीवित रह कर, जीवन के ग्रन्त में, स्वर्ग-मार्ग को पूर्ण करते (परलोक) गये।

शास्ता ने भी, 'भिक्षु । न केवल श्रभी तू बात न मानने वाला है, पहले भी तू बात न मानने वाला ही रहा है, श्रौर (श्रपने) बात न मानने के स्वभाव के कारण महाविनाश को प्राप्त हुश्रा है' (कह) यह धर्म-देशना ला, जातक का साराश निकाला। ''उस समय का वैदर्भ ब्राह्मण (श्रब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। शिष्य तो में ही था।''

#### ४६. नक्खत्त जातक

"नक्खत्तं पतिमानेन्तं ..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक **श्राजीवक** के बारे मे कही ।

## क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती की एक लडकी, दीहात (=जनपद) के एक कुल-पुत्र ने अपने पुत्र के लिए पक्की की । 'ग्रमुक-दिवस (ग्राकर) ले जाऊँगा'—इस प्रकार दिन का निश्चय कर, उस दिन के ग्राने पर, उसने ग्रपने कुल-विश्वासी ग्राजीवक से पूछा—''भन्ते । ग्राज हम एक मङ्गल करेगे। क्या नक्षत्र ग्रच्छा हैं ?"

<sup>ै</sup> उस समय के नंगे साधुग्रों का एक सम्प्रदाय ।

उसने 'यह मुफ्ते बिना पूछे, पहले दिन निश्चय करके, श्रव मुफ्ते पूछता है' (सोच) कुद्ध हो, 'श्रच्छा, इसे सबक सिखाऊँगा' (करके) कहा— "श्राज नक्षत्र श्रच्छा नही । श्राज मङ्गल-कर्म मत करना । यदि श्राज मङ्गल-कर्म करोगे, तो महाविनाश होगा ।"

उस कुल के ग्रादमी, उस (ग्राजीवक) की बात पर विश्वास कर, उस दिन न गये। नगर-वासियों ने सब मङ्गल-िक्तया (समाप्त) कर, उनको न ग्राते देख, 'उन्होंने ग्राज का दिन निश्चय किया, ग्रीर वे नहीं ग्राये। हमारा बहुत खर्ची हुग्रा। हमें उनसे क्या ? हम ग्रपनी लडकी (किसी) दूसरे को दे देंगे' (सोच) उस किए कराये मङ्गल-कर्म से लडकी दूसरे को दे दी।

जब पहले के लोगों ने अगले दिन आकर कहा—हमें लडकी दे। उन श्रावस्तीवासियों ने, 'तुम दीहाती गृहस्थी पापी-मनुष्य हो। दिन का निश्चय कर (हमारा) अनादर कर नहीं आये। जिस रास्ते से आये हो, उसी रास्ते से चले जाओ। हमने, लड़की, दूसरों को दे दी हैं' (कह) उनका मखौल उडाया। वे, उनके साथ भगडा करके, जिस रास्ते आये थे, उसी रास्ते लौट गये।

उस म्राजीवक द्वारा, उन मनुष्यो के मङ्गल-कर्म में बाधा डाल दी जाने की बात भिक्षुम्रो को मालूम हुई। वे भिक्षु धर्म-सभा में बैठे बात-चीत कर रहे थे—"ग्रावुसो! (उस) ग्राजीवक ने (ग्रमुक) कुल के मङ्गल-कर्म में बाधा डाल दी।" शास्ता ने ग्राकर पूछा—"भिक्षुम्रो! बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?"

उन्होने कहा---"यह (बातचीत)।"

(शास्ता ने) "भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी वह ग्राजीवक उस कुल के मङ्गल-कर्म मे विष्म डालने वाला है, पूर्व समय मे भी इसने उन पर कुद्ध होकर, उनके मङ्गल-कर्म मे बाधा डाली थी"—कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, दीहातियो (=जनपदवासियो) ने नगरवासियो की लडकी पक्की करके, दिन का निश्चय कर, ग्रपने कुल के विश्वासी ग्राजीवक से पूछा—"भन्ते! ग्राज हमारी एक मङ्गल-क्रिया है। क्या नक्षत्र ग्रच्छा है?" उसने, यह ग्रपनी

रुचि ग्रनुसार दिन निश्चित करके, ग्रब मुभे पूछते हैं' (सोच) ऋद्ध हो 'ग्राज इनके मङ्गल-कर्म मे बाधा डालूँगा' (निश्चय कर) कहा— ''ग्राज नक्षत्र ग्रच्छा नही । यदि (मङ्गल-कर्म) करोगे, तो महाविनाश को प्राप्त होगे।"

वे उसकी बात पर विश्वास कर, न गये । जनपदवासियो ने उनको न आता देख, 'वे आज दिन निश्चित करके नहीं आये । हमें उनसे क्या ?' (सोच) औरो को लड़की दे दी । नगरवासियो ने अगले दिन आकर लड़की मॉगी । जनपदवासियो ने (उत्तर दिया)—''तुम नगरिनवासी निर्लंज्ज गृहस्थ हो । दिन निश्चित करके (भी) लड़की को नहीं लेते । तुम्हें न आता देख, हमने (लड़की) दूसरो को दे दी।"

"हम ग्राजीवक को प्छ कर, उसके नक्षत्र ग्रच्छा नहीं है, कहने के कारण नहीं ग्राये। (ग्रब) हमें लडकी दो।"

"हमने तुम्हारे न श्राने के कारण, लडकी दूसरो को दे दी। हम दी हुई लडकी को वापिस कैसे ले।" इस प्रकार उनके श्रापस में एक दूसरे के साथ कलह करते समय, एक नगरिनवासी बुद्धिमान् श्रादमी किसी काम से दीहात ( = जन-पद) में श्राया। उन नगरिनवासियों को 'हम श्राजीवक को पूछ कर, (उसके) 'नक्षत्र श्रच्छा नहीं हैं' कहने के कारण, नहीं श्रायें कहते सुन 'नक्षत्र से क्या प्रयोजन ? क्या लड़की का मिलना ही नक्षत्र नहीं हैं ?' कह, यह गाथा कही—

#### नक्खत्तं पतिमानेन्तं ग्रत्थो बालं उपच्चगा, श्रत्थो ग्रत्थस्स नक्खत्तं किं करिस्सन्ति तारका ॥

["नक्षत्र देखते रहने वाले मूर्ख ग्रादमी का काम नष्ट हो जाता है (  $\Longrightarrow$  जाता रहता है) । मतलब की सिद्धि (  $\Longrightarrow$  ग्रर्थ) ही मतलब का नक्षत्र है । तारे क्या करेगे ?"]

पितमानेन्तं, देखते हुए के, श्रब नक्षत्र होगा, श्रब नक्षत्र होगा, इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए के । श्रत्थो बालं उपच्चगा, इस नगरिनवासी मूर्खं ने लडकी की प्राप्ति नामक मतलब की बात ( = श्रर्थं) गँवा दी । श्रत्थो श्रत्थस्स नक्खतं, जिस मतलब को खोजता है, उसकी प्राप्ति ही, उस मतलब का नक्षत्र है । किकरिस्सन्ति तारका—दूसरे श्राकाश के तारे क्या करेगे ? मतलब,

दुम्मेध ] ३३७

किस ग्रर्थं को साधेगे <sup>२</sup> नगरवासी भगडा करके लडकी को बिना पाये ही चले गये।

शास्ता ने भी, भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी, यह ग्राजीवक इस कुल के मङ्गल-कार्य्य मे बाधा डालता है, (इसने) पहले भी बाधा की थी—यह धर्म-देशना लाकर मेल मिला जातक का साराश निकाला । उस समय का ग्राजीवक ग्रब का ग्राजीवक ही था । उस समय के कुल भी, यह ग्रब के कुल ही थे । उस समय गाथा कह कर खडे होने वाला बुद्धिमान् ग्रादमी तो में ही था।

## ५०. दुम्मेध जातक

"दुम्मेधानं " यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, लोकोपकार के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

वह (कथा) बारहवे परिच्छेद की महाकण्ह जातक में ग्रायेगी।

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया । माता की कोख से निकलने पर, नाम ग्रहण के दिन (उसका) नाम ब्रह्मदत्त कुमार रक्खा गया। जब वह (कुमार) सोलह वर्ष का हो गया, तो तिक्षला जा विद्या

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातक (४६६)

सीख कर, तीनो वेदो तथा ब्रह्वारह विद्यास्रो मे पूर्णता प्राप्त की । तब उसके पिता ने उसे उप-राज (युवराज) बना दिया।

उस समय बाराणसी-निवासी देवताग्रो के भक्त थे। (वे) देवताग्रो को नमस्कार करते थे ग्रौर बहुत सी भेड, बकरी, मुर्गे, सूत्रर ग्रादि को मार, नाना प्रकार के पुष्प-गन्धो तथा रक्त-मास के साथ बलिकर्म करते थे।

बोधिसत्त्व ने सोचा—''इस समय लोग देवताग्रो की भिक्त में बहुत प्राण-बध करते हैं। साधारण लोग ग्रिधिकाश तौर पर, ग्रधम में ही नियुक्त हैं। में पिता के मरने पर, राज्य प्राप्त कर किसी को भी बिना कष्ट दिये, ढंग (च्यपाय) से ही किसी को प्राण-बध न करने दूँगा।" उसने एक दिन रथ पर चढ नगर से निकल कर देखा कि एक बड़े भारी बरगद के वृक्ष के नीचे बहुत से लोग एकत्रित हुए हैं, ग्रौर उस वृक्ष में रहने वाले देवता से, पुत्र, पुत्री, यश, धन ग्रादि जो जो चाहते हैं, सो सो माँगते हैं। वह रथ से उतर कर उस वृक्ष के पास गया। गन्धपुष्प से उसकी पूजा की। जल से उसका ग्रभिषेक किया। ग्रौर उसकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार उस देवता का भक्त बन, उसे नमस्कार किया। (फिर) रथ पर चढ नगर मे प्रविष्ट हुग्रा।

उस समय से, इसी प्रकार, बीच बीच मे वहाँ जाकर देवता के भक्त की तरह पूजा करता। कुछ समय के बाद पिता की मृत्यु होने पर, उसने राज्यपद पर प्रतिष्ठित हो, चार ग्रगतियों से बच, दस राज-धर्मों के विरुद्ध न जा, धर्मपूर्वक राज्य करते हुए सोचा—"मेरी इच्छा पूरी हुई। में राज्य पर प्रतिष्ठित हुग्रा। ग्रब मेने, जो पहले एक बात सोची थी, उसे पूरा करूँगा।" (यह सोच) ग्रमात्यों, तथा ब्राह्मण गृहपित ग्रादि को एकत्रित करवा, (उन्हें) सम्बोधित किया — "भो। क्या ग्राप जानते हैं कि मुक्ते राज्य क्यों मिला?"

<sup>ै (</sup>१ ऋक्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,) २ स्मृति, ३ व्याकरण, ४ छन्दो-विचिति, ५ निरुक्त, ६ ज्योतिष, ७ शिक्षा, ८ मोक्ष-ज्ञान, ६ क्रियाविधि, १० धनुर्वेद, ११ हस्तिशिक्षा, १२ कामतन्त्र, १३ लक्षण, १४ पुराण, १५ इतिहास, १६ नीति, १७ तर्क तृथा १८ वैद्यक—यह म्रद्ठारह विद्यायें है।

"देव <sup>!</sup> नही जानते है ।"

"क्या मुफे, (कभी) ग्रमुक बड वृक्ष को, गन्ध म्रादि से पूजते तथा हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हुए देखा है ?"

"देव ! हाँ (देखा) है।" "उस समय मैने मिन्नत मानी थी कि यदि मुभे राज्य मिलेगा, तो मैं तुम्हारे (निमित्त) बिल-कर्म करूँगा। मुभे यह राज्य, इन्हीं देवता के प्रताप से मिला है। सो मैं ग्रब इनका बिल-कर्म करूँगा। तुम देर न करो, शीझ ही देवता के बिल-कर्म की तैयारी करो।"

"देव <sup>।</sup> क्या क्या (चीजे) ले।"

मैने देवता की प्रार्थना करते हुए, यह मिन्नत मानी थी कि जो मेरे राज्य में हिसा (=प्राण-घात) ग्रादि पाँच दुशीलकर्म तथा दस अकुशल कर्म करने में लगे रहते हैं, उन्हें मार कर, उनकी ग्राँत की बित्त, रक्त-मास ग्रादि से बिल-कर्म करूँगा। सो तुम यह मुनादी करवा दो—"हम।रे राजा ने उप-राज रहते समय ही यह मिन्नत मानी थी, कि यदि मुफ्ते राज्य मिलेगा, तो जो मेरे राज्य में दुशील होगे, उन सब को मार बिल-कर्म करूँगा। सो, नगरवासी जान ले कि ग्रब वह पाँच प्रकार, तथा दस प्रकार के दुशील कर्म करने वाले एक हजार जनो को मरवा कर, उनके हृदय मास ग्रादि लिवा कर, उससे देवता का बिल-कर्म करने का इच्छुक हैं। (यह कह कर) जो ग्रब से लगा कर दुशील कर्मों में ग्रनुरक्त रहेगे, उनके एक सहस्र जने मार कर, यज्ञ करके मिन्नत से मुक्त होऊँगा।" इस ग्रर्थ का प्रकाश करते हुए यह गाथा कही—

#### दुम्मेधानं सहस्सेन यञ्जो मे उपयाचितो, इदानि खो हं यजिस्सामि बहु श्रधम्मिको जनो ॥

[मैने एक सहस्र दुर्बुद्धि (मनुष्यो) की (बिल देकर), यज्ञ करने की मिन्नत मानी थी। सो मै ग्रब यज्ञ करूँगा, (क्योकि) ग्रधार्मिक जन (तो) बहुत है।

<sup>&</sup>quot;दुम्मेधानं सहस्सेन " यह काम करना चाहिए, यह नहीं करना चाहिए, (यह) न जानने से, ग्रथवा दस प्रकार के ग्रकुशल कर्मी में लगे रहने से, दुष्ट-मेधा वाले = दुर्मेधा, उन दुर्बुद्ध = प्रज्ञा-रहित = मूर्ख मनुष्यो को

गिन कर, एक हजार । यञ्जो मे उपयाचितो, मैने देवता के पास जाकर मिन्नत मानी कि इस प्रकार यज्ञ करूँगा । इदानि खो हं यजिस्सामि, सो मैं मिन्नत (के प्रताप) से राज्य प्राप्त कर लेने के कारण अब यज्ञ करूँगा । क्यो ? क्योकि अभी बहुत अधार्मिक जन हैं । इसलिए अभी उनका बलि-कर्म करूँगा ।"

श्रमात्यों ने बोधिसत्त्व का बचन सुन, "देव । श्रच्छा कह, बारह योजन के बाराणसी नगर में मुनादी फिरवा दी । मुनादी की श्राज्ञा सुनकर, एक भी दु शील-कर्म ( —कुकर्म) करने वाला श्रादमी न रहा । सो जब तक बोधिसत्त्व राज्य करते रहे, तब तक एक श्रादमी भी पाँच वा दस प्रकार के कुकर्मों में से किसी एक कर्म को भी करता न दिखाई दिया । इस प्रकार बोधिसत्त्व किसी एक भी श्रादमी को कष्ट न दे, सकल राष्ट्रवासियों से सदाचार की रक्षा करवाते हुए, श्रपने श्राप भी दान श्रादि पुण्य करते हुए, जीवन के श्रन्त में श्रपनी परिषद् को ले देव-नगर की पूर्ति करते हुए (परलोक को) गये।

शास्ता ने भी, 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी तथागत लोक का उपकार करते हैं, पहले भी किया ही हैं' (कह) इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला जातक का साराश निकाल दिया । उस समय की परिषद् (ग्रब की) बुद्धपरिषद् थी। बाराणसी-राजा तो मैं ही था।

# पहला परिच्छेद

# ६. आसिंस वर्ग

## ५१. महासीलव जातक

"ग्रासिसेथेव पुरिसो...." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, (एक) हिम्मत-हार भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उसे पूछा--भिक्षु । क्या तूने सचमुच हिम्मत हार दी ?

"भन्ते । हाँ" कहने पर "हे भिक्षु । तूने इस प्रकार के कल्याणकारी शासन मे प्रव्रजित होकर, किस लिए हिम्मत हार दी ? पूर्व समय मे बुद्धिमानो ने राज्य गँवा कर भी, ग्रपने वीर्व्य (=प्रयत्न) मे स्थित रह, (ग्रपने) नष्ट हुए यश को भी फिर पैदा कर लिया" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (उस) राजा की पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। उसके नाम-करण के दिन, (उसका) नाम सीलव कुमार रक्खा गया। सोलह वर्ष की आयु होने पर (वह) सब शिल्पों में पारङ्गत हो गया। पिता के मरने के बाद राज्य पर प्रतिष्ठित हो, महासीलव नामक राजा हुआ। वह अत्यन्त धार्मिक राजा था। नगर के चार द्वारों पर चार (दानशालाये), बीच में एक, प्रवेश-द्वार पर एक, इस प्रकार छ दान-शालाये बनवाकर वह दिरद्व यात्रियों को दान देता हुआ सदाचार की रक्षा करता था। उपोसथ ( — ब्रत) रखता। शान्ति, मैंत्री और दया से युक्त, (वह) गोद में बैठे पुत्र को सन्तुष्ट करने की

तरह सभी प्राणियो को सन्तुष्ट करता हुआ, धर्म-पूर्वक राज्य करता। उसके एक अमात्य ने अन्त पुर मे दूषित कर्म किया। आगे चलकर, उसका पता लग गया। अमात्यो ने राजा से कहा। राजा ने ख्याल रखते हुए, अपने आप प्रत्यक्ष रूप से मालूम करके, उस अमात्य को बुलाकर कहा—"हे अन्ध मूर्खं। तूने अनुचित किया है। अब तू मेरे राज्य मे रहने के योग्य नहीं है। अपने धन और स्त्री-पुत्र को लेकर दूसरी जगह चला जा।" यह कह, उसे देश से निकाल दिया।

वह काशी राज्य ( = राष्ट्र) को पार कर, कोशल नरेश की सेवा मे रहता हुआ, कम से राजा का स्रातरिक विश्वासपात्र हो गया। उसने एक दिन कोशल-नरेश को कहा—''देव । बाराणसी का राज्य मक्खी-रहित शहद के छत्ते जैसा है। राजा, अत्यन्त कोमल स्वभाव है। थोड़ी सी ही सेना से बाराणसी राज्य जीता जा सकता है।''

राजा ने उसकी बात सुन सोचा—"बाराणसी राज्य महान् हैं। यह कहता है कि थोड़ी ही सेना से जीता जा सकता है। कही यह चर-पुरुष' तो नहीं?" यह सोच कर उसे कहा—"मालूम होता है, तू चर-पुरुष है?"

"देव ! मैं चर-पुरुष नहीं हूँ। यदि मेरा विश्वास न हो, तो मनुष्यों को भेज कर (काशी-नरेश के) प्रत्यन्त-ग्रामों को नाश करवाओं। (गाँव वालो) के उन श्रादिमयों को पकड कर, अपने पास लाने पर, (वह राजा) उन श्रादिमयों को घन देकर छोड़ देगा।"

राजा ने, "यह बडी निर्मीकता के साथ बोल रहा है, ग्रच्छा, परीक्षा करूँगा" सोच, श्रपने श्रादिमयों को भेज कर प्रत्यन्त के ग्रामों को नाश करवाया। लोगों ने चोरों को पकड कर बाराणसी-नरेश को दिखाया। राजा ने उन्हें देख पूछा—"तात! किस लिए गाँव का नाश करते हो ?"

"देव ! जीविका का कोई उपाय न होने से।"

"तो तुम मेरे पास क्यो नही ग्राये ? ग्रब ग्रागे से ऐसा मत करना" कह, उन्हें घन देकर विदा किया । उन्होंने जाकर कोशल-नरेश को वह समाचार

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>सी० श्राई० डी० ।

महासीलव ] ३४३

कहा । इतने से भी आक्रमण करने की हिम्मत न होने के कारण, उसने फिर मध्य-जनपद का नाश करवाया । उन चोरो को भी राजा ने वैसे ही धन देकर छोड़ दिया । इतने पर भी उसने न जाकर, फिर (आदिमयो को) भेज कर अन्दर-शहर लुटवाया । राजा ने उन चोरो को भी धन देकर ही लौटा दिया । तब कोशल-नरेश यह जान, कि बाराणसी का राजा अत्यन्त धार्मिक है, बाराणसी राज्य को लेने के लिए सेना लेकर निकला ।

उसै समय बाराणसी-नरेश सीलव महाराज के पास एक हजार अभेच— शूरतर—महायोघा ऐसे थे, जो सामने से मस्त हाथी के आने पर भी (पीछे) न लौटने वाले थे, सिर पर बिजली के गिरने पर भी न डरने वाले थे, सीलव महाराज की मरजी होने पर सारे जम्बूढीप का राज्य जीत सकते थे। उन्होंने 'कोशल-नरेश आता है', सुन कर, राजा के पास आकर कहा—'देव! कोशल-नरेश बाराणसी लेने के इरादे से आ रहा है। हम जाये, और अपने राज्य की सीमा लॉघते ही, उसे पीट कर पकड़ लाये।'

'तात । मेरे कारण दूसरो को कष्ट न होना चाहिए। जिन्हे राज्य लेना हो, वह राज्य ले ले। मत जाग्रो।' (कह) उन्हे रोक दिया।

कोशल-राजा ने सीमा लाँघ, जनपद के बीच मे प्रवेश किया। श्रमात्यों ने फिर भी जा कर राजा को वैसे ही कहा। राजा ने पहले ही की तरह मना किया। कोशल-राजा ने नगर के बाहर खडे होकर सीलव महाराज के पास सन्देश भेजा कि 'या तो राज्य दे, श्रथवा युद्ध करे।'

राजा ने उसे सुन प्रत्युत्तर भेजा—'मेरे साथ युद्ध (करने की स्रावश्यकता) नहीं । राज्य ले लें।'

फिर भी ग्रमात्यों ने राजा के पास ग्राकर कहा—''देव  $^{\dagger}$  हम कोशल-नरेश को नगर मे प्रविष्ट न होने दे  $^{2}$  उसे नगर के बाहर ही पीट कर पकड ले  $^{2}$ "

राजा ने पहले ही की तरह उन्हें मना किया। (फिर) नगर-द्वारों को खुलवा कर, हजार ग्रमात्यों सहित (ग्रपने) महातल पर सिहासन के बीच में बैठा।

कोशल-नरेश बडी सेना-सवारी के साथ बाराणसी में प्रविष्ट हुग्रा। उसने एक भी विरोधी-शत्रु को न देख, राजा के निवास (-स्थान) के द्वार पर जा, ग्रमात्यों से घिरे हुए, खुले द्वार वाले राज-महल में ग्रलंकृत-सजे महातल पर

चढ कर बैठे निरपराध सीलव महाराजा को उसके सहस्र मन्त्रियो सहित पकडवा कर (ग्रपने ग्रादिमयो को) कहा—"जाग्रो, ग्रमात्यो सिहत इस राजा को, (इनके) हाथ पीछे कस करके बाँध कर, कच्चे श्मशान में ले जाग्रो। (वहाँ ले जा कर) गले तक गहरे गढे खोद कर, जिसमे एक भी हाथ न हिलाया जा सके, वैसे रेत भर कर गाडो। रात को श्रुगाल ग्राकर, जो इनके साथ करना योग्य हैं, सो करेगे।"

मनुष्य चोर-राजा की आज्ञा सुन, अमात्यो सहित राजा को, पीछे बाहे कडी करके बाँध कैंद कर ले गये। उस समय भी सीलव महाराज ने चोर-राजा के प्रति द्वेष-भाव तक नहीं किया। उन बाँध कर लिए जाते अमात्यों में से, राजा की बात के विरुद्ध जाने वाला, एक भी (अमात्य) न था। इतनी सुविनीत थी वह राजा की परिषद। सो वह राजपुरुप अमात्यो सहित सीलव राजा को कच्चे श्मशान में ले गये। (वहाँ) ले जा, गले तक गढे खोद, सीलव महाराज को बीच में (और उसके) दोनो ओर शेष अमात्यों को, इस प्रकार सब को गढों में उतार, रेत से भर, ऊपर से घन से कूट कर चले गये। सीलव महाराज ने अमात्यों को सम्बोधित करके उपदेश दिया—"तात! चोर-राजा के प्रति कोध न कर मैंत्री-भावना ही करो।"

सो श्राधी रात के समय, मनुष्य मास खाने के लिए श्रुगाल श्रा गये। उन्हें देख, राजा श्रौर ग्रमात्यों ने, सब ने एक साथ ही शोर मचाया। श्रुगाल डर के मारे भाग गये। (लेकिन) ठहर कर, उन्होंने पीछे किसी को न श्राते देखा। सो वह फिर लौट श्राये। इन्होंने भी वैसे ही शोर मचाया। इस प्रकार तीन बार भाग कर, फिर देखते हुए, उनमें से किसी एक को भी पीछे न श्राते देख, 'यह दिष्डत होगे' (सोच), वीर बन कर लौटे। फिर उनके शोर मचाते रहने पर भी नहीं भागे।' स्यारों का सर्दार (च्ज्येष्ठ श्रुगाल) राजा के पास पहुँचा, श्रौर बाकी दूसरों के पास। होशियार राजा ने उसे श्रपने समीप श्राने दिया, श्रौर (गीदड को) काटने का मौका देते हुए की तरह, गरदन को उठाया। जब स्यार गरदन काटने श्राया, तो उसको ठोड़ी की हड्डी से खीच कर यन्त्र में फँसाये की तरह, जोर से पकड लिया। हाथी के बल समान बलशाली राजा की ठोड़ी की हड्डी द्वारा खीच कर गरदन से पकडे जाने पर, स्यार (जब) श्रपने को छुडा न सका, तो वह मरने से भयभीत होकर, जोर से चिल्ला

महासीलव ] ३४५

उठा। बाकी स्यार उसकी उस चिल्लाहट को सुन कर 'उसे किसी ब्रादमी ने पकड लिया होगा' समभ ब्रमात्यों के पास न फटक सकने के कारण सब के सब भाग गये। राजा की ठोड़ी से ब्रच्छी तरह करके पकड़े स्यार के इधर उधर भटके मारने से, रेत ढीली हो गई। उस श्रृगाल ने भी मरने से भयभीत हो, चारो पॉव से राजा के ऊपर रेत उछाली। राजा ने रेत ढीला हुग्रा जान, श्रृगाल को छोड़ दिया। (फिर वह) हाथी के समान शक्तिशाली (राजा) के इधर उधर हिलते डोलते, दोनो हाथों को निकाल, गढ़े के मुँह की मुँडेर पर लटक, वायु से छिन्न हुए बादल की तरह (बाहर) निकल ब्राया। निकल कर, (उसने) ब्रमात्यों को ब्राश्वासन दे, रेत हटा, सब को निकाला। (ग्रब) ब्रमात्यों सहित वह, कच्चे श्मशान में खड़ा हुग्रा।

उस समय मनुष्य एक मृत-मनुष्य को कच्चे श्मशान में छोडने श्राकर, उसे दो यक्षों की सीमा के बीच में छोड गये। उन यक्षों ने उस मृत-मनुष्य को (श्रापस में) बॉट न सकने पर सोचा—''इसे हम नहीं बॉट सकते। यह सीलव राजा धार्मिक हैं। यह इसे हमें बॉट कर देगा। इसके पास चले।'' (सो उन्होंने) उस मृत-मनुष्य को पॉव से पकड घसीटते घसीटते राजा के पास ले जा कर कहा—देव । इसे हमें बॉट कर दे।

''यक्षो । मैं इसे तुम्हें बॉट कर तो दे दूँ, लेकिन में अपरिशुद्ध हूँ । पहले, नहाऊँगा ।''

यक्षो ने ग्रपने बल से चोर-राजा के लिए रक्खा हुग्रा, सुगन्धित जल, लाकर, राजा को नहाने के लिए दिया। नहा कर खडे हुए को, सँमाल कर रक्खे हुए चोर-राजा के वस्त्र लाकर दिये। उन वस्त्रो को पहने खडे हुए को, चार प्रकार की सुगन्धि की पेटिका लाकर दी। सुगन्धि का लेप करके खडे हुए को, सोने की पेटिका मे, मिंग-निर्मित पखी मे रक्खे हुए नाना प्रकार के फूल लाकर दिये। फूलो को पहन कर खडे होने पर पूछा—"ग्रौर क्या करें?" राजा ने कहा कि भूख लगी है। उहोने जाकर चोर-राजा के लिए सम्पादित नाना प्रकार के ग्रग्ररस भोजन लाकर दिये। नहाकर, (सुगन्धि से) ग्रनुलिप्त, ग्रलकृत, प्रसन्न चित्त, राजा ने नाना प्रकार के भोजन खाये। यक्ष, चोर-राजा के लिए रक्खा हुग्रा सुगन्धित जल, सोने की सुराही ग्रौर सोने के कसोरे सहित ले ग्राये। फिर इस के पानी पी, कुल्ला कर, हाथ

धोने पर, उन्होने चोर-राजा के लिए तैयार किया, पाँच प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित पान लाकर दिया। उसको खा चुकने पर पूछा— "श्रव क्या करें ?" "जाकर चोर-राजा के सिरहाने रक्खी माङ्गिलिक-खड्ग लाग्रो।" वह भी जाकर ले श्राये। राजा ने तलवार ले, उस मृत-मनुष्य को सीधा खड़ा रखवा, माथे के बीच में तलवार से प्रहार कर, दो टुकड़े कर, दोनो यक्षों को बराबर बराबर बाँट दिया। (उन्हें) दें, तलवार धो, तैयार हो खड़ा हुग्रा। उन यक्षों ने मनुष्य-मास खा कर, प्रसन्न हों, सतुष्ट-चित्त हों, राजा से पूछा— "महाराज! तेरे लिए ग्रौर क्या करें?"

''तुम अपने प्रताप से मुफ्ते तो चोर-राजा के शयनागार में उतार दो, ग्रौर इन ग्रमात्यो को इनके ग्रपने ग्रपने घर पहुँचा दो।'' उन्होने 'देव । ग्रच्छा' (कह) स्वीकार कर, वैसा ही किया।

उस समय चोर-राजा (ग्रपने) शयनागार मे शय्या पर पड़ा सो रहा था। राजा ने उस सोते हुए प्रमादी के पेट में तलवार की नोक चुभोई। उसने डर के मारे उठ, दीपक के प्रकाश में सीलव महाराज को पहचान, शय्या से उठ, होश सँभाल, खड़े हो राजा से प्छा—महाराज । इस प्रकार की रात्रि में, पहरे से युक्त, बन्द दरवाजो वाले भवन मे, पहरेदारो की स्राज्ञा के बिना, तुम इस प्रकार तलवार बॉध, ग्रलकृत-सज कर, इस शयनागार मे कैसे ग्राये ? राजा ने. जैसे आया था, सब विस्तार से कहा। चोर-राजा ने पुलकित-चित्त हो, "महा-राज ! में मनुष्य हो कर भी भ्रापके गुणो को नहीं जानता, श्रौर यह दूसरो का रक्त-मास खाने वाले, ग्रति कठोर यक्ष ग्रापके गुण जानते हैं। हे नरेन्द्र । मै अब से आप ऐसे शीलवान् ( = सदाचारी) के प्रति द्वेष न रक्खुँगा" (कह) तलवार ले कर शपथ ली। (फिर) राजा से क्षमा मॉग, उसे महाशय्या पर सुलाया । श्रपने श्राप छोटी चारपाई पर लेटा । उसने सुबह होने पर, सूर्य्य के उदय होने के वक्त, मुनादी फिरवाई ग्रौर सब सैनिको तथा ग्रमात्य-ब्राह्मण-गृहपतियो को एकत्रित करवा, उनके सम्मुख, आकाश मे पूर्ण चन्द्र को उठा कर (दिखाने की) तरह सीलव-राजा के गुणो को कहा । (फिर) सभा के बीच में राजा से क्षमा माँग, (उसे) राज्य सौंप, 'ग्रब से ग्रापके (राज्य) में चोरो की गडबड़ी (की देख भाल करने) का भार मुक्त पर रहा। में पहरेदारी

करूँगा । आप राज्य करें (कह) चुगल-खोर को दण्ड दे कर, अपनी सेना-सवारी ले, अपने ही देश को चला गया ।

सीलव महाराजा ने भी, ग्रलकृत-सजे हुए(हो), श्वेतछ्त्र के नीचे, सरभ मृग के पैरो सदृश पैरो वाले सोने के सिहासन पर बैठ, ग्रपनी सम्पत्ति को देखते हुए सोचा—"यह इस प्रकार की सम्पत्ति, हजार ग्रमात्यो का जीवन प्रतिलाभ; यदि में प्रयत्न (वीर्य्य) न करता, तो यह कुछ भी न होता। प्रयत्न के बल से, मैने इस नष्ट हुए यश को प्राप्त किया, सहस्र ग्रमात्यो को जीवन-दान दिया। (इसलिए) बिना निराश हुए प्रयत्न ही करना चाहिए। किया गया प्रयत्न इसी प्रकार फलदायक होता है।" यह सोच उदान (—हर्ष वाक्य) स्वरूप नीचे की गाथा कही—

#### ब्रासिसेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो, पस्सामि वोहं ब्रत्तानं यथा इच्छि तथा श्रहू ॥

[पुरुष ग्राशा लगाये रक्खे। बुद्धिमान् ग्रादमी निराश न हो। मे ग्रपने को ही देखता हूँ। जैसी इच्छा की थी, वैसा ही हुग्रा।]

श्रासिसेथेव, में इस प्रकार प्रयत्न करके इस दु ख से मुक्त हो जाऊँगा, अपने प्रयत्न से ऐसी आशा लगाये ही रक्खे । न निब्बिदेय्य पण्डितो, बुद्धिमान् च उपाय करने में दक्ष (ब्रादमी) उचित स्थान पर प्रयत्न करता हुआ, "में इस प्रयत्न का फल नहीं पाऊँगा" इस प्रकार की उत्कण्ठा न करे, ब्राशा-छेद-कर्म न करे; यही अर्थ है । पस्सामि बोहं श्रत्तानं, इसमें 'वो' निपात मात्र है; में आज अपने को देखता हूँ । यथा इच्छि तथा श्रह्, मैंने गढ़े में गडे हुए इच्छा की कि में उस दु ख से मुक्त होकर फिर राज्य लाभ करूँ । सो मेंने यह सम्पत्ति प्राप्त कर ली । जैसी मेंने इच्छा की थी, वैसा ही मुभे हो गया । इस प्रकार बोधिसत्त्व 'ब्रहो ! वत । भो ! सदाचारियो का प्रयत्न फल लाता है' (कह) इस गाथा से हर्ष-वाक्य कह, जीवन रहते पुण्य कर, यथा-कर्म (परलोक) गये।

बुद्ध ने भी इस धर्म-देशना को लाकर, (श्रार्य-)सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त में (वह) हिम्मत-हार भिक्षु श्रर्हत्व में प्रतिष्ठित

हुग्रा । शास्ता ने मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया । उस समय का दुष्ट ग्रमात्य (ग्रब का) देवदत्त था । सहस्र ग्रमात्य (ग्रब की) बुद्ध परिषद् थी । सीलव महाराज तो में ही था ।

#### ४२. चूल जनक जातक

"वायमेथेव पूरिसो . " यह गाथा (भी) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, हिम्मत-हार भिक्षु के ही बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

सो, उसके विषय मे जो कथनीय है, वह सब महाजनक जातक मे ग्रायेगा।

#### ख. अतीत कथा

जनक राजा ने श्वेत-छत्र के नीचे बैठे यह गाथा कही--

वायमेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो, पस्सामि वोहं श्रत्तानं उदका थलमुब्भतं॥

[पुरुष प्रयत्न करे । बुद्धिमान् श्रादमी निराश न हो । मै श्रपने को ही देखता हूँ कि मै जल से स्थल पर श्रा गया ।]

वायमेथेव, प्रयत्न करे ही । उदका थलमुङ्भतं, जल से स्थल पर उत्तीर्णं (हुम्रा), अपने को स्थल पर प्रतिष्ठित देखता हूँ ।

धजातक (४३६)

पुण्णपाति ] ३४६

इस अवसर पर भी हिम्मत-हार भिक्षु ने अर्हत्व प्राप्त किया । जनक राजा, सम्यक्-सम्बुद्ध ही थे ।

## ५३. पुराग्पाति जातक

"तथेव पुण्णापातियो " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय जहरीली शराब के सम्बन्ध मे कही।

## क. वर्तमान कथा

एक समय श्रावस्ती मे शराबियो ( = सुराधूर्ती) ने इकट्ठे होकर ग्रापस मे सलाह की--"हमारे पास शराब के लिए पैसा नही रहा। ग्रब (पैसा) कहाँ से मिले ?" एक ग्रत्यन्त धूर्त ने कहा--"चिन्ता मत करो। एक उपाय है। कौन सा उपाय<sup>?</sup> ग्रनाथिपिण्डिक ग्रँगुली मे ग्रँगूठी पहनता है। बारीक वस्त्र धारण करता है। तब राजा की सेवा मे जाता है। हम शराब की बाटी में बेहोशी की दवा मिला, (शराब की) दूकान लगा कर बैठ, अनाथ-पिण्डिक के स्राने के समय 'महाश्रेष्टी इधर पधारे' (कह) उसे बुलावेगे, (स्रीर) उसको शराब पिला, उसके बेहोश हो जाने पर, उसकी ग्राँगुली की ग्राँगुठी श्रौर वस्त्र उतार, उससे शराब पीने के लिए पैसे जुटावेगे।" उन्होने 'श्रच्छा' कह स्वीकार कर, वैसा कर चुकने पर, श्रेष्ठी के ग्राने के समय, उसके रास्ते पर जाकर कहा---''स्वामी । जरा इधर ग्राये। हमारे पास, ग्रत्यन्त सुन्दर शराब है। (उसमे से) थोडी पी जाये।" श्रोतापन्न ग्रार्य-श्रावक (ग्रनाथ-पिण्डिक) क्या शराब पीता ? ग्रावश्यकता न रहने पर भी, उसने इन धूर्तों की परीक्षा करूँगा (सोच) उनकी दूकान पर जा, उनकी किया देख, 'इन्होने यह शराब इस मतलब से बनाई हैं जान, 'श्रब से, इन्हे यहाँ से भगाऊँगा' विचार कर, कहा-- "ग्ररे । दुष्ट धुर्ती ! तूम शराब की बाटी मे दवाई मिला कर, ग्राने वालो को पिला कर, बेहोश करके उन्हें लूटने के विचार से दूकान सजा कर बैठे हो। खाली इस शराब की प्रशसा भर करते हो। किसी एक की भी, उठा कर पीने की हिम्मत नहीं होती। यदि यह बिना-मिलाई (शराब) होती, तो (पहले) तुम ही पीते।" धूर्तों को लताड, ग्रपने घर जा, 'धूर्तों की करनी तथागत से कहूँगा' (सोच), जेतवन जाकर, (तथागत से) निवेदन की। बुद्ध ने 'हे गृहपति। ग्रब तो वह धूर्त तुभें ठगना चाहते थे; पूर्व समय में पण्डितों को भी ठगना चाहते थे' कह, उसके याचना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कहीं—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधि-सत्त्व बाराणसी के श्रेच्छी हुए। उस समय भी इन धूर्तों ने, इसी प्रकार सलाह कर, शराब मे मिलावट मिला, बाराणसी श्रेच्छी के ग्राने के समय, रास्ते पर जाकर, इसी प्रकार कहा। एक ने ग्रावश्यकता न रहने पर भी, उनकी परीक्षा करने की इच्छा से, जाकर उनकी करनी देख, 'यह ऐसा करना चाहते हैं' जान 'यहाँ से इन्हें भगाऊँगा' सोच, कहा— "धूर्तों । शराब पीकर राज-कुल जाना अनुचित हैं। राजा को देख कर, लौटते समय (शराब को) जानूँगा। तुम यही बैठे रहना।" राजा की सेवा मे जाकर लौट ग्राया। धूर्तों ने कहा— "स्वामी! इघर ग्राये।" उसने वहाँ जाकर, दवाई मिलाई हुई (शराब की) बाटियों को देख, कहा— "ग्ररें । धूर्तों । तुम्हारी करनी मुफे ग्रच्छी नहीं लगती। तुम्हारी शराब की बाटियों जैसी की तैसी भरी ही रक्खी हैं। तुम केवल शराब की प्रशसा भर करते हो, लेकिन पीते नही। यदि यह ग्रच्छी (शराब) होती, तो तुम भी पीते। लेकिन इसमें विष मिला होगा" इस प्रकार उनके मनोरथ को छिन्न-भिन्न करते हुए यह गाथा कही—

तथेव पुण्णापातियो म्रञ्जायं वत्तते कथा, म्राकारकेन जानामि न चायं भद्दिका सुरा ॥

[ (शराब की) बाटियॉ, वैसी ही भरी है (जैसी पहले थी) । सो यह

शराब की प्रशसा (=कथा) दूसरे ही मतलब से है। मैं रग ढग से जानता हूँ कि यह शराब श्रच्छी नहीं है।

तथेव, मैने इन्हे जैसा जाते समय देखा, यह शराब की बाटियाँ, स्रब भी वैसी ही भरी हैं। स्रञ्जायं वत्तते कथा, यह जो तुम्हारी शराब की प्रशसा की बात है, वह स्रन्य है — स्रस्ट है। यदि यह शराब स्रच्छी होती, तो तुम भी पीते, (केवल) स्राधी बाटिये बाकी बचती। लेकिन तुम मे से किसी एक ने भी शराब नहीं पी। स्राकारकेन जानामि, सो में इस बात से जनता हूँ। न चायंभिह्का सुरा, यह शराब स्रच्छी नहीं, इसमे विष मिला हुम्रा होगा।

इस प्रकार धूर्तों को ले, जिसमे वह फिर वैसा न करे, उनको लताड, छोड दिया। वह जीवन रहते, दानादि पुण्य करके यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के धूर्त (श्रब के) धूर्त थे। लेकिन उस समय बाराणसी का सेठ में ही था।

#### ४४. फल जातक

"नायं रुक्खो दुरारूहो. .." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, एक फल (पहचानने में) हुशियार उपासक के बारे में कही।

### क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-वासी गृहस्थ ने, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघ को निमन्त्रित कर, अपने आराम में विठा, यवागु-खाजा दे, (ग्रपने) माली को ग्राज्ञा दी, कि वह भिक्षुग्रो के साथ बाग में घूम, उन ग्रार्थ्यों को ग्राम ग्रादि नाना प्रकार के फल

दे। वह 'ग्रच्छा' (कह) स्वीकार कर, भिक्षु-सघ को साथ ले, उद्यान में फिरते हुए, वृक्ष को देख कर ही जान लेता कि यह कच्चा फल है, यह ग्रच्छी तरह पका नहीं, यह ग्रच्छी तरह पका है। जिसे वह जैसा कहता, वह वैसा ही निकलता। भिक्षुग्रों ने जाकर तथागत से निवेदन किया— "भन्ते! यह माली फल (पहचानने में) दक्ष है। पृथ्वी पर खड़े ही खड़े वृक्ष को देख कर ही, जान लेता है, 'यह फल कच्चा है, यह ग्रच्छी तरह नहीं पका, यह ग्रच्छी तरह पका है' जिसे, वह जैसा कहता है, वह वैसा ही निकलता है।" बुद्ध ने, 'हे भिक्षुग्रों! केवल यह माली ही फल (पहचानने में) दक्ष नहीं, पूर्व समय में पण्डित (जन) भी फल (पहचानने में) दक्ष थें कह, पूर्व-जन्म की कथा कहीं—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) श्रेष्ठी-कुल मे उत्पन्न हुए । उन्होने ग्रायु-प्राप्त होने पर, पाँच सौ गाडियाँ ले, वाणिज्य करते हुए, एक समय जगल मे से गुजरने वाले माहमार्ग से, जगल के मुख-द्वार पर खडे हो, सभी मनुष्यो को एकत्रित करवा कहा---"इस जगल मे विष-वृक्ष होते है, विप-पत्र, विष-पृष्प, विष-फल, तथा विष-मधु होते हैं। यदि कोई ऐसा पत्र, फूल या फल हो, जिसे तुमने पहले न खाया हो, उसे बिना मुभे पूछे मत खाना।" वह 'ग्रच्छा' (कह) स्वीकार कर जगल मे प्रविष्ट हुए। जगल मे प्रविष्ट होते ही, एक ग्राम-द्वार पर एक किम्फल नामक वृक्ष था। उस (वृक्ष) के तने, शाखा, पत्ते, फूल, फल, सब ग्राम की तरह के थे। न केवल रग ग्रौर ग्राकार में, किन्तू गन्ध ग्रौर रस में भी। (इस वृक्ष के) कच्चे पक्के फल, ग्राम के फल के सद्श ही थे। लेकिन खाने पर हलाहल विष की तरह, उसी समय प्राणो का नाश कर देते थे। स्रागे स्रागे जाने वाले कुछ लोभी म्रादिमयो ने 'यह म्राम के वृक्ष हैं' समभ , फल खाये। कुछ ने 'कारवान के सरदार को पूछ कर खायेगे' हाथ में लिये खडे रहे। उन्होने सार्त्थवाह (कारवान के सरदार) के ग्राने पर पूछा-- "ग्रार्य ! इन ग्राम के फलो को खाये ?" बोधिसत्त्व ने यह जान कि यह ग्राम का वृक्ष नही है, 'यह ग्राम्र-वृक्ष नही, यह किम्फल वृक्ष है, मत खाग्रो' (कह) मना किया। जिन्होने खाये थे, उनकी भी उल्टी करा, उन्हें चतु-मधुर पिला भ्रच्छा किया। (इससे)

पहले, मनुष्य उस वृक्ष के नीचे निवास कर, 'यह आम्रफल हैं' (करके) उन विष-फलो को खा, (अपने) प्राण गँवाते । अगले दिन प्रामवासी निकल, मृत-मनुष्यो को देख, उन्हें पॉव से पकड, छिपे हुए स्थान पर फेक, गाड़ियो सहित, जो कुछ उनके पास होता, सब ले जाते ।

उस दिन भी उन्होने श्ररुणोदय के समय ही निकल 'बैल मेरे होगे, गाडी मेरी होगी, सामान मेरा होगा' (करके) जल्दी से उस वृक्ष के नीचे पहुँच, मनुष्यो को निरोगी देख पूछा—'तुम्हे कैसे मालूम हुग्रा कि यह वृक्ष श्राग्र-वृक्ष नहीं है ?' उन्होने कहा—'हम नहीं जानते । हमारा ज्येष्ठ सात्र्यवाह जानता है।' मनुष्यो ने बोधिसत्त्व से पूछा—"हे पण्डित । तूने कैसे जाना कि यह वृक्ष ग्राम का वृक्ष नहीं है ?" उसने दो बातो से जाना कह, यह गाथा कही—

#### नायं रुक्लो दुरारूहो न पि गामतो स्रारका, स्राकारकेन जानामि नायं सादुफलो दुमो।।

[न तो यह वृक्ष चढने मे दुष्कर है, न ही गाँव से दूर है। इन दो बातो से में जानता हूँ कि यह स्वादु फलो का वृक्ष नहीं।]

नायं रक्लो दुरारूहो, यह विष-वृक्ष चढने मे दुष्कर नही है, उछल कर, जैसे सीढी रक्ली हो, वैसे चढा जा सकता है। निप गामतो ग्रारका, ग्राम से दूर भी नहीं है, ग्रर्थात् ग्राम के समीप ही है। ग्राकारकेन जानामि, इस दो प्रकार की बात से में इस वृक्ष को पहचानता हूँ कि नायं सादुफलो दुमो, यिद यह मधुरफल ग्राम्र-वृक्ष हो, तो इस प्रकार ग्रासानी से चढ सकने योग्य (तथा) ग्राम के पास ही लगे इस (वृक्ष) पर एक भी फल न रहे। फल खाने वाले मनुष्य, इसे नित्य ही घेरे रहे। इस प्रकार मेंने ग्रपने ज्ञान से परीक्षा करके जाना कि यह विष-वृक्ष है। इस प्रकार जन (-समूह) को धर्मोपदेश कर, उसने सकुशल मार्ग ग्रहण किया।

बुद्ध ने भी, "हे भिक्षुग्रो ! इस प्रकार पहले भी पण्डित (-जन) फल (पह-चानने मे) दक्ष हुए हैं" (कह) इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया । उस समय की परिषद् (ग्रब की) बुद्ध परिषद् ही थी । लेकिन सर्त्थवाह में ही था ।

१.६ ५५

## ४५. पंचावुध जातक

"यो श्रलीनेन चित्तेन...." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय (एक) हिम्मत-हार भिक्षु के बारे मे कही।

## क वर्तमान कथा

उस भिक्षु को बुद्ध ने बुलाकर, पूछा—'हे भिक्षु । क्या तू सचमुच हिम्मत-हार बैठा ?' उसके 'भगवान् । सचमुच' कहने पर, 'हे भिक्षु । पूर्व समय मे बुद्धिमान् लोग हिम्मत करने की जगह हिम्मत करके राज-सम्पत्ति के लाभी हुए।' कह (शास्ता ने) पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, उसकी पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। उसके नामकरण के दिन, एक सौ आठ ब्राह्मणों की सब कामनाये पूरी कर, उनसे उसके लक्षण (चिन्ह) पूछे गये। चिह्न (देखने मे) दक्ष ब्राह्मणों ने, उसकी चिह्न-सम्पत्ति को देख कहा— "महाराज! कुमार पुण्यवान् हैं। तुम्हारे बाद राज्य प्राप्त करेगा। पाँच शस्त्रों के चलाने में प्रसिद्ध हो, जम्बूद्धीप मे अग्र-पुरुष होगा।" ब्राह्मणों की बात सुन, कुमार का नाम रखने वालों ने, उसका नाम पञ्चावुधकुमार रक्खा। सो उसके होश सँभालने पर, सोलह वर्ष का होने पर, राजा ने बुलाकर, कृहा—तात! शिल्प सीख।

"देव <sup>!</sup> किस के पास सीख्रं ?"

"तात । जा, गान्धार देश के तक्षशिला नगर मे लोक-प्रसिद्ध श्राचार्य्य के पास जा कर सीख। यह उस श्राचार्य्य का भाग ( — फीस) देना" (कह) हजार (मुद्रा) देकर भेजा।

उसने वहाँ जाकर शिल्प सीख, श्राचार्य्य के दिये हुए पाँच शस्त्र ले, श्राचार्य्य को प्रणाम कर, तक्षशिला नगर से निकल, पच हथियार बंद (हो) बाराणसी का रास्ता लिया। मार्ग मे वह, श्लेषलोम यक्ष से श्रधकृत एक जङ्गल (के द्वार) पर पहुँचा। सो उसे जगल के द्वार पर देख, मनुष्यो ने रोका—"भो! माणवक! इस जगल मे मत प्रविष्ट हो। इस जगल मे श्लेषलोम (नामक) यक्ष है। वह जिस किसी मनुष्य को देखता है, उसे मार डालता है।"

बोधिसत्त्व ग्रपने को जॉचते हुए, निर्भीत केशरसिंह की तरह, जगल में घुस ही गया। उसके जगल में प्रवेश करने पर, उस यक्षने (ग्रपने) ताड़ जितना (ऊँचा) हो, घर जितना (बडा) सिर, बरतनो जितनी (बडी बडी) श्रांखे, ग्रौर कन्दल की कली जितने बडे दाँत बना, श्वेतमुख, चितकबरे पेट ग्रौर नीले हाथ पाँव वाला हो, ग्रपने ग्रापको बोधिसत्त्व को दिखाकर कहा— "कहाँ जाता है? ठहर, तू मेरा ग्राहार है।" बोधिसत्त्व ने, "यक्ष मेंने (ग्रपने सामर्थ्यं का) ग्रन्दाजा लगा कर यहाँ प्रवेश किया है। तू सँभल कर मेरे समीप ग्राना, में तुभे विप में बुभे हुए तीर से बीध कर यही गिरा दूँगा" (कह) धमका, हलाहल विष से बुभा हुग्रा तीर चढा कर छोडा। वह (जाकर) यक्ष के रोमो में ही चिपक गया। उसके बाद दूसरा.. इस प्रकार पचास तीर छोड़े। सब, उसके रोमो में ही चिपक रहे। यक्ष, उन सभी तीरो को तोड़- मरोड, ग्रपने पैरो के नीचे गिरा, बोधिसत्त्व के समीप ग्राया।

बोधिसत्त्व ने फिर भी, उसे डरा कर खड्ग निकाल कर प्रहार किया। तेतिस अगुल लम्बी तलवार रोमो मे ही चिपक रही। तब उस पर बरछी से प्रहार किया। वह भी रोमो मे ही चिपक रही। उसका भी 'चिपक-रहना' जान मुद्गर से प्रहार किया। वह भी रोमो मे चिपक रहा। उसका भी चिपक रहा। जान भी चिपक रहा। जान भी चिपक रहा। जान, "हे यक्ष । क्या तने मुक्त पञ्चावुध-कुमार का नाम पहले नही सुना ? मैने तेरे अधिकृत जगल मे प्रवेश करते हुए धनुष आदि का भरोसा कर प्रवेश नहीं किया, मैने अपना ही भरोसा कर प्रवेश किया है। सो आज मै

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> वर्त्तमान शाहजी की ढेरी, जिला रावर्लापंडी ।

तुभी मार कर चूर्ण-विचूर्ण करूँगा।" यह निश्चय प्रगट कर, ऊँचा शब्द करते हुए, दाहिने हाथ से यक्ष पर प्रहार किया। हाथ (भी) रोमो मे चिपक गया। बाये हाथ से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। दाये पैर से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। बाये पैर से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। वाये पैर से प्रहार किया, वह भी चिपक गया। विस्तर से टक्कर मार कर, उसे चूर्ण-विचूर्ण करूँगा' (सोच) सिर से प्रहार किया। वह सिर भी रोमो मे चिपक गया।

वह पाँच जगह चिपका हुग्रा, पाँच जगह बँधा हुग्रा, लटकता हुग्रा भी, निर्भय ही रहा। यक्ष ने सोचा—'यह एक पुरुष-सिंह हैं, पुरुष-श्राजानीय हैं, साधारण ग्रादमी नहीं। मेरे सदृश नाम वाल यक्ष के पकड़ने पर भी डरता तक नहीं। मेने इस मार्ग पर हत्या करते हुए, इससे पहले, एक भी ऐसा ग्रादमी नहीं देखा। यह क्यो नहीं डरता?" सो उसने, उसे खाने की रुचि न होने के कारण, उससे पूछा—"माणवक । तू मरने से किस लिए नहीं डरता?" "यक्ष । में क्यो डहाँगा? एक जन्म में एक बार मरना तो निश्चित ही हैं। ग्रीर मेरी कोख में (एक) वज्ज-ग्रायुध हैं। यदि मुफे खायेगा, तो तू उस ग्रायुध को न पचा सक़ेगा। वह ग्रायुध, तेरी ग्राँतो के टुकड़े टुकड़े कर, तुफे मार डालेगा। इस प्रकार (यदि मरेगे) तो दोनो मरेगे। इस कारण से (भी) में नहीं डरता हूँ।" यह बोधिसत्त्व ने ग्रपने ग्रन्तर के ज्ञान-ग्रायुध के बारे में कहा।

यह सुन यक्ष ने सोचा—"यह माणवक सत्य कहता है। मेरी कुक्षि इसके शरीर का मूँगे के बीज जितना मास का टुकडा भी हज्जम न कर सकेगी। में इसे छोड़ दूँ।" (यह सोच) मरने के भय से भयभीत उसने बोधिसत्त्व को छोडते हुए कहा—"माणवक! तू पुरुष-सिह है। में तेरा मास नही खाऊँगा। म्राज तू राहु-मुख से मुक्त चन्द्रमा की तरह मेरे हाथ से छूट कर, जाति-सुहृद-मण्डल को प्रसन्न करता हुम्रा जा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—यक्ष ! मैं तो जाऊँगा ही, लेकिन तू पूर्व जन्म मे भी कुकर्म करके, ऋर, रक्त-पाणी, दूसरो का रक्त-मास खाने वाला होकर उत्पन्न हुग्रा, यदि इस जन्म मे भी कुकर्म ही करेगा, तो अन्धकार से अन्धकार मे जायेगा। अब मुभसे भेट होने के बाद से, तू कुकर्म नही कर सकता। प्राण- धात-कर्म नरक मे, पशुयोनि मे, प्रेत योनि मे, प्रसुर योनि मे उत्पत्ति का कारण

पंचावुध ] ३५७

होता है। मनुष्य योनि मे उत्पन्न होने पर आयु कम करने वाला होता है। इस प्रकार पाँचो प्रकार के कुकमों के दुष्परिणाम और पाँचो प्रकार के सुकमों के शुभ-परिणाम कह, बहुत सी बातो से यक्ष को डरा, धर्मोपदेश कर, दमन कर, विषयो से पृथक् कर, पाँचों शीलों मे प्रतिष्ठित कर, उसीको उस जगल का बिल-प्रतिग्राहक देवता बना, प्रमाद रहित रहने का उपदेश कर, जंगल से निकलते हुए, जंगल के द्वार पर रहने वाले मनुष्यो को यह (वृत्तान्त) कह, पाँचो हथियार बाँध बाराणसी गया। वहाँ माता पिता को देख, आगे चल कर राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्मानुसार राज्य करते हुए, दानादि पृण्य करते हुए, यथा-कर्म (परलोक) गया।

शास्ता ने भी इस धर्म-देशना को ला ग्रभिसम्बुद्ध होने की ग्रवस्था मे यह गाथा कही---

> यो श्रलीनेन चित्तेन श्रलीनमनसो नरो, भावेति कुसलं धम्मं योगक्लेमस्स पत्तिया; पापुणे श्रनुपुब्बेन सब्बसंयोजनक्लयं॥

[जो कोई उत्साही पुरुष योगक्षेम (=ग्नर्हत्व, निर्वाण) की प्राप्ति के लिए उत्साह-युक्त चित्त से, शुभ कर्म करता है; वह क्रमानुसार सर्व संयोजनों के क्षय को प्राप्त होता है।]

सो इसका संक्षेपार्थ यह है जो कोई म्रादमी म्रलीनेन, उत्साह-युक्त चित्तेन स्वभाव से ही उत्साही होकर, (म्री) उत्साही हो, दोष-रहित होने से कुशल (=शुभ)—सैतिस बोधिपाक्षिक —धर्मो की भावना करता है,

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> चार स्मृति-उपस्थान (१कायानुपस्सना, २वेदनानुपस्सना३चित्तानु पस्सना, ४धम्मानुपस्सना) २.चार सम्यक् प्रयत्न (१संवरप्पधान, २पहानप्प-धान, ३भावनप्पधान, ४ग्रनुरक्खणप्पधान), ३.चार ऋद्धिपाद (१छन्द २वीर्च्य, ३चित्त, ४वीमंसा), ४.पॉच बल तथा पॉच इन्द्रियॉ (१श्रद्धा, २वीर्च्य, ३स्मृति, ४समाधि, ५प्रज्ञा), ५.सात बोधि-ग्रङ्ग (१स्मृति,२ धर्म-विचय, ३वीर्च्य, ४प्रीति, ५प्रश्रव्धि, ६.समाधि, ७उपेक्षा), ६.ग्रार्यं ग्रष्टांगिक मार्ग

चारो योगो से क्षेमकर निर्वाण की प्राप्ति के लिए, विशाल चित्त से विदर्शना में अनुयुक्त होता है, वह इस प्रकार सब सस्कारों में अनित्यता, अनात्मता, तथा दु.खपन को मान, नई विदर्शना से आरम्भ करके, उत्पन्न बोधिपाक्षिक धर्मों की भावना ( — अभ्यास) करते हुए, क्रमानुसार एक भी सयोजन बाकी न छोड, सब सयोजनों का क्षय करने वाले, चतुर्थ मार्ग के अन्त में उत्पन्न होने के कारण, 'सब सयोजनों के क्षय' कहें जाने वाले, अर्हत्व को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने ग्रहीत्व को धर्म-देशना मे प्रधान स्थान दे, ग्रागे चार आर्थ-सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन) के ग्रन्त मे, वह भिक्षु ग्रहीत्व को प्राप्त हुग्रा। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का यक्ष (ग्रब का) ग्रगुलिमाल था। पञ्चावृधकुमार नाम वाला (तो) में ही था।

#### ५६. कंचनक्खन्ध जातक

**"यो पहट्ठेन चित्तेन...."** यह गाथा, शास्ता ने श्रावस्ती मे विचरते हुए, एक भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्तीवासी कुल-पुत्र शास्ता की धर्म-देशना सुन (त्रि-)रत्न शासन में श्रत्यन्त श्रद्धा से प्रब्रजित हुग्रा । उसके श्राचार्य्य उपाध्यायो ने

<sup>(</sup>१सम्यक् दृष्टि, २सम्यक् संकल्प, ३सम्यक् वाचा, ४सम्यक् कर्मान्त, ५सम्यक् व्यायाम, ६सम्यक् श्राजीविका, ७सम्यक् स्मृति, ८सम्यक् समाधि ) \* संयोजन दस है

कंचनक्लन्ध ] ३५६

कहा—"हे श्रायुष्मान् ! शील ( — सदाचार) एक प्रकार का होता है, दो प्रकार का, तीन प्रकार का, चार प्रकार का, पाँच प्रकार का, छ प्रकार का, सात प्रकार का, श्राठ प्रकार का, नौ प्रकार का, दस प्रकार का, इस तरह कई प्रकार का होता है। यह गौण-शील है, यह मध्यम-शील है, यह महा-शील है, यह प्रातिमोक्ष-सवर-शील है, यह इन्द्रिय-सवर-शील है, यह श्रातिमोक्ष-सवर-शील है, यह इन्द्रिय-सवर-शील है, यह श्राजीविका-परिशुद्ध-शील है, यह प्रत्यय-प्रतिसेवन-शील है, इसे शील कहते हैं।" उसने सोचा—'यह बहुत से शील है। में इतने शीलों को श्रपने ऊपर ले, उनके श्रनुसार श्राचारण न कर सकूँगा। यदि शीलों के श्रनुसार श्राचरण न करूँ, तो प्रश्नजित होने का ही क्या फल े में गृहस्थ होकर दानादि पुण्य कम करूँगा, स्त्री-बच्चों का पालन करूँगा।" यह सोच उसने कहा—"भन्ते! में शील न रख सक्नैंगा। शील न रख सकने वाले के लिए प्रश्नज्या का क्या श्रथ शें में गृहस्थ होऊँगा। श्रपना पात्र चीवर ले ले।"

उन्होने कहा—"श्रायुष्मान् ! यदि ऐसा है, तो बुद्ध को प्रणाम करके जाग्रो।" (यह कह) वे, उसे धर्म-सभा में बुद्ध के पास ले गये। बुद्ध ने देखते ही पूछा—"भिक्षुग्रो। क्यो इस ग्रनिच्छुक भिक्षु को लेकर श्राये हो?"

"भन्ते । यह भिक्षु, 'मै शील नही रख सक्ूँगा' (कह) पात्र-चीवर लौटाता है। सो हम इसे लेकर श्राये है।"

"भिक्षुग्रो । तुम किस लिए इस भिक्षु को बहुत से शील कहते हो ? यह जितने रख सकेगा, उतने रखेगा । ग्रव से तुम इसको कुछ न कहो । इसमें जो करना उचित हैं, उसे में देखूँगा ।" (यह कह) "हे भिक्षु ! ग्रा, तुफे बहुत से शीलो से क्या ? तू केवल तीन शील रख सकेगा ?" "भन्ते ! रख सकूँगा ।" "तो तू, ग्रव से काय-द्वार (=शारीरिक), वची-द्वार (=बाणी के), मनो-द्वार (=चित्त के)—इन तीन द्वारो की रक्षा कर । शरीर से, वाणी से, मन से पाप-कर्म मत कर । जा, गृहस्थ मत बन । इन तीन ही शीलो को रख।" इतने से वह भिक्षु सन्तुष्ट-चित्त हो, "भन्ते ! ग्रच्छा, मैं तीनों शीलो की रक्षा कर्ष्णा" (कह) शास्ता को प्रणाम कर, ग्राचार्य्य उपाध्याय के साथ ही चला गया।

उसे उन तीन शीलो की पूर्ति करते ही मालूम हो गया कि ग्राचार्य, उपाध्यायो का बताया हुग्रा भी शील इतना ही था, लेकिन वह ग्रपने बुद्ध न होने के कारण मुभे समभा न सके । सम्यक्-सम्बुद्ध ने श्रपने सुबुद्ध होने के कारण, धर्म-राजा होने के कारण, उतना ही शील, तीन ही द्वारों में डाल कर, मुभे स्वीकार करा दिया । शास्ता ने मेरी बाँह पकड ली । (इस प्रकार) विदर्शना (भावना) की वृद्धि कर, कुछ ही दिनों में श्रईत्व को प्राप्त हुआ।

उस समाचार को सुन धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (आपस में) बातचीत करने लगे—"ग्रायुष्मानों । 'शील न रख सकूँगा' करके गृहस्थ होने के लिए तैयार भिक्षु को, शास्ता ने सब शीलों को तीन ही हिस्सों में वॉट, वे शील उससे स्वीकार करा, उसे अर्हत्व-पद लाभ करा दिया।" (यह कह) 'ग्रहों । बुद्ध आश्चर्यं-कारक-मनुष्य होते हैं' कहते हुए बुद्ध-गुणों की प्रशसा करने लगे। शास्ता ने श्राकर पूछा—"भिक्षुग्रों । यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे थें?" "यह बात-चीत" कहने पर, "भिक्षुग्रों । बहुत भारी वजन भी हिस्से करके देने पर, हलका प्रतीत होता हैं; पूर्व समय में भी बुद्धिमान् बडा सा सोने का ढेर पाकर, उठाने में ग्रसमर्थ हो, बॉट कर उठा कर ले गये" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व एक गाँव में कृषक हुए। वह एक दिन एक ऐसे खेत में, जहाँ पहले ग्राम बसा हुग्रा था, खेती करते थे। पूर्व समय में, उस गाँव में एक धनी श्रेष्ठी, जाँघ तक गहरे, चार हाथ चौड़े (गढ़े) में सोने का ढेर गाड कर मर गया था। उससे बोधिसत्त्व का हल टकरा कर रक गया। उसने 'जड़े होगी' समभ, रेत को हटा कर उसे देखा। उसे फिर भी रेत से ढक, दिन भर हल चलाता रहा। सूर्यास्त होने पर, हल, जोत ग्रादि को एक ग्रोर रख, 'सोने के ढेर को ले जाऊँगा' सोच, उसे उठा कर न ले जा सका। तब, उसने एक ग्रोर बंठ 'इतना पेट भरने के लिए होगा', 'इतना गाड कर रक्खूँगा' 'इतना कर्मान्त ( च्यापारादि) में लगाऊँगा।' 'इतना दानादि पुण्य कर्मों के लिए होगा'—इस प्रकार चार हिस्से किये। उसके इस प्रकार बाँटने पर, वह सोने का ढेर हलका सा हो गया। वह उसे उठा कर, घर ले जा कर, चार हिस्सों में बाँट कर, दान ग्रादि पुण्य-

कर्म करके यथा-कर्म (परलोक) गया । भगवान् ने इस धर्म-देशना को कह, ग्रिभिसम्बुद्ध हुए रहने के समय, यह गाथा कही—

यो पहट्ठेन चित्तेन पहट्ठमनसो नरो भावेति कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया, पापुणे श्रनुपुब्बेन सब्ब संयोजनक्खयं।।

[जो प्रसन्न-चित्त नर, सन्तुष्ट चित्त से योग-क्षेम (=निर्वाण) की प्राप्ति के लिए शुभ-धर्म की भावना करता है, वह कम से सब सयोजनो के क्षय को प्राप्त होता है।]

पहर्ठेन, नीवरण (=िचत्तमैल) रहित होने से, पहर्ठमनसो, उसी नीवरण-रहित होने से, प्रसन्न-चित्त =सोने की तरह से चमक कर समुज्ज्व-लित =प्रभा-युक्त चित्त होकर—यही अर्थ है।

इस प्रकार बुद्ध ने अर्हत्व को सिरे पर रख, देशना को समाप्त कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय सोने का ढेर प्राप्त करने वाला मनुष्य में ही था।

### ५७. वानरिन्द जातक

"यस्सेते चतुरो धम्मा... "यह गाथा, बुद्ध ने वेळुवन मे विहार करते समय, देवदत्त द्वारा किये गये बध करने के प्रयत्न के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

उसी समय बुद्ध ने 'देवदत्त बध करने का प्रयत्न करता है' सुन 'हे भिक्षुग्रो !

३६२ [ १.६.५७

न केवल ग्रभी देवदत्त मेरे बध करने का प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया था, लेकिन त्रास मात्र भी उत्पन्न नहीं कर सका' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व बानर योनि में उत्पन्न हो, बडा हो, घोड़े के बच्चे जितना (बडा) हुआ। वह शक्ति-सम्पन्न हो, अकेला घूमता हुआ, नदी के किनारे रहने लगा। उस नदी के बीच में एक द्वीप था, जिसमें आम, पनस आदि नाना प्रकार के फलों के वृक्ष लगे हुए थे। बोधिसत्त्व हाथीं की तरह शक्तिशाली होने से, नदी के इस किनारे से उछल कर, द्वीप के इस ओर नदी के बीच में पड़े एक पत्थर पर जाकर, गिरता, वहाँ से उछल कर, उस द्वीप में जाकर गिरता। वहाँ, नाना प्रकार के फल खा कर, शाम को उसी ढग से वापिस लौट कर, अपने निवास-स्थान पर रह कर, अगले दिन फिर वैसा ही करता। इसी प्रकार वहाँ रहता था।

उस समय स्त्री सिहत एक मगरमच्छ, उसी नदी में रहता था। उसकी स्त्री ने, बोधिसत्त्व को स्त्रारपार जाते देख, बोधिसत्त्व के हृदय-मास में दोहद उत्पन्न कर, मगरमच्छ से कहा—"श्रार्यं। इस वानरेन्द्र के हृदय-मास में दोहद ( — खाने की बलवती इच्छा) उत्पन्न हुग्रा है।"

मगरमच्छ 'ग्ररी । ग्रच्छा, मिलेगा' कह 'ग्राज शाम को उसे द्वीप से लौटते ही पकडेंगा' (सोच) पाषाण के ऊपर जाकर पड रहा ।

बोधिसत्त्व ने दिन भर चर कर शाम को द्वीप मे खडे ही खडे, पत्थर को देख सोचा—"क्या कारण है ? आज पत्थर कुछ ऊँचा दिखाई दे रहा है ?" उसने पहले ही पानी और पत्थर का अन्दाज अच्छी तरह लगा लिया था। सो उसके मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ—"आज इस नदी का पानी न घट रहा है, न बढ रहा है; लेकिन यह पत्थर बढा हुआ दिखाई दे रहा है। कही (आज) यहाँ मेरे पकड़ने के लिए मगरमच्छ तो नही पडा है ?" 'अच्छा! उसकी परीक्षा करूँगा' सोच, उस ने, वही खडे ही खडे, पत्थर के साथ बात-चीत करने की भाँति, 'अरे। पाषाण!' पुकार कर, उत्तर न मिलने पर तीन बार 'अरे!

पाषाण <sup>1</sup> 'पुकारा । पाषाण क्या उत्तर देता <sup>२</sup> लेकिन फिर भी उस बानर ने पूछा— "ग्ररे । पाषाण । क्या ग्राज मुक्ते उत्तर न देगा <sup>२</sup>"

मगरमच्छ ने सोचा—'ग्रौर दिनो यह पत्थर निश्चय से इस वानरेन्द्र को प्रत्युत्तर देता रहा है। ग्राज में इसे उत्तर दूँगा" सोच, पूछा "ग्ररे वानर! क्या है ?"

"तू कौन है ?"

"में मगरमच्छ हूँ।"

"यहाँ तू किस लिए लेटा है <sup>?</sup>"

"तेरे हृदय-मास की इच्छा से।"

बोधिसत्त्व ने, 'श्रौर मेरे लिए जाने का रास्ता नहीं हैं, श्राज मुफे इस मगरमच्छ को धोखा देना चाहिए' सोच उसे कहा—''सौभ्य! मगरमच्छ! में ग्रपने को तुफे समर्पित करूँगा। तू मुख खोल कर, श्रपने समीप ग्राने के समय मुफे ग्रहण करना।" मगरमच्छ के मुँह खोलने के समय, उसकी श्रॉखे बन्द हो जाती हैं। उसने उस बात का ख्याल न कर, मुँह खोला। उसकी श्रॉखे मुँद गईं। वह मुँह खोल कर, श्रॉखे मीच कर पड रहा। बोधिसत्त्व वैसा जान, द्वीप से उछल, जाकर मगरमच्छ के मस्तक पर गिर, वहाँ से उछल, बिजली की तरह चमकता हुश्रा, दूसरे किनारे जा खड़ा हुश्रा। मगरमच्छ ने वह श्राश्चर्य देख, 'इस वानरेन्द्र ने ग्रतीव श्राश्चर्य किया' सोच, कहा—''श्ररे! वानरेन्द्र! इस लोक मे जिस श्रादमी मे चार बाते होती हैं, वह श्रपने शत्रु को जीत लेता हैं, वह चारो बाते तेरे श्रन्दर है।" यह कह गाथा कही—

#### यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द ! यथा तव, सच्चं धम्मो धिती चागो दिट्ठं सो म्रातिवत्तति ॥

[वानरेश्वर ! जैसे यह तुभ मे है, वैसे जिस ग्रादमी मे यह चार बाते होती है—सत्य, धर्म, धृति ग्रीर त्याग—वह शत्रु को जीत लेता है।]

यस्स, जिस किसी आदमी को, एते, अब कहे जाने वाले, प्रत्यक्ष ही निर्देश किये गये। चतुरो धम्मा, चार गुण, सच्चं, सत्य-वाणी, 'तेरे पास आऊँगा' कह कर, उसे असत्य (=मृषा) न कर, जो तू आया, वह तेरी सत्य-वाणी है।

धम्मो, विचार-बुद्धि, ऐसा करने पर, ऐसा होगा, यह तेरी विचार-बुद्धि । धृति, कहते हैं अखण्ड प्रयत्न को, सो वह भी तुभ मे हैं । चागो, आत्म-परित्याग, तू तो अपना आत्मसमर्पण कर, मेरे पास आया, यदि में तुभे ग्रहण न कर सका, तो उसमें मेरा ही दोष हैं दिट्ठं, शत्रु । सो अतिवत्तित, जिस आदमी मे, जैसे यह तुभ में हैं, उसी प्रकार चारो धर्म ( = गुण) विद्यमान होते हैं, वह आदमी जैसे तू आज मुभे लॉघ कर चला गया, उसी प्रकार, अपने शत्रु को लॉघ जाता है, जीत लेता हैं।

इस प्रकार मगरमच्छ बोधिसत्त्व की प्रशस्त्र कर, श्रपने निवास-स्थान कोग्या। शास्ता ने, 'हे भिक्षुग्रो! न केवल ग्रभी देवदत्त मेरे बध के लिए प्रयत्न शील हुग्रा, पहले भी हुग्रा, कह, यह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया।' उस समय का मगरमच्छ (ग्रब का) देवदत्त था। उसकी भार्या (ग्रब की) विञ्चा माणविका; ग्रौर वानरेन्द्र तो में ही था।

### ४८. तयोधम्म जातक

"यस्सेते ." यह गाथा भी, बुद्ध ने वेळुवन मे विहार करते समय, बध करने का प्रयत्न करने वाले के ही बारे में कही।

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, देवदत्त बानर योनि में उत्पन्न होकर, **हिमवन्त** प्रदेश में वानरों के समूह का नायक होने की श्रवस्था में, श्रपने (वीर्य्य) से उत्पन्न बानर-पोतकों को, दाँत से काट कर खस्सी कर डालता, ताकि कही वह समूह का नायकत्व न करे। उस समय

तयोधम्म ] ३६४

बोधिसत्त्व ने, उसी (के वीर्य्य) से एक बन्दरी की कोख मे गर्भ धारण किया। वह बन्दरी 'गर्भ हुम्रा' जान, गर्भ की रक्षा के लिए एक दूसरे पर्वत पर चली गई। गर्भ परिपक्व होने पर, उसने बोधिसत्त्व को जन्म दिया। वह बड़ा होने पर, होश म्राने पर शक्तिधारी हुम्रा।

उसने एक दिन माँ से पूछा—"माँ । मेरा पिता कहाँ है ?" "तात ! ग्रमुक पर्वत पर बानरो के समूह का नेतृत्व करता हुग्रा रहता है।" "माँ ! मुफ्ते उसके पास ले चल।"

"तात । तू पिता के पास नहीं जा सकता; क्यों कि तेरा पिता इस डर से कि कही यह समूह का नेतृत्व न कुरे, अपने (वीर्य्य) से उत्पन्न हुए बानर-पोतकों को, दाँत से काट कर, खस्सी कर डालता है।"

"माँ । मुभ्ने, उसके पास ले चल, मैं देखूँगा।"

वह पुत्र को लेकर, उसके पास गईं। उस बानर ने भ्रपने पुत्र को देख, सोचा—बड़ा होकर यह मुफ्ते नेतृत्व न करने देगा, भ्रभी इसे नष्ट करना योग्य हैं। सो गले मिलने के बहाने से, इसे जोर से भीच कर मार डालूँगा। यह सोच 'तात । ग्रा, इतने समय तक कहाँ रहा ?' कह, बोधिसत्त्व को गले लगाते हुए की तरह दबाया। बोधिसत्त्व, हाथी के सदृश बल वाला था। उसने भी उसे दबाया। सो उसकी हिंडुयाँ टूटने वाली सी हो गईं। तब उसने सोचा—यह बड़ा हो, मुफ्ते मार डालेंगा, किस उपाय से इसे, उससे पहले ही मार डालूं? तब उसे ख्याल श्राया—'यह पास ही राक्षस-गृहीत तालाब हैं। वहाँ इसे राक्षस को खिलवा दूँ।" सो उसने उसे कहा—"तात । में बूढा हो गया। यह बानर-समूह तुफ्ते सौपूँमा। ग्राज ही तुफ्ते राजा बनाऊँगा। श्रमुक स्थान पर एक तालाब हैं, उसमे दो कुमुदिनियाँ हैं, तीस उत्पल हैं, पाँच पद्म हैं। जा, वहाँ से फूल ले ग्रा।" उसने 'तात । ग्रच्छा लाऊँगा' कह, जाकर, सहसा (तालाब में) उतरे बिना चारो ग्रोर पैरो के चिन्हों को देखते हुए, केवल उतरते पैरो के चिन्हों को देखा, चढते पैरो के चिन्हों को नहीं।

'यह तालाब राक्षस-गृहीत तालाब होगा, मेरा पिता अपने असमर्थ होने के कारण, राक्षस से मुक्ते मरवा देना चाहता होगा, में इस तालाब में बिना उतरे ही फूल ले जाऊँगा।' वह सूखी जगह पर जा, वहाँ से दौड़ कर आ, छलॉग मार कर दूसरी ओर जाते हुए, पानी के ऊपर ही ऊपर से दो फूलो को तोड कर ले, दूसरी श्रोर जा गिरा। दूसरी श्रोर से इस श्रोर श्राते हुए, उसी उपाय से दो (श्रौर) फूल ले लिये। इस प्रकार दोनो श्रोर ढेर लगाते हुए, फूल तो ले लिये, लेकिन (वह) राक्षस की सीमा के भीतर नही उतरा। तब 'श्रव इससे श्रधिक न उछल सकूँगा' सोच, उसने उन फूलो को लेकर एक स्थान पर एकत्रित करना श्रारम्भ किया। उसे देख, उस राक्षस ने सोचा 'मैंने इतने समय तक इससे पूर्व ऐसा बुद्धिमान्, श्राश्चर्यंकर मनुष्य नही देखा। (इसने) जितनी श्रावश्यकता थी, उतने फूल भी ले लिये, श्रौर मेरी सीमा के भीतर भी नही श्राया।' उसने पानी को दो श्रोर फाड कर, पानी मे से ऊपर निकल, बोधिसत्त्व के पास श्रा, 'हे वानरेन्द्र! इस लोक मे जिस श्रादमी मे यह तीन गुण होते हैं, वह श्रपने शत्रु को जीत लेता हैं, वह तीनो गुण तुफ मे हैं' (कह) बोधिसत्त्व की प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

यस्स एते तयो धम्मा वानरिन्द ! यथा तव, दिन्त्वयं सूरियं पञ्जा दिट्ठं सो ग्रातिवत्तति ॥

[वानरेश्वर <sup>!</sup> जैसे यह तुभ में है, वैसे जिस श्रादमी में यह तीन बाते होती है—दक्षता, शौर्य्य, श्रौर प्रज्ञा—वह शत्रु को जीत लेता है ।]

दिक्लयं दक्षता = भय ग्राने पर उसके नाश करने के उपाय के ज्ञान से युक्त पराक्रम । सूरियं, शौर्य्यं, निर्भयता का पर्य्यायवाची । प्रज्ञा, प्रज्ञापन-प्रस्थापन = उपाय --- प्रज्ञा का पर्य्यायवाची ।

इस प्रकार उस उदक-राक्षस ने, इस गाथा से बोधिसत्त्व की स्तुति कर, (उसे) पूछा—"यह फूल किस लिए ले जा रहा है?"

"मेरे पिता मुभे राजा बनाना चाहते हैं, सो उसके लिए ले जा रहा हूँ।"
"तेरे जैसे उत्तम म्रादमी को (म्रपने से) फूल उठा कर ले जाना शोभा नहीं
देता। मैं ले चलूँगा" कह, उछल कर, (वह) उसके पीछे पीछे हो लिया।

उसके पिता ने दूर से ही उसे देख सोचा— "मैने इसे भेजा था कि यह राक्षस का भोजन बनेगा, लेकिन यह राक्षस से फूल उठवा कर ला रहा है। अब मैं नष्ट हुआ।" यह सोच, हृदय के सात टुकडे हो वह वही मर गया। शेष बानरो ने एकत्र हो बोधिसत्त्व को राजा चुन लिया। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला जातक का साराश निकाल दिया । उस समय का यूथ ( = बानर-समूह) पित (ग्रब का) देवदत्त था । यूथपित का पुत्र तो में ही था ।

## ५६. भेरिवाद जातक

"धमे धमे .. " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय (एक) बात न मानने वाले भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को पूछ कि हे भिक्षु । क्या तू सचमुच (किसी का) कहना नही मानता है, उसके 'भगवान् । सचमुच' कहने पर, उसे 'हे भिक्षु ! न केवल ग्रब ही तू बात नही मानता है, (किन्तु) पहले भी तू बात न मानने वाला ही था', कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) भेरी बजाने वाले के कुल मे उत्पन्न हो, एक गाँव मे रहते थे। उसने 'बाराणसी मे नक्षत्र ( — उत्सव) की घोषणा हुई हैं सुन, 'समज्जमण्डल ( — नृत्य-मण्डली) मे भेरी बजा कर धन (कमा कर) लाऊँगा' (सोच) पुत्र के साथ, वहाँ गया, श्रौर भेरी बजा कर, बहुत धन प्राप्त किया। उसे ले, श्रपने ग्राम को (वापिस) लौटते समय, चोर-जगल मे पहुँच, (उसने) पुत्र को निरन्तर भेरी बजाने से मना किया— 'तात! निरन्तर न बजा कर, ऐरवर्य्य-शालियो के रास्ता चलने के समय, बीच बीच मे भेरी बजाने की तरह

३६८ [ १.६.५६

भेरी बजा। वह पिता के मना करने पर भी, 'भेरी शब्द से ही चोरो को भगा-ऊँगा' (कह) निरन्तर ही बजाता रहा। चोरो ने पहले तो भेरी का शब्द सुन ऐश्वर्य्य-शालियो की भेरी होगी' समभ, भाग गये। लेकिन लगातार भेरी का शब्द सुन 'यह ऐश्वर्य्य-शालियो की भेरी नहीं हो सकती' (सोच) आकर, उन दो ही जनो को देख लूट लिया। बोधिसत्त्व ने 'कठिनाई से मिला हुआ धन, लगातार (भेरी) बजाने वाले ने नष्ट कर दिया' कह, यह गाथा कही—

#### धमे घमे नातिधमे श्रिति घन्तं ही पापकं, धन्तेन सतं लद्धं श्रितिधन्तेन नासितं।।

[(भेरी) बजाये, लेकिन बहुत न बजाये। लगातार (भेरी) बजाना बुरा है। (भेरी) बजाने से सौ (मुद्राये) मिली, बहुत बजाने से वह नष्ट हो गईं।]

धमे धमे, ध्विन करे, न ध्विन न करे, भेरी बजाये, न बजाना न करे। नाति धमे, सीमा का उल्लघन कर, निरन्तर ही न बजाये, किस लिए ? श्रिति धन्तं ही पापकं निरन्तर भेरी बजाना श्रव हमारे लिए बुरा सिद्ध हुश्रा। धन्तेन सतं लद्धं, नगर मे भेरी बजाने से सौ कार्षापण मिला। श्रतिधन्तेन नासितं, लेकिन श्रव मेरे पुत्र ने मेरी बात न मान, जो जगल मे लगातार बजाया, उससे सब नष्ट हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का पुत्र (ग्रब का) बात न मानने वाला भिक्षु था, लेकिन पिता मैं ही था।

### ६०. संखधमन जातक

"धमे धमे . ." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, (एक) बात न मानने वाले के ही बारे में कही।

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने (एक) शङ्ख बजाने वाले कुल मे उत्पन्न हो, बाराणसी मे नक्षत्र की घोषणा होने पर, पिता को (साथ) ले, शङ्ख बजा कर, धन कमा, (वापिस) आने के समय, चोर-जगल मे पिता को निरन्तर शङ्ख बजाने से मना किया। वह 'शङ्ख-शब्द से चोरो को भगाऊँगा' सोच, निरन्तर ही उसे फूँकता रहा। चोरो ने पहली तरह ही, आकर (उन्हे) लूट लिया। बोधिसत्त्व ने भी पहली ही तरह गाथा कही—

#### धमे घमे नातिघमे श्रति धन्तं हि पापकं, धन्तेनाधिगता भोगा ते तातो विधमी धमं ॥

[ (शङ्ख) बजाये, लेकिन बहुत न बजाये । लगातार (शङ्ख) बजाना बुरा है। (शङ्ख) बजाने से जो भोग प्राप्त किये, उन्हे तात ने ग्रधिक बजा बजा कर विध्वंस कर दिया।]

ते तातो विधमी धमं, वे शङ्ख बजाने से जो भोग मिले थे, उन्हें मेरे पिता ने फिर फिर (शङ्ख) फूँकने से विधमि, विध्वस कर दिया, नष्ट कर दिया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का पिता (ग्रव का)बात न मानने वाला भिक्षु था (ग्रौर) पुत्र तो मैं ही था।

# पहला परिच्छेद

# ॰. इत्थि वर्ग

#### ६१. श्रसातमन्त जातक

**"ग्रसा लोकित्थियो नाम** "यह गाथा शास्ता ने **जेतवन** मे विहार करते समय (एक) ग्रासक्त चित्त भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

उस (भिक्षु) की कथा उम्मदिन्त जातक में ग्रायेगी। बुद्ध ने उस भिक्षु को "हे भिक्षु। स्त्रियाँ, ग्रसाध्वी, ग्रसती, पापी, निकृष्ट होती है, तू इस प्रकार की पापी स्त्री (-जाति) के प्रति क्यो ग्रासक्त हुग्रा है ?" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व गान्धार देश (=राष्ट्र) मे, तक्षशिला में ब्राह्मणकुल में जन्म ग्रहण कर, बालिंग होने पर तीनो वेदो तथा सब शिल्पो में सम्पूर्णता प्राप्त कर, लोक-प्रसिद्ध ग्राचार्य्य हुग्रा। उस समय बाराणसी में एक ब्राह्मण कुल में, पुत्र की उत्पत्ति के दिन, निरन्तर प्रज्वलित ग्राग रक्खी गई। जब वह ब्राह्मण-कुमार १६ वर्ष का हुग्रा, तब उसके माता-पिता ने कहा—"पुत्र! हमने तेरी उत्पत्ति के दिन, ग्राग जलाकर रख दी थी। यदि ब्रह्म-लोक जाने की इच्छा है, तो उस ग्राग को लेकर, जगल में जा, ग्राग्न-देवता को नमस्कार करता हुग्रा

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> उम्मदन्ति जातक (५२७)

ब्रह्म-लोक-परायण हो। यदि गृहस्थ होना चाहता है, तो तक्षशिला जाकर वहाँ लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य से शिल्प सीख (घर आ) कुटुम्ब का पालन-पोषण कर।" माणवक (= ब्रह्मचारी) ने 'मैं जगल मे प्रविष्ट हो, अगिन की परिचर्य्या न कर सक्रूँगा, मैं कुटुम्ब ही पालूँगा' विचारा। माता-पिता को नमस्कार कर, आचार्य्य की एक हजार की फीस' के साथ वह तक्षशिला, गया, और शिल्प सीख कर वापिस लौट आया। उसके माता-पिता को उसके गृहस्थ होने की इच्छा नहीं थी। वह चाहते थे कि वह बन में (जाकर) अगिन (-देवता) की परिचर्य्या करे। सो, उसकी माता ने उसे स्त्रियों के दोष दिखा कर, जगल को भेजने की इच्छा से सोचा—"वह आचार्य्य पण्डित हैं, व्यक्त हैं। वह मेरे पुत्र को स्त्रियों के दोष बता सकेगा।" (यह सोच) पूछा—"तात! तू के शिल्प सीखा?

"ग्रम्मा! हाँ।"

"ग्रसात-मन्त्र भी तूने सीखे ?"

"ग्रम्मा! नही सीखे।"

"तात । यदि तूने 'ग्रसात-मन्त्र' नहीं सीखे, तो तूने क्या सीखा ? जा, सीख कर ग्रा।"

वह 'ग्रच्छा' कह, फिर तक्षशिला की ग्रोर चल दिया।

उस ग्राचार्य्य की भी, एक सौ बीस वर्ष की बूढी माता थी। वह, उसे अपने हाथ से नहला, खिला, पिला, उसकी सेवा करता था। ग्रन्य मनुष्य उसे वैसा करते देख, घृणा करते। उसने सोचा—"में जगल मे प्रवेश कर, वहाँ माता की सेवा करता रहूँ।" सो, उसने, एक एकान्त जगल मे, पानी मिलने की जगह पर, पर्णशाला बनवाई। वहाँ घी चावल ग्रादि मेंगवा कर ग्रपनी माता को ले ग्राया, ग्रौर उसकी सेवा करता हुग्रा रहने लगा।

वह माणवक भी तक्षशिला मे पहुँच, वहाँ ग्राचार्य्य को न देख 'ग्राचार्य्य ! कहाँ हैं ?' पूछा। उस समाचार को सुन कर वहाँ गया, ग्रौर (ग्राचार्य्य)को प्रणाम कर खड़ा हुग्रा। उस ग्राचार्य्य ने (पूछा)—''तात । किस लिए

<sup>&#</sup>x27;फीस (श्राचार्य्य-भाग)।

बहुत जल्दी (लौट) ग्राया ?"

"ग्रापने मुभे 'ग्रसात-मन्त्र' नही सिखाया न ?"

"तुभे किस ने कहा कि 'ग्रसात-मन्त्र' सीखना चाहिए ?"

"ग्राचार्यं ! मेरी माता ने ।"

बोधिसत्त्व ने सोचा—-''ग्रसात-मन्त्र तो कोई मन्त्र नही है। इसकी माता, इसे स्त्रियो के दोषो को विदित करा देना चाहती होगी।''

"सो, श्रच्छा तात । तुभे श्रसात-मन्त्र दूँगा" (कह) उसने कहा—"श्राज से श्रारम्भ करके, तू मेरे स्थान पर, मेरी माता को नहलाते, खिलाते, पिलाते, उसकी सेवा करना। हाथ, पैर, सिर और पीठ दबाते ( = मलते) हुए, 'श्रार्ये । बूढी होने पर भी तेरा शरीर ऐसा है, तो जवानी में (यह शरीर) कैसा रहा होगा ?' (कह) शरीर दबाने के समय, हाथ पैर श्रादि के वर्णे की प्रशसा करना। श्रीर, जो कुछ तुभे मेरी माता कहे, वह बिना लज्जा के, बिना छिपाये, मुभे कहना।ऐसा करने से श्रसात-मन्त्रों की प्राप्ति होगी, न करने से नहीं होगी।" उसने 'श्राचार्य्यं । श्रच्छा' कह, उसकी बात मान, उस समय से श्रारम्भ करके, जैसा जैसा कहा था, वैसा वैसा किया।

उस माणवक के बार बार प्रश्नसा करने पर, उस अन्धी, जराजीर्ण के मन में काम उत्पन्न हो गया——"यह माणवक मेरे साथ रमण करना चाहता होगा।" उसने एक दिन अपने शरीर-वर्ण की प्रश्नसा करने वाले माणवक से पूछा—
"मेरे साथ रमण करना चाहता है ?"

''श्रार्ये <sup>।</sup> में रमण करने की इच्छा तो करूँ, लेकिन श्राचार्य्य का भय है ।'' ''यदि, मुभ्ते चाहता है, तो मेरे पुत्र को मार डाल ।''

"मैने श्राचार्य्य के पास इतना शिल्प सीखा, कैसे, मै केवल कामासिक्त के कारण उनको मारूँगा ?"

"श्रच्छा, तो यदि तू मेरा परित्याग न करे, तो में ही उसे मार दुँगी।"

सो स्त्रियाँ, ऐसी ग्रसाध्वी, पापी, निकृष्ट होती है। वैसी उमर मे भी चित्त मे रागोत्पत्ति के कारण, काम का अनुकरण करती हुई, ऐसे उपकारी पुत्र को मारने को तैयार हो गई। माणवक ने बोधिसत्त्व को वह सब बात कह दी। 'माणवक ने तू ने अच्छा किया, जो मुक्ते बता दिया' (कह) माता का आयु-सस्कार देख, वह 'आज ही मर जायगी' जान, (माणव को) कहा—"माण-

श्रसातमन्त ] ३७३

वक । म्रा, उसकी परीक्षा करे।" (यह कह) उसने एक गूलर का वृक्ष छील कर, म्रपने जितना (बडा) काठ का पुतला बनाया। उसे सिर सहित ढक कर, म्रपने सोने की जगह पर लम्बा लिटा दिया, म्रौर रस्सी बाँध कर, म्रपने शिष्य को कहा—'तात । कुल्हाडा ले जा कर, मेरी माता को इशारा कर।'

माणवक ने जाकर कहा—"ग्रायें । श्राचार्य्य, पर्णशाला मे श्रपनी शय्या पर सोये है, मैंने रस्सी की निशानी बॉध दी है। यदि सामर्थ्य हो, तो इस कुल्हाड़े को ले जाकर मार।"

"तू मुभे छोडेगा नही न?"

"किस लिए छोडूँगा<sup>?</sup>"

उसने कुल्हाडे को ले, कॉपती हुई उठ कर, रस्सी के साथ साथ जा, हाथ से छू कर, 'यह मेरा पुत्र है' करके, काठ के पुतले के मुँह पर से कपडे हटा, कुल्हाडे को ले, 'एक ही प्रहार से मारूँगी' सोच, गरदन पर ही मारा । 'टन' करके शब्द हुग्रा। उसे पता लग गया कि लकडी है।

बोधिसत्त्व के, 'मॉ । क्या करती हैं ?' पूछने पर, 'में ठगी गई' जान वह वही गिर कर मर गई। ग्रपनी पर्ण-शाला मे पड़ी रहने पर भी, उस क्षण, उसको मरना ही था। बोधिसत्त्व ने उसका मृत होना जान, शरीर-कृत्य कर, ग्रादाहन (=ग्राग) बुभा, वन-पुष्पो से पूजा कर, माणवक सहित पर्णशाला के द्वार पर बैठ, (माणवक) को कहा—"तात । ग्रसात-मन्त्र कोई पृथक मन्त्र नहीं है। स्त्रियाँ ग्रसाध्वी (=ग्रसाता) होती है। तेरी माता ने तुभे ग्रसात-मन्त्र सीख कर ग्रा, (करके) जो मेरे पास भेजा है, वह स्त्रियो के दोष जानने के ही लिए भेजा है। सो तूने ग्रब प्रत्यक्ष ही, मेरी माता के दोष देख लिए है। इसलिए तू जान ले कि स्त्रियाँ ग्रसाध्वी, पापिनी होती है।" इस प्रकार उपदेश कर, उसे बिदा किया। वह माणवक भी ग्राचार्य्य को प्रणाम कर, माता-पिता के पास गया। उसकी माता ने पूछा—"ग्रसात-मन्त्र सीखे ?"

"ग्रम्म ! हाँ।"

"तो अब क्या करेगा ? प्रब्रजित हो, ग्रग्नि-परिचर्या करेगा, वा गृहस्थ मे रहेगा ?"

"माता । मैने प्रत्यक्षत स्त्रियो के दोष देख लिए, मुभे ग्रब गृहस्थी बनने

से काम नही, में प्रव्रजित होऊँगा" (कह) माणवक ने अपने अभिप्राय को प्रकाशित करते हुए, यह गाथा कही—

श्रमा लोकित्थियो नाम वेला तासं न विज्जिति, सारत्ता च पगब्भा च सिखी सब्बघसो यथा, ता हित्वा पब्बजिस्सामि विवेकमनुष्रुहयं।।

[लोक मे स्त्रियाँ ग्रसाध्वी होती हैं। उनका कोई समय नहीं होता। जैसे दीपक की शिखा सब को जला देने (=खा लेने) वाली होती हैं; वैसी ही वह रागानुरक्त तथा प्रगल्भ होती हैं। मैं उन्हें छोड, ग्रपनी शान्ति (= विवेक) की वृद्धि करता हुग्रा प्रश्नजित होऊँगा।]

श्रसा, श्रसतिया — पापिनियाँ, श्रथवा 'सात' कहते हैं सुख को, सो वह उनमें नहीं। जो उनमें श्रनुरक्त हो, उसे वह सुख नहीं देती, इसलिए भी श्रसाता, दु खदायिनी, यह श्रथं हैं। इस श्रथं की प्रमाणिकता के लिए यह सूक्त उद्धृत करना चाहिए—

> "माया चेसा मरीची च सोको रोगो चुपद्दवो, खरा च बन्धना चेता मच्चुपासो गुहासयो तासु यो विस्ससे पोसो सो नरेसु नराधमो ॥

[ वे माया है, मरीचि है, शोक है, रोग है, उपद्रव है, कठोर है, बन्धन हैं, मृत्यु-पाश है, गृह्य-श्राशय है। जो मनुष्य उनका विश्वास करे, वह नरो मे श्रधम नर है।]

लोकित्थियो, लोक (=ससार) मे स्त्रियाँ। वेला तासं न विज्जित, अम्मा । उन स्त्रियो को कामासिक्त होने पर, वेला (=समय), सवर (=सयम), मर्यादा, सन्तुष्टि नही। सारत्ता च पगढमा च, पञ्चकामो मे अनुरक्त होने पर, एक तो इनकी कोई वेला नहीं होती, वैसे ही काय-प्रगल्भता, वाक्-प्रगल्भता, और मन की प्रगल्भता—इन तीन से युक्त होने के कारण प्रगल्भ। इनमें काय-सयम, वाक्-सयम अथवा मन का सयम नहीं। लोभी, (तो यह) कौओं के समान होती हैं। सिखी सब्बंघसो यथा, अम्म ! जैसे ज्वाला-शिखा वा 'शिखी' कहलाने वाली अग्नि, गुँह (गूथ) आदि गन्दगी भी, घी, शहद,

श्रसातमन्त ] ३७५

शक्कर ग्रादि शुद्ध चीज भी, इष्ट भी तथा ग्रनिष्ट भी, जो जो पाती है, सभी खा लेती है; ग्रीर इस लिए सब्बघसो ( — सब को खाने वाली) कहलाती है, उसी प्रकार यह स्त्रिया भी, चाहे हथवान्, ग्वाले ग्रादि हीन जाति, हीन पेशे के लोग हो, चाहे क्षत्रिय ग्रादि उत्तम-पेशे वाले लोग हो, ऊँच-नीच का विचार किये बिना, जिसे दुनिया मे 'मजा' कहते है, उस कामाचार की इच्छा होने पर, जिस किसी को पाती है, उसी का सेवन करती है। इसलिए वह सर्वभक्षक ग्रग्नि-शिखा के समान होती है। इसलिए जैसे सर्व-भक्षक ग्रग्निशिखा है वैसा ही इन्हे जानना चाहिए। ता हित्वा पब्बिजस्सामि, में उन पापिनी, दुख की कारण स्त्रियों को छोड, ग्ररण्य में प्रविष्ट हो, ऋषियों की रीति से प्रव्रज्या लूँगा। विवेकमनुबूह्यं, शारीरिक-शान्ति ( — एकान्त), मानसिक शान्ति ( — एकान्त) ग्रीर चित्त के मैल ( — उपियों) से मुक्ति—यह तीन प्रकार का एकान्त कहा गया है। सो यहाँ शारीरिक-एकान्त ग्रीर मानसिक एकान्त से ग्रिभिप्राय है।

माँ ! में प्रव्रजित होकर किसण-कर्म ( च्योगाभ्यास) करके, श्राठ समा-पत्तियाँ ग्रौर पाँच श्रभिज्ञाये प्राप्त कर, (जन-)समूह से शरीर को पृथक् कर, ग्रौर चित्त के मैलो ( क्लेशो) से चित्त को पृथक् कर, इस एकान्तता ( चिवेक) को बढाते हुए ब्रह्म-लोक-परायण होऊँगा । बस, मुक्ते गृहस्थी नहीं चाहिए ।

इस प्रकार स्त्रियो की निन्दा कर, माता-पिता को प्रणाम कर, प्रब्रजित हो, उक्त प्रकार से एकान्त (=विवेक) की वृद्धि करते हुए ब्रह्म-लोक-गामी हुम्रा।

बुद्ध ने भी भिक्षुग्रो । इस प्रकार स्त्रियाँ, ग्रसाध्वी, पापिनी, दु खदायिनी होती है, (कह) स्त्रियो के दोषो ( = ग्रगुण) का वर्णन कर, (ग्रायं-)सत्यो को प्रकाशित किया। (ग्रायं-)सत्यो के प्रकाशन के ग्रन्त मे वह भिक्षु श्रोता-पत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुग्रा। शास्ता ने मेल मिला, जातक का साराश दिखाया। उस समय की माता (ग्रब की) कापिलानी, पिता (ग्रब के) महाकाश्यप थे, शिष्य (ग्रब के) ग्रानन्द; (ग्रौर) ग्राचार्य्य तो में ही था।

३७६ [ १.७.६२

# ६२. श्रंडभूत जातक

'यं ब्राह्मणोति..'यह गाथा (भी) जेतवन मे विाहर करते समय (एक) श्रासक्त चित्त भिक्षु के ही बारे मे कही।

# क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे 'भिक्षु । क्या तू सचमुच श्रासक्त है' पूछा । 'सचमुच' कहने पर 'भिक्षु । स्त्रियाँ (सँभाल कर) रक्खी नहीं जा सकती । पूर्व समय में पण्डित लोग ( —बुद्धिमान्) स्त्रियों को (उनके) गर्भ से ही सँभाल कर रखने की कोशिश करते हुए भी, न रख सके' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, उसकी श्रग पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण कर, वयस्क होने पर, सभी शिल्पो मे सम्पूर्णता प्राप्त कर, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्म पूर्वेक राज्य करने लगा। वह पुरोहित के साथ जूआ खेला करता था, और खेलते समय इस द्यूत-गीत (जुये के गीत) को कह कर चाँदी के तख़ते पर सोने के पासे फेकता था—

# सब्बा नवी वज्जुगता, सब्बे कट्टमया बना, सिब्बित्थियो करे पापं, लभमाना निवातके ।।

[सभी निदयाँ टेढी है, सभी बनो में लकडी है। मौका मिलने पर सभी स्त्रियाँ पाप-कर्म करती है। ]

इस प्रकार खेलते हुए राजा सदैव जीतता, पुरोहित की हार होती। क्रम से घर की सम्पत्ति नाश होती देख, पुरोहित सोचने लगा—इस प्रकार तो इस घर का सब धन नष्ट हो जायगा, मैं एक ऐसी स्त्री को ढूँढ कर घर मे रक्खुँ, जो दूसरे पुरुष के पास न जाये।" फिर उसे यह ख्याल आया-"मै किसी ऐसी स्त्री को, जिसने पहले किसी दूसरे पुरुष को देखा हो, (सँभाल कर) न रख सक्रा। इस लिए मै एक स्त्री को उसके गर्भ से ग्रारम्भ करके, रख कर, उसकी म्राय होने पर, उसे म्रपने वश में कर, (म्रौर) उसे एक ही पुरुष वाली रख, उसके गिर्द कडा पहरा लगा, राजा के कूल से धन ले आऊँगा।" वह अडू-विद्या में हशियार था। सो, उसने एक दरिद्र गर्भिणी स्त्री को देख, 'लडकी उत्पन्न करेगी' जान, उसे बुला, खर्चा दे, घर मे रक्खा। फिर उसके प्रसुत होने पर, उसे धन दे, प्रेरित कर, वह लडकी किन्ही दूसरे श्रादिमयो को न देखने देकर, स्त्रियो के ही हाथ मे दे, उसका पालन-पोषण करा, बडी होने पर, उसे अपने वश में कर लिया। जब तक वह (लडकी) बढती रही, तब तक वह राजा के साथ जुम्रा नही खेला, लेकिन लडकी को म्रपने वश में कर लेने पर, पुरोहित ने राजा से कहा—महाराज<sup>ा</sup> जूम्रा खेले। राजा ने 'म्रच्छा' कह, पूर्व प्रकार से ही खेला। पुरोहित ने राजा के गा कर पासा फेकने के समय कहा-- "मेरी माणविका के ग्रतिरिक्त।" उस समय से पुरोहित जीतता, राजा की हार होती।

बोधिसत्त्व ने सोचा 'इसके घर मे एक पुरुष-वाली एक स्त्री होनी चाहिए।' पता लगाने पर 'ऐसी स्त्री हैं' जान, इसके सदाचार को तुडवाऊँगा, (सोच) एक धूर्त को बुलाकर पूछा—''पुरोहित की स्त्री का शील तोड सकता हैं ?''। ''देव! तोड सकता हूँ।'' सो राजा ने उसे धन दे 'जल्दी कर' कह, भेजा। उसने राजा से धन ले, गन्ध, धूप, चूर्ण, कपूर ग्रादि।खरीद, उस (पुरोहित) के घर के समीप सब सुगन्धियो की दूकान लगाई। पुरोहित का घर सात तलो का तथा सात डचोढियो वाला था। सभी डचोढियो पर स्त्रियो का ही पहरा था। ब्राह्मण को छोड कर ग्रीर कोई ग्रादमी घर मे नही घुस सकता था। कूडा फेकने की टोकरी भी, देख कर ही ग्रन्दर ग्राने जाने दी जाती। उस माणविका को, केवल वह पुरोहित ही देख सकता था। (हॉ), उसकी एक स्त्री परिचारिका थी। वह परिचारिका गन्ध, पुष्प, खरीद कर ले जाती हुई, उस धूर्त की दूकान के समीप से ही जाती। उस (धूर्त) ने 'यह उसकी परिचारिका है' ग्रच्छी तरह जान, एक दिन उसे ग्राती देख, दूकान से उठ, जा कर,

उसके पैरो मे गिर, दोनो हाथो से पैरो को जोर से पकड़, 'माँ! इतने समय तक तू कहाँ रहीं' कह, रोना (म्रारम्भ) किया।

शेष लगे हुए धूर्तों ने भी एक ग्रोर खडे हो कहा—"हाथ, पैर, मुँह की बनावट ग्रौर रग-ढग (=ग्राकल्प) से माता-पुत्र एक ही जैसे हैं।" उनको कहते सुन, उस स्त्री ने ग्रपने मे ग्रविश्वास कर, 'यह मेरा पुत्र (ही) होगा' (सोच) स्वय भी रोना शुरू कर दिया। दे दोनो कॉद कर, रो कर एक दूसरे को गले लगा कर खड़े हुए। तब उस धूर्त ने पूछा—"माँ। तू कहाँ रहती है ?"

"तात । मैं किन्नर-लीला से रहने वाली, श्रेष्ठ-सुन्दरी, पुरोहित की तरुण-स्त्री की सेवा-सुश्रूषा करती हुई रहती हूँ।"

"माँ <sup>।</sup> ग्रब कहाँ जा रही है <sup>?</sup>"

"उसके लिए फूल-माला आदि लेने।"

"माँ, तुक्ते ग्रौर जगह जाने की क्या जरूरत है ? ग्रब से तू मेरे ही पास से ले जाया कर" (कह) बिना मूल्य लिये ही, बहुत से पान-पत्र ग्रादि तथा नाना प्रकार के फूल दिये।

माणविका ने उसे बहुत से गन्ध-पुष्प म्रादि लाते देख, पूछा—''म्रम्म ! क्या म्राज हमारा ब्राह्मण प्रसन्न है ?"

"ऐसा क्यो कहती है ?"

"इनकी ग्रधिकता देख कर।"

"ब्राह्मण ने अधिक मूल्य नही दिया, में इन्हे अपने पुत्र के पास से लाई हूँ।" उस समय से, ब्राह्मण का दिया हुआ मूल्य अपने पास रख कर, उसी (पुत्र) के पास से गन्ध फूल आदि ले जाती थी। कुछ दिन व्यतीत होने पर, धूर्त बीमारी का बहाना बना पड रहा। उसने उसकी दूकान के दरवाजे पर जा, उसे न देख, पूछा—'मेरा पुत्र कहाँ हैं ?"

"तेरे पुत्र को बीमारी हो गई है।"

उसने, जहाँ वह लेटा हुम्रा था, वहाँ जाकर, उसकी पीठ मलते हुए पूछा— "तात  $^{1}$  तुभ्रे क्या बीमारी है  $^{2}$ " वह चुप रहा । "बेटा  $^{1}$  कहता क्यो नही  $^{2}$ "

"माँ। प्राण निकलने को आये, तो भी तुभे नही कह सकता।"

"तात । यदि मुभसे नहीं कहेगा, तो किसे कहेगा ?"

"माँ <sup>।</sup> मुभे ग्रौर कोई रोग नही है। तुभसे उस माणविका (के सौन्दर्य)

की प्रशसा सुन, में स्रासक्त हो गया हूँ। वह मिलेगी, तो जीता रहूँगा, नहीं मिलेगी, तो यही मर जाऊँगा।"

"तात । यह भार मुक्त पर रहा। तू, इसके लिए चिन्ता मत कर" (कह) उसे श्राश्वासन दे, बहुत से गन्ध फूल श्रादि ले, माणविका के पास जाकर, उसे कहा—"ग्रम्म । मुक्तसे तेरी प्रशसा सुन, मेरा पुत्र (तुक्त पर) श्रासक्त हो गया है। इस विषय मे क्या करूँ?"

"यदि (उसे) ला सके, तो मेरी स्रोर से छुट्टी ही है।"

उसकी बात सुन, वह उस दिन से, उस घर के कोने कोने से बहुत सा कूड़ा इकट्ठा करके, फूल लाने की टोकरी में डाल कर लें जाती, ग्रौर पहरेदार स्त्री के उस टोकरी को देखने लगने पर, (वह कूडा) उसके ऊपर फेंक देती। वह घबरा कर दूर हट जाती। (यदि कोई) दूसरी पहरेदार स्त्री कुछ, कहती तो उसके ऊपर भी, वह उसी प्रकार कूडा उलट देती। तब से (चाहे) वह कुछ लाती, वा लें जाती, कोई उसकी तलाशी (—परीक्षा) करने की हिम्मत न करती। सो उस समय, वह उस धूर्त को फूलो की टोकरी में लिटा, माणविका के पास लिवा लें गई। धूर्त माणविका के सतीत्व का नाश कर, एक दो दिन प्रासाद में ही रहा। पुरोहित के बाहर जाने पर, दोनो रमण करते, उसके ग्राने पर धूर्त छिप रहता। एक दो दिन के बीतने पर उसने कहा—"स्वामी! ग्रब तुभे जाना चाहिए।"

"मै ब्राह्मण को, एक थप्पड मार कर जाना चाहता हूँ।"

श्रच्छा ! ऐसा हो; कह, उसने धूर्त को छिपा कर, ब्राह्मण के श्राने पर कहा—''श्रार्य <sup>!</sup> में चाहती हूँ कि तुम बीणा बजाश्रो, श्रौर में नार्चू ।''

''भद्रे ! ग्रच्छा, नाचो" (कह) वह बीणा बजाने लगा।

"तुम्हारे देखते, नाचते लज्जा आती है, तुम्हारा मुँह वस्त्र से बाँध (-ढक) कर नाचूँगी ।"

"यदि लज्जा लगती है, तो वैसा कर ले।"

माणविका ने घना वस्त्र ले, उसकी श्रांखे ढँकते हुए, मुँह पर (कपड़ा) बाँघ दिया। ब्राह्मण मुँह बँधवा कर, वीणा बजाने लगा। उसने थोडी देर बाच कर कहा—''श्रार्यं। जी चाहता है कि तुम्हारे सिर पर एक थप्पड़ मारूँ।''

स्त्री के लोभ मे फँसे हुए ब्राह्मण ने, किसी (भीतरी) बात को न जान कहा——
"मार"। माणविका ने धूर्त को इशारा किया।

उसने हलके से आ, ब्राह्मण की पीठ के पीछे खडे हो (उसके) सिर पर, कोहनी से प्रहार दिया। ब्राह्मण की आँखे गिरने वाली सी हो गईं। सिर मे फोडा पड गया। उसने दर्द से पीडित होकर कहा—"अपना हाथ ला।" ब्राह्मण तरुणी ने अपना हाथ उठा कर, उसके हाथ मे रख दिया। ब्राह्मण बोला— 'हाथ तो कोमल हैं; लेकिन प्रहार कडा है।' ब्राह्मण को मार कर, धूर्त छिप रहा। धूर्त के छिप रहने पर, ब्राह्मण तरुणी ने ब्राह्मण के मुँह पर से कपडा खोल, तेल लेकर, सिर में चोट की जगह पर मला। ब्राह्मण के बाहर जाने पर, उस स्त्री ने, फिर, उस धूर्त को टोकरी में लिटाया, और बाहर ले गई। उसने राजा के पास जा, सब हाल कह सुनाया।

राजा ने अपनी सेवा मे आये बाह्मण को कहा—"(आओ) ब्राह्मण प जुआ खेले।"

"महाराज । ग्रच्छा ।" राजा ने सूत-मण्डल तैयार करवा, पहली ही तरह से जुए का गीत गा कर पाँसा फेका । ब्राह्मण ने माणविका के तप के खण्डन हुए रहने की बात न जानते हुए कहा— "मेरी माणविका के ग्रितिरक्त ।" ऐसा कहने पर भी, वह हार ही गया । राजा ने जान कर कहा— "ब्राह्मण ! "ग्रितिरक्त" क्या कह रहे हो ? तुम्हारी माणविका का सतीत्व भ्रष्ट हो गया । तुम समभते थे, कि शुरू गर्भ से (सँभाल) कर, रखने से, सात जगहो पर पहरा लगा कर रखने से, तुम स्त्री को सँभाल कर रख सकोगे ? स्त्री को गोद में लेकर, (साथ) लिए फिरने से भी, उसे (सँभाल) कर रक्खा नही जा सकता । ऐसी कोई स्त्री नहीं हैं, जो एक ही पुरुष वाली हो । तेरी माणविका ने 'में नाचना चाहती हूँ' (कह) वीणा बजाते रहने पर तेरा मुंह कपड़े से बाँध, ग्रपने जार को तेरे सिर में कोहनी से प्रहार देने के लिए प्रेरित किया । ग्रब क्या "ग्रितिरक्त" कहते हो ? यह कह, यह गाथा कहीं—

यं बाह्मणो श्रवादेसी वीणं सम्मुखबेठितो, श्रण्डभूता भता भरिया, तासु को जातु विस्ससे।।

[ जिसके कारण ब्राह्मण ने मुँह पर पट्टी बॉध कर, वीणा बजाई, वह गर्भ

से ग्रारम्भ करके पाली गई, भार्य्या थी। ऐसी स्त्रियो का कौन विश्वास करे।]

यं ब्राह्मणो श्रवादेसि वीणं सम्मुखवेठितो, जिस कारण से ब्राह्मण घने कपडे से मुँह बँधवा कर वीणा बजाता था, वह उस कारण को न जानता था। उसे भी ठगने की इच्छा से, उसने ऐसा किया। ब्राह्मण ने उस स्त्री का श्रत्यन्त-मायावी होना न जान, स्त्री का विश्वास कर समभा कि यह मुभसे लजाती है। सो, उस (ब्राह्मण) के श्रज्ञान को प्रगट करने के लिए राजा ने ऐसा कहा। यही, यहाँ श्रभिप्राय है। श्रण्डभूता भता भरिया, श्रण्ड कहते हैं बीज को। बीजभूता श्रर्थात् माता की कोख से निकलते ही लाई गई। भता श्रथवा पाली गई। वह कौन ने भार्य्या, प्रजापती, पाद परिचारिका। भोजन, वस्त्रादि भरना पडने से, टूटे सयम वाली होने से, श्रथवा लोक-धर्मों से भरी होने से भार्य्या। तासु को जातु विस्ससे, जातु —सम्पूर्णत, कोख से श्रारम्भ करके भी पाली गई भार्याश्रो के इस प्रकार विकृत श्राचरण करने पर, कौन बुद्धिमान् श्रादमी, उनका सम्पूर्णत विश्वास करे ? श्रर्थात्, 'यह मेरे प्रति निर्विकार है' ऐसा कौन विश्वास करे ? पाप कर्म का ग्रामन्त्रण-निमन्त्रण करने वालो के रहने पर, स्त्री की रक्षा नही की जा सकती।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने ब्राह्मण को धर्मोपदेश किया । ब्राह्मण ने बोधि-सत्त्व का धर्मोपदेश सुन, घर जाकर, माणविका से पूछा——''तूने इस प्रकार का पाप-कर्म किया ?

"ग्रार्थं। ऐसा किसने कहा? नहीं किया, प्रहार मैंने ही दिया, किसी ग्रौर ने नहीं। यदि विश्वास न हो, तो 'मैं तुम्हें छोड, किसी दूसरे पुरुष के हस्त-स्पर्श को नहीं जानती'—ऐसी सत्य-किया कर ग्रिग्न में प्रविष्ट हो, तुम्हें विश्वास कराऊँगी। ब्राह्मण ने 'ऐसा हो' (कह) लकडी का बडा ढेर लगवा, उसमें ग्राग दे, उसे बुलवा कर कहा—"यदि ग्रपने पर विश्वास है, तो ग्रिग्न में प्रविष्ट हो।"

माणविका ने अपनी परिचारिका को पहले से ही सिखा-पढा रक्खा था— अम्म । तू अपने पुत्र से कह, कि वह मेरे अग्नि प्रवेश करने के समय, वहाँ जाकर मेरा हाथ पकड़ ले। उसने जाकर वैसा कहा। धूर्त आकर परिषद् के बीच मे खड़ा हो गया। ब्राह्मण को ठगने की इच्छा से माणविका ने जन (-समूह) **३**८२ [ १.७.६२

के बीच में खड़े होकर कहा—"ब्राह्मण । में तुभे छोड़ किसी अन्य पुरुष के हस्त-स्पर्श को नही जानती हूँ। मेरे इस सत्य (के बल) से, यह अगिन मुभे न जलाये।" यह कह, वह आग में घुसने को तैयार हुई।

उसी क्षण उस धूर्त ने, "देखो । इस पुरोहित-ब्राह्मण के काम को; इस प्रकार की माणिवका को ग्राग में जलाना (=प्रवेश कराना) चाहता है" कहते हुए, उस माणिवका को हाथ से पकड लिया। उसने हाथ छुडा पुरोहित से कहा—"ग्रायं । मेरी सत्य-किया टूट गई। ग्रव में ग्राग में प्रवेश नहीं कर सकती। कैसे ? ग्राज मैंने यह सत्य-किया की कि ग्रपने स्वामी को छोड कर, मैं किसी के हस्त-स्पर्श को नहीं जानती। ग्रौर, ग्रव मुभे इस ग्रादमी ने हाथ से पकड लिया।"

ब्राह्मण जान गया कि इसने मुक्ते घोका दिया है। सो, उसने उसे पीट कर, निकलवा दिया।

यह स्त्रियाँ ऐसी ग्रसर्द्धीमणी होती है। कितना बडा भी पाप-कर्म हो, उसे करके, ग्रपने स्वामी को ठगने के लिए, 'नही, में ऐसा नही करती हूँ' करके प्रति दिन शपथ खाती है। (इस प्रकार) यह ग्रनेक चित्तों वाली होती हैं। इसी-लिए कहा गया है—

चोरीनं बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं, शीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं॥ मुसा तासं यथा सच्चं सच्चं तासं यथा मुसा, गावो बहुतिणस्सेव श्रोमसन्ति वरं वरं॥ चोरियो कठिना हेता वाळा चपलसक्खरा, न ता किञ्चि न जानन्ति यं मनुस्सेसु वञ्चनं॥

[ ऐसी स्त्रियाँ—जो चोर हैं, ग्रित-बुद्धि हैं, जिनमें सत्य का मिलना दुर्लभ हैं,—उनका भाव, जल में गई मछली (के पद-चिन्ह) की तरह दुर्जोय है। उनको भूठ वैसा ही हैं, जैसा सत्य (ग्रौर) उनको सत्य वैसा ही हैं, जैसा भूठ। वह बहुत तृण के होने पर, गौवो के ग्रच्छा ही ग्रच्छा (खाने की तरह), नये नये (ग्रादमी) के साथ रमती है। यह चोर, कठोर, हिंस्-प्राणी सदृश, चपलता में कङ्कर सदृशा (स्त्रियाँ) मनुष्यो के ठगने (की सब विधियो) को जानती है।

शास्ता न 'इस प्रकार स्त्रियाँ सँभाल कर नहीं रक्खी जा सकती'—यह धर्मदेशना ला, (श्रार्य-)सत्यों का प्रकाश किया । सत्यों (के प्रकाशन) के ग्रन्त मे ग्रासक्त-चित्त ( = उत्किण्ठित) भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुग्रा। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय बाराणसी-नरेश में ही था।

#### ६३. तक जातक

"कोधना श्रकतञ्जू च .." यह गाथा (भी) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, (एक) श्रासक्त-चित्त भिक्षु के ही सम्बन्ध में कही।

# क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे, 'भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्किण्ठित हैं' पूछा। उसके 'हाँ! सचमुच' कहने पर स्त्रियाँ अकृतज्ञ होती हैं, मित्रो में फूट डालने वाली होती हैं, तू किस लिए उनके प्रति चञ्चल हुग्रा हैं?' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधि-सत्त्व ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, गङ्गा के किनारे आश्रम बना, समापत्तियाँ और ग्रिभिञ्जा की प्राप्ति कर, ध्यान मे रत हो, सुख पूर्वक रहते थे। उस समय बाराणसी के श्रेष्ठी की (एक) दुष्ट-कुमारी नामक चण्ड (स्वभाव) की, कठोर(स्वभाव) की लडकी थी। वह दासो को, नौकरो को गाली देती थी, मारती थी। एक दिन, उसे लेकर, (वे) गङ्गा पर खेलने के इद्दर [ १.७.६३

लिए गये। उनके खेलते ही खेलते सूर्य्यास्त का समय हो गया। बादल ग्रा गये। ग्रादमी, बादलो को देखकर, इधर उधर भाग गये। श्रेष्ठी की लडकी के दासो, नौकरो ने सोचा—"ग्राज हमे इससे छुट्टी पानी चाहिए (=इसकी पीठ देखनी चाहिए)।" (यह सोच) वह, उसे जल के भीतर ही छोड, स्थल पर चले ग्राये। वर्षा (=देव) बरसी। सूर्य्य भी ग्रस्त हो गया। ग्रॅंधेरा छा गया। उन्होंने उस (लडकी) के बिना ही घर लौट कर, "वह कहाँ हैं?" पूछने पर कहा—"गङ्गा से तो पार हो गई थी, फिर हम नही जानते कि कहाँ चली गई।" रिश्तेदारो को ढूँढने पर भी पता नही लगा।

वह चीख़ती-चिल्लाती, पानी में बहती बोधिसत्त्व की पर्ण-शाला के समीप पहुँची । उसने उसका शब्द सुन सोचा-4यह स्त्री का शब्द है, में इसे बचाऊँगा।" (श्रौर) उसने तिनको की मशाल ले, नदी के किनारे जा, उसे देख, 'डर मत, डर मत' (कहा) । तब आश्वासन दे, (अपने) हाथी सद्श बल से, नदी को तैरते हुए, जाकर, उसे उठा लाया, श्रौर श्राग बना कर दी। शीत दूर हो जाने पर मधुर फल-फूल लाकर दिये। उनके खा चुकने पर पृछा---"कहाँ की रहने वाली है ? कैसे **गङ्गा** मे गिर्पडी ?" उसने वह हाल कह दिया। उसे 'तु यही रह' (कह) दो तीन दिन पर्णशाला मे रखा, श्रौर स्वय खले मे रहे। दो तीन दिन के बाद कहा-"'ग्रव जा।" वह 'इस तपस्वी का ब्रह्मचर्य तोड, इसे साथ लेकर जाऊँगी' (सोच) न गई। समय बीतते बीतते स्त्री-माया श्रौर स्त्री-लीला दिखा, उसने, उस पतस्वी का ब्रह्मचर्य्य नष्ट कर, उसके 'ध्यान' का लोप कर दिया । वह उसे लेकर जगल मे ही रहने लगा । तब उसने उसे कहा-- "श्रार्य ! हमे जगल मे रहने से क्या (लाभ) ? श्राबादी की जगह पर चले।" वह उसे लेकर एक सीमान्त के ग्राम मे गया। ग्रौर वहाँ मट्रा बेच कर जीविका कमा, उसे पालने लगा। तक बेच कर जीविका करने से, उसका नाम तऋ-पण्डित पड़ गया। ग्राम-वासियो ने उसे खर्ची दे. 'हमे उचित अनुचित बताते हुए यहाँ रहें (कह) ग्राम-द्वार पर एक कृटिया बनवा, उसमें बसाया ।

उस समय चोर पर्वत से उतर कर, ग्रास-पास लूट-मार किया करते थे। एक दिन उन्होने उस गॉव को लूटा, ग्रौर ग्राम-वासियो से ही उनका सामान उठवा कर, जाते समय, उस श्रेष्ठी की लड़की को भी ग्रपने निवास-स्थान को ले गये।' (वहाँ जा) बाकी सब जनो को तो छोड़ दिया, लेकिन चोरो के सरदार ने उसके रूप पर मुग्ध हो, उसे ग्रपनी भार्या बना लिया। बोधिसत्त्व ने पूछा— "ग्रमुक नामक कहाँ रही?"

"चोरो के सरदार ने पकड कर, श्रपनी भार्य्या बना ली।" यह सुन कर भी बोधिसत्त्व 'वह मेरे बिना वहाँ नहीं रहेगी, भाग कर श्रा जायगी' (सोच) उसकी प्रतीक्षा करता रहा। श्रेष्ठी की लडकी ने भी सोचा—''में यहाँ सुख से रह रही हूँ। कही वह तऋ-पण्डित किसी काम से यहाँ श्राकर, मुभे यहाँ से ले न जाये, श्रीर में इस सुख से विञ्चत हो जाऊँ। सो में उसे चाहती हूँ (करके) उसे बुलवा कर, मरवा दूँ।" (यह सोच) उसने एक श्रादमी को बुला कर सदेशा भेजा—''में यहाँ दुखी हूँ। तऋ-पण्डित श्राकर मुभे ले जाये।"

उसने उस सदेश को सुन, उस पर विश्वास कर लिया, श्रौर जाकर ग्राम के द्वार पर पहुँच खबर भेजी। उसने बाहर श्रा, उसे देख, कहा—"श्रार्थ्य ! यदि हम इस समय भागेगे, तो चोरो का सरदार हमारा पीछा कर, हम दोनो को मार देगा। इस लिए रात को भागेगे।" (यह कह) उसे लिवा, खिला कर कमरें में बिठाया। शाम को चोरों के सरदार के श्राकर, शराव पी कर, मस्त होने पर पूछा—"स्वामी! यदि इस समय श्रपने प्रतिद्वन्दी को देख पाग्रो, तो क्या करो?"

"यह करूँगा—यह करूँगा"।

"तो क्या वह दूर हैं ? क्या वह कमरे में नहीं बैठा है ?" चोरो के सरदार ने मशाल ले, वहाँ जा कर, उसे देख, पकड, घर के बीच में गिरा कर, कुहनी भ्रादि से यथेच्छ पीटा। वह पिटते समय, ग्रौर कुछ न कह कर, केवल इतना ही कहना—'कोधना, श्रकतञ्जू च पिसुणा मित्तदूभिका (= कोधी, ग्रकृतज्ञ, चुगलखोर, मित्रो में फूट डालने वाली)। चोर ने उसे पीटा, वॉध कर डाल दिया, ग्रौर ग्रपने खा कर सो रहा। उठने पर, शराब का नशा उतरने पर, फिर उसे पीटना शुरू कर दिया।

वह भी केवल वह चार शब्द ही कहता रहा। चोर ने सोचा— "यह इस प्रकार पीटे जाने पर भी, श्रौर कुछ न कह कर, केवल वह चार शब्द ही कहता है। मैं इसे पूर्खूं?" उसने उस (लड़की) को सोया जान, उससे पूछा— "भो ! तू इस प्रकार पीटे जाने पर भी किस लिए केवल यह चार शब्द ही कहता है ?"

तक-पण्डित ने 'तो सुन' (कह) वह सब बात शुरू से कही। "मैं पहले बन में रहने वाला एक ध्यानी, तपस्वी था। सो मैंने इसे गङ्गा में बही जाती हुई को निकाल कर, पाला। इसने मुफे प्रलोभन दे, ध्यान से च्युत किया। मैं जगल छोड़, इसका पालन-पोषण करता हुग्रा सीमान्त के ग्राम में रहने लगा। सो इसने चोरो द्वारा यहाँ लाने पर 'मैं दुख से रह रही हूँ, मुफे ग्राकर ले जाग्रो' मेरे पास सदेश भेज, (मुफे यहाँ बुला) ग्रब तुम्हारे हाथ में फँसा दिया। इस वजह (—कारण) से, मैं ऐसा कहता हूँ।"

चोर सोचने लगा—''जिसने इस प्रकार के गुणवान्, उपकारी (ग्रादमी) के साथ इस प्रकार का बर्ताव किया, वह मेरे साथ क्या उपद्रव न करेगी ? इसे हटाना चाहिए।'' उसने तक-पण्डित को ग्राश्वासन दे, उसे जगा, तलवार ले 'चल, इस पुरुष को ग्राम-द्वार पर मारूँगा' कह, उसके साथ ग्राम से बाहर जा, 'इसे हाथ से पकड' (कह) उस (पुरुष) को, उसके हाथ मे पकडाते हुए, तलवार लेकर तक-पण्डित को मारते हुए की तरह, उसी के दो टुकड़े कर दिये। (फिर)सिर से नहा कर, कुछ दिन तक तक-पण्डित को प्रणीत भोजन से सर्तापत कर पूछा—''ग्रब कहाँ जायेगा ?''

तक-पण्डित ने कहा—"मुभे गृहस्थ से मतलब नही । ऋषि-प्रब्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, उसी जगल मे रहुँगा।"

"तो में भी प्रज्ञजित होऊँगा।" दोनो जने प्रज्ञजित हो, उस अरण्य में जा कर, पाँच अभिञ्ञा और आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, जीवन के अन्त में ब्रह्म-लोकगामी हुए। शास्ता ने यह दो कथाये कह, मेल मिला, अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही—

#### कोधना ग्रकतञ्जू च पिसुणा च विभेदिका, ब्रह्मचरियं चर भिक्खू! सो सुखं न विहाहिसि

[भिक्षु (जिस पर तू स्रासक्त है) वह कोधी है, स्रकृतज्ञ है, चुगलखोर है, (मित्रो मे) फूट डालनेवाली है। भिक्षु ! तू ब्रह्मचर्य्य पालन कर। इससे तेरे (ध्यान-)सुख का नाश न होगा।"]

दुराजान ] ३८७

भिक्षु । यह स्त्रियाँ कोधना, श्राये कोध को रोक नही सकती । श्रकतञ्जू च, बड़े से बड़े उपकार को भी भूल जाती हैं ( — नही जानती ) । पिसुणा च, प्रेम को शून्य करने वाली ही बात-चीत करती हैं । विभेदिका, मित्रो में फूट डालती हैं, भेद उत्पन्न करने वाली बात-चीत ही करना इनका स्वभाव हैं । यह ऐसे दुर्गुणो ( — पापकर्मों ) से युक्त हैं । तुभे इनसे क्या ? ब्रह्मचरियं चर भिक्खु ! यह जो मैथुन-रहित परिशुद्ध ब्रह्मचर्य हैं, उसे चर ( — पालन कर ) । सो सुखं न विहाहिसि, सो तू इस ब्रह्मचर्य वास करते हुए, श्रपने ध्यान-सुख, मार्ग-सुख, फल-सुख से च्युत न होगा । इस सुख को नही छोड़ेगा । इस सुख से हीन न होगा ( — परिहायिस्सिसि ) न परिहाहिसि, यह भी पाठ हैं, श्रथं वही हैं ।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, (आर्य-)सत्यो का प्रकाशन किया। सत्यो के (प्रकाशन के) अन्त में श्रासक्त (च्छित्कण्ठित) भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का चोरो का सरदार (अब का) आनन्द (स्थिवर) था। तऋ-पण्डित तो में ही था।

#### ६४. दुराजान जातक

"मासु निन्द इच्छिति मं. . "यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक उपासक के सम्बन्ध में कही।

# क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-वामी उपासक त्रिशरण तथा गाँच-शील मे प्रतिष्ठित था। उसकी बुद्ध मे, धर्म मे, तथा सघ मे श्रद्धा थी। लेकिन उसकी भार्य्या दुश्शीला ३६६ [ १.७.६४

पापिन थी। जिस दिन मिथ्या-ग्राचार (=पर पुरुष का सेवन) करती, उस दिन सौ (मुद्रा) से खरीदी हुई दासी की तरह रहती, जिस दिन मिथ्याचार न करती, उस दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव की) होती। वह (पुरुष) उसका कारण न समभ सकता था। उससे ग्रत्यन्त तग ग्राकर, वह (कभी कभी) बुद्ध की सेवा मे न जाता। सो एक दिन, वह गन्धपुष्प ग्रादि ले, ग्राकर, वन्दना करके बैठा। शास्ता ने पूछा—"उपासक! तू सात ग्राठ दिन से बुद्ध की सेवा मे क्यो नहीं ग्राता?"

"भन्ते । मेरी घर वाली एक दिन सौ (मुद्रा) से खरीदी दासी की तरह रहती है, एक दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव वाली) । मैं उसके मन की बात (=भाव) नहीं जान सकता । सो मैं उससे तग ग्रा कर बुद्ध की सेवा में नहीं ग्राता।"

उसकी बात सुन, शास्ता ने "उपासक । स्त्रियो के मन की बात दुर्जेय होती हैं। पूर्व-जन्म में भी पण्डितो ने तुभ्ते यह बात कही हैं, लेकिन वह जन्मान्तर की बात होने से, तू उसे नहीं जान सकता" (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य होकर पाँच सौ ब्रह्मचारियो (=माणवको) को विद्या पढाते थे। सो एक दूर देश का ब्राह्मण तरुण उसके पास विद्या सीखने के लिए आया। वह एक स्त्री पर आसक्त हो, उसे भार्य्या बना, वही बाराणसी मे रहते समय ही, दो तीन दिन आचार्य्य की सेवा मे नहीं गया। उसकी वह भार्य्या दुशीला पापिन थी। मिथ्याचार करने के दिन दासी की तरह रहती और न करने के दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव) की। वह उसके मन की बात न जानने के कारण, उससे परेशान हो, व्याकुल-चित्त हो आचार्य्य की सेवा मे न गया। सात आठ दिन के बाद उसके आने पर आचार्य ने पूछा—'माणवक न क्यो, दिखाई नहीं देते ?'' उसने उत्तर दिया—'आचार्य्य मेरी भार्य्या एक दिन (तो मुभे) चाहती है, दासी की तरह नम्न होती है, लेकिन दूसरे दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव की)

दुराजान ] ३८६

होती हैं। में उसके मन की बात नही जान सकता। उससे तग परेशान हो, व्याकुल-चित्त (हो) में श्रापकी सेवा में नहीं श्राया।

ग्राचार्यं ने—"माणवक । यह ऐसा ही हैं। स्त्रियाँ ग्रनाचार करने के दिन तो स्वामी का ग्रनुकरण करती हैं, दासी की तरह नम्र होती हैं; न करने के दिन ग्रभिमान के मारे, स्वामी की कद्र (=िगनती) नहीं करती। इस प्रकार, यह स्त्रियाँ ग्रनाचारिणी, दु शीला होती हैं। उनके मन की बात जाननी दुष्कर हैं। उनके चाहने वाली होने पर भी, ग्रौर न चाहने वाली होने पर भी, ग्रादमी को उनके साथ उपेक्षा का ही व्यवहार करना चाहिए' (कह) उसे उपदेश स्वरूप यह गाथा कही—

#### मा सु निन्द इच्छिति मं मा सु सोचि न इच्छिति, थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं॥

['मुफे चाहती है' (सोच) प्रसन्न न हो, 'मुफे नही चाहती है' (सोच) शोक न करे। पानी मे मछलियो की चाल की भॉति, स्त्रियो के मन की बात जाननी दुष्कर है।]

"मासु निन्द इच्छिति मं 'सु' निपात-मात्र है। 'यह स्त्री मुफे चाहती है, मेरी कामना करती है, मुफसे स्नेह करती है' सोच सन्तुष्ट न हो। मा सु सोचि न इच्छिति, 'यह मेरी चाह नहीं करती' सोच कर, शोक न करे, उसके इच्छा करने पर प्रसन्नता, न इच्छा करने पर शोक—दोनों में न पड कर, बीच का ही वर्ताव रक्खे। यही स्पष्ट किया गया है। थीनं भावो दुराजानो, स्त्रियों का भाव (=मन की बात) स्त्री-माया से छिपा रहने के कारण दुर्ज्ञेय होता है। जैसे क्या ? मच्छस्सेवोदके गतं, जिस प्रकार पानी से ढँका रहने के कारण मछली का गमन दुर्ज्ञेय होता है, जिसमें वह मछुग्नों के ग्राने पर, पानी से ग्रपने गमन को छिपा कर भाग जाती है, अपने को पकड़ने नहीं देती; इसी प्रकार स्त्रियाँ बड़े बड़े दुशील-कर्म करके भी 'हम ऐसा नहीं करती' (कह) अपने किये कर्मों को स्त्री-माया से ढँक स्वामियों को ठगती है। इस प्रकार यह स्त्रियाँ पापिन, दुराचारिणी होनी है। उनके प्रति बीच का भाव (=मध्यस्थ भाव) रखने वाला ही सुन्वी रहना है।

०३६ [ १.७.६४

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने शिष्य को उपदेश दिया। उस समय से वह उसके प्रित मध्यस्थ-भाव रखने लगा। उसकी भार्य्या भी, यह जान कि ग्राचार्य्य ने मेरे दु शील भाव को जान लिया, उस समय से ग्रनाचार-विरत हो गई। उस उपासक की उस स्त्री ने भी यह समभ, कि सम्यक् सम्बद्ध ने मेरा दुराचार-भाव जान लिया, उस समय से पाप-कर्म नहीं किया।

शास्ता ने भी इस धर्म-देशना को ला (श्रार्य-)सत्यो को प्रकाशित किया । सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त मे, (वह) उपासक स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के स्त्री-पुरुष (=पत्नी-पित) ही अब के स्त्री-पुरुष हुए। श्राचार्य्य तो, मैं ही था।

### ६५. श्रनभिरत जातक

"यथा नदी च पन्थो च " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, उसी तरह के उपासक के सम्बन्ध में कही।

# क. वर्तमान कथा

वह खोज करके, उसकी दु शीलता की बात मालूम कर, भगड़ कर, चित्त-व्याकुलता के कारण सात ग्राठ दिन तक सेवा में नहीं गया। एक दिन विहार जाकर तथागत को प्रणाम कर बैठते (तथागत के) "किस लिए सात-ग्राठ दिन तक नहीं ग्राया" पूछने पर, उसने कहा—"भन्ते । मेरी भार्या दुःशीला है। उसीसे व्याकुल-चित्त होने के कारण नहीं ग्राया।"

शास्ता ने 'उपासक । यह स्त्रियाँ अनाचारिणी है' (करके) उन पर कोघ न कर, उनके प्रति मध्यस्थ-भाव ही रखना चाहिए', यह बात, तुभे पहले

ग्रनभिरत ] ३६१

भी पण्डितो ने कही। लेकिन तू जन्मान्तर से छिपे रहने के कारण उस बात को नहीं देखता' (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही---

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मवत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व पूर्व प्रकार से ही, लोक-प्रसिद्ध ग्राचार्य्य हुए। सो उसके शिष्य ने भार्य्या का दोष देख, व्याकुल चित्त रहने के कारण, कई दिन न जा कर, एक दिन ग्राचार्य्य के पूछने पर, वह बात निवेदन की। ग्राचार्य्य ने, "तात! स्त्रियाँ सब के लिए है। 'यह दुशीला है' (करके) पण्डित लोग उनपर कोध नहीं करते" कह, उपदेश-स्वरूप यह गाथा कही—

### थया नदी च पन्थो च पाणागारं सभा पपा, एवं लोकित्थियो नाम नासं कुज्भन्ति पण्डिता।।

[जैसे नदी, महामार्ग, शराबखाने, धर्मशालाये तथा प्याऊ, सब के लिए ग्राम होते हैं, वैसे ही लोक में स्त्रियाँ सब के लिए साधारण होती है। पण्डित (=बुद्धिमान्) लोग, उनके विषय में क्रोध नहीं करते।]

यथा नदी—जैसे अनेक तीर्थों वाली नदी, नहाने के लिए श्राने वाले चाण्डाल श्रादि तथा क्षत्रिय श्रादि—सभी के लिए श्राम होती है, उसपर सभी को नहाना मिलता है। पन्थो, श्रादि में भी, जैसे महामार्ग सब के लिए श्राम है। उसपर सभी चल सकते हैं। पाणागार—शराब खाना भी सबके लिए श्राम होता है, जो जो पीना चाहते हैं, वह सब उसमे प्रवेश कर सकते हैं। पुण्येच्छुश्रो द्वारा जहाँ तहाँ वनाई गई धर्म-शालाएँ (—सभा) भी सबके लिए श्राम होती है, उसमे सभी प्रवेश कर सकते हैं। महामार्ग पर पानी की चाटियाँ रख कर बनाये प्याऊ भी सवके लिए श्राम होते हैं, वहाँ सभी पानी पी सकते हैं। एवं लोकित्थियो नाम, इसी प्रकार हे तात । लोक में स्त्रियां भी सब के लिए श्राम हैं। इसी प्रकार श्राम (—सार्वजिनक) होने से वह नदी, महामार्ग, पाणागार (==शराबधर) सभा ( शर्मशाला) (तथा) प्याऊ के सदृश है। इसलिए नासं कुज्भन्ति पण्डता, सो इन स्त्रियो

के प्रति, यह पापिन है, ब्रनाचारिणी है, दुश्शीलिनी है, सबके लिए ब्राम है, सोचकर, पण्डित लोग, दक्ष लोग, बुद्धिमान् लोग कोध नही करते।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने (ग्रपने) शिष्य को उपदेश दिया। वह उस उपदेश को सुन मध्यस्थ (-भाव का) हो गया। उस की भार्य्या ने भी यह जान कि ग्राचार्य्यं ने मुफ्ते जान लिया, उस समय से फिर पापकर्म नही किया। उस उपासक की भार्य्या ने भी, 'शास्ता ने मुक्ते जान लिया' सोच उस समय से फिर पाप-कर्म नहीं किया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला (ग्रार्य-) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो (के प्रकाशन) के ग्रन्त में (वह) उपासक स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुग्रा। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के स्त्री-पुरुष ही ग्रब के स्त्री-पुरुष (=पित-पत्नी) है, लेकिन ग्राचार्य- ब्राह्मण तो में ही था।

#### ६६. मुदुलक्खण जातक

"एका इच्छा पुरे म्रासि...." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चित्त के विकार के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती निवासी एक कुल-पुत्र शास्ता की धर्म-देशना सुन, (त्रि) रत्न शासन मे श्रद्धापूर्वक प्रज्ञजित हुम्रा। वह शिक्षाग्रो को ग्राचरण मे ला, योगाभ्यास करता, कर्मस्थानो मे लगा रहता था। एक दिन श्रावस्ती मे भिक्षा के लिए घूमते हुए एक ग्रलकृत-सजी स्त्री को देख, (उसे) 'सुन्दर' मान, उसकी इन्द्रियाँ चञ्चल हो गईं। उसके दिल में विकार पैदा हो गया, मानो दूध वाले वृक्ष को बसूले से छील दिया गया हो। उस समय से, विकार के वशीभूत हुए उसको न शारीरिक ग्रानन्द था, न मानसिक। उसकी दशा वैसी ही हो गई, जैसे भ्रान्त मृग की। उसका ग्राचरण (बुद्ध) शासन के ग्रनुकूल न रहा। केश, नाखून, लोम (रोम) लम्बे हो गये, तथा चीवर मैले-कुचैले रहने लगे। उसकी इन्द्रियो (=ग्राकृति) में विकृति देख कर उसके मित्रो ने पूछा—"ग्रायुष्मान! तुभे क्या है? तेरी ग्राकृति पूर्ववत नहीं है ?"

"श्रायुष्मानो । (शासन मे) मेरी रुचि नही।" तब, वे उसे शास्ता के पास ले गये।

शास्ता ने पूछा.—''भिक्षुग्रो । इस ग्रनिच्छुक भिक्षु को लेकर क्यो श्राये ?"

"भन्ते। इस भिक्षु की (शासन मे) रुचि नही रही।"

"भिक्षु । क्या सचमुच ?"

"भगवान्! सचम्च।"

"तुभे किसने उत्कण्ठित कर दिया ?"

"भन्ते । मैं ने भिक्षा के लिए घूमते हुए एक स्त्री को (श्रपनी) इन्द्रियों को चञ्चल करके देखा। उस से भेरे मन में विकार पैदा हो गया। उसीसे मैं उत्कण्ठित हैं।"

शास्ता ने, "भिक्षु इसमे कुछ ग्राश्चर्य नहीं, यदि तू इन्द्रियों को चञ्चल कर विपक्षी-त्रालम्बन, को 'सुन्दर' मानकर देखने से चित्त के विकार द्वारा चलायमान हो गया। पूर्व समय मे पाँच श्रभिज्ञा तथा ग्राठ समापत्ति लाभी, ध्यानबल से चित्त के मैल का नाश कर, विशुद्ध-चित्त, गगन तल चारी बोधिसत्त्व भी, इन्द्रियों को चञ्चल कर, ग्रपने से विपक्षी ग्रालम्बन (= स्त्री) को जब देखते थे, ध्यान से गिर, विकार से विकृत होने पर, बड़े

<sup>&#</sup>x27;स्त्री के लिए पुरुष, तथा पुरुष के लिए स्त्री विपक्षी-श्रालम्बन (opposite sex) है।

दुख के भागी होते। क्या सुमेरपर्वत को उखाड डालने वाली हवा, हाथी जितने छोटे-पर्वत को, महाजम्बू वृक्ष को उखाड देने वाली हवा, टूटे तट के किनारे उगी भाडी को, महासमुद्र को सुखा देने वाली हवा, छोटे से तालाब को कुछ समभती है ? इसी प्रकार उत्तम बुद्धि विशुद्ध-चित्त बोधि-सत्त्वो की भी ग्रज्ञानी बना देने वाले चित्त के विकार क्या तुभसे लज्जा करेंगे ? विशुद्ध-सत्व भी विकृत हो जाते हैं। उत्तम यशस्वी लोग भी ग्रयश को प्राप्त होते हैं (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व, काशी राष्ट्र के एक महाधनी ब्राह्मण के कुल मे उत्पन्न हुए थे। विज्ञता प्राप्त कर सब शिल्पो मे पारङ्गत हो, काम-सुख को छोड, ऋषि प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो, योगाभ्यास करने लगा। ग्रिभिञ्जा तथा समापत्तियाँ उत्पन्न कर ध्यान-सुख से सुखी (हो) हिमवन्त प्रदेश मे रहने लगा। वह एक समय निमक-खटाई खाने के लिए, हिमवन्त से उत्तर बारा-णसी मे पहुँच, राज-उद्यान मे ठहरा। ग्रगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, लालरंग के वल्कल के वस्त्र पहन, एक कन्धे पर ग्रजिन-चर्म रख, जटा-मण्डल बाँध, भोली-बेंहगी ले, बाराणसी मे भिक्षा माँगते हुए राजा के गृह-द्वार पर पहुँचा। राजा ने उस की चरिया-विहरण से ही प्रसन्न हो, उसे बुलवा महामूल्यवान् ग्रासन पर बिठा, प्रणीत खाद्य-भोज्य से सन्तुष्ट किया; उसके अनुमोदन कर चुकने पर, उस से उद्यान मे ही रहने की प्रार्थना की।

उसने स्वीकार कर, राजा के घर से भोजन खा, राज-कुल को उपदेश देते हुए, उस उद्यान में सोलह वर्ष बिताये। एक दिन राजा, उपद्रवी सीमान्त देश को शान्त करने के लिए जाते समय, (श्रपनी) मृदुलक्षणा नामक अग्रमहिषी को 'श्रार्थ्य की सेवा प्रमाद-रहित होकर करना' कह, चला गया। राजा के जाने के बाद से, बोधिसत्त्व अपनी मरजी के समय, घर जाते। सो एक दिन

१ पुण्यानुमोदन ।

मृदुलक्षणा, बोधिसत्त्व के लिए भोजन तैयार कर 'श्राज श्रार्थ्य देर कर रहें हैं' (सोच) सुगन्धित जल से नहा, सब ग्रलकारों से श्रलकृत हो, महातल पर छोटी सी शय्या बिछवा, बोधिसत्त्व के श्रागमन की प्रतीक्षा करती हुई लेट रही।

बोधिसत्त्व भी श्रपना समय हुग्रा देख, ध्यान से उठ, श्राकाश-मार्ग से ही राजा के घर पहुँचे। मृदुलक्षणा वल्कल-चीर का शब्द सुन 'श्रायं श्रा गये' समभ, जल्दी से उठी। शीघ्रता से उठने के कारण उस का बारीक वस्त्र खसक गया। तपस्वी ने छज्जे पर से ग्राते हुए, देवी का विपक्षी ग्रालम्बन इन्द्रियो को चचल करके 'सुन्दर' (=श्रुभ) मानकर देखा। उसके दिल मे विकार पैदा हो गया, जैसे दूध-वाले वृक्ष को बसूले से छील दिया गया हो। उसी समय उसके ध्यान का लोप हो गया। उसकी दशा ऐसी हो गई, जैसी विना पर के कौवे की। उसने खड़े ही खडे ग्राहार ग्रहण किया ग्रौर विना खाये चित्त के विकार से कम्पित हो, प्रासाद से उतरा, श्रौर ' उद्यान मे जा, पर्णशाला में प्रवेश कर, तखते के शयनासन के नीचे ग्राहार को रख, (ग्रपने) ग्रसदृश-ग्रालम्बण' से बँध कर, राग-ग्रान्न से जलते हुए, निराहार रहने के कारण सूखते हुए, सात दिन तखते के बिछौने पर पड़े ही पड़े (बिता दिये)।

सातवे दिन, राजा सीमान्त को शान्तकर, लौट श्राया । नगर की प्रदक्षिणा कर, बिना घर गये ही (पहले) 'श्रार्य को देखूँगा' (सोच) उद्यान में जा, पर्णशाला में प्रवेश कर, उसे लेटे देखा। राजा ने सोचा—''कोई रोग हो गया होगा।'' सो उसने पर्णशाला की सफाई करा, (उसके) पैर दबाते हुए पूछा—''श्रार्य । क्या तकलीफ हैं ?''

"महाराज <sup>!</sup> मुफ्ते श्रौर कोई रोग नहीं है, लेकिन चित्त के विकार के कारण में श्रासक्त हो गया हुँ।"

"ग्रार्यं <sup>।</sup> चित्त किस पर ग्रासक्त हो गया है।" "महाराज <sup>।</sup> मृदुलक्षणा पर।"

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> विपक्षी-म्रालम्बन (opposite sex) ।

"ग्रार्यं! 'ग्रच्छा, में ग्रापको मृदुलक्षणा देता हूँ' कह, तपस्वी को ले जा, घर मे प्रवेश कर, देवी को सब ग्रलकारो से ग्रलकृत कर तपस्वी को दिया। (लेकिन) देते हुए मृदुलक्ष्णा को इशारा किया, कि तुभे ग्रपने बल से ग्रार्य (के सदाचार) की रक्षा करनी चाहिए। 'ग्रच्छा! देव! रक्षा करूँगी।' देवी को लेकर तपस्वी राज-भवन से उतरा।

उसने महाद्वार से निकलने के समय (ही) कहा—'श्रार्य! हमे एक घर लेना चाहिए। जाये राजा से घर माँग ले।' तपस्वी ने जाकर (एक) घर माँगा। राजा ने एक ऐसा खाली पडा घर—जिसमे लोग श्राकर पाखाना कर जाते थे—दिलवाया। वह देवी को ले कर, वहाँ चला गया। देवी ने उसमे प्रविष्ट होने की श्रनिच्छा प्रगट की।

'क्यो नहीं प्रवेश करती ?' '(स्थान) गन्दा होने से', 'ग्रब क्या करूँ ?'

'इसे साफ कर' (कह) राजा के पास 'जा कुदाली ला, टोकरी ला' (कह) भेजा । अशुचि श्रौर कूडा फेकवा, फिर गोबर मँगवा कर लिपवाया। तदनन्तर 'जा चारपाई ला, दीपक ला, बिछौना ला, चाटी ला, घड़ाँ ला'—इस प्रकार एक एक मँगवा कर, फिर पानी श्रादि लाने के लिए कहा। उसने घडा ले, पानी ला, चाटी को भर, स्नान करने के लिए पानी रख, बिछौना बिछाया।

बिछौना पर इकट्ठे बैठते समय उसने, उसे दाढी से पकड़, घसीट, नीचा दिखा, अपने सामने किया—"तुभे अपने श्रमण होने का, ब्राह्मण होने का ख्याल नही ?" तब उसे अक्ल आई। इतनी देर तक वह अज्ञानी ही रहा। चित्त के विकार ऐसा अज्ञान फैलाने वाले हैं। "भिक्षुओ! कामच्छन्द नीवरण अन्धा बना देनेवाला है, अज्ञानी बना देनेवाला है।" आदि (सूक्त पाठ) यहाँ कहना चाहिए। उसने अक्ल (=स्मृति) आने पर सोचा—"यह तृष्णा अधिक होने पर, मुभे चारो नरको में से सिर न उठाने देगी। आज ही इसे राजा को सौपकर मुभे हिमवन्त मे प्रवंश करना चाहिए।" (यह सोच) उसने, उसे ले, राजा के पास जा, "महाराज! मुभे तेरी देवी से मतलब नहीं। केवल इसी के कारण मेरी तृष्णा बढी" (कह) यह गाथा कही—

#### एका इच्छा पुरे श्रासि श्रलद्धा मुदुलक्खणं, यतो लद्धा श्रळारक्खी इच्छा इच्छं विजायथ ॥

[मृदुलक्षणा मिलने से पहले, केवल एक ही इच्छा थी, लेकिन जबसे यह विशालाक्षी मिली है, तब से (एक) इच्छा से (दूसरी) इच्छा पैदा हो रही है।]

महाराज! इस तेरी मृदुलक्षणा देवी के मिलने से पुरे (=पहले) 'ग्रहो मुफ्ते यह मिल जाये'—ऐसी एक ही इच्छा थी, एक ही तृष्णा उत्पन्न हुई। यतो, लेकिन जब से मुफ्ते यह श्रळारक्खी = विशालनेत्रा = शोभन-लोचना लद्धा (=मिली); तब से उस मेरी एक इच्छा ने घर की तृष्णा, सामान की तृष्णा, उपभोग-सामग्री की तृष्णा (करके) ग्रौर ग्रौर नाना प्रकार की इच्छाये पैदा कर दी, उत्पन्न कर दी। इस प्रकार मेरी यह बढती हुई इच्छा, मुफ्ते ग्रपाय (=नरक) से सिर उठाने न देगी। यह मुफ्ते बस है, तुम ही श्रपनी देवी को ग्रहण करो, में तो हिमवन्त को जाऊँगा।

उसी समय उसका खोया ध्यान उत्पन्न हो गया, श्रौर वह श्राकाश में बैठकर, राजा को उपदेश दे, श्राकाश मार्ग से ही हिमवन्त को चला गया। फिर श्राबादी की श्रोर नहीं श्राया। (वहाँ) ब्रह्म-विहारों की भावना कर, ध्यान प्राप्त (हो) ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुग्रा।

शास्ता ने इस धर्म देशना को ला, (श्रायं) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त मे, वह भिक्षु अहत्वं में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का राजा (अव का) आनन्द, मृदुलक्षणा (अव की) उत्पलवर्णा और ऋषी तो में ही था।

# ६७. उच्छंग जातक

"उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो ." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक दीहाती (=जानपदिक) स्त्री के सम्बन्ध मे कही।

# क. वर्तमान कथा

एक समय, कोसल देश (=राष्ट्र) मे तीन जने एक जगल के पास, खेती करते थे। उस समय जगल के अन्दर (कुछ) चोर, लोगो को लूट कर भाग गये। (चोर पकड़ने वालो ने) चोरो को ढूँढते हुए उन्हें न पाया। वहाँ आकर, 'तुम जगल में डाका डालकर, अब यहाँ किसान बने हो' (कह) 'यह चोर हैं' (समभः), उन्हें बाँध कर, कोसल-नरेश को दे दिया। उस समय एक स्त्री, 'मुभे वस्त्र (=अाच्छादन) दो, मुभे वस्त्र दो' कहती आकर, रोती, पीटती बार बार राज-भवन के पास से गुजरती। राजा ने उसका शब्द सुनकर कहा—दो, इसे कपड़ा। (लोग) वस्त्र लेकर गये। वह उसे देख बोली—'मुभे यह चादर (=वस्त्र) नही चाहिए। मुभे स्वामी रूपी चादर चाहिए।' लोगो ने जाकर राजा से निवेदन किया—"यह ऐसी चादर नहीं चाहती, यह स्वामी रूपी चादर चाहती हैं।" राजा ने उसे बुलवा कर पूछा—"तू स्वामी रूपी चादर माँगती हैं?"

"देव ! स्त्री की चादर (उसका) स्वामी ही है। बिना स्वामी के, (हजार मुद्रा)के मूल्य की चादर पहनने पर भी स्त्री नंगी ही है।" इस ग्रर्थ के समर्थन के लिए यह, सूक्त कहना चाहिए—

> नग्गा नदी श्रनोदिका नग्गं रट्ठं श्रराजिकं, इत्थीपि विधवा नग्गा यस्सापि दस भातरो ॥

[ बिना पानी के नदी नग्न होती है, बिना राजा के राष्ट्र नग्न होता

है। विधवा स्त्री नग्न होती हैं, चाहे उसके दस भाई क्यो न हो। ]
राजा ने उसपर प्रसन्न हो पूछा—"यह तीनो जने तेरे क्या लगते हैं ?"
"देव । एक मेरा स्वामी है, एक भाई हैं, एक पुत्र है।"

राजा ने पूछा—"मैं तुभ पर सन्तुष्ट हूँ। इन तीनों मे से एक को देता हूँ, किसे चाहती हैं ?" वह बोली—'देव । मैं जीती रही, तो मुभे एक स्वामी भी मिल सकेगा, पुत्र भी मिल सकेगा; लेकिन माता-पिता के मर गये होने से भाई का मिलना दुर्लभ है। मुभे भाई (ही) दे।" राजा ने सन्तुष्ट हो, तीनो को छोड दिया। 'उस एक के कारण, तीनो जने दुख से मुक्त हो गये'—यह बात भिक्षु-सघ मे प्रगट हो गई। सो एक दिन धर्म-सभा मे एकित्रत हुए भिक्षु, उसकी प्रशसा कर रहे थे—''ग्रावुसो। इस एक स्त्री के कारण तीन जने दुख से मुक्त हो गये।' शास्ता ने ग्राकर पूछा—''भिक्षुग्रो। इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे?" (भिक्षुग्रो के) 'यह बात' कहने पर, शास्ता ने 'भिक्षुग्रो! न केवल ग्रभी इस स्त्री ने उन तीन जनो को दुख से छुडाया पहले भी छुडाया था' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय तीन जने जगल के किनारे पर खेती करते थे. .... पूर्वोक्त प्रकार ही। तब राजा के यह पूछने पर कि तीनो जनो में से किसे (छुडाना) चाहती है, वह बोली, "देव वस्या तीनो को नहीं (दे) सकते हैं?"

"हाँ ! नहीं (दे) सकता।"

"यदि तीनो को नही दे सकते, तो मुभे (मेरे) भाई को दे।"

"पुत्र या स्वामी को ले, तुभे भाई से क्या ?" कहने पर "देव ! यह (दोनो) सुलभ है, लेकिन भाई दुर्लभ है" कह, यह गाथा कही—

उच्छङ्गे देव! मे पुत्तो पथे धावन्तिया पित, तञ्च देसं न पस्सामि यतो सोदरियमानये॥

[देव । पुत्र तो गोद में हैं, ग्रीर पित रास्ते चलती को मिल सकता हैं;

लेकिन वह देश नही दिखाई देता, जहाँ से भाई ( = सहोदर) लाया जा सके। ]

उच्छङ्ग देव! मे पुत्तो, देव! मेरा पुत्र तो मेरे पल्ले में हैं, जैसे जंगल में जाकर, पल्ला करके, साग चुन चुन कर, उसमें डालने से पल्ले में साग सुलभ होता हैं, इसी प्रकार स्त्री के लिए पुत्र भी, पल्ले में साग की तरह सुलभ ही होता है। इसी से कहा, उच्छङ्ग देव! मे पुत्तो, पथे धावन्तिया पित, रास्ता पकड कर, अर्केली जाती हुई स्त्री को भी पित सुलभ हैं, जो जो देखता हैं, वहीं बन जाता हैं। इसी लिए कहा हैं, पथे धावन्तिया पित। तञ्च देसं न पस्सामि यतो सोदिरयमानये—क्योकि (अब) मेरे माता पिता नहीं हैं, इसलिए में माता की कोख नामक वह दूसरा देश नहीं देखती, जहाँ से समान-उदर में पैदा होने के कारण, सहोदर कहलाने वाला भाई ले आऊँ। इसलिए मुभे भाई ही दो।

राजा ने 'यह सत्य कहती हैं' सन्तुष्ट चित्त हो, तीनो जनो को बधनागार से मँगवाकर, दे दिया। वह तीनो जनो को ले कर चली गई।

शास्ता ने भी 'भिक्षुम्रो! न केवल ग्रभी, पूर्व जन्म मे भी इसने इन तीनो जनो को दुख से मुक्त किया था।' (कह) यह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। पूर्व-जन्म मे चारों जने, ग्रबके चारो जने ही (थे)' लेकिन राजा, उस समय में था।

# ६८. साकेत जातक

"यिस्मि मनो निविसति. .." यह (गाथा) शास्ता ने साकेत के समीप अजन बन मे विहार करते समय, एक ब्राह्मण के सम्बन्ध मे कही।

## क. वर्तमान कथा

भिक्षुसघ सहित भगवान् साकेत (समीपवर्त्ती ग्रजन बन) मे प्रवेश करते थे। उस समय, एक साकेत नगरवासी बुद्ध ब्राह्मण ने नगर से बाहर जाते समय, (नगर-) द्वार के बाहर बुद्ध को देखा, ग्रौर (उनके ) पाँव मे गिर, पैरो को जोर से पकड कर बोला—"तात । क्या माता-पिता के बूढे होने पर, पुत्र को उनकी सेवा नहीं करनी चाहिए ? तो फिर किस लिए इतनी देर तक तूने श्रपने को हम से छिपाये रक्खा? खैर, मैने तो देख लिया, ग्रा ग्रव ग्रपनी) माता को देखने के लिए चल।" यह कह, वह शास्ता को अपने घर ले गया। भिक्ष्सघ सहित शास्ता वहाँ जाकर बिछे श्रासन पर बैठे। ब्राह्मणी भी श्राकर शास्ता के पैरो मे गिर कर रोने लगी-"तात! इतने समय तक कहाँ रहे ? क्या माता-पिता के बद्ध होने पर, उनकी सेवा नहीं करनी चाहिए ?"(यह कहकर) उसने (ग्रपने) लडके लडिकयो से भी 'स्रास्रो । भाई को प्रणाम करो' (कहके) प्रणाम करवाया। दोनो ने सन्तुष्ट चित्त हो बडा दान दिया। शास्ता ने भोजन के बाद, उन दोनो जनो को जरा-सुत्त का उपदेश दिया। सुत्र (के उपदेश) के अन्त मे, दोनो जने श्रनागामि-फल मे प्रतिष्ठित हए। शास्ता, ग्रासन से उठ ग्रञ्जन वन को ही लौट गये। धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्ष्यों ने बात चलाई--"त्रावुसों। 'तथागत के पिता शुद्धोदन (है), माता महामाया (है) यह जानकर भी, ब्राह्मण श्रौर ब्राह्मणी ने 'तथागत हमारे पुत्र हैं' कहा। शास्ता ने भी इसे सहन कर लिया; क्या कारण है ?" शास्ता ने उनकी बात सुन, 'भिक्षुग्रो! वे दोनो जने ग्रपने पुत्र को ही पुत्र कहते थें (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही--

### ख. अतीत कथा

"भिक्षुग्रो । पूर्व समय मे, यह ब्राह्मण लगातार पांच सौ जन्मो तक मेरा पिता हुग्रा, पांच सौ जन्मो तक चाचा ( == चुल्ल पिता), पांच सौ जन्मो

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जरासुत्त (सुत्त निपात ४.६) ।

४०२ [ १.७.६६

तक ताया (= महापिता), यह ब्राह्मणी भी लगातार पाँच सौ जन्मो तक माता, पाँच सौ जन्मो तक चाची (= चुल्ल माता), पाँच सौ जन्मो तक ताई (= महामाता) हुई। इस प्रकार में डेढ हजार जन्म तो ब्राह्मण के हाथ में पला, श्रौर डेढ हजार जन्म ब्राह्मणी के हाथ में। इस प्रकार तीन हजार जन्मो को कह, बुद्ध होने की श्रवस्था मे, यह गाथा कही-

#### यस्मि मनो निविसति चित्तं वापि पसीदित, श्रिविट्ठपुब्बके पोसे कामं तस्मिम्पि विस्ससे।।

[ जिस (म्रादमी) पर मन ठहर जाता है, म्रथवा चित्त प्रसन्न होता है, पहले न देखा रहने पर भी, उसमे विश्वास कर लिया जाता है।"]

यिंस मनो निवसित, जिस ग्रादमी को देखते ही, उसपर मन ठहर जाता है, चित्तं वािप पसीदित, जिसको देखते ही चित्तं प्रसन्न हो जाता है, मृदु हो जाता है। ग्रादिट्ठपुब्बके पोसे, साधारणत जिसे इस जन्म में नहीं देखा है, ऐसे ग्रादमी में कामं तिस्मिम्प विस्ससे, ग्रनुभूत-पूर्व स्नेह के कारण, वैसे ग्रादमी में भी सम्पूर्ण विश्वास हो जाता है।

इस प्रकार शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी, यह दोनो ही थे, श्रीर पुत्र भी मैं ही था।

### ६६. विसवन्त जातक

"धिरत्थु तं विसं वन्तं...."यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, धर्मसेनापित सारिपुत्र के सम्बन्ध में कही।

# क वर्तमान कथा

स्थिवर के खाजा खाने के दिनों में, मनुष्य, सघ के लिए बहुत सा खाजा लेकर, विहार ग्राये । भिक्षुसघ के ले लेने पर, बहुत सा (खाजा) बाकी बच गया। लोग कहने लगे, "भन्ते । जो (भिक्षु) गाँव में गये हुए हैं, उनका (हिस्सा) भी ले ले।" उस समय स्थिवर का (एक) बालक—शिष्य गाँव में गया था? (लोगों ने) उसका हिस्सा ले, उसके न ग्राने पर, बहुत देर होती हैं (सोच) वह हिस्सा स्थिवर को दे दिया। स्थिवर ने जब उसे खा लिया, तो वह लडका ग्राया। सो स्थिवर ने उससे कहा—"ग्रायुष्मान्। मैंने तेरे लिए रक्खा हुग्रा खाद्य खा लिया।"

वह बोला—"भन्ते । मधुर (चीज) िकसे ग्रिप्रिय लगती है ?" महास्थिविर को खेद हुमा। उन्होने निश्चय िकया िक ''ग्रब इस के बाद (कभी) खाजा न खायेगे।" उसके बाद से सारिपुत्र स्थिविर ने कभी खाजा नहीं खायां उनके खाजा न खाने की बात भिक्षु-सघ में प्रगट हो गई। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उसकी चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने पूछा—"भिक्षुग्रो। इस समय बैठे क्या बात कर रहे हो ?"

"यह (कथा)" कहने पर, (शास्ता ने) "भिक्षुग्रो । एक बार छोड़ी हुई चीज को सारिपुत्र, प्राण छोडने पर भी (फिर) ग्रहण नहीं करता" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व एक विष-वैद्य के कुल मे उत्पन्न हो, वैद्यक से जीविका चलाते थे। (एक बार) एक दीहाती को साँप ने डँस लिया। उसके रिश्तेदार देर न कर, जल्दी से वैद्य को बुला लाये। वैद्य ने पूछा—दवा के जोर से विप को दूर करूँ? श्रथवा जिस साँप ने डँसा है, उसे बुलाकर, उसी से डँसे हुए स्थान से विष निकलवाऊँ?

(लोगो ने कहा)—"सर्प को बुलाकर, विष निकलवास्रो।" उसने साँप को बुलाकर पूछा—"इसे तू ने डँसा है?" "हाँ। मैने।"

"ग्रपने डँसे हुए स्थान से तू ही विष को निकाल।"

"मैने एक बार छोडे हुए विष को फिर कभी ग्रहण नही किया, सो मै ग्रपने छोडे विष को नहीं निकालुँगा।"

उसने लकडियाँ मँगवा कर, श्राग बनाकर कहा—"यदि । श्रपने विष को नहीं निकालता, तो इस श्राग में प्रवेश कर।"

सर्प बोला—"ग्राग मे प्रविष्ट हो जाऊँगा, लेकिन एक बार छोडे ग्रपने विष को फिर नही चाटुँगा।" यह कह, उसने यह गाथा कही—

#### धिरत्थु तं विसं वन्तं यमहं जीवितकारणा, वन्तं पच्चाविमस्सामि मतम्मे जीविता वरं ॥

[धिक्कार है, उस विष को, जिसे जीवन की रक्षा के लिए, एक बार उगल कर मैं फिर निगलूँ। ऐसे जीवन से मरना अच्छा है।]

धिरत्थु, निन्दार्थक निपात है। तं विसं, उस विष को। यमहं जीवित कारणा (=जिसे में (ग्रपने) जीवन की रक्षा के लिए) वन्तं विसं (=उगले हुए विष को) पच्चाविमस्सामि (=िनगल्गा), उस उगले हुए विष को पक्चाविमस्सामि (चिनगल्गा), उस उगले हुए विष को धिक्कार है। मतम्मे जीविता वरं, उस विष को फिर न निगलनं के कारण, जो ग्राग में प्रविष्ट होकर मरना है, वह मेरे जीवित रहने की ग्रपेक्षा ग्रच्छा है।

यह कह, वह श्रग्नि में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हुआ। वैद्य ने उसे रोक, रोगी को श्रौषध तथा दवाई से निरोग कर दिया। फिर सर्प को सदाचारी बना, श्रब से किसी को दुःख न देना' (कह) छोड दिया।

शास्ता ने भी "भिक्षुग्रो! एक बार छोडी हुई (चीज) को सारिपुत्र, प्राण छोडने पर भी फिर ग्रहण नहीं करता"—यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का सर्प (ग्रब का) सारिपुत्र था, वैद्य तो में ही था।

कुद्दाल ] ४०५

#### ७०. कुद्दाल जातक

"न तं जितं साधु जितं. .." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, चित्तहत्थ सारिपुत्र स्थविर के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती का एक कुल-पुत्र था। उसने एक दिन हल चला कर, लौटते हुए, विहार में एक स्थिवर के पात्र में से उत्तम स्निग्ध, मधुर भोजन पाकर सोचा—'हम ग्रपने हाथ से, रात दिन, नाना प्रकार के काम करते हुए भी, इस प्रकार का भोजन नहीं पाते। हमें भी प्रज्ञजित होना चाहिए।' (सोच) वह प्रज्ञजित हुग्रा। महीने ग्राध महीने में ही, ग्रनुचित ढँग से विचार करने के कारण, क्लेश (चित्त विकार) के वशीभूत हो, वह भिक्षु-ग्राश्रम छोड गया। पीछे भोजन के ग्रभाव से कष्ट पा फिर ग्राकर, प्रज्ञजित हुग्रा ग्रीर ग्रमिधर्म सीखा। इसी प्रकार, ६ बार भिक्षु-ग्राश्रम छोड प्रज्ञजित हुग्रा; ग्रीर सातवी वार प्रज्ञजित होने पर (ग्रमिधर्म के) सातो प्रकरणों का श्राता हो, बहुत से भिक्षुग्रों को धर्म बँचवाते, (उसने) ग्रर्हत पद को प्राप्त किया। तब उसके मित्रों ने उसकी हँसी की—'ग्रायुष्मान्! चित्त! पूर्व की भाँति, ग्रब तेरे चित्त में विकार वृद्धि नहीं पाता?''

"श्रावुसो! श्रव इसके बाद मेरे गृहस्थ होने की सम्भावना नहीं रहीं।" सो, उसके श्रहेंत् होने की वात धर्म-सभा में चली—'श्रावुसो! इस प्रकार श्रहेंत् पद की योग्यता रख कर भी, श्रायुष्मान् चित्तहत्थ सारिपुत्र छ: बार गृहस्थ हुए। श्रहो। पृथक्-जन होने में कितना यडा दोप हैं। शास्ता ने

<sup>ं</sup> जो न मुक्त है, न मुक्ति के मार्ग पर स्थिरता के साथ आरूढ़ है।

श्राकर 'भिक्षुग्रो! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे' पूछ 'यह बात-चीत' कहने पर, कहा—भिक्षुग्रो! पृथक्जन का चित्त हलका (=लघुक) होता है, उसका निग्रह करना दुष्कर होता है, किसी श्रालम्बन (=विषय) मे जाकर श्रासक्त हो जाता है, एक बार श्रासक्त होने पर, (उसे) जल्दी छुडाया नही जा सकता। इस प्रकार के चित्त का सयम (=दमन करके) रखना श्रच्छा है; सयत रहने पर ही वह सुख का कारण होता है।

#### दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो, चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥

[निग्रह करने में दुष्कर, लघुक, जहाँ चाहे वही गिर पडने वाले चित्त को सयम में रखना श्रच्छा है। चित्त का सयम सुख का कारण होता है।]

उसका निग्रह दुष्कर होने के कारण ही, पूर्व समय मे एक पण्डित, एक कुदाली के लोभ के मारे उसे न छोड सकने के कारण छ बार गृहस्थ हुए ग्रौर सातवी बार प्रब्रजित हो, ध्यान उत्पन्न कर, उस लोभ का निग्रह कर सके। यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही——

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) कुंजड़ें (तरकारी बेचने वाले) के कुल मे उत्पन्न हो, बालिग हुए। उनका नाम हुग्रा कुदाल-पण्डित। वह कुदाल से जमीन खोद कर, उसमे साग, लौकी, कहू (तथा ग्रन्य) सब्जी-तरकारी बोकर, ग्रौर उन्हें बेच कर भी, दिरद्र जीवन व्यतीत करता था। उसके पास एक कुदाली को छोड़ कर, धन नाम की, ग्रौर कोई चीज नहीं थी। उसने एक दिन सोचा—"मुक्ते गृहस्थ मे रहने से क्या लाभ ? (घर से) निकल कर प्रब्रजित हो जाना चाहिए।" तब एक दिन उस कुदाली को एक जगह छिपा कर, वह ऋषि प्रब्रज्या के ग्रनुसार प्रव्रजित हुग्रा, (पीछे) उस कुदाल की याद

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> धम्मपद, (चित्तवग्ग) ।

ग्राने पर, लोभ को शान्त न कर सकने के कारण, उस खुण्डी कुदाली के लिए (वह फिर) गृहस्थ वन गया। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी (बार करके) छ बार उस कुदाली को छिपा, निकल कर प्रव्रजित हो फिर गृहस्थ हुग्रा। लेकिन सातवी बार उसने सोचा—"में इस खुण्डी कुदाली के लिए बार बार गृहस्थ बना, ग्रब इस बार उसे महानदी में फेक कर प्रव्रजित होऊँगा।" तब उसने नदी के किनारे जा 'यदि इस के गिरने की जगह देखूँगा, तो शायद फिर ग्राकर निकालने का मन हो' (सोच) कुदाल को बेट से पकड, हाथी समान बल से, सिर के ऊपर तीन बार घुमा, ग्रांखे मीच, नदी के बीच में फेक दिया; ग्रौर तीन बार सिह नाद किया—"में ने जीत लिया। में ने जीत लिया।"

उस समय बाराणसी नरेश सीमान्त देश (के उपद्रव) को शान्त कर, लौट रहे थे। उन्होने नदी पर सिर से नहा, सब ग्रलङ्कारों से ग्रलकृत हो, हाथी के कन्धे पर बैठ कर जाते समय, बोधिसत्त्व के उस शब्द को सुनकर (सोचा)—''यह पुरुष कहता है, 'मैं ने जीत लिया,' इसने किसे जीत लिया?" 'उसे बुलाग्रो' (कह) बुलवा कर पूछा—''भो। पुरुष। मैं तो संग्रामविजेता हूँ। ग्रभी विजय करके ग्रा रहा हूँ। तू ने किसे जीता है?"

बोधिसत्त्व ने, "महाराज । तुम्हारा हजार-सग्राम, लाख-सग्राम जीतना भी वास्तविक जीतना नहीं, क्योंकि तुमने चित्त के विकारों को नहीं जीता। में ने अपने अन्दर के लोभ का दमन करते हुए चित्त-विकारों को जीता है" कहते हुए महानदी की ग्रीर देखा। उसी समय जल (-कसिण) के ध्यान से उत्पन्न होनेवाला ध्यान उत्पन्न हो गया। योगबल सम्पन्न हो, उन्होंने श्राकाश में बैंट, राजा को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

न तं जितं साधु जितं यं जितं श्रवजीयति, तं खो जितं साधु जितं यं जितं नावजीयति।।

[ वह जीत ग्रच्छी जीत नहीं, जिस जीत की फिर हार हो। वहीं जीत ग्रच्छी जीत हैं, जिस जीत की फिर हार न हो। ]

न तं जितं साधुजितं यं जितं भ्रवजीयति, शत्रुग्रो से जिस देश को जीत लिया हो, यदि शत्रु फिर उस देश को जीत ले, तो वह जीत श्रच्छी जीत नहीं। क्यों कि उसे फिर (दूसरा) जीत ले जा सकता हैं। दूसरा ग्रंथ 'जित' कहते हैं 'जय' को। शत्रुग्नो के साथ युद्ध करके जो जय प्राप्त की गई हैं, यदि वह फिर उनके जीतने से पराजय हो जाय, वह (जय) ग्रच्छी नहीं, शोभा का कारण नहीं। किस लिए विशेष (वह) फिर पराजय (के रूप में बदली जा सकती) हैं। तं खो जितं साधु जितं यं जितं नावजीयित, लेकिन जो शत्रुग्नों को जीतकर, उनसे फिर नहीं हारता हैं, ग्रथवा एक बार प्राप्त की गई जो जय फिर पराजय (के रूप में बदल) नहीं सकती वहीं जय ग्रच्छी जय हैं, शोभा का कारण हैं। क्योंकि (वह) फिर हार में नहीं बदली जा सकती। इसलिए महाराज! हजार बार भी, लाख बार भी संग्राम में विजयी होने पर, तुम सग्राम-योद्धा नहीं हो। क्योंकि तुमने ग्रपने चित्त के विकारों को नहीं जीत पाया। जो एक बार भी ग्रपने ग्रन्दर के चित्त-विकारों को जीत लेता हैं, वहीं उत्तम सग्राम-विजयी हैं। (इस प्रकार) ग्राकाश में बैठे ही बैठे, इस बुद्ध-लीला से राजा को धर्मोंपदेश दिया। श्रेष्ठ सग्राम-विजेता का भाव यहाँ दिखाया गया है—

#### यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने, एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो'॥

[ जो एक (श्रादमी) सहस्र जनो के लेकर, सग्राम में सहस्र जनो को जीत लेता है, श्रौर एक सिर्फ श्रपने को जीतता है। तो श्रपने श्राप को जीतने वाला ही, उत्तम सग्राम-विजेता है।]

यह सूत्र (उक्त विचार का) समर्थंक है। यह धर्म सुनते ही, राजा के चित्त का कियात्मक विकार नष्ट हो गया; ग्रौर उसका चित्त प्रक्रज्या की ग्रोर भुका। राजा की सेना के चित्त का विकार भी, उसी तरह नष्ट हो गया।

राजा ने बोधिसत्त्व से पूछा-- 'ग्रब ग्राप कहाँ जायेगे ?'

''महाराज<sup>।</sup> हिमवन्त मे जा, ऋषि प्रत्रज्या के श्रनुसार प्रत्रजित होऊँगा ।''

'तो मैं भी प्रव्रजित होऊँगा' (कह) वह बोधिसत्त्व के साथ ही निकल पडा ।

१ धम्मपद (सहस्य वग्ग ८.३)

सेना, ब्राह्मण गृहपित, सब श्रेणियाँ, (तथा) उस स्थान पर एकत्र हुग्रा सभी जन-समृह, राजा के साथ ही निकल पडा। बाराणसी-वासियो ने सोचा—

"कुद्दाल पण्डित की धर्म-देशना सुन, हमारा राजा, प्रब्रज्या का इच्छुक हो, सेना सहित ही चला गया है, हम यहाँ (रहकर) क्या करेगे ?" (यह सोच) बारह योजन की बाराणसी के सभी निवासी निकल पडें। (उसकी) बारह योजन की परिषद् (=मडली) हुई। उसे ले, बोधिसत्त्व हिमवन्त मे प्रविष्ट हुए।

देवेन्द्र शक का (सिह-) स्रासन गर्म हो गया। उसने ध्यान लगाकर देखा कि कुदाल-पिंडत ने महा स्रिभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) किया है, स्रौर (उसके साथ) बहुत जन-समूह हैं" फिर (सोचा) कि उन्हें निवास स्थान मिलना चाहिए। उसने विश्वकर्मा को बुला कर कहा—"तात! कुदाल-पिंडत ने महाभिनिष्क्रमण किया है। (उन्हें) निवास स्थान मिलना चाहिए। तू हिमवन्त प्रदेश में जाकर समतल भूमि पर तीस योजन लम्बा स्रौर पन्द्रह योजन चौडा स्राक्षम बना।" उसने दिव! स्रच्छा' कह, जाकर, वैसा (स्राक्षम) बना दिया। यहाँ यह सिक्षप्त वृत्तान्त है। विस्तार, हित्थपाल जातक में स्रायेगा। यहाँ स्रौर वहाँ एक ही वर्णन है।

विश्वकर्मा ने स्राश्रम मे पर्णशालाये वनाईं, फिर कुशब्द वाले मृगो, पक्षियो तथा स्रमनुष्यों (=भूत प्रेत, स्रादि) को दूर कर, उस उस तरफ एक एक पगडण्डी बना, स्रपने निवास स्थान को चला गया। कुदाल पण्डित भी, उस परिषद् को साथ ले, हिमवन्त मे प्रविष्ट हुए, श्रौर उन्होने (वहाँ) शक्त के दिये हुए स्राश्रम पर जा, विश्वकर्मा के बनाये हुए प्रक्रजित परिष्कारो को ग्रहण किया। फिर पहले स्रपने स्रापको प्रव्रजित कर, स्रपने स्रनु-यायियो (=परिषद्) को प्रव्रजित करा, स्राश्रम (को) उनमे बाँट दिया। (उस समय) सातराज्य खाली हो गये। तीस योजन (की दूरी का) श्राश्रम भर गया। कुदाल पण्डित ने शेप किसण (योगाभ्यासो) का भी स्रभ्यास किया, ब्रह्मबिहारों की भावना की स्रोर परिषद् को भी किसण (= योगा-

<sup>&#</sup>x27;भिम्न भिन्न शिल्पियों के समुदाय। 'जातक (५०६)

<sup>ै</sup>मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-भादना।

भ्यास के साधन) बतलाये। सभी (लोग) समापत्ति (समाधि) प्राप्त कर, ब्रह्मबिहारो की भावना करते, ब्रह्मलोक परायण हुए। लेकिन जिन्होने उनकी सेवा सुश्रूषा की थी, वे देवलोकगामी हुए।

शास्ता ने, 'भिक्षुग्रो! इस प्रकार इस चित्त के विकृत हो जाने पर—विकार में ग्रासक्त हो जाने पर, उसका मुक्त करना ग्रासान नहीं होता। लोभ का त्याग दुष्कर होता है, इस प्रकार के पण्डितों को भी (लोभ) ग्रज्ञानी बना देता हैं' (कह) यह धर्मदेशना ला, (ग्रार्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के ग्रन्त में, कोई स्रोतापन्न हुए, कोई सकृदागामी हुए, कोई ग्रनागामी हुए, किन्हीं ने ग्रह्तं पद को प्राप्त किया।

शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का राजा (ग्रब का) श्रानन्द था। परिषद् (ग्रब की) बुद्ध परिषद्। कुदाल पण्डित तो में ही था।

# पहला परिच्छेद

## ८. वरमा वर्ग

#### ७१. वरगा जातक

"यो पुब्बे करणीयानि..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे बिहार करते समय, कुट्म्बियपुत्र तिस्स स्थविर के सम्बन्ध में कही।

# क. वर्तमान कथा

एक दिन परस्पर मित्र तीस कुलपुत्र गन्ध-पुष्प-वस्त्र ग्रादि ले, 'शास्ता की धमंदेशना सुनेगे' (करके) बहुत से लोगो सहित, जेतवन में गये। (वहाँ) नागमालक तथा शालमालक ग्रादि (शालाग्रो) में कुछ देर बैठे। जब शाम के समय शास्ता सुरिभ-गन्ध से सुवासित-गन्धकुटी से निकल कर, धमं-सभा में जा, श्रलकृत बुद्धासन पर बैठे, तब अनुयायियो सहित धमं-सभा में जा शास्ता की सुगन्धित पुष्पो से पूजा की, तथा चक्र से ग्रंकित तले ग्रौर पुष्पित पद्म से सुशोभित तलवाले चरणो में प्रणाम कर, एक ग्रोर बैठ, धर्मो-पदेश सुना। उनको ऐसा विचार हुग्रा—'जैसे जैसे हम भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को जानते हैं, उससे तो हमें प्रत्रजित होना चाहिए।' फिर उन्होने तथागत के धर्म-सभा से निकलने के समय, पास जाकर, प्रणाम कर प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने उनको प्रव्रज्या दी।

उन्होने स्राचार्य्य उपाध्यायो को सन्तुष्ट कर, (उनसे) उपसम्पदा प्राप्त की, श्रीर पाँच वर्ष तक (उनके) पास रह, दोनो मातृका (=शीर्षक)

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष ।

कण्ठस्थ की, हलाल-हराम (किप्पय-ग्रकिप्पय) को जाना, तीनो प्रकार की ग्रन्नोदनाग्रों को सीखा। फिर चीवरों को सी, रंग कर, योगाभ्यास (=श्रमणधर्म) करने की इच्छा से ग्राचार्य्य उपाध्यायों से ग्राज्ञा ले, शास्ता के पास जा, प्रणाम कर, एक ग्रोर बैठ यह याचना की—"भन्ते। हम ससार (=भव) के प्रति विरक्त हैं, जाति-जरा-व्याधि तथा मरण से भयभीत हैं, हमें ससार से मुक्त होने के लिए कर्मस्थान (=योग के साधन) का उपदेश करे।" शास्ता ने उन्हें ग्रडतीस कर्मस्थानों में से, उनके ग्रन्कुल कर्मस्थान चुन कर बतला दिये।

उन्होने शास्ता के पास से कर्मस्थान ले, उनकी बन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, परिवेण मे जा, ग्राचार्य्य उपाध्याय से भेट की, फिर पात्र चीवर ले, योगा-भ्यास करने निकल पडे।

उनके बीच मे कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थिवर नाम का एक भिक्षु श्रालसी, निरुद्योगी तथा जिह्वालोलुप था। वह सोचने लगा—"न तो में जगल मे रह सकता हूँ, न में योगाभ्यास कर सकता हूँ, न भिक्षा माँग कर निर्वाह कर सकता हूँ, सो में जाकर क्या करूँगा? में यही रक जाऊँ।" तब वह भिक्षु हिम्मत-हार, (कुछ दूर तक) श्रन्य भिक्षुश्रो के साथ जाकर, रक रहा। श्रन्य भिक्षु, कोसल जनपद मे विचरते हुए, एक सीमान्त ग्राम मे पहुँचे, श्रीर उसके समीप के एक जंगल मे वर्षा-वास करने लगे। तीन महीने के भीतर प्रयत्न करके उन्होने विदर्शना ज्ञान तथा पृथ्वी को उन्नादित करते हुए श्रर्हत् पद को प्राप्त किया। वर्षावास के बाद, पवारणा कर, (श्रपने) प्राप्त गुण को शास्ता से कहने की इच्छा से वह वहाँ से निकल, क्रमश जेतवन पहुँचे; श्रीर पात्र-चीवर रख, श्राचार्य्य उपाध्यायो से भेट की; फिर तथा-गत के दर्शन के लिए, शास्ता के पास जा, प्रणाम कर एक श्रीर बैठे। शास्ता ने उनके स्माथ मधुर बातचीत की। बातचीत के श्रनन्तर, उन्होने श्रपने प्राप्त-गुण को तथागत से निवेदन किया। शास्ता ने उन भिक्षुश्रो की प्रशंसा की।

<sup>ै</sup> माङ्गिलिक, श्रमाङ्गिलिक तथा भिक्षा ग्रहण करने के श्रनन्तर उपदेश। ैसब कर्मस्थान चालीस है। श्रंतिम दो छोटे होने से गिनती नहीं की।

शास्ता को उन भिक्षुत्रों की प्रशसा करते देख, कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थिविर की भी योगाभ्यास करने की इच्छा हुई। उन भिक्षुत्रों ने शास्ता से ग्राज्ञा माँगी—"भन्ते। हम उसी जंगल में जाकर रहेगे।" शास्ता ने 'ग्रच्छा' कह, ग्राज्ञा दी। वे प्रणाम करके परिवेण को चले गये। उस कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थिविर ने, रात होने पर, ग्रत्यन्त उत्साहित हो, बडी तेजी से योगाभ्यास करना शुरू किया। ग्राधी रात बीतने पर, तस्ते के सहारे खडे ही खडे, ऊँघते उलट कर, गिर पडा; ग्रौर उसने (ग्रपने) जाँघ की हड्डी तुडा ली। बडी पीडा होने लगी। उसकी सेवा-सुश्रूषा में लग जाने से उन भिक्षुग्रों का जाना न हो सका।

उनके सेवा में भ्राने के समय शास्ता ने पूछा— "भिक्षुम्रो! क्या तुमने कल जाने की म्राज्ञा नहीं ली थी?"

"भन्ते । हाँ। लेकिन हमारे साथी कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थिविर ने, असमय पर, बड़ी तेजी के साथ योगाभ्यास करना शुरू किया, और ऊँघते हुए उलट कर गिर पडा, जिससे उसने जाँघ की हड्डी तुडा ली, उसके कारण हमारा जाना न हो सका।"

शास्ता ने 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी इसने ग्रपनी उत्साह-हीनता के कारण, ग्रसमय पर वडी तेजी के साथ योगाभ्यास (=वीर्य्य) करते हुए, तुम्हारे जाने में बाधा डाली हैं, पहले भी इसने तुम्हारे जाने में बाधा डाली थीं कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे गान्धार देशस्थ तक्षशिला मे, बोधिसत्त्व लोकप्रसिद्ध आचार्य हो कर, पाँच सौ माणवको (=शिष्यो) को विद्या (=शिल्प) सिखाते थे। एक दिन वे माणवक लकडी लाने के लिए जगल मे जाकर, लकडिया चुगने लगे। उनके बीच मे एक ग्रालसी माणवक था। उसने एक बड़े भारी वरुण-वृक्ष को देख, सोचा—'यह सूखा वृक्ष है, ग्रभी थोडा सोकर, पीछे वृक्ष पर चढ, लकडियाँ तोडकर चलूँगा।' वह ग्रपनी चादर बिछा, लेट-कर गाढी निद्रा में सो गया। बाकी माणवक लकडियों का बोभा बाँध, लेकर जातें समय, उसकी पीठ मे पैर से ठोकर लगा, उसे जगा कर चलें गये।

म्रालसी माणवक म्रॉले मलते मलते उठा; ग्रौर बिना नीद उतरे ही, वृक्ष पर चढ, शाला को ग्रपनी ग्रोर खीच कर तोडने लगा। उस समय टूटी शाला के भटके से नोक उछल कर उसकी ग्रॉल में लगी। उसने एक हाथ से ग्रॉल को दवाया; ग्रौर दूसरे हाथ से गीली लकडियाँ तोडी। वृक्ष से उतर, लकडियों की गाँठ बाँघ, जल्दी से जाकर (उसने उन्हे) ग्रौरो की गिराई लकडियों के ऊपर डाल दिया। उस दिन दीहात के एक ग्राम के किसी कुल से ग्राचार्य्य को ग्रगले दिन पाठ (—ज़ाह्मण वाचनक) करने का निमन्त्रण ग्राया था। ग्राचार्य्य ने विद्यार्थियों को कहा—'तात! कल एक गाँव में जाना है। तुम खाली पेट न जा सकोगे। (इस लिए) प्रात काल ही यवागु पकवा कर वहाँ जाना, तथा ग्रपना ग्रौर हमारा हिस्सा, सब लेकर चले ग्राना।

उन्होने प्रात काल ही यवागु पकाने के लिए, दासी को उठा कर कहा— 'हमारे लिए जल्दी से यवागु बना।' उसने लकडी लेते समय, ऊपर रक्खी हुई वरुण की गीली लकडी ले ली। बार बार फूँक मार कर भी आग न जल सकी। जिस के कारण, दिन चढ आया। विद्यार्थी, 'बहुत दिन चढ़ आया, श्रब जाना नहीं हो सकेगा' (सोच) आचार्य्य के पास गये। आचार्य्य ने पूछा—''तात! क्या नहीं गये ?''

"हाँ म्राचार्य्य । नही गये।"

"क्या कारण?"

"ग्रमुक नाम का ग्रालसी विद्यार्थी हमारे साथ लकड़ी लेने के लिए जंगल गया था। वह वरुण-वृक्ष के नीचे सो गया। पीछे जल्दी से वृक्ष पर चढ़, ग्रांख फुड़वा ली, श्रौर वरुण की गीली लकड़ियाँ लाकर, हमारी लाई हुई क्लकड़ियों के ऊपर डाल दी। यवागु पकाने वाली, उन्हें सूखी लकड़ियाँ समक्त, (जलाने लगी, किन्तु) सूर्योदय तक ग्राग न जला सकी। इस कारण से हमारे गमन मे बाधा हुई।"

श्राचार्य्य ने, माणवक की करतूत सुन, 'ग्रन्धे-मूर्खों के काम से इसी प्रकार हानि होती हैं' (कह) यह गाथा कही---

> यो पुब्बे करणीयानि पच्छा सो कातुमिच्छति, वरणकट्ठभञ्जीव स पच्छा मनुतप्पति।।

. [ जो पहले करने योग्य है, उसे जो पीछे करना चाहता है; वह वरुण की लकडी तोडने वाले की तरह, पीछे पश्चात्ताप को प्राप्त होता है। ]

स पच्छा मनुतप्पति, जो कोई ग्रादमी 'यह पहले करना चाहिए, यह पीछे,' इसका बिना विचार किये पुब्बे करणीयानि, पहले करने योग्य कार्यों को पच्छा (=पीछे) करता है, वह वरणकट्ठभञ्जो, हमारे माणवक की तरह, मूर्ख ग्रादमी, पीछे पश्चात्ताप करता है, शोक करता है, रोता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व अपने शिष्य को यह बात कह, दान भ्रादि पुण्य-कर्म कर, जीवन की समाप्ति पर, (अपने) कर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने 'भिक्षुग्रो। न केवल ग्रभी यह तुम्हारा बाधक हुग्रा है, पहले भी हुग्रा था' (कह) यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। (उस समय का) श्रॉख खुभा लेने वाला विद्यार्थी, (ग्रब का) जॉघ तोड लेने वाला भिक्षु था, शेष माणवक (ग्रब की) बुद्ध परिषद्, ग्रौर श्राचार्य्य ब्राह्मण तो में ही था।

### ७२. सीलवनागराज जातक

"ग्रकतञ्जुस्स पोसस्स..." यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध मे कही।

# क. वर्तमान कथा

धर्म सभा में बैठे भिक्षु कह रहे थे— "श्रावुसो । देवदत्त श्रकृतज्ञ है, तथागत के गुणो को नही जानता।" शास्ता ने श्राकर, 'भिक्षुश्रो! श्रब

४१६ [ १.न.७२

बैठे क्या बातचीत कर रहे हो । 'पूछ, 'यह बात थी' कहने पर, 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी देवदत्त श्रकृतज्ञ है, पहले भी श्रकृतज्ञ ही रहा है । उसने कभी भेरे गुणो को नही जाना' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश मे, हाथी की योनि मे पैदा हुम्रा था। वह माता की कोख से निकलते समय चाँदी की राशि सा सर्वश्वेत था, भ्राँखे, मणि की गोलियो के सद्श प्रकाश फैलाने वाली तथा पाँच प्रसन्नताम्रो से यक्त, मख, रक्त-वर्ण कम्बल के समान, सुँड, लाल सोने की बुँदो जडी चाँदी की माला के सदश, चारो पैर लाख से रगे हुए जैसे थे, इस प्रकार उसका शरीर दस पारमिताग्रो से अलंकृत तथा अति सुन्दर था। सो, उसके सयाने होने पर, सारे हिमालय के हाथी, इकट्ठे होकर, उसकी सेवा मे रहने लगे। इस प्रकार हिमालय प्रदेश में ग्रस्सी-हजार हाथियो के साथ रहते हुए, पीछे, जमात के साथ रहने में दोष देख, और जमात से पृथक्, अर्कले रहने मे शारीरिक-शान्ति (=विवेक) का लाभ देख, जगल मे स्रकेल ही रहना शरू किया। शीलवान्, सदाचारी होने के कारण, उसका नाम सीलव नागराज पड गया। (उस समय) बाराणसी-वासी एक बनचर, हिमालय प्रदेश में प्रवेश कर, अपनी आजीविका के लिए चीजे (=भाण्ड) खोज रहा था। दिशा भृम हो जाने से वह रास्ता भूल कर, मरने के भय से भयभीत हो बॉहों मे सिर दे रोता-काँदता फिरता था।

बोधिसत्त्व उसका रोना पीटना सुन, 'इस ब्रादमी को दुख से छुड़ाना चाहिए'—इस करुणा के भाव से प्रेरित हो, उसके पास गया। वह उसे देखते ही, उर के मारे भाग चला। बोधिसत्त्व उसे भागते देख, वही ठहर गया। वह ब्रादमी बोधिसत्त्व को रुका देख, खडा हो गया। बोधिसत्त्व फिर (ब्रागे) गया। वह (ब्रादमी) फिर भागा। उसके ठहरने पर, खडा होकर सोचने लगा—"यह हाथी, मेरे भागने पर खड़ा हो जाता है, खड़े होने पर ध्राता है, यह मुभे हानि नहीं पहुँचाना चाहता। यह मुभे, इस दुख से ही छडाना चाहता होगा।" (यह सोच) वह हिम्मत करके, खडा हो गया। बोधिसत्त्व ने उसके पास जाकर पूछा—'भो। पुरुष। तू किस लिए रोता फिर रहा है ?"

"स्वामी । दिशा-भ्रम हो जाने से, मार्ग भूल, मरने के भय से।"

बोधिसत्त्व उसे ग्रपने निवास-स्थान पर ले जा, कुछ दिन तक फल-मूल से सेवा कर 'भो पुरुष ! डर मत। में तुभे बस्ती ( = मनुष्य-पथ) में ले जाऊँगा' (कह) उसे ग्रपनी पीठ पर बिठा, बस्ती की ग्रोर ले चला। वह मित्र-द्रोही ग्रादमी 'यदि कोई पूछने वाला होगा तो बताना होगा' (सोच) बोधिसत्त्व की पीठ पर बैठा ही बैठा, वृक्षो की, पर्वतो की निशानी करता जाता था। बोधिसत्त्व ने उसे जगल से निकाल, बाराणसी को जाने वाले महामार्ग पर छोड़ कर कहा "भो । पुरुष इस रास्ते से चला जा। लेकिन मेरा निवास-स्थान, चाहे कोई पूछे, चाहे न पूछे, किसी को न कहना"। (यह कह) उसे बिदा कर, वह ग्रपने निवासस्थान पर चला ग्राया।

वह म्रादमी बाराणसी पहुँचा। घूमते हुए, हाथी-दाँत-बाजार मे शिल्पियों को हाथी-दाँत की चीजे बनाते देख कर उसने पूछा—'भो। यदि जीवित हाथी का दाँत मिले, तो क्या उसे भी खरीदोगे ?''

"भो । क्या कहते हो ? जीवित हाथी का दाँत, मृत हाथी के दाँत से ग्रिधिक मूल्यवान् होता है।"

"तो में जीवित हाथी का दॉत लाऊँगा" (कह) रास्ते के लिए ग्राव-इयक (खाने का) सामान तथा तेज ग्रारी लेकर, बोधिसत्त्व के निवास स्थान को गया। बोधिसत्त्व ने उसे देखकर पूछा—"किस लिए ग्राया है ?"

"स्वामी । में निर्धन हूँ, दरिद्र हूँ। जीने का उपाय नही। ग्राप के पास इसलिए ग्राया हूँ, कि यदि ग्राप दे, तो ग्राप से दन्त-खण्ड मॉग कर ले जाऊँ, ग्रौर उन्हें बेचकर, उस धन से निर्वाह करूँ।"

"ग्रच्छा । भो । मै तुभे दन्त-खण्ड दूँगा, यदि (तेरे पास) दाॅत काटने के लिए ग्रारी हो ।"

"स्वामी <sup>।</sup> मैं ग्रारी लेकर ग्राया हूँ"

"तो दाँतो को ग्रारी से काट कर ले जा।" वोधिसत्त्व पाँव को सुकेड कर, गौ की तरह बैठ गये। उसने, उस के दोनो ग्रगले दाँत काट लिए। बोधिसत्त्व ने उन दाँतो को सोण्ड मे ले, 'भो । पुरुष । मैं यह दाँत इसलिए नही दे रहा हूँ कि यह दाॅत मुफे अप्रिय हैं, अच्छे नहीं लगते; बल्कि, मुफे इनसे हजार दर्जे, लाख दर्जे प्रिय-तर हैं, सब धर्मों का बोध कराने वाले बुद्धत्व ज्ञान रूपी दाँत। सो मेरा यह दाॅतो का दान, बुद्धज्ञान के बोध का कारण हो।" इस प्रकार (उसने) बुद्ध-ज्ञान का ध्यान धर, वह दाँतो की जोडी दे दी।

वह उन्हें ले गया। उन्हें बेचकर, उस धन के खतम होने पर, फिर बोधि-सत्त्व के पास श्राकर बोला—'स्वामी! तुम्हारे उन दांतो को बेच कर में केवल श्रपना कर्जा उतार सका। शेष दांत भी दे दे।' बोधिसत्त्व ने 'श्रच्छा' कह स्वीकार कर, पहली ही तरह से कटवा कर, शेष दांत भी दे दिये। उसने उन्हें भी बेच कर फिर श्राकर कहा—'स्वामी! गुजारा नहीं चलता। मुफें मूल दाढे दे दे।" बोधिसत्त्व 'श्रच्छा' कह, पूर्व प्रकार से ही बैठ गये। वह पापी पुरुष, महासत्त्व की चांदी की माला सदृश सूण्ड को मरदन करते हुए, कैलाश कूट सदृश सिर (—कुम्भ) पर चढ कर, दोनो दांतो की पिक्तियों को एडी से प्रहार देते हुए, माँस को हटा कर, सिर पर चढ, तेज श्रारी से मूल दाढे काट कर ले गया।

उस पापी पुरुष के, बोधिसत्त्व की दृष्टि से ग्रोभल होते ही होते, दो लाख चालीस हजार योजन घनी पृथ्वी जो सुमेर, युगन्धर सदृश (पर्वतो) का महाभार, तथा मल-मूत्र ग्रादि घृणित दुर्गन्धियाँ उठा सकती है उसने भी, उस (की) दुर्गुणराशि को उठाने में ग्रसमर्थता प्रकट की, ग्रौर फटकर (उसे) विवर दे दिया। उसी समय ग्रवीची महानरक से ज्वाला ने निकलकर, उस ग्रादमी को, घर के कम्बल में लपेटने की तरह, घर कर (ग्रपने मे) ले लिया। इस प्रकार उस पापी पुरुष के पृथ्वी में प्रविष्ट होने के समय, उस जगल के ग्रधिकारी वृक्ष देवता ने, उस बन को उन्नादित करते हुए 'ग्रकृतज्ञ, मित्र द्रोही ग्रादमी को चन्नवर्ती राज्य देकर भी सन्तुष्ट नही किया जा सकता'—इस धर्म का उपदेश करके, यह गाथा कही—

श्रकतञ्जुस्स पोसस्स निच्चं विवरदस्सिनो, सब्बं चे पर्ठीव दज्जा नेव नं श्रभिराधये ॥

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> 'कुलसन्तकेन' तथा 'कुसलन्तकेन' दोनों पाठ सन्तोषजनक नहीं ।

[ श्रकृतज्ञ, सदा दोष ढूँढने वाले श्रादमी को सारी पृथ्वी देकर भी सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। ]

श्रकतञ्जुस्स, जो श्रपने पर किये उपकार को न जाने, पोसस्स, मनुष्य को, विवर दिस्सनो, जो छिद्ध — खाली जगह ही देखता रहे, छिद्रान्वेषी को। सब्बं चे पठिंव दब्जा, वैसे श्रादमी को यदि सारा चक्रवर्त्ती राज्य श्रथवा महापृथ्वी को पलट कर, इस पृथ्वी का सार भी दे दिया जाये, नेव नं श्रभि-राधये, ऐसा करने पर भी, इस प्रकार के श्रकृतज्ञ मनुष्य को कोई सन्तुष्ट वा प्रसन्न नहीं कर सकता।

इस प्रकार उस देवता ने उस वन को उन्नादित करते हुए धर्मोपदेश दिया। बोधिसत्त्व, जितनी म्रायु थी, उतने काल तक जीवित रह कर, कर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने 'भिक्षुग्रो! न केवल ग्रभी देवदत्त ग्रकृतज्ञ है, पहले भी ग्रकृतज्ञ रहा है' कह, इस धर्मदेशना को ला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का मित्रद्रोही ग्रादमी (ग्रब का) देवदत्त हुग्रा। वृक्ष देवता (ग्रब के) सारिप्त्र। सीलवनागराजा तो मैं ही था।

### ७३. सच्चंकिर जातक

"सच्चं किरेवमाहंसु..." यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन मे विहार करने के समय, बध करने के प्रयत्न के वारे मे कही।

# क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा मे बैठे भिक्ष् (-सघ) 'श्रावुसो । देवदत्त, शास्ता के गुणो को नही जानता, (श्रीर उनके) बध करने का ही प्रयत्न करता है' (कह) देवदत्त

के ग्रवगुण कह रहे थे। शास्ता ने ग्राकर, 'भिक्षुग्रो! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे' पूछ, 'यह बातचीत' कहने पर, 'भिक्षुग्रो! न केवल ग्रभी वेववत्त, मेरे बध का प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में, (राजा) अह्यवत्त के राज्य करने के समय, उसका दुष्टकुमार नाम का (एक) पुत्र था—परुष, कठोर, तथा ताडित-विषैले सर्प सदृश। वह बिना गाली दिये, बिना मारे किसी से बात ही न करता था। वह डरका कारण था और अन्दर बाहर के आदिमियों को वैसे ही अच्छा न लगता था, जैसे आँख में पड़ा हुआ रज-कण, अथवा खाने के लिए आया पिशाच। एक दिन जल-कीड़ा करने की इच्छा से, वह अनेक अनु-यायियों के साथ नदी के तट पर गया। उस समय जोर के बादल आये। चारों और अन्धकार छा गया। उसने नौकरो-चाकरों को कहा—'भणे! आओ। मुफे नदी के बीच में ले जाकर नहला लाओ।' वे उसे वहाँ ले जाकर, 'राजा हमारा क्या कर लेगा? हम इसे यही मार डाले' सलाह कर, 'चल रे मनहूस कही के' (करके) उसे पानी में डुबो, (अपने) ऊपर किनारे पर आखंड हुए। (लोगों के) 'कुमार कहाँ हैं?' पूछने पर, उत्तर दिया—''हम कुमार को नहीं देखते; बादल आया देख, पानी में डुबकी लगा (निकल कर) आगे चला आया होगा।"

श्रमात्य-जन राजा के पास गये। राजा ने पूछा—"मेरा पुत्र कहाँ है ?"

"देव । हमे मालूम नहीं, 'बादल श्राया देख, श्रागे श्रागे चला श्राया होगा' (सोच) हम चले श्राये।" राजा ने द्वार खुलवा, नदी के किनारे जा, 'खोज करो' कह, जहाँ तहाँ खोज करवाई। किसी ने कुमार को न देख पाया। उस काली बदली श्रौर वर्षा में, नदी में बहता एक लक्कड़ देख, वह उसपर बैठ, मरने से भयभीत हो रोता जा रहा था।

उस समय एक बाराणसी-निवासी सेठ, नदी के किनारे चालीस करोड धन गांड कर उस धन के लोभ से, (वही) उस धन के ऊपर, सर्प होकर उत्पन्न हुग्रा था। एक ग्रौर (सेठ) उसी प्रदेश में तीस करोड धन गांड कर, धन-तृष्णा के कारण, वहीं चूहा होकर उत्पन्न हुग्रा था। उनके निवास-स्थान में भी पानी ग्रा घुसा था; ग्रौर वे, जिस रस्ते से पानी ग्राया था, उसी रस्ते से निकल, (पानी की) धार को काट कर जिस लक्कड पर वह राज-कुमार बैठा था, उसी लक्कड पर पहुँच गये, ग्रौर उस लक्कड़ के एक सिरे पर एक, दूसरे सिरे पर दूसरा बैठ रहा। उसी नदी के किनारे एक सेमल वृक्ष था, जिसपर एक तोते का बच्चा रहता था। वह वृक्ष भी, पानी द्वारा जड उखड जाने से उसी नदी में गिर पडा। पानी के बरसते रहने के कारण, वह तोते का बच्चा भी न उड सकने से, उस लक्कड के ही एक ग्रोर जाकर लग रहा। इस प्रकार, वह चारो जने इकट़ठे बहते जा रहे थे।

बोधिसत्त्व भी उस समय काशी राष्ट्र के (एक), उदीच्च' ब्राह्मण-कुल में पैदा हो, बडे होने पर ऋषि प्रबच्या के अनुसार प्रबचित हुए थे, और नदी के मोड पर पर्णशाला बनाकर रहते थे। उसने आधी रात को टहलते समय, उस राजकुमार का जोर का रोने का शब्द सुना और सोचा—'मेरे सदृश मैंत्री और दया से युक्त तपरवी के देखते देखते इस पुरुष का मरना उचित नहीं। मैं पानी में कूद कर, इसे जीवन-दान दूँगा।' उसने 'डर मत। डर मत।' का आश्वासन दिया, और पानी के स्रोत को काटते हुए जा कर, उस लक्कड को एक सिरे से पकड, खेंचते हुए, हाथी सदृश बल से, एक ही भटके में किनारे पर पहुँचा दिया। फिर कुमार को उठाकर, किनारे पर बिठाया। पीछे सर्पादि को भी देख, उठाकर आश्रम में ले जा, उनके लिए आग जला दी। उसने 'यह सर्पआदि दुर्बल हैं' (करके) पहले उनके शरीर को सुखाया, पीछे राजकुमार के शरीर को सुखा, उसे भी आरोग्य प्रदान किया। (फिर) आहार देते समय भी, पहले सर्प आदि को ही देकर, पीछे उसके लिए फल-मूल लाकर दिये।

'यह कूट तपस्वी, मेरे राजकुमार होने का ख्याल न कर, इन पशुग्रो का सम्मान करता है' (सोच) राजकुमार, बोधिसत्त्व का वैरी वन गया। उसके

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> उविच्च = उत्तर के

कुछ दिन बाद, जब उन सब के शरीर में ताकत आ गई, और नदी की बाढ उतर गई, तो सर्प ने तपस्वी को प्रणाम करके कहा—''भन्ते । आपने मुफ पर बडा उपकार किया है। में दिरद्र नहीं हूँ। अमुक स्थान पर मेरा चालीस करोड (का) सोना गडा हुआ है। यदि आपको धन की आवश्यकता हो तो, में वह सब धन आपको दे सकता हूँ। उस स्थान पर आकर 'दी घं' कह कर पुकारना।" (कह) चला गया। चूहा भी, उसी प्रकार तपस्वी को निमन्त्रित कर 'अमुक स्थान पर खडे हो कर 'उन्दुर' कह कर पुकारनां कह चला गया। लेकिन तोते ने तपस्वी को प्रणाम कर कहा—''भन्ते । मेरे पास धन नहीं हैं। लेकिन यदि आप को रक्त वर्ण शाली (=धान) की आवश्यकता हो, तो में अमुक जगह रहता हूँ, वहाँ आकर 'सुवा' कहकर पुकारना। में अपने रिश्तेदारों को कह कर, अनेक गाड़ी रक्त-वर्ण शाली मँगा कर दे सकता हूँ।'' यह कह कर, वह भी चला गया। लेकिन वह जो मित्र ब्रोही बाकी रहा, उसने यथोचित कुछ भी न कह कर 'इसे अपने पास आने पर मरवाऊँगा' (सोच) कहा—''भन्ते । मेरे राजा होने पर, आप आना, में आप का चारो प्रत्ययों से सत्कार कहँगा।'' यह कह, (वह भी) चला गया।

वह जाकर, कुछ ही समय बाद, राजा हुग्रा। 'ग्रच्छा। परीक्षा कहूँ' (सोच) बोधिसत्त्व ने, पहले, सॉप के पास जाकर, नजदीक खड़े हो पुकारा—'दीर्घ।' उसने एक ग्रावाज पर ही निकल, बोधिसत्त्व को प्रणाम कर कहा—'भन्ते! इस जगह पर चालीस करोड (का) सोना है, वह सारा का सारा, निकाल कर ले ले।''

"श्रच्छा। ऐसे ही रहे। श्रावश्यकता पडने पर देखूँगा" (कह) उसे रोक, चूहे के पास जाकर श्रावाज दी। चूहे ने भी वैसे ही किया। बोधिसत्त्व ने, उसे भी रोक, तोते के पास जाकर 'सुवा।' करके श्रावाज दी। उसने एक ही श्रावाज में वृक्ष पर से उतर बोधिसत्त्व को प्रणाम करके पूछा—"भन्ते! क्या में श्रपने रिश्तेदारों को कह कर, हिमवन्त प्रदेश से श्रापके लिए, स्वयं उत्पन्न हुई शाली मँगवाऊँ?"

बोधिसत्त्व ने 'ग्रावश्यकता होने पर देखूँगा' (कह) उसे भी रोका। फिर 'ग्रब राजा की परीक्षा करूँगा' (सोच) जाकर, राजोद्यान में रह श्रगले दिन वस्त्र श्रादि ठीक-ठाक करके, भिक्षा माँगते हुए, नगर में प्रवेश किया। सच्चंकिर ] ४२३

उस समय, वह मित्र-द्रोही राजा, अलंकृत हाथी के कन्धे पर बैठ, अनेक अनुयायियों के साथ नगर की सैर कर रहा था। उसने दूर से ही बोधिसत्त्व को स्राते देख, 'यह कूट (==बनावटी) तपस्वी, मेरे पास, (मुफ़्त मे) खाते हुए, रहने के लिए श्रा रहा है। इससे पहले कि यह परिषद् मे, मुफ पर किये अपने उपकार को प्रगट करे, मुफे इसका सिर कटवा देना चाहिए' (सोच) श्रपने श्रादमियों की श्रोर देखा। ''देव! क्या करे ?''

वह बोला— "मालूम होता है, यह कूट तपस्वी मुक्त से कुछ मॉगने के लिए आ रहा है। इस कूट तपस्वी को मेरे सामने मत आने दो, और पकड़ कर, पीछे से बॉहे बॉध कर, चौरस्तो चौरस्तो पर प्रहार देते हुए, नगर से निकालो, तथा मारने के स्थान पर ले जा, इसका सिर काट, शरीर को शूल पर चढा दो।" उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और जाकर, निरपराध महात्मा को बाँध, चौरस्ते चौरस्ते पर मारते हुए, बध-स्थान की ओर ले जाना शुरू किया। बोधिसत्तव, जब जब मार पड़ती 'माँ, बाप' कुछ न चिल्ला कर, निर्विकार रह यह गाथा कहते—

सच्चं किरेवमाहंसु नरा एकच्चिया इघ, कट्ठं विप्लावितं सेय्यो नत्वेवेकच्चियो नरो॥

[ कुछ (बुद्धिमान्) स्रादिमयो ने सत्य ही कहा कि किन्ही किन्ही स्रादिमयों को पानी से निकालने की श्रपेक्षा, लकडी का निकालना ग्रच्छा है। ]

सच्चं किरेवमाहंसु, यथार्थं ही ऐसा कहते हैं। तरा एकिच्च्या इध, कुछ बुद्धिमान् आदमी। कट्ठं विष्लावितं सेय्यो, नदी में बहती जाती सूखी लकड़ी, जबारनी —िनकाल कर स्थल पर ला रखनी, श्रेय हैं, सुन्दर तर हैं, ऐसे कहने वाले वह आदमी सत्य ही कहते हैं। किस कारण से ? वह यवागु भात आदि पकाने के लिए, शीत से पीडित आदिमियों के तापने के लिए तथा औरो की भी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होती हैं।

नत्वेव एकिंचियो नरो, लेकिन किसी किसी मित्र-द्रोही, श्रकृतज्ञ, पापी श्रादमी को, बाढ में बहे जाते हुए, हाथ से पकड कर उवारना श्रच्छा नही; जैसे मैंने इस पापी श्रादमी को उवार कर, श्रपने ऊपर यह दुख ले लिया। इस प्रकार जब जब मार पडती तब तब यह गाथा कहता। यह सुन उनमें जो पण्डित म्रादमी थे, उन्होने पूछा—"भो ! प्रव्नजित ! क्या तूने हमारे राजा का कोई उपकार किया है ?"

बोधिसत्तव ने वह हाल सुना कर कहा—'सो ! इसे बाढ से निकाल कर, मैने स्वय ही अपने लिए दुख लिया। मैने पुराने बुद्धिमान् श्रादिमियों के कथनानुकूल अन्वरण नहीं किया' याद कर यह (गाथा) कहता हूँ। उसे सुन क्षत्रिय ब्राह्मण ग्रादि नगर निवासियों ने सोचा—''यह मित्र-द्रोही राजा, इस प्रकार के गुणवान्, अपने को प्राणदान देने वाले व्यक्ति का, उपकार मात्र भी नहीं जानता; इसके कारण हमारी क्या उन्नति होगी ?' (यह सोच) 'उसे घरो' कह, कोध में चारों श्रोर से उठ खडे हुए श्रौर उन्होंने तीर, शक्ति, पत्थर, मुद्गर ग्रादि के प्रहार से, हाथी के कन्धे पर बैठे उसे, मार पकड़, पैरों से घसीट, खाई के ऊपर डाल दिया। (फिर) बोधिसत्त्व का श्रभिषेक कर, उसे राजा बना लिया।

उसने धर्मानुसार राज्य करते हुए, फिर एक दिन सर्प स्रादि की परीक्षा करने के विचार से, बहुत से अनुयायियों के साथ, सर्प के निवास स्थान पर जा कर ग्रावाज दी-"दीर्घ!" सर्प ने ग्राकर, प्रणाम कर कहा-"स्वामी यह तुम्हारा धन है, लो।" राजा ने चालीस करोड (का) सोना अमात्यो को सौंप कर, चूहे के पास जा 'उन्दूर ।' कह स्रावाज दी। उसने भी श्राकर, प्रणाम कर, तीस करोड धन लाकर दिया। राजा ने वह भी भ्रमात्यों को सौप, तोते के निवास स्थान पर जा, 'सुवा' कह आवाज दी। उसने भी आकर, चरणो मे प्रणाम कर पूछा—"स्वामी । क्या शाली मँगवाऊँ ?" राजा 'शाली की आवश्यकता होने पर, मँगवाना, आस्रो चले' कह, सत्तर करोड़ (के) सोने के साथ, उन तीनों जनो को लिवा कर, नगर मे पहेँचा; श्रौर श्रेष्ठ प्रासाद के महातल पर चढ, धन को सूरक्षित रखवा, सर्प के रहने के लिए एक सोने की नाली, चुहे के लिए स्फटिक की गुफा और तोते के लिए सोने का पिजरा बनवाया। वह सर्प ग्रौर तोते के भोजन के लिए प्रतिदिन, सोने की थाली में, मीठे खील, ग्रौर चुहे के लिए सुगन्धित धान्य के तण्डुल दिल-वाता तथा दान श्रादि पुण्य करता था। इस प्रकार वह चारो जने, श्रायु रहते, मिल जुलकर प्रसन्नता पूर्वक रहे; भ्रायु के अन्त मे यथा कर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी देवदत्त मेरे बंध करने के लिए प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया है' कह, यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाला। उस समय का दुष्ट राजा (ग्रब का) देवदत्त था। सर्प (ग्रब का) सारिपुत्र था। चूहा (ग्रब का) मौद्गल्यायन था। तोता (ग्रब का) ग्रानन्द था। राज्य-प्राप्त धर्म-राजा तो में ही था।

#### ७४. रुक्खधम्म जातक

"साधु सम्बहुला आति..." शास्ता जेतवन मे विहार करते थे; उस समय आति वालो (शाक्य ग्रौर कोलियो) का पानी के लिए भगडा हो गया। भगवान् उनका महाविनाश समीप ग्राया जान, ग्राकाश-मार्ग से जाकर, रोहिणी नदी के ऊपर पालथी मार कर बैठे ग्रौर (शरीर से) नीली रिश्मयाँ फैलाते आति वालों को चिकत कर, ग्राकाश से उतर ग्राये। फिर नदी के किनारे बैठ कर उन्होने उस भगडे के बारे मे उक्त गाथा कही। यह, यहाँ पर सक्षेप हैं, विस्तार कुणाल जातक में ग्रायेगा।

### क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने (श्रपने) जातियों को सम्योधित कर, "महाराजास्रों ! तुम परस्पर नातेदार हो। नातेदारों को श्रापस में मिल कर, प्रसन्नता-पूर्वक रहना चाहिए। जातियों की परस्पर एकता रहने से, शत्रुद्यों को मौका नहीं मिलता। मनुष्यों की बात रहने दो, श्रचेतन वृक्षों को भी परस्पर एकता से रहने की जरूरत हैं। पूर्व समय में हिमवन्त प्रदेश में शालवन पर महा-वायु

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातक ४३६

(=-ग्रॉघी) ने ग्राक्रमण किया। लेकिन उस शालवन के वृक्ष-गाछ-गुम्फ लता ग्रादि के एक दूसरे से सम्बद्ध रहने के कारण, वह एक वृक्ष को भी न गिरा सका ग्रौर, ऊपर ही ऊपर चला गया। लेकिन उसने मैदान में खड़े (एक) शाखा-टहनी ग्रादि से युक्त महा-वृक्ष को, दूसरे वृक्षो से ग्रसम्बद्ध होने के कारण, समूल उखाड कर जमीन पर गिरा दिया। इस वजह से तुम्हे भी मिल जुल कर, प्रसन्नता पूर्वक रहना चाहिए' कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही-

#### ख. अतीत कथा

पूर्वं समय मे बाराणसी मे (राजा) बहादत्त के राज्य करने के समय, पहले का कुबेर-राजा मर गया। शक्त (==इन्द्र) ने दूसरा कुबेर स्थापित कर दिया। इस (पहले के) कुबेर के स्थानापन्न होने पर, पीछे के कुबेर ने सब दृक्ष-गाछ-गुम्फ लता श्रादि को सदेश भेजा कि वह जहाँ जहाँ श्रच्छा लगे, वहाँ वहाँ श्रपना श्रपना निवासस्थान ग्रहण कर ले।

उस समय बोधिसत्त्व, हिमवन्त प्रदेश के एक शालवन में वृक्ष-देवता होकर, उत्पन्न हुए थे। उन्होने अपने जातियों को कहा—"तुम विमान (=वासस्थान) ग्रहण करते हुए, मैदान में (ग्रकेले) खडें वृक्षों पर, विमान न ग्रहण करों। इस शालवन में, जहाँ में विमान ग्रहण करूँ, उसके इर्द-गिर्द ही (तुम) विमान ग्रहण करों।" सो, बोधिसत्त्व की बात मानने वाले पण्डित (=बुद्धिमान्) देवताग्रों ने, बोधिसत्त्व के विमान को घर कर ही, विमान ग्रहण किये। लेकिन मूखों ने सोचा—"हमें जंगल में विमान ग्रहण करने से क्या लाभ हम ग्राबादी में, ग्राम-निगम-राजधानियों के द्वारों पर विमानों को ग्रहण करेंगे। ग्राम ग्रादि के पास रहने वाले देवताग्रों को लाभ तथा यश की प्राप्ति होती हैं।" (यह सोच) उन्होने ग्राबादी में खुले स्थानों में उगे महावृक्षों पर विमान ग्रहण किये।

एक दिन बड़ा ग्रांधी-पानी श्राया। हवा के बड़ी तेज होने से, जमी हुई जड़ वाले, जंगल के पुराने वृक्ष भी टहनी टूट, समूल गिर पड़े। लेकिन, एक दूसरे के श्राश्रित खड़े शालवन को इधर उघर से प्रहार देकर भी (श्रांधी) एक भी वृक्ष न गिरा सकी। जिनके विमान टूट गये, उन देवताग्रो ने, श्राश्रय-

रुक्लधम्म ] ४२७

रिहत हो, बच्चो को हाथ में ले, हिमवन्त जा कर, शालवन के देवताग्रों को अपना हाल कहा। उन्होंने उनका आना, बोधिसत्त्व से कहा। बोधिसत्त्व ने 'पण्डितो की बात न मान, अविश्वस्त स्थान पर जाने वालो का यही हाल होता है' कह, धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

#### साधु सम्बहुला जाती भ्रपि रुक्खा श्ररञ्जजा, वातो वहति एकट्ठं ब्रहन्तम्पि वनस्पति ॥

[बातियो का सिम्मिलित रहना श्रेयस्कर है, ग्ररण्य मे उत्पन्न होने वाले वृक्षों तक का भी। क्योकि महा-वृक्ष तक को ग्रकेले खडे होने पर, हवा उडा ले जाती है।]

सम्बहुला आती, चार से ऊपर ... एक लाख तक भी आती (=नाते दार) सम्बहुला ही (कहलाते हैं)। इस प्रकार सम्बहुला का ग्रथं है, एक दूसरे के ग्राश्रित बसे हुए आतिगण। साथु = शोभायमान = प्रशसित; मतलब, दूसरो से ग्रनिन्दित। श्रिप रुक्खा श्ररञ्ज्ञजा, मनुष्यो की बात रहे, जगल में उत्पन्न हुए वृक्ष भी, एक दूसरे के ग्राश्रय से ही ग्रच्छी तरह खड़े रहते हैं। वृक्षो के लिए भी विश्वस्तता ग्रावश्यक है। वातो वहति एकटठं, पूर्वा ग्रादि हवा चलने पर, मैदान में स्थित एकटठं, (=ग्रकेले खड़े) बहन्तिम्य वनस्पीत, शाखा-टहनी से युक्त महावृक्ष को भी, उडा ले जाती हैं; उखाड़ कर गिरा देती हैं।

बोधिसत्व यह बात कह, श्रायु क्षय होने पर, कर्मानुसार, परलोक गये। शास्ता ने भी, 'महाराजाश्रो! इस प्रकार बातियो को मिलकर ही रहना चाहिए। सो, श्राप, मेल से, प्रसन्नचित्त, खुशी से रहे।'—यह धर्म-देशना ला, जातक का साराश निकाल दिया।

उस समय के देवता (श्रव की) बुद्ध परिषद् हुई। लेकिन पण्डित-देवता में ही था।

#### ७५. मच्छ जातक

"ग्रिभित्थनय पज्जुञ्च..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, श्रपनी बरसाई हुई वर्षा के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

एक समय कोसल देश में वर्षा न बरसी। खेतियाँ कुम्हला गईं। जहाँ तहाँ स्थित तालाब, पुष्करणियाँ सूख गईं। जेतवन के फाटक (द्वार-कोट्ठ) के पास की जेतवन पुष्करिणी का पानी भी छीज गया। कौए चील म्रादि (पक्षी) गहरे कीचड में जाकर पडे हुए मछली, कछुम्रों को तीर की नोक जैसी म्रपनी तीखी चोंच से मार मार कर, ले जाकर, चिल्लाते हुए खाने लगे। मछली कछुम्रों के उस दु ख को देख, महाकरुणा से बुद्ध का हृदय द्रवीभूत हो गया, भौर वह सोचने लगे—"म्राज मुक्ते वर्षा बरसानी चाहिए।" (यह सोच) रात्रि के प्रभात होने पर, उन्होंने शारीरिक कृत्य समाप्त किया। भिक्षा-चार के समय का ख्याल कर, महान् भिक्षु-सघ को साथ ले, बुद्ध-लीला से उन्होंने भावस्तों में भिक्षाटनके लिए प्रवेश किया। भिक्षाटन कर भोजन से निवृत्त हो लौट, भावस्तों से बिहार को जाते हुए जेतवन-पुष्करिणी की सीढ़ी पर खडे हो कर मानव्द स्थिवर को म्रामन्त्रित किया—"म्रानन्द । नहाने का वस्त्र ले म्रा। जेतवन पुष्करिणी में नहाऊँगा।"

"भन्ते! क्या जेतवन-पुष्करिणी मे पानी खतम नही हो गया? क्या केवल कीचड बाकी नही रह गया?"

"ग्रानन्द! बुद्ध-बल महान् बल है। जा, तू नहाने का वस्त्र ले ग्रा।" स्थिवर ने (कपडा) लाकर दिया। शास्ता (वस्त्र के) एक सिरे को (कघे पर) रख, दूसरे सिरे को बदन पर पहन जेतवन-पुष्करिणी में नहाने की इच्छा से सीढी पर खड़े हुए।

उसी समय शक्त का पाण्डु कम्बल शिलासन गर्म हुग्रा। उसने 'क्या कारण हैं?' सोचते हुए उस कारण को जान प्रजुण्ह' (=वर्षा के वादलों के देवता) देवपुत्र को बुलवा कर कहा—"तात। शास्ता जेतवन-पुष्किरिणी में स्नान की इच्छा से सबसे ऊपर की सीढी पर खड़े हैं। तू, जल्दी से वर्षा बरसा कर, सारे कोसल देश को जलमय कर दे।" वह 'प्रच्छा' कह स्वीकार कर, एक बादल को (कंधे पर) रख, एक बादल को पहन, मेघ-गीत गाते हुए, पूर्व दिशा में जा कूदा। पूर्व दिशा में उसने खिलयान जितना (वडा) एक बादल का दुकड़ा उठाया; फिर उसे सैंकडो गुणा, सहस्र गुणा कर, फैला,बिजली चम-काते हुए, नीचे मुँह करके रक्खे घड़े की तरह, बरसते हुए, सारे कोसल राष्ट्र को, समुद्र की तरह पानी से सराबोर कर दिया। देव ने मूसलाधार बरसते हुए, जरा ही देर में जेतवन की पुष्किरणी को भर दिया। पानी, ऊपर की सीढी तक चला श्राया।

शास्ता पुष्करिणी में स्नान कर, रक्त-वर्ण वस्त्र धारण कर, कमर-पट्टी (=काय-बन्धन,) बाँध, सुगत का महाचीवर एक कधे पर रख, भिक्षुसघ सहित गन्धकुटी परिवेण में गये, श्रौर श्रेष्ठ, बिछे, बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुसघ के श्रपना श्रपना सम्मान प्रदिश्त करने पर, उठ, मणिमय सीढों के फट्टे पर खडे हो, भिक्षुसंघ को उपदेश दिया, उत्साहित किया; फिर सुगन्धित गन्ध-कुटी में चले गये। वहाँ, दक्षिण पासे पर, सिंह-शय्या से शयन करके, शाम को धर्म सभा में एकत्रित हुए भिक्षुग्रों के, 'ग्रावुसो! दश-बल की क्षान्ति, मैत्री तथा दया (रूपी) सम्पत्ति को देखो। श्रनेक खेतों के कुम्हलाने पर, नाना जलाशयों के सूख जाने पर, मछलियो-कछुग्रों के ग्रत्यन्त दुख पाने पर, वह करणा से प्रेरित हो जन(-समूह) को दुख से मुक्त करने की उच्छा से स्नान-वस्त्र ले, जेतवन की पुष्करिणी की सब से ऊपर की सीढी पर खडे हुए श्रौर जरा सी देर में, सारे कोसल देश को महा समुद्ध में डबोते हुए की तरह वर्षा बरसा कर, जन(-समूह) को शारीरिक तथा मानसिक दुख से मुक्त कर, बिहार में प्रवेश किया'—यह कथा, कहते समय, (भगवान

१ पर्जन्य देवता

४३० [ १.५.७५

ने) गन्धकुटी से निकल, धर्म सभा मे स्राकर पूछा— "भिक्षुस्रो! इस समय, बैठे क्या बातचीत कर रहे थे?"

"यह कथा," कहने पर (शास्ता ने) "भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी तथागत ने जन-(समूह) को दुख पाते देख वर्षा बरसाई। पहले पशु योनि मे उत्पन्न हो, मत्स्य-राजा रहने के समय भी वर्षा बरसाई थी" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. ऋतीत कथा

पूर्व समय में इसी कोसल देश में, इसी श्रावस्ती में, इसी जेतवन पुष्करिणी की जगह, घनी लताग्रो से घिरी हुई एक कन्दरा थी। उस समय बोधिसत्व मछली की योनि में उत्पन्न हो, मछली गण से घिरे हुए वही रहते थे। जैसे ग्रव, इसी प्रकार उस समय भी, देश में वर्षा नहीं हुई। मनुष्यों के खेत कुम्हला गये। वापी ग्रादि में पानी सूख गया। मछली-कछूवे गाढे कीचड में घुस गये। इस कन्दरा की मछलियाँ भी, गहरे कीचड में घुस जहाँ तहाँ छिप गईं। कौवे श्रादि, चोच से उन्हें मार मार कर, ले जा कर खाने लगे।

बोधिसत्व ने जाति-संघ ( = भाई बिरादर) का दुख देख, सोचा — "मुफे छोड, श्रौर कोई इन्हे दुख से मुक्त नहीं कर सकता। सो, में सच्च-किरिया कर, देव ( = वर्षा) को बरसा, जातियों को मृत्यू-दु.ख से मुक्त करूँगा।" (यह सोच) काले काले कीचड को बीच में से फाड, (बाहर) निकल, (उस) सुरमें के रंग के महामत्स्य ने स्वच्छ रक्तवर्ण मणि जैसी श्राँखों को खोल, श्राकाश की श्रोर देख, पर्जन्य देवपुत्र देवेन्द्र को श्रावाज दी, "भो। पर्जन्य में (श्रपने) भाई-बिरादरों के कारण दुखी हूँ। तू मेरे (सदृश) सदाचारी के दुख पाते हुए भी, किस लिए वर्षा नहीं बरसाता है। में ने श्रापस में एक दूसरे को खानेवाली योनि में उत्पन्न होकर भी, चावल भर माँस तक नहीं खाया, श्रौर भी मैं ने किसी प्राणी की हिंसा नहीं की। (मेरे इस) सत्य (-बल) से, वर्षा बरसा कर, मेरे भाई-बिरादरी को दुख से मुक्त कर"

<sup>&#</sup>x27;ग्रपने सचाई की शपथ खाकर किसी की हितकाप्रना करना।

कह, (ग्रपने) सेवक को ग्राज्ञा देने की तरह ग्राज्ञा देते हुए पर्जन्य देवपुत्र को सम्बोधित कर यह गाथा कही—

> म्रभित्थनय पज्जुन्न ! निधि काकस्स नासय, काकं सोकाय रन्धेहि मञ्च सोका पमोचय।।

[पर्जन्य ! गर्ज, कौग्रो की निधि का नाश कर, कौग्रो को शोक में लपेट श्रौर मुभ्ते शोक से मुक्त कर।]

श्रभित्थनय पञ्जूझ, 'पञ्जूझ' कहते हैं मेघ को। मेघ होने से, बरसने वाले बादलो के देवता को इस नाम से सम्बोधित किया गया है। यही इसका ग्रभिप्राय है। विना गरजे, बिना बिजली चमकाये, केवल बरसने से 'देव' नाम शोभा नहीं देता, इस लिए तू गरजते हुए, बिजली चमकाते हुए बरस। निधि काकस्स नासय, कौऐ, कीचड मे पडी हुई मछलियो को मार मार ले जाकर खाते हैं, इस लिए कीचड में पड़ी मछलियों को उन (कौग्रो) की निधि (=खजाना) कहा गया है। उस कौस्रो की निधि को वर्षा बरसा कर, पानी से ढक कर, नाश कर । काकं सोकाय रन्धेहि, काक-सम्ह, इस कन्दरा के पानी से भर जाने पर, मछलियों के न मिलने से शोक को प्राप्त होगा। सो, त इस कन्दरा को पानी से भर कर, काक-सघ को शोक मे लपेट, शोक-प्राप्त कर। अर्थात जैसे (वे) भीतर जला देने वाले शोक को प्राप्त हो, वैसा कर। मञ्च सोका पमोचय, यहाँ 'च' जोड़ने के लिए है, सो मुक्ते ग्रौर मेरे भाई-बिरादरी को इस मृत्यु-भय से मुक्त कर। इस प्रकार बोधिसत्व ने (अपने) सेवक को ब्राज्ञा देने की भाँति, पर्जन्य को कह, सारे कोसल देश मे भारी वर्षा बरसवा, जन (-समृह) को मृत्य-भय से मक्त किया, श्रौर श्राय ( =जीवन) की समाप्ति पर वह यथा-कर्म (परलोक को) गये।

शास्ता ने, 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी तथागत ने वर्षा बरसाई है, पूर्व समय में मत्स्य योनि में उत्पन्न होकर भी बरसाई थी' कह, इस धर्मदेशना को ला कर, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया।

उस समय की मत्स्य-मण्डली (अब की) बुद्ध-परिपद् थी। पर्जन्य देवता (अब के) स्नानन्द स्थविर थे। मत्स्य-राज तो में ही था।

**१.**द.७६

#### ७६. श्रमंकिय जातक

श्रसंकियोम्हि गामिम्ह" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक श्रावस्ती वासी उपासक के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

वह (उपासक) स्रोतापन्न, ग्रार्यश्रावक था। (एक बार) बैल गाड़ियों के बजारों (शकट-सार्त्थवाह) के साथ वह यात्रा कर रहा था। उस समय, जगल में बैलों को खोल, तम्बू लगाने पर, वह, कारवाँ से कुछ दूर, एक वृक्ष के नीचे टहलने लगा। ग्रपना मौका देख, पाँच सौ चोरों ने पडाव को लूटने की इच्छा से, धनुष, मुद्गर ग्रादि (शस्त्र) हाथ में ले, उस स्थान को घेर लिया। उपासक भी टहल रहा था। चोरों ने उसे देख, सोचा— "यह, ग्रवश्य पडाव का पहरेदार होगा। इस के सोने पर लूटेगे।" (यह सोच) वह लूटने का मौका न पाते हुए जहाँ तहाँ खड़े रहे। वह उपासक, प्रथम याम (=पहर) मे, मध्यम याम मे, तथा ग्राखिरी याम में भी टहलता ही रहा। प्रातः हो जाने से, चोर मौका न पा, हाथ में के पत्थर, मुद्गर ग्रादि को छोड भाग गये। उपासक ने ग्रपना काम समाप्त कर, फिर श्रावस्ती लौटकर, शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! क्या ग्रपनी रक्षा करने वाले दूसरों के (भी) रक्षक होते हैं?"

"उपासक । हाँ । भ्रपनी रक्षा करने वाला, दूसरो की रक्षा करता है, दूसरो की रक्षा करने वाला, भ्रपनी रक्षा करता है।'

उसने कहा—"भन्ते । ग्राप का कथन ठीक है। मैं ने एक काफले के साथ रास्ता चलते, वृक्ष के नीचे टहलते हुए, ग्रपनी रक्षा करने के विचार से सारे कारवा की रक्षा की।"

श्रसंकिय ] ४३३

शास्ता ने, "उपासक पूर्व समय मे भी, श्रपनी रक्षा करते हुए पण्डितो ने, दूसरो की रक्षा की है" कह, उसके प्रार्थना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व बाह्मण-कुल में उत्पन्न हुए। जवान होने पर, काम-भोग (के जीवन) मे दोष देख ऋषी-प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो वह हिमालय चले गये। वहाँ से खट्टा-नमकीन सेवन करने के लिए बस्ती मे स्राये, श्रौर बस्ती मे विचरते, एक कारवाँ के साथ साथ मार्ग चलने लगे। कारवाँ के, एक जगल मे पडाव डालने पर, वह, कारवा के समीप, एक वक्ष के नीचे ध्यान-सुख मे समय बिताते हुए टहलने लगे। सो शाम का भोजन खा चकने के समय. पाँच सौ चोरो ने उस कारवाँ को लुटने की इच्छा से आकर घेर लिया। उस तपस्वी को टहलते देख कर, उन्होने सोचा-"यदि यह हमे देख लेगा, तो कारवाँ को कह देगा। सो इसके सोने के समय लुटेगे।" (यह सोच) वह वही खड़े रहे। तपस्वी सारी रात टहलता ही रहा। चोर मौका न मिलने पर, हाथ मे के मुद्गर, पाषाण म्रादि को छोड, चले गये; ग्रौर जाते जाते कह गये-- "ग्री । काफले वालो । यदि ग्राज यह वक्ष के नीचे टहलने वाला तपस्वी न रहता, तो (तुम) सब लूट लिये जाते। कल, तपस्वी का महान् सत्कार करना।" उन्होंने रात के बाद प्रभात होने पर, चोरो के छोड़े हए मुद्गर, पाषाण आदि देख, भयभीत हो, बोधिसत्व के पास जा, प्रणाम कर, पूछा-"भन्ते । ग्रापने चोरो को देखा?"

"हाँ <sup>।</sup> ग्रावुसो <sup>।</sup> देखा ।"

"भन्ते! इतने चोरो को देख कर, भय या डर नहीं लगा ?"

बोधिसत्व ने कहा—"ग्रावुसो । धनी (ग्रादमी ) को चोरो से भय होता है। में निर्धन हूँ। सो, में किस लिए डक्रँगा ? मुफ्ते, गाँव में रहते हुए, वा जगल मे रहते हुए न कोई भय है, न डर है।" यह कह, उन्हें धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

### ग्रसङ्कियोम्हि गामिन्ह ग्ररञ्जे नित्य में भयं , उजुमग्गं समारूळ्हो मेत्ताय करुणाय च ॥

[मै ग्राम मे भय रहित हूँ, जगल मे मुक्ते भय नही है। मै मैत्री श्रौर करुणा से युक्त, सीधे मार्ग का पथिक हूँ।]

ग्रसिङ्क्रयोम्हि गामिन्ह, शंका में नियुक्त, प्रतिष्ठित, =शका-युक्त (=सिङ्क्रयो); न सिङ्क्रयो =ग्राशङ्का-रिहत (=ग्रसिङ्क्रयो)'; में ग्राम में रहता हुग्रा भी शङ्का में ग्रप्रतिष्ठित होने से, ग्राशङ्का-रिहत (ग्रसिङ्क्रयो) निर्भय, निःशङ्का हूँ। ग्ररञ्जे ग्रामोपचार से रिहत स्थान में (=जगल में)। उजुमगं समारूळ्हो मेत्ताय करुणाय च; में तृतीय, चतुर्थ ध्यान सम्बन्धी मैंत्री, करुणा से युक्त, तथा शारीरिक कुकर्म से विरिहत, ऋजु, सीधे, ब्रह्मलोक के मार्ग पर ग्रारूढ हूँ। ग्रथवा शील शुद्ध होने से, शारिरीक, वाचिक तथा मानिसक टेढेपन से रिहत, ऋजु, देवलोक-गामी मार्ग पर ग्रारूढ हूँ। ग्रौर भी, मैत्री तथा करुणा में प्रतिष्ठित होने से ऋजु, ब्रह्मलोक गामी मार्ग पर ग्रारूढ हूँ। ध्यान-प्राप्त (मनुष्य) के निश्चय-पूर्वक ब्रह्मलोक गामी होने के कारण, मैत्री करुणा ग्रादि को ऋजु-मार्ग कहा गया है।

इस प्रकार बोधिसत्व ने इस गाथा से धर्मोपदेश कर, उन संतुष्ट-चित्त मनुष्यो से सत्कृत हो, पूजित हो, ग्रायु रहते चारो ब्रह्म-बिहारो की भावना कर, ब्रह्मलोक मे जन्म लिया।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के कारवाँ-वाले ग्रब की बुद्ध-परिषद् थे। लेकिन तपस्वी में ही था।

महासुपिन ] ४३५

### ७७. महासुपिन जातक

लापूनि सीदन्ति..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, सोलह महास्वप्नो के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

एक दिन कोसल महाराजा ने सोते समय, (रात्रि के) स्राखिरी पहर में सोलह महास्वप्न देखे, जिनसे भय-भीत, चिकत, हो जागकर, 'इन स्वप्नो को देखने के कारण मुभ्ते क्या (भुगतना) होगा ?' (सोच), मृत्यु-भय से डर कर शय्या पर बैठे ही बैठे (रात्रि) बिताई। रात्रि का प्रभात होने पर, ब्राह्मण पुरोहितों ने उन के पास स्राकर पूछा—"महाराज! सुख से तो सोये ?"

"ग्राचार्यों । मुफ्ते, सुख कहाँ । ग्राज प्रात काल, में ने सोलह महा-स्वप्न देखे। उनके देखने के समय से, में भय-भीत हूँ। ग्राचार्यों । (कुछ) कहो।" उनके '(स्वप्नो को) सुनकर, बतलायेगे' कहने पर, राजा ने उन देखे स्वप्नो को कह, पूछा—'इन स्वप्नो को देखने के कारण मुफ्ते क्या (भुगतना) होगा?"

ब्राह्मणो ने हाथ मले।

"ग्राप किसलिए हाथ मल रहे हैं ?"

"महाराज <sup>।</sup> स्वप्न ग्रच्छे नही।"

"तो इनका क्या फल होगा ?"

"राज्य को खतरा, जीवन का खतरा तथा भोग-सम्पत्ति का खतरा— इन तीन खतरो में से कोई एक होगा।"

"यह स्वप्न स-उपाय (=सपटिकम्म) है, ग्रथवा निरुपाय?" "यद्यपि ग्रपनी कठोरता के कारण, यह (स्वप्न) निरुपाय हैं, तो भी हम इनका उपाय करेगे, यदि हम इनका कुछ उपाय न कर सके, तो हमारी विद्या किस काम ग्रायेगी ?"

"इनका उपाय कैसे करोगे ?"

"महाराज! चारो (चीजो) से यज्ञ करेगे।"

राजा बोला—"ग्रच्छा! तो ग्राचार्य्यों, मेरा जीवन तुम्हारे हाथ मे हैं, शीघ्र ही मुभे निरुपद्रव (=स्वस्थ) करो।"

'बहुत घन मिलेगा, बहुत खाद्य-भोज्य ले जायेगे' सोच प्रसन्न चित्त हो ब्राह्मण, 'महाराज! चिन्ता न करे' कह, राजा को ग्राश्वासन दे, राज-भवन से निकले। उन्होंने नगर के बाहर यज्ञ-कुण्ड बनवा, बहुत से पशुग्रो को यज्ञ-यूप से बँधवाया; (तथा) पक्षी-गणो को मँगवा, 'यह चाहिए, यह चाहिए, करके बार बार, ग्रावा जाही करने लगे। मिल्लका देवी ने उस बात को जान, राजा के पास जाकर पूछा——''महाराज न ब्राह्मण किस लिए ग्रावा जाही कर रहे हैं?''

"तू (ग्रपने) सुख से हैं। हमारे कान के पास विषैला सर्प घूम रहा है, सो भी नही जानती।"

"महाराज । यह क्या ?"

"मैंने ऐसा दुस्स्वप्न देखा है, ब्राह्मणो का कहना है कि तीन खतरों में से एक खतरा दिखाई देता है, सो 'उसे रोकने के लिए यज्ञ करेगे' (करके) वह बारबार ग्रावा जाही कर रहे हैं।"

"महाराज! क्या आपने देवताओं सिंहत सारे लोक में अग्र-ब्राह्मण से स्वप्न का प्रतिकार पूछा?"

"भद्रे। देवतास्रो सहित सारे लोक मे यह स्रग्र-ब्राह्मण कौन है?"

"देवता सहित सारे लोक मे, पुरुषोत्तम, सर्वज्ञ, विशुद्ध, क्लेश (= (=विकार)-रहित महा-ब्राह्मण को तुम नहीं जानते ? महाराज ! जाग्रो, वह भगवान स्वप्नो के भेद को जानते हैं, उन्हें पूछो।"

"देवी ! श्रच्छा" कह, राजा, बिहार जा, शास्ता को प्रणाम करके बैठा।

शास्ता ने मधुरवाणी से पूछा—"क्यो महाराज! श्राज कैसे सवेरे ही श्राये?"

महासुपिन ] ४३७

"भन्ते! मैंने आज ही तडके ही, सोलह महास्वप्न देखकर, भय-भीत हो ब्राह्मणो से पूछा।" 'महाराजा! स्वप्न, अशुभ (=कक्खल) है, इनके प्रतिघात के लिए, चारो (चीजो) से यज्ञ करेगे' (करके) वह यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं, बहुत से प्राणी मरने के भय से भयभीत हैं। आप देवताओ सहित सारे लोक में सर्वश्लेष्ठ पुष्ण है। अतीत-भविष्य-वर्त्तमान, कोई ऐसी बात नहीं हैं, जो आपके ज्ञान से अगोचर हो। भगवान्! मुभे इन स्वप्नो का फल कहे।"

"महाराज! ऐसा ही है, मुभे छोड, देवताग्रो सहित सारे लोक में कोई भी, इन स्वप्नो का भेद या फल नहीं जान सकता। में तुभे बताऊँगा, लेकिन, (पहले) तू जैसे देखा है, वैसा ही, उन स्वप्नो को बयान कर।" 'भन्ते। ग्रन्छा' कह, राजा ने जैसे जैसे देखा था, वैसे ही कहते हुए, इस प्रकार कहा—

उसभा रुक्खा गावियो गवा च श्रस्सो कंसो सिगाली च कुम्भो पोक्खरणी च श्रपाकचन्दनं लापूनि सीदन्ति सिला प्लवन्ति मण्डूकियो कण्हसप्पे गिलन्ति; काकं सुवण्णा परिवारयन्ति तसावका एळकानं भया हि ॥

[ साँड, वृक्ष, गौवे, बैल, घोडा, काँसा, स्यारी, घडा, पुष्करिणी, अपक्व चन्दन, तूँबे डूबते हैं, शिलाये तैरती हैं, मेडिकयाँ काले सर्पों को निगलती हैं, राज-हस कौस्रो के पीछे चलते हैं, भेडिए बकरियो से डरते हैं।]

"कैसे ? भन्ते। एक स्वप्न तो ऐसे देखा—सुरमे जैसे काले चार साँड ( = लडने की इच्छा से चारों दिशाग्रों से राजाङ्गण में ग्राये। बैलों की लडाई देखने की इच्छा से, जन-समूह) के एकत्रित होने पर, लड़ने का ढग दिखा, नादकर, गर्जना कर, बिना लडे ही वह वापिस लौट गये। यह स्वप्न देखा। इसका क्या फल है ?"

"महाराज ! इस स्वप्न का फल न तेरे समय में होगा, न मेरे समय में, किन्तु भविष्य में श्रधार्मिक, कजूस राजाओं तथा श्रधार्मिक मनुष्यों के समय में

(होगा)। लोक के बदलने पर, धर्म के घटने पर, ग्रधमें के बढने पर, लोक की श्रवनित होने के समय, ग्रच्छी तरह वर्षा नहीं बरसेगी, वादल फट जायेंगे, खेत कुम्हला जायेगे, ग्रकाल पड़ेगा। बादल, जैसे बरसने वाले हो, वैसे चारो दिशाग्रो से उठेगे। स्त्रिया धूप में फैलाये हुए धान्य ग्रादि भीगने के डर से ग्रन्दर ले जाने लगेगी। ग्रादमी टोकरी-कुदाली हाथ में लेकर मेंड बाँधने के लिए निकलेगे। (फिर वह बादल) बरसने का ढग दिखा गरज कर, बिजली चमका कर, उन बैलों की तरह बिना लड़े (ग्रर्थात्) बिना बरसे ही भाग जायेगे। यह इसका फल होगा। लेकिन इसके कारण, तुभे किसी प्रकार का खतरा नहीं है। यह जो स्वप्न देखा है, सो यह भविष्य-सम्बन्धी है। ब्राह्मणों ने जो कहा है, सो ग्रपनी जीविका-वृत्ति के लिए कहा है।"

इस प्रकार शास्ता ने स्वप्न का फल बतला कर कहा—"महाराज । दूसरा स्वप्न कहे।"

"भन्ते । दूसरा (स्वप्न) इस प्रकार देखा— 'पृथ्वी से निकलते ही गाछ वृक्ष, एक या दो बालिश्त के होने से भी पहले ही फलने फूलने लगे। यह दूसरा स्वप्न देखा, इसका क्या फल है ?"

"महाराज । इसका भी फल, लोक की ग्रवनित होने तथा मनुष्यो की ग्रायु कम (=परिमित) होने पर होगा। भविष्य के प्राणी बड़े रागी होगे। कुमारियाँ ग्रायु-प्राप्त होने से पहले ही, ग्रादिमयों से ससर्ग कर, ऋतुमती तथा गर्भिणी हो, बेटा-बेटी की वृद्धि करेगी। क्षुद्र वृक्षों के पुष्पित होने की तरह ही, उनका ऋतुमती होना है, ग्रौर फलित होने की तरह बेटा-बेटी वाली होना है। इसके कारण भी, महाराज । तुम्हें खतरा नहीं। तीसरा स्वप्न कहें।"

"भन्ते । उसी दिन उत्पन्न (अपनी) बछडियो का दूध गौवे पी रही थी। यह मेरा तीसरा स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

इसका भी फल भविष्य में जब मनुष्य बड़ों का ग्रादर-सत्कार करना छोड़ देगे, तभी होगा। भविष्य में लोग, मातापिता तथा सास ससुर के प्रति निर्लंज्ज हो, ग्रपने ग्राप ही कुटुम्ब का पालन करेगे। बड़े बूढों को खाना कपड़ा देने की इच्छा रहेगी देगे, न देने की इच्छा रहेगी नहीं देगे। वृद्ध जन ग्रनाथ हो, पराधीन हो, बच्चों को सतुष्ट करके जीवित रह सकेगे, जैसे उसी दिन उत्पन्न हुई बछडियो का दूध पीती गोवे। इसके कारण भी, तुम्हे खतरा-नहीं हैं, चौथा (स्वप्न) कहे।"

"भन्ते । उठाने ढोने की सामर्थ्य रखने वाले, महाबैलो को युग-परम्परा में न जोत कर, तरुण बछडों के धुरि में जोते जाते देखा; वे धुर को न खीच सकने के कारण छोड कर खडे हो गये, गाडियाँ न चली। यह मैंने चौथा स्वप्न देखा। इसका क्या ग्रर्थ है ?"

"इसका भी फल, भविष्य में अर्घामिक राजाओं के ही समय में होगा। भविष्य में, अर्घामिक कृपण राजा, पिंडतों को, परम्परागत दक्षों को, कार्य्य सम्पादन करने की सामर्थ्य रखने वालों को, महाबुद्धिमानों को यश न देंगे और धर्मसभा तथा न्यायालयों में भी पिंडत, व्यवहार कुशल, वृद्ध अमात्य को नहीं रखेंगे, किन्तु इसके विरुद्ध तरुण तरुणों को यश देंगे, और वैसों को ही न्यायालयों में रक्खेंगे। वे राज कार्य तथा योग्य अर्थोग्य के न जानने के कारण, न तो उस यश को रख सकेंगे, न ही राज-कार्य का बेडा पार लगा सकेंगे। न कर सकने पर वह कार्य्य (—धुर) को छोड देंगे। वृद्ध-पिंडत अमात्य यश के न मिलने पर, कार्य्य सम्पादन कर सकने की सामर्थ्य रखने पर भी, सोचेंगे— "हमें इससे क्या? हम बाहर के हो गये, अन्दर वाले तरुण लडके जाने।" (यह सोच)वह, जो जो काम पडेंगे, उन्हें नहीं करेंगे। इस प्रकार सर्वंत्र उन राजाओं की हानि ही होगी। सो यह धुरि खीचने में असमर्थं बछडों को धुरे में जोतने, और धुरा खीचने में समर्थ महाबैलों को युग परम्परा से न जोतने के जैसा होगा। इसके कारण भी, तुभें कोई खतरा नहीं। पाँचवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते । एक दोनो स्रोर मुँह वाले घोडे को देखा। उसे दोनो स्रोर से चारा दिया जाता था, ग्रौर वह दोनो मुखो से खाता था। यह मेरा पॉचवॉ स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य मे अधार्मिक राजाओं के ही समय मे होगा। भविष्य मे अधार्मिक मूर्ख राजा, अधार्मिक लोभी मनुष्यों को न्यायाधीश बनायेगे। वे मूर्ख पाप-पुण्य का भेद न कर, सभा में बैठ न्याय करते हुए, दोनो प्रत्यियों से रिश्वत लेकर खायेगे, जैसे कि उस घोडे का दोनों मुँह से चारा खाना। इससे भी, तुभे खतरा नहीं हैं, छठा (स्वप्न) कह।"

४४० [ १.५.७७

"भन्ते । बहुत से म्रादमी, लाख (मुद्रा) के मूल्य की एक सोने की थाली को माज कर लाये, मौर उसमें पेशाब करने के लिए एक बूढ़े गीदड के सामने रक्खा। (मैने) उसे उसमें पेशाब करते देखा। यह मेरा छठा स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य में ही होगा। भविष्य में ग्रधार्मिक, विजातीय राजा, जाति-सम्पन्न कुलपुत्रो पर शका करके, उन्हें यश (=दर्जा) न देगे; ग्रकुलीनों की ही उन्नति करेगे। इस प्रकार ऊँचे ऊँचे कुल दुर्गति को प्राप्त होगे ग्रौर नीच-कुल ऐश्वर्यं को। वे कुलीन पुष्प उपाय न देख जीविका प्राप्त करने की इच्छा से इन पर निर्भर होकर जीये, (सोव), श्रकुलीनों को (ग्रपनी) लडिकयाँ देगे। सो यह उन कुलीन लडिकयों का श्रकुलीनों के साथ सहवास, वृद्ध श्रुगाल के सोने की थाली में पेशाब करने के सदृश होगा। इसके कारण भी, तुभे खतरा नही। सातवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! एक ग्रादमी रस्सी बॉट बॉट कर पैरो में डालता था। वह, जिस पीढे पर बैठा था, उसके नीचे बैठी एक भूखी गीदडी, उस (ग्रादमी) को बिना ही पता लगे, उस (रस्सी को) खा रही थी। मैंने ऐसा देखा। यह मेरा सातँवाँ स्वप्न था। इसका क्या फल होगा?"

"इसका भी फल, भविष्य में ही होगा। भविष्य में स्त्रियाँ, पुरुष-लोभी, शराब (=सुरा) लोभी, श्राभरण-लोभी, (रात को) बाजारों में घूमने की लोभी, लौकिक-चीजों की लोभी तथा दुश्शील दुराचारिणी होंगी। वें स्वामी के खेती गोरक्षा श्रादि कर्म से, बड़ी किठनाई से कमाये घन को जारों के साथ शराब पीकर, माला-गन्ध-विलेपन लगाकर (नाश कर देगी)। वें घर के श्रन्दर के श्रत्यन्त श्रावश्यक कार्य्य का भी ध्यान न रक्खेंगी, ग्रौर घर की चहर दीवारी के ऊपर से, छिद्रों तक में से (श्रपने) जार को देखेंगी। (वें) कल बोने के लिए रक्खें हुए बीज को भी कूट कर, उसका यवागु-भत्त-खाजा श्रादि बना, खाकर उडा देगी, जैसे कि वह पीढ़ें के नीचे पड़ी भूखी गीदडी, बाँट बाँट कर पैरों में रक्खी जाती रस्सी को। इससे भी तुभें खतरा नहीं। श्राठवें (स्वप्न) को कह।"

"भन्ते! राज द्वार पर, बहुत से खाली घडो के बीच मे रक्खे हुए, एक बडे से भरे हुए घडे को देखा। चारो वर्णों के लोग चारो दिशाग्रो महासुपिन ] ४४१

से तथा चारो श्रनुदिशाश्रों से, घडो में जल ला ला कर, उस भरे हुए, घडे को ही भरते थे। लबालब भरा पानी, किनारो पर से होकर गिरता जाता था, लेकिन फिर भी बार बार उसीमें पानी डाल रहे थे। खाली घड़ों की श्रोर, कोई देखता तक न था। यह मेरा श्राठवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल होगा?"

"इसका फल भी, भविष्य में ही होगा। भविष्य में लोक की अवनित होगी। राष्ट्र सार-रहित हो जायेगा। राजा, दुर्गत, कृपण हो जायेगे। जो ऐक्वर्य शाली होगा, उसके खजाने में केवल एक लाख कार्षापण रहेगे। इस प्रकार दुर्गति को प्राप्त हो, वह, सब जनपद-वासियों से अपना ही काम करवायेगे। पीडित मनुष्य अपने काम-काज छोड कर राजाओं के ही लिए पूर्व-अन्न, अपर-अन्न (आपाड़ी-श्रावणी) बोते, राखी करते, काटते, दलाई करते, ढ्वाते, ऊख की खेती करते, यन्त्र बनाते, यन्त्र चलाते, गुड आदि पकाते पुष्पोद्यान तथा फलोद्यान लगाते, वहाँ वहाँ उत्पन्न पूर्व-अन्न आदि को लाकर, राजा के कोटों को ही भरेगे। अपने घरों के खाली कोटों की श्रीर देखेगे तक नहीं। यह ऐसा ही होगा, जैसे खाली घडों की श्रीर न देख कर, भरें घडों को ही भरना। इस कारण से भी, तुभें खतरा नहीं। नवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते । पाँचो पद्मो से ब्राच्छन्न, गम्भीर सब ब्रोर तीर्थ (पत्तन) वाली, एक पुष्करिणी देखी। चारों ब्रोर से द्विपद-चतुष्पद उतर कर, उसमे पानी पीते थे। उसके बीच मे गहराई मे (तो) पानी गदला था, (लेकिन) किनारे पर, द्विपद-चतुष्पदो के ब्राने-जाने की जगह मैंने उसे शुद्ध, स्वच्छ तथा साफ ही देखा। यह मेरा नौवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य में ही होगा। भविष्य में राजा ग्रधार्मिक होगे। पक्षपात पूर्वक राज्य करेगे। धर्मानुकूल न्याय न करेगे। रिश्वत लेने वाले होगे। (उन्हें) धन का लोभ (होगा)। प्रजा (=राष्ट्र वासियो) के प्रति, उनकी क्षान्ति, मैत्री, करुणा, कुछ न होगी। निर्देशी तथा कठोर होगे; ऊख के यन्त्र में ऊख की गाँठ को पेलने की तरह, मनुष्यों को पेल पेल कर, नाना प्रकार के टैक्स (=विल) लगा कर, धन ग्रहण करेगे। मनुष्य टैक्सो से पीडित हो कर, कुछ भी दे सकने में ग्रसमर्थ होने पर, ग्राम निगम ग्रादियों को छोड, सीमान्त (=देश) में जाकर रहने लगेगे। मध्यम-देश (युक्त प्रान्त विहार) मना हो जायगा, प्रत्यन्त घना-वसा; जैसे पष्किरिणी के बीच में पानी

गँदला है, किनारो पर साफ। इस कारण से भी, तुभे खतरा नही है। दसवाँ (स्वप्न) कह।

"भन्ते! एक ही देगची में पके हुए, भात को कच्चा देखा, मानो फाड कर, बॉट कर, तीन तरह पकाया गया हो, एक ग्रोर बहुत कच्चा, एक ग्रोर ग्राध-कच्चा, एक ग्रोर खूब पका हुग्रा। यह मेरा दसवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है?

"इसका भी फल भविष्य मे ही होगा। भविष्य मे राजा ऋर्घामिक होगे। उनके अधार्मिक होने से राजकर्मचारियो, ब्राह्मण-गहपतियो, निगम तथा जनपद (==दीहात) के रहने वालो से लेकर, श्रमण ब्राह्मणो तक सब मनुष्य श्रधार्मिक हो जायेगे। उससे उनके श्रारक्षक-देवता, बलि ग्रहण करने वाले देवता, वृक्षो के देवता, (तथा) आकाश स्थित देवता, इस प्रकार देवता भी अधार्मिक हो जायेगे। अधार्मिक राजाओं के राज्य मे विषम, कठोर हवाये चलेगी। उनसे ग्राकाश स्थित विमान कम्पित होगे। उनके कम्पित होने से, देवता कोधित हो, वर्षा न बरसने देगे। बरसने पर भी वह सब जगह हल चलाई (=कृषिकर्म) या ब्वाई के लिए उपकारी होकर न बरसेगा, जैसे राष्ट्र में, वैसे ही जनपद में भी, ग्राम में भी, तालाब तथा सरोवर में भी-हर जगह एक जोर से नही बरसेगा। तालाब के ऊपर के हिस्से में बरसने पर, निचले हिस्से में न बरसेगा, निचले हिस्से में बरसने पर, ऊपरले हस्से मे न बरसेगा। एक हिस्से मे खेती अधिक वर्षा से नष्ट हो जायगी, एक हिस्से में वर्षा के श्रभाव से कुम्हला जायगी, एक हिस्से में ल्ब वर्षा होकर ग्रच्छी खेती होगी। इस प्रकार एक ही राजा के राज्य में बोई खेती तीन प्रकार की होगी जैसे एक देगची का चावल; इस कारण से भी, तुभे खतरा नही। ग्यारहवाँ (स्वप्न) कह।

"भन्ते ! लाख (मुद्रा) की क़ीमत का चन्दन-सार, सडे हुए मट्ठे के बदले में बिकता देखा। यह मेरा ग्यारहवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल होगा?"

"इसका फल भी, भविष्य मे, मेरे शासन (=धर्म) की स्रवनित होने के समय ही होगा ने भविष्य में वस्तु (=प्रत्यय) लोभी, बे-शर्म भिक्षु बहुत होगे, वे उस धर्म का जिसे मैने प्रत्यक्ष लोभ के नाश करने के लिए उपदेश किया है, चीवर स्रादि प्रत्ययों की स्राशा से, स्रौरों को उपदेश करेंगे। (वे)

प्रत्यय (की ग्राशा) से मुक्त हो, (ससार-सागर से) निस्तार के पक्ष में स्थित हो, निर्वाणाभिमुख धर्म का उपदेश न कर सकेंगे। 'हमारे शब्दो तथा मधुर स्वर को सुन कर (लोग) चीवर ग्रादि देगे या देने की इच्छा करेगे' (सोच) (वह) उपदेश करेगे। ग्रन्य (भिक्षु) बाजार, चौरस्तो (तथा) राजद्वार ग्रादि में बैठ, कार्षापण', ग्रर्थ-पाद', माषक' तथा रूपी' ग्रादि तक के लिए उपदेश करेगे। सो यह धर्म, जिसे मैंने निर्वाण की कीमत करके उपदेश किया है, जब वे चार प्रत्ययो तथा कार्षापण, ग्रर्थकार्षापण, के लिए उपदेश देगे, तब यह ऐसा ही होगा, जैसे लाख के मूल्य के चन्दन-सार को सडे, मट्ठे के बदले में बेचना। इस कारण से भी तुभे खतरा नहीं है। बारहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते । खाली तुम्बो को पानी में डूबते देखा। इसका क्या फल है?"

"इसका फल भी भविष्य में, अर्थामिक राजाग्रो के समय, लोक में तब्दीली आने पर होगा। तब राजा कुलीन कुलपुत्रो को दर्जा (=यश) न दे, अकुलीनो को ही देगे। वे (= अकुलीन) ऐक्वर्यशाली होगे तथा दूसरे दिद्र। राजा के सन्मुख, राजद्वार में, अमात्यों के सन्मुख तथा न्यायालय में (उन) खाली तुम्बो के समान अकुलीनो का ही कथन, स्थल पर बैठ जाने की तरह, स्थिर, निश्चल तथा सुप्रतिष्ठित होगा। सघ सम्मेलनो में, साधिक कर्म वा गणकर्म करने की जगहों में तथा पात्र, चीवर, परिवेण आदि के सम्बन्ध में (तथा) न्याय करने के स्थान पर भी, दुश्शील, पापी लोगों का ही कथन कल्याणकारी माना जायेगा, लज्जा-वान् भिक्षुग्रो का कथन नहीं। इस प्रकार सब जगह खाली तुम्बे के डूबने के समान होगा। इस कारण से भी, तुभें खतरा नहीं। तेरहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते । बडी बडी, कूटागार (कोठे) सदृश, मोटी शिलाग्रो को, नौका की तरह पानी पर तैरते देखा। इसका क्या फल है  $^{?}$ "

"इसका भी फल, वैसे ही समय में होगा। उस समय अवार्मिक राजा अकुलीनो को यश देगे, (जिस से) वह ऐश्वर्य शाली होगे तथा कुलीन (लोग) दिरद्र। उन (कुलीनो) के प्रति कोई गौरव प्रदिशत न करेगा, दूसरो

<sup>&#</sup>x27;यह चारो उस समय के सिक्के थे।

४४४ [ १.५.७७

का ही गौरव होगा। राजा के सामने, श्रमात्यों के सामने तथा न्यायालय में, न्याय करने में समर्थ, घनी शिला सदृश कुलपुत्रों का कथन प्रमाण न माना जायेगा। उनके कुछ कहने पर 'यह क्या बोलते हैं' करके, दूसरे लोग मखौल ही उडायेगे। भिक्षुत्रों के सम्मेलन में भी उक्त स्थानो पर, सदाचारी भिक्षुत्रों का सम्मान न होगा और उनका कथन भी प्रमाण न माना जायेगा। सो, वह शिलाग्रों के तैरने सदृश होगा। उससे भी, तुभे खतरा नहीं। चौदहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते । छोटे मधुक पुष्प जितनी बडी मेडिकियो को तेजी से बडे बड़े काले साँपो का पीछा कर, उन्हें केंवल की नाल की भाँति तोड तोड़ कर, उनका मास निगलते देखा। इसका क्या फल है ?"

"इसका फल भी, लोक की श्रवनित होने जाने के समय, भविष्य में ही होगा! उस समय लोग तीब्र-रागी हो, विकारों का श्रनुकरण कर, श्रपनी तरुण तरुण भार्याश्रों के वशीभूत होकर रहेगे। घर के नौकर-चाकर, गौ-भैस, तथा हिरण्य-सोना श्रादि सब उन्हीं के श्रघीन रहेगा। "श्रमुक हिरण्य-सोना श्रादि कहाँ हैं?" पूछने पर "कहीं भी हो। तुम्हें इससे क्या मतलब? मेरे घर में क्या है, श्रौर क्या नहीं हैं, यह तुम जानना चाहते हो?" कह, नाना प्रकार से गाली दे, मुख रूपी शक्ती (=श्रायुष) चुभा चुभा कर, (उन्हें) नौकर-चाकरों की तरह श्रपने वश में कर, श्रपना ऐक्वर्यं चलायेगी। सो यह मधुक पुष्प जितनी बडी मेंडक की बिच्चियों का, जहरीले, काले सपीं को निगलने जैसा होगा। इससे भी तुभे खतरा नहीं। पन्द्रहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते । दस ग्रसद्धर्मों (=ग्रवगुणो) से युक्त ग्रामचारी कौए को, कञ्चन-वर्ण होने से 'सुवर्णं' कहलाने वाले, सुवर्ण राज-हसो से घिरा देखा। इसका क्या फल है ?"

"इसका भी फल, भिवष्य में दुर्बल राजाग्रो के समय में होगा। भिवष्य में राजा लोग हस्ती शिल्प ग्रादि में श्रकुशल (तथा) युद्ध में ग्रविशारद होगे। वे श्रपने राज्य पर ग्रापित ग्राने की ग्राशका से, (ग्रपने) समान जातिक कुलपुत्रों को ऐश्वर्य न देकर, ग्रपने चरणों में रहने वाले नाई, दरजी ग्रादि को देगे। जाति गोत्र सम्पन्न कुल-पुत्र, राज-कुल में प्रतिष्ठा न पाकर, जीविका चलाने में

महासुपिन ] ४४५

श्रसमर्थ हो, ऐश्वर्य्य शाली (िकन्तु) जाति-गोत्र हीन, श्रकुलीनो की सेवा में रहेगे। सो यह, सुवर्ण-राजहसो के, कौश्रो के श्रनुयायी बनने के सदृश होगा। इस कारण से भी, तुभे खतरा नहीं है। सोलहवे (स्वप्न) को कह।"

"भन्ते । पहले (तो) शेर बकरियो को खाते थे, लेकिन मैंने बकरियो को शेर का पीछा कर, उसे मुरमुरे (करके) खाते देखा। ग्रौर ग्रन्य भेडिये बकरियो को दूर से देख कर, त्रसित तथा भयभीत हो, बकरियो के भय से भागकर, गहन जगलो में घुस कर छिप रहे। ('हि' यहाँ निपात मात्र हैं)। सो मैंने ऐसा देखा इसका क्या फल हैं?"

"इसका फल भी, भविष्य मे अर्घामिक राजाओं के ही समय मे होगा। उस समय श्रकुलीन (मनुष्य) राज्य के स्वामी तथा ऐश्वर्य-शाली होगे श्रीर कुलीन (मनुष्य) श्रप्रसिद्ध तथा दरिद्र होगे। वे राज-स्वामी (लोग) राजाग्रो को श्रपना विश्वासी बना, न्यायालय ग्रादि स्थानो मे शक्ति-शाली हो, 'कूलीनो के परम्परागत खेत वस्तू ग्रादि हमारी सम्पत्ति है' ऐसा ग्रभि-योग लगाकर, उन (कूलीनो) के 'यह तुम्हारे नहीं, हमारे हैं' करके, न्यायालयो में श्राकर विवाद करने पर, (उन्हें) बेतो से पिटवा, गरदन से पकड कर, धक्को दिलवा कर, "तूम अपनी हैसियत नही जानते? हमारे साथ विवाद करते हो ? ग्रभी, राजा से कह कर, हाथ पैर कटवा देगे" कह, डरायेगे। वह, उनसे डर कर, ग्रपनी चीजो को 'लो, यह तुम्हारी ही है' करके (उन्हे) सौप, ग्रपने ग्रपने घर पर डर के मारे पड़ रहेगे। पापी भिक्षु भी शीलवान् भिक्षुत्रो को जैसा चाहेंगे, वैसा तग करेंगे। वे सदाचारी भिक्ष, कोई श्राश्रय न मिलने से, जगल मे जाकर घनी जगहो पर छिप रहेगे। इस प्रकार हीन-जाति के (लोगो) का पीडित, (ऊँची) जाति-वाले कुलपुत्रो को ग्रौर पापी भिक्षुग्रो का सदाचारी भिक्षुग्रो को भगा देना, बकरियो के शेर भगा देने के समान होगा। इस कारण से भी तुभे खतरा नही है। यह स्वप्न भी, तुने भविष्य के ही सम्बन्ध में देखा है। हाँ, ब्राह्मणो ने जो कहा, सो तेरे प्रति स्नेह से, धर्मानुकुल नहीं कहा। उन्होने 'बहुत धन मिलेगा' सोच, लौकिक वस्तुग्रो पर नजर रख, जीविका के ही ख्याल से कहा।"

इस प्रकार बुद्ध ने सोलह महास्वप्नो का फल कह कर 'महाराज! न केवल तूने ही, श्रभी इन स्वप्नो को देखा है। पुराने राजाग्रो ने भी देखा है (उस समय भी) ब्राह्मणो ने, इन स्वप्नो को इसी प्रकार लेकर यज्ञ के सिर मढ दिया था। तब पिंडतो की सलाह के ब्रनुसार, बोधिसत्व से जाकर पूछा। पुराने (राजाक्यो) ने भी (उनको) यह स्वप्न कहते समय, इसी प्रकार कहा'—यह कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

४४६

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुग्रा। उमेर होने पर, वह ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो गया; अभिज्ञा तथा समापत्तियों को प्राप्त कर, हिमवन्त प्रदेश में ध्यान-क्रीडा में रत रह कर विचरता था। उस समय बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त ने इसी प्रकार इन स्वप्नों को देख, ब्राह्मणों को पूछा। ब्राह्मणों ने भी इसी प्रकार यज्ञ करना आरभ किया। उनमें जो पुरोहित था, उसके बुद्धिमान् स्पप्ट-वक्ता, माणव-शिष्य ने श्राचार्य्य से निवेदन किया— "आपने मुक्ते तीनों वेद सिखाये। उनमें कही भी एक (जने) को मार कर, दूसरे को सुखी करने का उल्लेख नहीं हैं न?"

"तात । इस ढंग से हमे बहुत धन मिलेगा। मालूम होता है, तू राजा के धन की रक्षा करना चाहता है।"

"श्राचार्यं । तो श्राप श्रपना काम करे; में श्रापके पास रह कर क्या करूँगा," कह, माणवक, घूमता घामता राजा के उद्यान में श्रा पहुँचा।

उसी दिन बोधिसत्व भी उस वृत्तान्त को जान, 'श्राज मेरे श्राबादी की श्रोर जाने से, जन (-समूह) की बन्धन से मुक्ति होगी' (सोच) श्राकाश से जाकर, उद्यान मे उतर, मंगल-शिलातल पर स्वर्ण-प्रतिमा की भाँति बैठे। माणवक ने बोधिसत्व के पास पहुँच प्रणाम कर, एक श्रोर बैठ, कुशल-क्षेम पूछा।

बोधिसत्व ने भी, उसके साथ मधुर बात-चीत करके पूछा—"माणवक ! यह राजा धर्म से राज्य करता है ?"

"भन्ते । राजा तो धार्मिक है, लेकिन ब्राह्मण उसे डुबो रहे हैं। राजा ने सोलह स्वप्न देख, ब्राह्मणो से निवेदन किया। ब्राह्मणो ने 'यज्ञ करेगे' कह, महासुपिन ] ४४७

यज्ञ करना ग्रारम्भ किया। सो भन्ते । क्या ग्रापका कर्त्तव्य नहीं कि ग्राप राजा को इन स्वप्नो का फल बताकर जनसमृह को भय से मुक्त करे ?"

"माणवक<sup>।</sup> हम राजा को नही जानते, ग्रौर राजा हमे नही जानता। हॉ, यदि वह यहाँ ग्राकर पूछे तो हम उसे कहेंगे।"

माणवक ने 'भन्ते ! मैं लाऊँगा ग्राप मेरे ग्राने की प्रतीक्षा करते हुए, थोडी देर बैठे' (कह) बोधिसत्व को जतला, राजा के पास जाकर कहा—"महाराज एक ग्राकाश-चारी तपस्वी ग्रापके उद्यान में उतरे हैं, ग्रौर ग्रापको बुलाते हैं कि ग्रापके देखें हुए स्वप्नों का फल बतलायेंगे।"

राजा उसकी बात सुन, उसी समय बहुत से श्रनुयाइयो को साथ ले उद्यान में श्राया श्रीर तपस्वी को प्रणाम कर, एक श्रोर बैठ पूछा—
"भन्ते। क्या श्राप मेरे देखें स्वप्नो का फल जानते हैं ?"

"महाराजा हाँ।"

"तो कहे।"

"महाराज <sup>।</sup> में कहूँगा। (पहले) मुक्ते स्वप्नो को जैसे जैसे देखा है, वैसे सुनाग्रो।"

"भन्ते । श्रच्छा" कह, राजा ने, राजा प्रसेनजित के द्वारा कहे गये स्वप्नो की ही तरह स्वप्न कहे—

> उसभा रुक्ला गावियो गवा च ग्रस्सो कंसो सिगाली च कुम्भो पोक्खरणी च ग्रपाकचन्दनं। लापूनि सीदन्ति सिला प्लवन्ति मण्डूकियो कण्हसप्पे गिलन्ति काक सुवण्णा परिवारयन्ति तसावका एळकानं भया हि।।

[ अर्थ पहले कहा ही गया है।]

जैसे शास्ता ने इस समय, उन स्वप्नो का फल कहा, वैसे ही उस समय बोधिसत्व ने भी उन स्वप्नो का फल कह, अन्त मे यह कहा—

विपरियासो वत्ति न इधमित्थ (= उलटा पड़ेगा, अब नहीं है)

४४८ [ १.५.७७

महाराज ! यह, इन स्वप्नो की उत्पत्ति हैं। यह जो, उनके प्रतिघात के लिए यज्ञ-कमें है, सो वह (विपरियासो वत्तित) विपरीत पड़ेगा, उल्टा पड़ेगा। किस लिए ? उन (स्वप्नो) का फल लोक में तब्दीली होने के समय, प्रकारण (बात) को कारण मानने के समय, कारण को ग्रकारण (समभकर) छोड़ने के समय, ग्रभूत (= श्रसत्य) को सत्य मानने के समय, सत्य को श्रसत्य (समभक्तर) छोड़ने के समय, ग्रलज्जी (= बेशमों) के उन्नति पर होने के समय, तथा लिज्यो (= शरम वालो) की ग्रवनित होने के समय ही होगा। नियय-मित्य, इस समय, मेरे वा तेरे समय में, इस पुरुष-युग में, यह फलीभूत न होगे। इसलिए, इनके प्रतिघात (= रोकने) के लिए किया जाने वाला यज्ञ-कमें उलटा होगा। उसकी ग्रावश्यकता नही। इन (स्वप्नो) के फल स्वरूप, तुभे कोई खतरा वा डर नही।

इस प्रकार महापुरुष, राजा को श्राश्वासन दे, जन-समूह, को बधन से मुक्त कर (श्रपने) फिर श्राकाश में ठहर, राजा को उपदेश दे, (उसे) पाँच शीलों में प्रतिष्ठित कर, 'महाराज! श्रव से ब्राह्मणों के साथ मिलकर पशु-घात (वाले) यज्ञ-कर्मों को न करें — ऐसा धर्मोपदेश कर, श्राकाश मार्ग सेही श्रपने निवास स्थान को चले गये।

राजाभी उनके उपदेश के श्रनुकूल चल कर, दान श्रादि पुण्य-कर्म करके, (श्रपने) कर्मानुसार (परलोक) गया। शास्ता ने यह देशना ला, 'यज्ञ के कारण से तुभे खतरा नहीं, इस यज्ञ को हटा' कह, उस यज्ञ को हटवा, जन (—समूह) को जीवन दान दे, मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय के राजा (श्रव के) श्रानन्व थे। माणवक (श्रव के) सारिपुत्र थे लेकिन तपस्वी में ही था।

भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर, सङ्गीति-कारकों ने उसभा, रुक-खादि....ग्यारह शब्दों की ग्रट्ठकथा (==टीका) कर, 'लापूनी' ग्रादि पाँच पदो की 'गाथा' बना 'एकक निपात' मे संगृहीत की।

# ७८. इल्लीस जातक

"उभो खञ्जा " यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, (एक) मच्छरिय कोसिय श्रेष्ठी के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

राजगृह नगर के समीप सक्खर नामक (एक) निगम था; उसमें मच्छिरिय कोसिय नाम का एक ग्रस्सी करोड की सम्पत्ति वाला सेठ रहता था। वह दूसरों को तिनके की नोक पर तेल की बूँद तक नहीं देता (ग्रौर) न ग्रपने ही खाता था। सो उसका वह धन न तो उसके स्त्री-बच्चों के काम ग्राता था, न श्रमण-ब्राह्मणों के। राक्षस ग्रधिकृत पुष्करिणीं की तरह व्यर्थ पडा था।

एक दिन प्रात काल ही बुद्ध ने महा करुणा समापित्त से उठ, सकल लोक-धातु में, उस दिन, अवबोध प्राप्त कर सकने वाले बंधुओं को देखते हुए, पन्तालीस योजन की दूरी पर रहने वाले सेठ और उसकी भार्या के श्रोतापित्त फल प्राप्त कर सकने की सम्भावना को देखा। उससे एक दिन पहले वह (श्रेष्ठी) राजा के उपस्थान के लिए राज-भवन को गया। राजा की सेवा में जा, वापिस लौटते हुए, भूख से पीडित एक नागरिक को, कलमास (कुलथी) भरे पूडे खाते देखा और उनमे तृष्णा उत्पन्न कर घर जाकर सोचने लगा—"यदि में कहूँगा कि में पूडे खाना चाहता हूँ, तो बहुत से (लोग) मेरे साथ खाने वाले हो जायेगे। इस प्रकार मेरा बहुत सा चावल, घी, तथा गुड ग्रादि खर्च हो जायगा। सो, में किसी को नहीं कहूँगा।"

वह तृष्णा को (मन ही मन) सहते हुए, रहने लगा, (जिससे) समय गुजरने पर (वह) पाण्डु-वर्ण हो गया, गात धमनियो को लग गया। तब २६

तृष्णा को (ऋधिक) न सह सकने के कारण, वह घर मे घुस कर, चारपाई पर मुँह लपेट कर पड रहा। इतना होने पर भी धन हानि होने के डर से उसने, किसी को कुछ न कहा।

उसकी भार्य्या ने उसके पास जा पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी। क्या रोग है?"

"मुभे, कोई रोग नही।"

"क्या राजा ऋद हो गया है ?"

"राजा, मुभ से ऋुद्ध नही हुआ है।"

"तो क्या तेरे बेटी बेटा से अथवा नौकर चाकरो से कुछ अपराध हो गया है ?"

"ऐसा भी (कुछ) नही।"

"िकसी (चीज़) मे, तेरी तृष्णा ( = इच्छा) है ?" ऐसा पूछने पर, घन हानि के भय से निशब्द हो, पड़ा रहा। तब उसे भार्य्या ने पूछा—"स्वामी। तेरी तृष्णा किस चीज में है।

उसने गब्दो को निगलते हुए की तरह कहा—"मेरी एक तृष्णा है" "स्वामी क्या तृष्णा है?"

"पूडे (पूए) खाने की इच्छा है।"

''तो कहते क्यो नही ? क्या तुम दिरद्र हो ? श्रब इतने पूडे पका दूँगी कि सारे सक्खर निगम-वासियो के लिए पर्य्याप्त हो।''

"तुभे उनसे क्या <sup>?</sup> वह ग्रपने कमा कर खायेगे।"

"श्रच्छा तो उतने ही पकाऊँगी, जो एक गली के लोगो के लिए पर्य्याप्त हो।"

"जानता हूँ, कि तु बडी धनवान् है।"

"ग्रच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो इस घरवाले सब के लिए पर्य्याप्त हो।"

"जानता हूँ, कि तू बड़ी उदार है ! ''

"ग्रच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो तेरे स्त्री-बच्चो भर के लिए पर्य्याप्त हो।"

"तुभे, इन से क्या?"

इल्लीस ] ४५१

''ग्रच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो तेरे लिए ग्रौर मेरे लिए पर्य्याप्त हो ।'' ''तू क्या करेगी <sup>?</sup>''

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो अकेले तेरे लिए पर्याप्त हो।" "यहाँ पकाने से बहुत लोग आशा लगायेगे। सो, तू और सब चावलो को छोड केवल किनयाँ (च्टूटे चावल), चूल्हा, कडाही आदि और थोडा दूध, घी, मधु तथा गुड ले, सात-तल प्रासाद के ऊपर महातल्ले पर चढ कर पका। वहाँ में अकेला बैठ कर खाऊँगा।"

उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, जो लेना था, वह लिवा कर, प्रासाद के ऊपर चढ, दासियों को हटा सेठ को बुलवाया। पहले (दरवाजे) से लेकर सब दरवाजों को बन्द करते हुए सब द्वारों में ताले-कुण्डे लगा, सातवें तलें पर चढ, वहाँ भी वह दरवाजा बन्द करके बैठा। उसकी भार्य्या ने भी, चूल्हें में आग जला, उसपर कडाही रख, पूंडे पकाने शुरू किये।

बुद्ध ने प्रात काल ही महामोग्गल्लान स्थिवर को ग्रामिन्तित किया—
"मोग्गल्लान । राजगृह के समीप के सक्खर निगम का मच्छिरिय कोसिय नामक
यह सेठ 'कडाही के पूए खाऊँगा' (करके) ग्रौरो के देख लेने के भय से, सात
तलो वाले प्रासाद के ऊपर पूए पकवाता है। तू वहाँ जाकर, उस सेठ का दमन
कर, उसे निर्विषकर, पित-पत्नी दोनो जनो से पूए ग्रौर दूध-धी-मधु-गुड ग्रादि
लिवा कर, ग्रपने बल से, उन्हें जेतवन ले ग्रा। ग्राज में पाँच सौ भिक्षुग्रो
सिहत विहार में ही रहुँगा, ग्रौर पृग्रो का ही भोजन करूँगा।"

स्थिवर 'भन्ते । ग्रच्छा' कह, शास्ता का कथन स्वीकार कर, उसी समय ऋदिबल से, उस निगम मे पहुँच, उस प्रासाद के छज्जे पर, (ग्रपने ठीक) से पहने, ठीक से ढके हुए ग्राकाश में स्थिर होकर, मणि की मूर्ति की भाँति ठहरे।

स्थिवर को देख, सेठ का हृदय कॉपा। उसने 'मैं ऐसो के ही डर से, इस जगह ग्राया, सो यह ग्राकर खिडकी पर खडा हो गया है' (सोच) हाथ में लेने योग्य कुछ न ले सकने पर, ग्राग में डाली निमक की डली की तरह, गुस्से से चिट चिट करते हुए कहा—"श्रमण, ग्राकाश में खडे रहने से तुमें क्या मिलेगा? ग्राकाश में जहाँ पैरो का चिन्ह नहीं है, वहाँ पैरो को दिखाते हुए चड्कमण करने से भी कुछ न मिलेगा।" स्थिवर उसी जगह इधर-उधर चडकमण करने लगे।

सेठ ने कहा—"चङ्कमण करने पर तो क्या मिलेगा? स्राकाश मे पालथी मार कर बैठने पर भी न मिलेगा।" स्थिवर पालथी मारकर बैठ गये।

तब उसने (कहा)—"बैठने पर तो क्या मिलेगा? ग्राकर देहली पर खड़े होने से भी न मिलेगा।" स्थिवर (ग्राकर) देहली पर खड़े हो गये। तब उसने (कहा)—"खडे होने से तो क्या मिलेगा। धुग्रा निकालने से भी न मिलेगा।"

स्थिवर ने घुआँ जि़काला। सारा प्रासाद एक-धूम्र हो गया। सेठ की आँख में जैसे सूइयाँ चुभने लगी, लेकिन घर के जलने के डर से उसने 'जलने पर भी न मिलेगा' न कह, सोचा—'यह श्रमण, ग्रच्छा पीछे पडा है, बिना लिए नहीं जायेगा। सो, इसे एक पूत्रा दिलवाऊँ।" (यह सोच) उसने भार्य्या को कहा—''भद्रे! एक छोटा सा पूत्रा पका, श्रमण को दे, इसे बिदा कर।"

उसने कडाही में जरा सी पिट्ठी डाली। उसका एक वडा सारा, फूला हुआ पूआ बन कर, सारी कडाही में फैल गया। सेठ ने उसे देख, 'तू ने बहुत पिट्ठी लें ली होगी' (कह) श्रपने ही कडछी के कोने पर जरा सी पिट्ठी लेकर, डाली। (यह) पूआ पहले पूए से भी बडा हो गया। इस प्रकार जैसे जैसे वह पकाता, वैसे वैसे वह पहले से भी बडा हो जाता।

उसने दु खी होकर कहा—"भद्रे! दे इसे एक पूआा।" उसके टोकरी से एक पूआा निकालने के समय, सारे पूए एक साथ लग गये। उसने सेठ को कहा—"स्वामी! सब पूए एक साथ जुड गये। उन्हे पृथक् नही कर सक रही हूँ।" "मैं करूँगा" (करके) वह भी न कर सका, दोनो जने, दोनो सिरे पकड कर खैचने पर भी पृथक् न कर सके। इस प्रकार व्यायाम करते हुए उसके शरीर से पसीना बहने लगा, श्रीर उसकी प्यास (च्तृष्णा) बुक्त गई।

तब उसने भार्य्या को कहा—"भद्रे। मुभे पूए नही चाहिए। उन्हें, टोकरी सिंहत, इस भिक्षु को दे दो।" वह टोकरी लेकर स्थिवर के पास गई। स्थिवर ने दोनों को धर्मीपदेश किया; त्रिरत्न के गुण कहे। दिये हुए का, यज्ञ का, दान श्रादि का फल श्राकाश में (प्रकाशित) चन्द्रमा की भाँति दिखाया। उसे सुन प्रसन्न-चित्त सेठ ने कहा—"भन्ते। श्राकर, इस पलग पर बैठ कर, पूए खाये।"

स्थविर ने कहा—''सेठ जी । 'पूए खायेगे' (करके) पाँच सौ भिक्षुग्री

सिहत सम्यक् सम्बुद्ध विहार में बैठे हैं। यदि तेरी इच्छा हो तो अपनी भार्य्या सिहत पूए श्रौर दूध श्रादि को लिवा चल। हम बुद्ध के पास जायेगे।"

"भन्ते ! इस समय शास्ता कहाँ है ?"

"सेठ ! यहाँ से पन्तालीस योजन की दूरी पर, जेतवन विहार में।" "भन्ते । बिना, (भोजन के) समय का उल्लंघन किये, हम इतनी दूर कैसे जायेगे ?"

"सेठ ! तुम्हारी इच्छा रहने पर, मैं अपने ऋद्धि-बल से ले जाऊँगा। तुम्हारे प्रासाद (= महल) की सीढी का आरम्भ तो (उसके) अपने स्थान पर ही होगा, (लेकिन) अन्त जेतवन द्वार के कोठे पर जा कर होगा। अपर के महल से, नीचे के महल पर उतरने भर की देरी में जेतवन ले जाऊँगा।"

उन्होने 'भन्ते ! ग्रच्छा' कह, स्वीकार किया। स्थिविर ने ग्रिधिष्ठान (==दृढ निश्चय) किया=  $^{?}$  "सीढी का ऊपर का सिरा, वैसे ही होकर, नीचे का सिरा, जेतवन द्वार के कोठे में जा लगे।" वैसे ही हो गया।

इस प्रकार स्थिवर ने सेठ ग्रौर उसकी भार्य्या को प्रासाद के ऊपर से नीचे उतरने के समय से भी कम समय में जेतवन पहुँचा दिया। उन दोनों ने बुद्ध के पास जा, (भोजन का) समय निवेदन किया। भिक्षु-संघसहित बुद्ध, दान-शाला में प्रविष्ट हो, बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठे। सेठ ने बुद्ध प्रमुख भिक्षुसघ को दक्षिणा का जल दिया। भार्य्या ने तथागत के पात्र में पूए रक्खे। बुद्ध ने उतने ही लिये, जितने (ग्रपने लिए) काफी हो। पाँच सौ भिक्षुग्रो ने भी वैसे ही लिए। सेठ दूध, घृत, मधु तथा शक्कर देता गया।

पाँच सौ भिक्षुग्रो सिहत बुद्ध ने भोजन समाप्त किया। सेठ ने भी भार्य्या सिहत, ग्रावश्यकता-भर खाये; लेकिन पूए खतम होते न दिखाई देते थे। सारे विहार के भिक्षुग्रो तथा भिखमगो ग्रादि को देने पर भी खतम होते न दिखाई देते थे। (उन्होने) भगवान् से कहा—''भन्ते । पूए खतम नहीं

धबौद्ध भिक्षुत्रों के लिये मध्यान्हान्तर भोजन करना निषिद्ध है।

होते।" "तो, उन्हें जेतवन द्वार के कोठें में फंक दो।" सो, उहोने द्वार-कोठें के समीप एक गढें में डाल दिये। श्राज भी वह स्थान कपल्लपूव-पडभार ही कहलाता हैं। भार्य्या सिहत महासेट्ठि, भगवान् के पास जा, एक श्रोर खडा हुश्रा। भगवान् ने (दान) श्रनुमोदन किया। श्रनुमोदन की समाप्ति पर, दोनों जने श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो, बुद्ध को प्रणाम कर, द्वार कोट्ठें से सीढी पर चढकर, श्रपने प्रासाद में जा पहुँचे (=प्रतिष्ठित हुए)।

उस समय से वह श्रस्सी करोड धन, बुद्धशासन के ही लिए खर्च करने लगा। एक दिन, सम्यक् सम्बुद्ध श्रावस्ती में भिक्षा माँग, जेतवन श्रा, भिक्षुश्रो को सुगतोपदेश दे, गन्धकुटी में प्रवेश कर, ध्यानावस्थित रह, शाम को धर्म-सभा में श्राये। उस समय धर्म-सभा में इकट्ठे बैठे हुए भिक्षु (मोग्गल्लान) स्थिवर की प्रशसा कर रहे थे— "श्रावुसो! महामोग्गल्लान स्थिवर का प्रताप देखो। वह, मच्छिरिय (चंजूस) सेठ को जरा सी देर में दमन कर निविषकर, पूए लिवा कर, जेतवन ले श्राया, श्रीर बुद्ध के सम्मुख (उपस्थित) कर, श्रोतापित्त फल मे प्रतिष्ठित कर दिया। श्रहो! स्थिवर महा प्रतापवान् हैं।" बुद्ध ने श्राकर पूछा— "भिक्षुश्रो! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "यह (बातचीत)" कहने पर, बुद्ध ने, भिक्षुश्रो! जिस भिक्षु को किसी कुल का दमन करना हो, वह बिना कुल को पीडा दिये, बिना तग किये, जैसे भ्रमर फूल से रेणु ग्रहण करता है उसी तरह (कुल के) पास जा, बुद्ध-गुणो का परिचय दे' कह स्थिवर की प्रशसा करते हुए, (यह गाथा कही)—

यथापि भमरो पुष्फं वण्णगन्धं ब्रहेठयं, पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे।

[ जिस प्रकार फूल के वर्ण या गन्ध को बिना हानि पहुँचाये भ्रमर रस को लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि गाँव मे विचरण करे।]

<sup>&</sup>lt;sup>९</sup> भोजनान्तर गृहस्थो को दिया जाने वाला उपदेश । <sup>२</sup> धम्मपद (पृष्क वग्ग) ।

इल्लीस ] ४५५

इस धर्मपद में आई हुई गाथा को कह, स्थिवर की और भी प्रशंसा करने के लिए "भिक्षुग्रो। न केवल अभी मोगगल्लान ने मच्छिरिय सेठ का दमन किया, पहले भी उसका दमन कर, उसे कर्म-फल सम्बन्ध का ज्ञान (—परिचय) कराया है" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बाराणसी मे इल्लीस नाम का एक सेठ था। उसके पास श्रस्सी करोड धन था; (लेकिन) वह पुरुष के दुर्गुणो से युक्त लॅंगडा, लूला तथा बेहगा; श्रश्रद्धा वान्, श्रप्रसन्न-चित्त तथा कजूस; न किसी को देता, न श्रपने खाता था। उस का घर ऐसा ही था, जैसे राक्षस-गृहीत पुष्करिणी! हाँ, उसके माता-पिता सात पीढी तक, दान-शील (==दाता) तथा दान-पित रहे थे। उसने कुल-मर्यादा का नाश कर, दान-शाला को जला, याचको को पीट कर (बाहर) निकाल, केवल धन ही सग्रह किया।

एक दिन, राजा की सेवा में जाकर, अपने घर लौटते समय उसने रास्ते में एक थके हुए नागरिक को एक शराब की सुराही लें, पीढे पर बैठ, उस खट्टी शराब से कसोरे भर सडी हुई मछली खा खा कर, पीते देखा। यह देख, उसके मन में शराब ( —सुरा) पीने की इच्छा हुई, और वह सोचने लगा— "यदि, में सुरा पीऊँगा, तो मेरे पीने पर (और) बहुत (लोग) पीने की इच्छा करेगे। इस प्रकार मेरा धन खर्च होगा।" तृष्णा को मन में रखकर घूमने से, कुछ समय बीतने पर, (उसे) न सह सकने के कारण, उसका शरीर धुनी हुई रूई की तरह सफेद हो गया, और उसका गात धमनी को जा लगा।

सो, एक दिन, वह घर में घुस कर, चारपाई पर सिमट कर पड रहा ?

उसकी भार्य्या ने श्राकर पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी । क्या रोग (==कष्ट) है  $^{?}$ " (इसके श्रागे) सब उक्त प्रकार से जानना चाहिए।

'ग्रच्छा । तो उतनी शराब बनाऊँगी, जितनी तेरे श्रकेले के लिए काफी हो' कहने पर, 'घर में शराब बनवाने पर, बहुत लोग श्राशा लगायेगे; दूकान से मँगवा कर भी यहाँ वैठ कर नहीं पी सकता' (सोच), उसने, केवल एक मासक दें, दूकान से शराब की सुराही मँगवाई, फिर नौकर से उठवा, नगर से निकल नदी के किनारे गया और महामार्ग के पास एक गुल्म (==घनी जगह) मे घुस, सुराही को रखवाया, फिर 'तू जा' कह कर, नौकर को दूर बिठा, कसोरे भर भर कर, शराब पीनी शुरू की।

दानादि करने के कारण, इसका पिता देव-लोक में शक (=इन्द्र) होकर उत्पन्न हुम्रा था। उसने उस समय ध्यान लगा कर देखा, कि मेरा (चलाया हुम्रा) दान म्रभी भी दिया जा रहा है वा नहीं? उसका चालू न रहना, पुत्र का कुल-मर्यादा को नष्ट कर, दान-शाला को जला देना, याचको को पीट कर निकाल देना तथा कजूस वन, 'म्रौरो को देनी पढ जायगी' के भय से घने स्थान में घुस, अकेले बैठ कर शराब पीना, जान उसने सोचा—में जाकर, उसे क्षुब्ध कर, (उसका) दमन कर, (उसे) कर्म-फल-सम्बन्ध का ज्ञान करा, (उसके हाथ से) दान दिलवा, (उसे) देव-लोक में उत्पन्न होने योग्य बनाऊँ। यह सोच, वह, (मनुष्यो की) म्राबादी में उतर, ठीक इल्लीस सेट्ठी जैसा, लंगडा-लूला-बैहगा रूप बना राजगृह नगर में प्रविष्ट हो, राजा के निवासस्थान पर खड़ा हो, म्रपने म्राने की सूचना भिजवा, 'प्रवेश करो' कहने पर भीतर गया म्रौर राजा को प्रणाम कर, (एक म्रोर) खड़ा हुम्रा।

राजा ने पूछा---"सेठ जी! कहो ग्र-समय पर कैसे श्राये?"

"देव! मेरे घर में ग्रस्सी करोड़ धन हैं, (मैं चाहता हूँ) कि ग्राप उसे मँगवा कर, ग्रपने खजाने भर ले।"

"रहने दो सेठ जी हमारे घर मे तुम्हारे घन से कही श्रिधिक घन है।"
"देव! यदि श्राप को श्रावश्यकता नहीं है, तो मैं उसे लेकर यथेच्छ दान
देता हुँ?"

"सेठ जी दें।"

'दिव! अच्छा' कह राजा को प्रणाम कर, निकल आया और इल्लीस सेट्ठी के घर गया। सब नौकर-चाकर घेर कर खड़े हो गये। कोई एक भी यह न जान सका कि यह इल्लीस नही हैं। उसने घर में प्रवेश कर, देहली के

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>कार्षापण का बीसवाँ हिस्सा।

इल्लीस ] ४५७

भीतर खडे हो, द्वार-पाल को बुलवा आज्ञा दी—"यदि कोई ठीक मेरे जैसी शकल वाला आकर, 'यह मेरा घर है' करके प्रवेश करना चाहे, तो उसकी पीठ पर प्रहार दे, उसे निकाल देना।" यह कह, प्रासाद के ऊपर चढ, अत्यन्त मूल्यवान् आसन पर बैठ, श्रेष्ठि भार्य्या को बुलवा, मुस्करा कर, कहा—"भद्रे ! दान दे।" यह सुन सेठानी, लडके-लडिकयाँ तथा नौकर चाकर कहने लगे। "इतने समय तक कभी दान देने का विचार तक नही आया। आज शराब पीने के कारण मृदु-चित्त हो, दान देने की इच्छा उत्पन्न हो गई होगी।"

सो, सेठानी ने कहा—"स्वामी । यथारुचि दे।" 'तो मुनादी करने वाले को बुलवा कर, सारे नगर मे मुनादी करवा दो कि जिस को चाँदी, सोना, मिण-मोती की ग्रावश्यकता हो, वह इल्लीस सेठ के घर जावे।" उसने वैसा करवा दिया। लोग भोली, थैली लेकर द्वार पर ग्रा इकट्ठे हुए। शक ने सात रत्नो से भरे हुए कमरो को खोल कर कहा—"यह सब तुम्हें देता हूँ। जितनी जितनी जरूरत हो, ले जाग्रो।" लोग धन को निकाल, महातल पर ढेर लगा, लाये हुए वरतनो को भर भर कर ले जाने लगे।

एक जनपदवासी, इल्लीस सेठ के बैल, इल्लीस सेठ के ही रथ में जोतकर, उसे सात रत्नों से भर, नगर से निकल, महा-मार्ग पर जाता हुम्रा, उस घने स्थान से कुछ ही दूर पर रथ को हॉकते हुम्रा सेट्ठी की प्रशसा करता जाता था— "स्वामी! इल्लीस सेठ! तेरी सौ वर्ष की म्रायु हो। तेरे कारण, म्रब में जन्म भर, बिना काम किये भी जी सकता हूँ। तेरा ही रथ, तेरे ही बैल, तेरे ही घर के सात (प्रकार के) रत्न। न मा ने दिये न बाप ने दिये, स्वामी; तेरे ही कारण मिले।" इल्लीस ने वह शब्द सुन, भयभीत हो सोचा—"यह मेरा नाम लेकर, यह यह कहता है, क्या राजा ने मेरा धन लोगों में बाँट दिया है?" (यह सोच) घने-स्थान से निकल, बैलों तथा रथ को पहचान, "म्रेरे! चेटक! यह मेरे ही बैल मौर मेरा ही रथ" कह, जा कर बैलों की नकेल पकड़ ली। गृहपति रथ से उतर, 'म्रेरे! दुष्ट चेटक! इल्लीस महासेठ सारे नगर को दान देता है, तू क्या लगता(—होता)हैं' कह, भटक कर, विजली गिराते हुए की तरह, कथे पर प्रहार दे, रथ लेकर चल दिया। उसने कॉपते हए उठ कर, धिल (—रेत) को भाड, तेजी से जाकर,

(फिर) रथ को पकडा। गृहपित (रथ से) उतर, बालो से पकड, भुका, बाँस की चपटी की मार से मार, गले से पकड़, जिधर से आया था, उधर मुँह कर धक्का दे, (अपने) चल दिया।

इतने में उसका शराब का नशा उतर गया।

उसने काँपते काँपते जल्दी से घर जा, धन लेकर जाते हुए मनुष्यो को देख, 'भो । यह क्या ? राजा मेरा धन लुटवा रहा हैं?' कह, जिस किसी को पकड़ना शुरू किया। जिस किसी को पकडता, वही उसे पीट कर, पैरो में गिरा देता। वेदना से पीडित हो, उसने घर में घुसना चाहा। द्वारपालो ने—'ग्ररे । दुष्ट गृहपति ! कहाँ घुसता है ?' (कह) बाँस की चपटियों से पीट, गर्दन से पकड निकाल दिया।

'श्रव राजा को छोड कर, श्रौर मुफे, किसी की शरण नहीं' सोच, उसने राजा के पास जा कर पृछा—''देव<sup>।</sup> श्राप मेरा घर लुटवा रहे हैं <sup>?</sup>"

"सेठ जी ! मैं नहीं लुटवा रहा हूँ। क्या तुमने ही स्रभी स्राकर नहीं कहा था कि यदि स्राप नहीं लेते तो मैं अपने धन को दान दूँगा, स्रौर नगर में मुनादी करा कर दान दिया?"

"देव । मैं आपके पास नहीं आया। क्या आप मेरे कजूस होने की बात नहीं जानते  $^{7}$  में किसी को तिनके के कोने से (एक) तेल की बूंद तक नहीं देता। देव । जो यह दान दे रहा है, उसे बुला कर परीक्षा करे।"

राजा ने शक को बुलवा भेजा। न तो राजा को ही, न मन्त्रियों को ही, दोनो जनो में कुछ भेद दिखाई दिया। मच्छरिय सेठ ने पूछा—"देव। यह सेठ हैं, कि मैं सेठ हूँ?"

"हम नही पहचानते, तुभे, कोई पहचानने वाला है?" "देव<sup>।</sup> मेरी भार्य्या।"

भार्य्या को बुलाकर पूछा गया कि तेरा स्वामी कौन है?

वह 'यह' कह कर, शक्र के ही पास जा खड़ी हुई। लड़के लड़िकयो नौकर-चाकरों को बुला कर पूछा गया। सब शक्र के ही पास जाकर खड़े हुए।

तब सेठ ने सोचा—"मेरे सिर में बालों से छिपी एक फुंसी है, उसे केवल नाई ही जानता है, सो उसे बुलवाऊँ।" (यह सोच) उसने कहा—"देव! मुर्भे नाई पहचानता है, उसे बुलवावे।" उस समय बोधिसत्त्व (ही) उसके नाई (होकर उत्पन्न हुए) थे। राजा ने उसे बुलवा कर पूछा—"इल्लीस सेठ को पहचानते हो?"

"देव! सिर को देख कर पहचान सक्रुँगा।"

"ग्रच्छा! तो दोनों के सिर को देख।" शक ने उसी क्षण सिर में फुसी पैदा कर ली। बोधिसत्त्व ने दोनों के सिर में फुसी देख, "महाराज! दोनों के सिर में फुसी हैं। इस लिए मैं इन दोनों में से किसी को नहीं कह सकता कि वह इल्लीस हैं" कह, यह गाथा कही—

उभो खञ्जा उभो कुणी उभो विसमचक्खुला, उभिन्नं पिलका जाता, नाहं पस्सामि इल्लिसं॥

[दोनो लगडे (हैं), दोनो लूले (है), दोनों बैहगे (है), ग्रौर दोनो के (सिर मे) फुँसियाँ है। मैं इल्लीस को नहीं पहचानता (=देखता)।

उभो, दोनो जने । खञ्जा, लगड़े ( —कुण्ठकपाद), कुणी, लूले ( —कुण्ठ-हत्या) विसम चक्खुला, जिनकी आँख की पुतिलयाँ विषम है । पिलका, दोनो के सिर मे एक ही जगह, एक ही जैसी फुन्सियाँ हो गईँ । नाहं पस्सामि, में इनमे यह इल्लीस हैं (करके) नहीं पहचानता, अर्थात् एक को भी 'इल्लीस' नहीं मानता ।

बोधिसत्त्व की बात सुन, सेठ काँपने लगा, श्रौर धन-शोक के करण, श्रपने को न सँभाल सकने से वही गिर पडा। उस समय शक्त, "महाराज! में इल्लीस नहीं हूँ, में शक्त हूँ" कह, शक्र-लीला से श्राकाश में जा खड़ा हुआ। उत्लीस का मुंह पोंछ कर, उस पर पानी छिडका गया। वह उठकर, देवेन्द्र शक्त को प्रणाम कर, खडा हुआ। तब शक ने कहा— "इल्लीस! यह धन मेरा है, न कि तेरा। में तेरा पिता हूँ, तू मेरा पुत्र। में ने दानादि पुण्य कर्म करके शक्त की पदवी प्राप्त की, लेकिन तूने मेरे वश (की मर्य्यादा) को तोड, श्रदान-शीली हो, कजूस बन, दानशाला को जला, याचको को निकाल, (खाली) धन संग्रह किया। उसे, न तू श्राप खाता है, न दूसरे। वह ऐसे पडा है, जैसे राक्षस के श्रधिकार में हो। यदि, जैसे पहले थी, वैसे ही मेरी दानशाला

४६० [ १.५.७६

बनवा कर दान देगा, तो तेरा कुशल है, यदि नही देगा, तो तेरे सब धन को अन्तर्ध्यान कर, इस इन्द्र-वाक्र से तेरा सिर फोड, तेरी जान निकाल दूँगा ?"

इल्लीस सेठ ने मरने के भय से सत्रसित हो, प्रतिज्ञा की कि श्रब से दान दूँगा। शक उसकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर, श्राकाश में बैठे ही बैठे धर्मोपदेश दे, उसे (पञ्च) शीलों में प्रतिष्ठित कर, श्रपने स्थान को चला गया। इल्लीस भी दान श्रादि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग-गामी हुश्रा।

बुद्ध ने 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी मोग्गल्लान ने मच्छरिय सेठ का दमन किया है, पहले भी इसने इसे दमन किया है' कह, इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय इल्लीस, मच्छरिय सेठ हुग्रा। देवेन्द्र शक्र, मोग्गल्लान। राजा, श्रानन्द। लेकिन नाई में ही था।

#### ७६. खरस्मर जातक

"यतो विलुत्ता च हता च गावो.." यह (गाथा) बुद्ध ने जेंतवन में विहरते समय एक श्रमात्य के सम्बन्ध में कही।

# क. वर्तमान कथा

कोशल-नरेश के एक श्रमात्य ने राजा को प्रसन्न कर प्रत्यन्त-ग्रामों की राज-बिल' ले, चोरो के साथ मिलकर 'में मनुष्यों को ले कर जगल में चला जाऊँगा, तुम गाँव को लूट कर, ग्राघी (लूट) मुक्ते देना' (कह), मनुष्यों को इकट्ठा किया। फिर जगल ले जा, चोरो के ग्रा, गौवों को मार,

¹ राजा को प्राप्य राज-कर।

मास खा, गाँव लूट कर चले जाने पर, शाम को मनुष्यो को साथ लिये हुए आया। उसके कुछ ही देर बाद, उसका यह भेद खुल गया। मनुष्यो ने राजा से कहा। राजा ने उसे बुलवा अपराध का निश्चय कर, उसका अच्छी प्रकार निग्नह कर, (उसकी जगह) एक दूसरे ग्राम-भोजक (च्मुखिया) को भेज, (अपने) जेतवन जाकर, भगवान् को वह समाचार कहा। भगवान् ने 'महाराज ने केवल अभी यह ऐसा करने वाला है, पहले भी यह ऐसा ही करने वाला रहा है' कह, उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, राजा ने एक श्रमात्य की एक प्रत्यन्त गाँव दिया। .. सब उक्त प्रकार से। उस समय बोधिसत्व, वाणिज्य के लिए घूमते हुए, उस गाँव में ठहरे हुए थे। उन्होंने, शाम के समय, बहुत से लोगों के साथ भेरी बजते बजते, ग्राम-भोजक को श्रात देख 'यह दुष्ट ग्राम-भोजक चोरों के साथ मिल, गाँव लुटवा कर, चोरों के भाग कर जगल में घुस जाने पर, श्रब शान्त-स्वभाव की तरह, भेरी के बाजे के साथ श्रा रहा है' सोच यह गाथा कही—

यतो विलुत्ता च हता च गावो दड्ढानि गेहानि जनो च नीतो, श्रयागमा पुत्तहताय पुत्तो खरस्सरं वेण्डिमं वादयन्तो॥

[जब (चोर) गौवो को लूट तथा गौवो को मार कर, घरो को जलाकर, (श्रौर) श्रादिमियो को बाँघ कर ले गये, उस समय यह मृतपुत्र का पूत, इस कर्ण कठोर ढोल को बजवाते श्राया है।

यतो = जब। विलुत्ता च हता च, लूट कर ले गये तथा मास खाने के लिए मार डाली। गावो = गौवं। दड्ढानि, ग्राग लगाकर जला दिये। जनो च नीतो, कसकर, बाँघ कर ले गये। पुत्तहताय पुत्तो, ग्रपुत्ती ( = मृतपृत्र का पृत्र) श्रर्थात निर्लञ्ज। जिसको लज्जा-भय नही, उसकी माता नही, सो वह उस

१.५.५०

(पुत्र) के जीवित रहते भी, श्रपुत्ती (=मृत-पुत्र) ही समभी जाती है। खरस्सरं, कठोर शब्द। देण्डिमं, ढोल (=पटह भेरि)।

इस प्रकार बोधिसत्व ने इस गाथा से, उसका परिहास किया। शीघ्र ही, उसका भेद खुल गया। राजा ने उसके श्रपराध के श्रनुसार उसे दण्ड दिया।

शास्ता ने, 'महाराज ! न केवल ग्रभी यह ऐसा करने वाला है, पहले भी यह ऐसा ही करने वाला रहा है' (कह), यह धर्म देशना ला मेल मिला, जातक का साराश निकाल दिया।

उस समय का श्रमात्य ही, श्रब का श्रमात्य है। गाथा से उदाहरण देने वाला पण्डित मनुष्य, तो मैं ही था।

### ८०. भीमसेन जातक

"यं ते पविकत्थितं पुरे" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक ग्रात्म-प्रशसक भिक्ष के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु, 'श्रावुसो । हमारी जाति सदृश जाति, हमारे गोत्र सदृश गोत्र, (कोई) नहीं। हम ऐसे. महाक्षत्रिय कुल मे पैदा हुए। गोत्र की या कुल-प्रदेश की दृष्टि से, हमारे सदृश कोई नहीं। हमारे वैंहाँ सोने चौंदी का कोई हिसाब (=श्रन्त) नहीं। हमारे नौकर-चाकर (तक) शाली-मासोदन खाते हैं, काशी का (बना) वस्त्र पहनते हैं; (ग्रौर) काशी के चन्दन से विलेपन करते हैं। इस समय प्रक्रजित हो जाने से हम इस प्रकार के रूखे सूखे भोजन खाते हैं; रूखे सूखे चीवर पहनते हैं' कह वृद्ध-मध्यम-

तरुण (=नवीन) भिक्षुग्रो के बीच, श्रपनी बडाई करते, जाति श्रादि का श्रभिमान दिखाते, (श्रौरो को) ठगते हुए घूमता था।

एक भिक्षु ने उसके कुल-प्रदेश की परीक्षा कर, उसके गप मारने की बात भिक्षुत्रो से कही। धर्म सभा मे इकट्ठे हुए भिक्षु, उसकी निन्दा करने लगे—"श्रायुष्मानो । श्रमुक भिक्षु, इस प्रकार के कल्याणकारी शासन मे प्रब्रजित होकर भी, गप्प मारता, श्रात्म-प्रशसा करता, (श्रौर) ठगता फिरता है।"

बुद्ध ने स्राकर पूछा— "भिक्षुस्रो! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रह हो?" "यह! बातचीत" कहने पर, "भिक्षुस्रो! न केवल स्रभी वह भिक्षु, (इस प्रकार) गप्प मारता, स्रात्म-प्रशसा करता, ठगता फिरता है, पहले भी वह (इसी प्रकार) गप मारता, स्रात्म-प्रशसा करता, ठगता फिरता रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधि-सत्त्व एक निगम ग्राम में, (एक) प्रसिद्ध ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो, ग्रायु होने पर, तक्षशिला में जा, लोक प्रसिद्ध ग्राचार्य के पास तीनो वेद तथा ग्रठारह विद्याये सीख, सब शास्त्रों (चिशल्पों) में सम्पूर्णता प्राप्त कर, चुल्लधनुगाह पण्डित नाम से (प्रसिद्ध) हुग्रा। तक्षशिला से निकल, वह सब (दूसरे) समयों (च्यागम, शास्त्र)तथा शिल्पों की परीक्षा करता हुग्रा महिंसक राष्ट्रं (चित्रों) को गया। इस जन्म में बोधिसत्त्व थोडे छोटे (चह्रस्व) कद के, तथा भुके हुए थे। उन्होने सोचा—"यदि में किसी राजा के पास जाऊँगा, तो वह कहेगा 'तू ऐसे छोटे कद वाला हमारा क्या (काम) कर सकेगा?' इसलिए में किसी डील-डौल वाले सुन्दर मनुष्य को ग्रागे करके, (ग्रपने) उसकी ग्रोट में होकर जीविका कमाऊँ।"

सो, उसने, वैसे आदमी की खोज करते हुए, भीमसेन नामक एक जुलाहे के कपड़ा बुनने के स्थान पर जा उसके साथ कुशल-क्षेम की बातचीत कर

<sup>ै</sup>नर्मदा के दक्षिण तट पर, इन्दौर से क़रीब चालीस मील महिष्मती।

पूछा—"सौम्य । तेरा क्या नाम है ?"

"मेरा नाम भीमसेन है।"

"तू इस प्रकार के सौन्दर्य से युक्त हो, यह तुच्छ काम करता है ?" "जीविका (का ग्रौर उपाय) न होने से।"

उसने "सौम्य! इस काम को मत कर। मेरे समान धनुपधारी, सारे जम्बूद्वीप मे नही है, (लेकिन) यदि में किसी राजा के पास जाऊँ, तो शायद वह कोधित हो जाये कि यह इतने छोटे कद वाला हमारा क्या (काम) कर सकेगा। तू राजा के पास जाकर कह कि में धनुषधारी हूँ। राजा, तुभे खर्चा दे, तेरी बँधी-वृत्ति लगा देगा। जो जो वह तुभे करने को कहेगा में उसे करता हुआ, तेरी ओट मे रहूँगा। इस प्रकार (हम) दोनो जने सुसी रहेगे' (कह) पूछा—"मानता है मेरी बात ?" जुलाहे ने 'श्रच्छा' कह स्वीकार किया।

उसने उसे बाराणसी ले जा, श्रपने श्राप चुत्ल-धनु-उपस्थायक (= सेवक) बन, उसे श्रागे कर, राज-द्वार पर जा, राजा को कहलवाया। "श्राजाये" कहने पर, दोनो जने जा, राजा को प्रणाम कर, खडे हुए। "किस लिए श्राये?" पूछने पर, भीमसेन बोला—"मैं धनुप-धारी हूँ। सारे जम्बृद्वीप मे, मेरे सद्श धनुप-धारी नहीं।"

"क्या मिलने पर हमारी सेवा मे रहोगे ?"

"देव ! ग्रर्ध-मास में हजार (मुद्रा) मिलने पर रह सकेंगे।"

"यह पुरुष, तेरा कौन होता है ?"

"देव <sup>!</sup> चुल्ल उपट्ठाक ( = छोटा सेवक)।"

"ग्रच्छा! तो सेवा मे रहो।"

उस समय से भीमसेन, राजा की सेवा में रहने लगा; जो जो काम पड़ता, उसे बोधिसत्त्व ही करता।

उस समय काशी राष्ट्र के एक जगल में बहुत से मनुष्यों के ग्राने जाने का मार्ग (एक) व्याघ्र ने छुडा दिया था। वह मनुष्यों को पकड पकड़ कर खा जाता था। (लोगों ने) वह समाचार राजा को कहा। राजा ने भीमसेन को बुलाकर पूछा—"तात! उस व्याघ्र को पकड सकेगा?"

"देव<sup>ा</sup> तो मेरा नाम धनुषधारी ही क्या, यदि मैं उस व्याघ्र न को

भीमसेन ] ४६४

पकड सक् ।"

"राजा ने उसे खर्चा दे कर भेजा। उसने घर जा कर बोधिसत्त्व को कहा। बोधिसत्त्व ने कहा— "ग्रच्छा । सौम्य । जा।"

"लेकिन तू नही जायेगा ?"

"हाँ मैं नही जाऊँगा, लेकिन तुभ्ते उपाय बताऊँगा।"

"सौम्य! (उपाय) बता।"

"तू सहसा व्याघ्र के निवास स्थान पर श्रकेला न जाना। जनपद के मनुष्यों को इकट्ठा करवा, एक दो सहस्र धनुष (साथ) लिवा, वहाँ जाकर, 'व्याघ्र उठा हैं,' मालूम होते ही भाग कर किसी घने-भाड़ (च्युम्ब) में घुस कर, पेट के बल लेट रहना। जन-पद के लोग ही व्याघ्र को मार कर, पकड लेगे। उनके व्याघ्र को मार चुकने पर, तू दाँतों से एक बेल (चलता) काट, (उसकें) एक सिरे को (हाथ में) ले, मृत व्याघ्र के पास जा, कहना, "भो! इस व्याघ्र को किसने मार डाला? में इसे लता से बांघ कर, बैल की तरह राजा के पास ले जाने के लिए, लता लाने को घने-भाड़ में गया था। मेरे लता लाने से पहले किसने इसे मार डाला?" तब डर के मारे, जनपद के लोग 'स्वामी! राजा से मत कहना' (करकें) बहुत धन देंगे। व्याघ्र को तू ही ले जायेगा, सो राजा से भी तुभे बहुत धन मिलेगा।"

उसने 'श्रच्छा' कह, जाकर, बोधिसत्त्व के बताये उपाय से ही व्याघ्न को पकड, जगल को भय-रिहत कर, बहुत से जनो के साथ बाराणसी को लौट, राजा को देख कर कहा—''देव ! मैंने व्याघ्न पकड लिया। जंगल निर्भय कर दिया।'' राजा ने प्रसन्न हो, बहुत धन दिया।

फिर एक दिन एक भेंसे ने एक मार्ग छुड़ा दिया। (लोगो ने) राजा को कहा। राजा ने वैसे ही, भीमसेन को भेजा। वह, बोधिसत्त्व के बताये उपाय में, उमें भी व्याघ्र की तरह ले आया। राजा ने फिर बहुत सा धन दिया। (इससे) बहुत सम्पत्ति हो गई। ऐश्वर्य के मद से मत्त (= मस्त) हो, वह बोधिसत्त्व की अवज्ञा करने लगा। उसके कहने को न मानता। 'में कोई इस पर, निर्भर होकर जीता हूँ सोच 'क्या तू ही आदमी हैं ?' आदि कठोर वाक्य कहता।

कुछ ही दिनो के बाद, एक शत्रु-राजा ने त्राकर बाराणसी को घेर, राजा के पास संदेश भेजा। ''या तो राज्य दे, या युद्ध करें।'' राजा ने "जा, लड" (करके), भीमसेन को भेजा। वह सब शस्त्र बाँघ योघा का भेष घारण कर श्रच्छी प्रकार कसे हुए हाथी की पीठ पर बैठा। बोधिसत्त्व भी, उसके मरने के भय से, सब शस्त्र बाँघ, भीमसेन के पीछे श्रासन पर बैठा। जन (-समूह) से घिरा हुन्ना हाथी, नगर-द्वार से निकल सग्राम-भूमि मे ग्राया। भीमसेन ने युद्ध-भेरी का शब्द सुनते ही काँपना ग्रारम्भ किया। बोधिसत्त्व ने 'श्रब यह हाथी की पीठ से गिर कर मरेगा' सोच, भीमसेन को रस्सी से घेर कर बाँघ रक्खा। भीमसेन ने लड़ाई की जगह देख, मरने से भयभीत हो, हाथी की पीठ को मल-मूत्र से खराब कर दिया। बोधिसत्त्व ने 'भीमसेन! तेरा पहला (श्राचरण) ग्रौर वर्तमान (ग्राचरण) मेल नही खाता। तू पहले सग्राम-योघा की भाँति था, (लेकिन) ग्रब हाथी की पीठ को खराब करता है' कह, यह गाथा कही—

यं ते पविकत्थितं पुरे भ्रथ ते पूतिसरा सजन्ति पच्छा, उभयं न समेति भीमसेन! युद्धकथा च इदञ्च ते विहञ्जं॥

[भीमसेन ! वह जो तेरी पहली बड़ाई थी, और यह जो श्रब पीछे मल-मूत्र बहा रहा है, वह युद्धकथा और यह कष्ट पाना, दोनो मेल नही खाते।]

यं ते पिवकित्थितं पुरे, जो तू ने पहले ग्रिभिमान पूर्वक कहा था कि क्या तू ही श्रादमी है, मैं भी सग्राम-योधा नहीं हूँ, यह तेरा कथन । श्रथ ते पूर्ति सरा सजिन्त पच्छा, सो यह गन्दी (च्पूति) होने से तथा बहने वाली (च्सरित) होने से 'पूर्ति-सरा' कही जाने वाली मल-मूत्र धाराये, बहती हैं, ढलकती हैं, चूती हैं। पच्छा, पहले कथन के बाद, ग्रब इस सग्राम-भिम में। उभयं न समेति भीमसेन! हे भीमसेन! यह दोनो मेल नहीं खाते। कौन? युद्ध कथा च इदंच ते विहञ्झं वह जो पहले कही थी, सो युद्ध-कथा; भीर यह जो ग्रब तेरी पीड़ा =कष्ट पाना, हाथी की पीठ खराब करने जैसा विधात।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उसकी भर्त्सना कर, 'सौम्य । डर मत। मेरे रहते तुभे डर किस बात का ?' कह भीमसेन को हाथी की पीठ से उतार, 'नहाकर, घर जा' कह, भेजा। फिर 'म्राज मुभे प्रगट होना चाहिए' (सोच) सग्राम मे प्रवेश करके, उन्नाद किया, सेना का व्यूहतोड कर, शत्रु-राजाग्रो को जीवित ही पकड ले जाकर, बाराणसी-नरेश के पास गया। राजा ने सन्तुष्ट हो, बोधिसत्त्व को बहुत ऐश्वर्य दिया। उस समय से चुल्लधनुग्गह पण्डित, सारे जम्बूहीप मे प्रसिद्ध हो गया। वह, भीमसेन को खर्चा दे, उसे (उसके) निवास स्थान पर भेज, दान ग्रादि पुण्य कर्म करके, यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी यह भिक्षु ग्रपनी बडाई करता है, (इसने) पहले भी की है' कह इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का भीमसेन (ग्रब का) गप्पी (=ग्रात्म प्रश-सक) भिक्षु था। लेकिन चुल्लधनुगह पण्डित में ही था।

# पहला परिच्छेद

# e. अपायिम्ह वर्ग

### ८१. सुरापान जातक

"श्रपायिम्ह श्रनिच्चम्ह. " यह गाथा बुद्ध ने कोशाम्बी के पास घोसि-ताराम में विहरते समय, सागत स्थविर के सम्बन्ध में कही।

# क. वर्तमान कथा

भगवान् के श्रावस्ती में वर्णावास समाप्त कर, चारिका करते हुए भद्रवती नाम के निगम पर पहुँचने पर, ग्वालो, पशुपालो, कृपको तथा राहियो ने शास्ता को देख, प्रणाम कर कहा—? "भन्ते । भगवान् श्रम्वतीर्थं को मन जायें। श्रम्बतीर्थं में, जटिल के श्राश्रम में श्रम्बतीर्थंक नामक (एक) नाग, विपैला सर्प, घोर विषैला सर्प (है)। वह कही भगवान् को कष्ट (न) पहुँचाये।"

भगवान्, जैसे उनकी बात सुनी ही न हो, वैसे, उनके तीन बार मना करने पर भी चले ही गये।

उस समय, भगवान् के भद्रवती से कुछ ही दूर एक बन-खड मे विहार करते समय, उस समय के बुद्ध उपस्थायक सागत नामक स्थविर, जो लौकिक ऋद्धि से युक्त थे, उस ग्राश्रम में जा, उस नाग राज के निवास स्थान पर तिनकों का ग्रासन बिछा, पालथी मार कर बैठे। नाग ने हसद के मारे धुग्राँ निकालना ग्रारम्भ किया। स्थविर ने भी धुग्राँ निकाला। नाग प्रज्वलित हुग्रा। स्थियर भी प्रज्वलित हुए। नाग के तेज से स्थविर को कष्ट नहीं होता था, लेकिन स्थविर का तेज नाग को कष्ट देता था। इस प्रकार वे (एक) क्षण में ही नाग-राजा का दमन कर, उसे त्रि-शरण तथा पञ्चशील में प्रतिष्ठित कर, शास्ता के पास चले श्राये।

बुद्ध भी भद्रवितका में यथा रुचि विहार कर कोशाम्बी चले गये। सागत स्थिविर द्वारा नाग के दमन किये जाने की बात सारे जनपद में फैल गई। कोशाम्बीवासी (लोग) बुद्ध की ग्रगवानी कर, बुद्ध को प्रणाम कर, सागत स्थिवर के पास जा, प्रणाम कर, एक ग्रोर खडे हो कहने लगे—"जो ग्रापको दुर्लंभ हो, वह कहे। हम वही तैयार कर देगे।" स्थिवर चुप रहे। लेकिन छः वर्गीय (भिक्षुग्रो) ने कहा—"ग्रावुसो! प्रव्रजितों को कबूतरी शराब दुर्लंभ होती हैं, ग्रौर ग्रच्छी लगती हैं। यदि तुम स्थिवर पर प्रसन्न हो तो कबूतरी शराब तैयार करो।" उन्होंने 'ग्रच्छा' कह स्वीकार कर बुद्ध को ग्रगले दिन के लिए निमन्त्रण दे, नगर मे प्रवेश कर 'ग्रपना ग्रपना घर स्थिवर को दिखायेगे' (सोच) कबूतरी शराब तैयार कर, स्थिवर को निमित्रत कर, घर में शराब दी। स्थिवर पीकर, शराब के नशे में मस्त हो, नगर से निकलते हुए, द्वार के बीच में ही गिर कर, (वहाँ) बकवास करते हुए पड़े रहे।

बुद्ध भोजन समाप्त कर, नगर से निकलते समय, स्थिवर को उस प्रकार पड़े देख, 'भिक्षुग्रो ! सागत को उठा लो', कह, उसे लिवा कर, ग्राराम (—िनवास स्थान) पर ग्राये। भिक्षुग्रो न स्थिवर का सिर तथागत के चरणो में करके, उसे लिटा दिया। वह पलट कर, तथागत की ग्रोर पैर करके, लेट रहा। बुद्ध ने भिक्षुग्रो से पूछा—"भिक्षुग्रो ! सागत का जो पहले मेरे प्रति गौरव था, सो ग्रब है?"

"भन्ते <sup>!</sup> नही।"

"भिक्षुम्रो । **म्रम्बतीर्थ** के नाग-राज का किसने दमन किया <sup>?</sup> " "भन्ते <sup>!</sup> सागत ने ।"

"भिक्षुग्रो<sup>।</sup> क्या **सागत** ग्रब पानी के साँप का भी दमन कर सकता है <sup>?</sup>" "भन्ते <sup>!</sup> नही ।"

"तो क्या भिक्षुग्रो । ऐसी चीज का पीना उचित है, जिसे पीकर बेहोश हो जाय?"

"भन्ते <sup>।</sup> अनुचित।"

सो भगवान्, स्थविर की निन्दा कर, भिक्षुग्रो को ग्रामन्त्रित कर "सुरा-

मेरय पान मे पाचित्ति (=दोष) है " (करके) शिक्षापद (=िनयम) बना, आसन से उठ कर, गन्यकुटी मे चले गये। धर्मसभा मे एकत्र हुए भिक्षु शराब के दोष कहने लगे— "आवुसो। शराब कितनी खराब है, जिसने प्रज्ञावान् ऋदिवान् सागत स्थविर को ऐसा कर दिया कि उसे तथागत के गुण तक की होश न रहे।"

शास्ता ने आकर पूछा— "भिक्षुग्रो! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" उनके 'यह बातचीत' कहने पर, (शास्ता ने) 'भिक्षुग्रो! शराब पीकर न केवल ग्रभी प्रव्रजित बेहोश होते हैं, पहले भी हुए हैं' कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधि-सत्व, काशी राष्ट्र के एक उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो, बडे होने पर, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, श्रिभञ्ञा श्रीर समापत्तियो का लाभ कर, ध्यान कीडा मे रत रहते, हिमबन्त मे निवास करते थे। उनके साथ पाँच सौ शिष्य थे। सो, वर्षा का समय श्राने पर शिष्यों ने पूछा—श्राचार्य्यं! श्राबादी मे जा कर निमक-खटाई का सेवन करके श्रावे।

"त्रावुसो! मैं तो यही रहुँगा। तुम जाकर शरीर को सतुष्ट करो। वर्षा (ऋतु) के बीतने पर चले श्राश्रो।"

वे 'अच्छा' कह, आचार्य को प्रणाम कर बाराणसी जा, (वहाँ) राजा के उद्यान में ठहरे।

श्रगलेदिन, नगर के बाहर ही बाहर भिक्षा माँग, संतुष्ट हो, (उससे) श्रगले दिन नगर में प्रवेश किया। मनुष्यों ने प्रसन्नता-पूर्वक भिक्षा दी। कुछ दिन बीतने पर (लोगों ने) राजा को कहा—"देव हिमवन्त से पाँच सौ ऋषि श्राकर उद्यान में ठहरे हुए हैं। वे घोर तपस्वी हैं, संयतेंद्रिय हैं, तथा शीलवान् हैं।" राजा उनकी प्रशंसा सुन, उद्यान में गया। उन्हें प्रणाम कर, कुशल क्षेम पूछ वर्षा ऋतु के चारों महीने वही रहने का वचन लें, निमन्त्रण

<sup>ै</sup> प्रायश्चित्त करने योग्य दोष है (भिक्षु प्रातिमोक्षा)।

सुरापान ] ४७१

विया। उस दिन से वह राज-भवन में भोजन करते (ग्रौर) उद्यान में रहते थे।
एक दिन नगर में शराब पीने का उत्सव था। 'प्रब्रजितों को शराब
दुर्लंभ होती हैं' सोच राजा ने उन्हें ग्रत्युत्तम शराब दिलवाई। तपस्वी शराब
पी, उद्यान में जाकर, शराब से बदमस्त हो, कोई कोई उठ कर नाचने लगे,
कोई कोई गाने लगे। नाच कर, गाकर, खारी ग्रादि फैला कर सो रहे। शराब
के नशे के उतरने पर उठकर ग्रपने उस विकार को देख, 'हम ने प्रब्रजित जीवन
के ग्रनुकूल नहीं किया' (सोच) रोने पीटने लगे। फिर 'हमने ग्राचार्य्यरिहत होने के कारण ही, ऐसा पाप किया' (सोच), उसी क्षण उद्यान को
छोड हिमवन्त को जा, परिष्कारो (चिवर ग्रादि) को ठीक से कर,
श्राचार्य्य को प्रणाम कर, उनके 'तात में ग्राबादी में बिना भिक्षा के कष्ट के
सुख से तो रहे? ग्रापस में मेल से तो रहे' पूछने पर 'ग्राचार्य्य सुख से तो
रहे। लेकिन हमने न पीने योग्य चीज पीकर, बेहोश हो स्मृति को न सँगाल
सकने के कारण नाचा ग्रौर गाया।" यह हाल कहते हुए इस गाथा को कहा—

श्रपायिम्ह श्रनिचम्ह श्रगायिम्ह रुदिम्ह च,

#### विसञ्जकरोंण पीत्वा दिट्ठा ना हुम्ह वानरा।।

[ शराब पी, नाचे, गाये श्रौर रोये। खुशी इतनी हैं कि इस बेहोश बना देनेवाली को पीकर हम बानर नही बन गये। ]

श्रपायिम्ह, सुरा पी। श्रनिच्चम्ह, उसे पी, हाथ पैरो को मटका मटका कर नाचे। श्रगायिम्ह, मुँह को खोल कर लम्बे स्वर से गाया। रुदिम्ह, फिर पश्चात्ताप से, 'हमने ऐसा किया' (सोच) रोये। दिट्ठा ना हुम्ह बानरा, इस प्रकार बेहोश होने पर विसञ्जकर्राण (=बेहोश करने वाली सुरा) को पीकर, यही श्रच्छा हुश्रा कि हम बानर नहीं बन गये।

इस प्रकार उन्होने स्रपने दुर्गुण कहे। बोधिसत्व 'स्राचार्य्य से पृथक् होन पर ऐसा होता ही हैं' कह, उन तपस्वियो की निन्दा कर 'स्रब फिर ऐसा न करना' कह, उनको उपदेश दे, ध्यान-युक्त रह, ब्रह्मलोकगामी हुए।

बुद्ध ने इस धर्मदेशना को कह जातक का साराश निकाल दिया। इससे आगे 'मेल मिलाकर'—यह भी नहीं कहेंगे।

उस समय के ऋषि गण (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। गण का गुरु तो मैं ही था।

# ८२ मित्तविन्द जातक

"म्रातिक्कम्म रमणकं " यह (गाया) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न मानने वाले भिक्षु के सम्बन्ध में कही।

# क. वर्तमान कथा

इस जातक की काश्यप सम्यक् सम्बुद्धकालीन कथा दसवे निपान (=परिच्छेद) में महामित्तविन्दक जातक में श्रायेगी।

#### ख. अतीत कथा

उस समय बोधिसत्व ने यह गाथा कही-

स्रतिक्कस्म रमणकं सदामत्तं च दूभकं, स्वासि पासाणमासीनो यस्मा जीवं न मोक्खसि ॥

["रमणक", "सदामत्तं" ग्रौर "दूभक"—इन तीनों प्रासादों को छोड़ कर, तू एक ऐसे पत्थर से चिमट गया, जिससे ग्रपने को जीते जी न छुड़ा सकेगा।]

रमणकं उस समय स्फटिक को कहते थे, मतलब तू स्फटिक के प्रासाद को छोड़ ग्राया। सदामत्तंच, "रजत" का नाम है, मतलब तू रजत के प्रासाद

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> जातक (४३६)

को छोड श्राया। दूभकं, मिण का नाम है, मतलब तू मिणमय प्रासाद को छोड श्राया। स्वासि, वह (—सो) है तू। पासाणमासीनो, उरचक पत्थर का होता है, चाँदी का होता है श्रथवा मिण का होता है, लेकिन वह पत्थर का था, सो वह उस पत्थर के उरचक से धर लिया गया (—श्रासीनो, श्रभिनिविष्टो —श्रज्जोत्थटो)। पाषाण से धर लिये जाने (—श्रासीनता) के कारण पासाणासीनो। व्यजन सन्धि के कारण 'म' का श्रागम कर, पासाण-मासीनों कहा। श्रथवा पासाण को श्रासीन हो, श्रथीत् उस उरचक को पहुँच—प्राप्त हो, खडा हुग्रा। यस्मा जीवं न मोक्खिसि—जिस उरचकं से जब तक तेरे पाप का नाश न होगा, तब तक जीते जी मुक्त न होगा, सो वैसे पत्थर से चिमटा है।

यह (गाथा) कह, बोधिसत्व, श्रप्नने देवस्थान को चले गये।
मित्रविन्दक भी उरचक्र को धारण कर, महादु ख सहता हुग्रा, पापकर्म के क्षीण होने पर, कर्मानुसार गया।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का मित्रविन्दक (ग्रब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। लेकिन देव-राजा में ही था।

# **८३. कालकिएए।** जातक

"मित्तो हवे सत्तपदेन होति.." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, श्रनाथपि ज्डिक के एक मित्र के बारे में कही।

१ देखो मित्रविन्दक जातक (१०४)।

# क. वर्तमान कथा

वह स्रनाथिपिण्डक का लगोटिया यार था। दोनों ने एक ही स्राचार्यं के पास (इकट्ठे) शिल्प सीखा था। उसका नाम था कालकण्णी
(—मनहूस)। समय बीतते बीतते वह दुर्गति को प्राप्त हो, (श्रासानी से)
न जी सकने के कारण सेठ के पास चला श्राया। सेठ ने उसे श्राश्वासित कर,
खर्चा दे, उसके परिवार का पालन किया। वह सेठ का उपकारी हो, उसके
सब काम करने लगा। जब वह सेठ के पास श्राता, तो उसे कहा जाता—
"कालकण्णी! खडा हो, कालकण्णी! बैठ, कालकण्णी! खा।" सो एक
दिन सेठ के दोस्तो ने सेठ के पास श्राकर कहा—"सेठ! इसे श्रपने पास
मत रखे। 'कालकण्णी! खडा हो, कालकण्णी! बैठ; कालकण्णी! खा।'
इस शब्द (को सुनने) से यक्ष भी भाग जाये। यह तेरे योग्य नही। यह दरिद्र
है, कुरूप है—नुम्हे इस से क्या?"

श्रनाथपिण्डिक (ने उत्तर दिया)—"नाम व्यवहार-मात्र है। पिण्डित-जन उसका ख्याल नहीं करते। श्रुत-माङ्गिलिक' नहीं होना चाहिए। केवल नाम के कारण, में श्रपने लगोटिया-यार को नहीं छोड़ सकता।"

उनकी बात न मान, एक दिन वह ग्रपने भोग-ग्राम में जाते समय, उसे ग्रपने घर का राखा बना कर गया।

'सेठ गाँव गया है। इसका घर लूटे'' (सोच) चोरों ने, हाथ मे नाना प्रकार के आयुध ले, रात को आकर, घर घेर लिया। वह (=राखा) भी, चोरो के आने की आशका से, जागता बैठा था। उसने, चोरो को आया जान, मनुष्य को जगा, 'तू शंख बजा', 'तू ढोल (==आलिज्ज) बजा' कह महासमज्ज (=मेला) करवाते हुए की तरह, सारे घर को एक शब्द कर दिया। 'घर खाली है, यह हमारी खबर गलत है। सेठ यही हैं' (सोच) चोर पाषाण, मुद्गर आदि वही छोड़; भाग गये।

<sup>&#</sup>x27;माङ्गलिक शब्दों का श्रवणमात्र श्रेयस्कर मानने वाले को श्रुत-माङ्ग-लिक कहते हैं।

स्रगले दिन लोगो ने जहाँ तहाँ पड़े, पाषाण मुद्गर स्रादि को देख, सिवग्न-चित्त हो, "यदि स्राज इस प्रकार का बुद्धिमान् गृह-रक्षक न होता तो चोर घर मे घुस, इसे यथारुचि लूट कर ले जाते। इस दृढ-मित्र के कारण सेठ की हानि नहीं हुई उन्नति हुई" उसकी प्रशसा कर, सेठ के गाँव से लौटने पर, उसे सब हाल कहा।

सठ ने उन्हे उत्तर दिया—"तुम मेरे ऐसे गृह-रक्षक मित्र को निकलवाते थे। यदि, तुम्हारी बात मान, मैंने इसे निकाल दिया होता, तो ग्राज मेरा कुछ भी (बाकी) न रहता। नाम नहीं चाहिए, हितैषी-चित्त ही चाहिए।" यह कह, उसे ग्रौर भी खर्चा दे 'ग्रब मेरे पास यह कहने-योग्य बात है' सोच बुद्ध के पास जा कर ग्रारम्भ से लेकर सब हाल कह सुनाया।

बुद्ध ने 'हे गृहपित ! न केवल ग्रभी कालकण्णी-मित्र ने ग्रपने मित्र के घर के माल-ग्रसबाब की रक्षा की, पहले भी रक्षा की हैं' कह, उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व महान् ऐश्वर्यवान् सेठ था। उसका कालकण्णी नाम का मित्र था। श्रष सब (कथा) प्रत्युत्पन्न (=वर्त्तमान)—कथा सदृश ही। बोधिसत्व ने भोग-ग्राम से लौट, वह समाचार सुन, 'यदि मैंने तुम्हारी बात मान, ऐसे मित्र को निकाल दिया होता, तो ग्राज मेरा कुछ भी न रहता' कह, यह गाथा कही—

मित्तो हवे सत्तपदेन होति सहायो पन द्वादसकेन होति, मासद्धमासेन च ञ्जाति होति तत्तुर्त्तीर म्रत्तसमोपि होति ॥ सोहं कथं म्रत्तसुखस्स हेतु चिरसन्थुतं कालकण्णि जहेय्यं॥

[ सात कदम साथ चलने से (ग्रादमी) मित्र हो जाता है, बारह (दिन)

साथ रहने से 'सहायक' हो जाता है, महीना आघा महीना (साथ रहने) से, 'बाति' (=िरश्तेदार) हो जाता है, और उस से अधिक (साथ) रहने से अपने जैसा (=आत्म-समान) भी हो जाता है। सो मैं अपने आत्म-सुख के लिए, चिर काल तक साथ रहे, इस कालकण्ण (मित्र) को कैसे छोड दूँ?

हवे, निपात-मात्र है। मैत्री करने वाला मित्र हैं—श्रथीत् (मित्र) मैत्री करता है, स्नेह करता है। सो यह (मित्र) सत्तपदेन होति, सात कदम इकट्ठे चलने से (भी) होता है, सहायो पन द्वादसकेन होति, सब कृत्यों को इकट्ठा करने से, सभी श्रवस्थाश्रो में साथ (=सह) जाने वाला, 'सहायक' सो यह, बारह दिन इकट्ठे रहने से होता हैं। मासद्धमासेन च महीना या श्राघा महीना (साथ रहने) से। आति होति, वाति (=रिश्तेदार)—सदृश होता हैं। तत्तुर्तीर, उस से श्रधिक साथ रहने से श्रतसमोपि होति (=श्रपने जैसा भी होता हैं)। जहेंग्यं, इस प्रकार के मित्र को कैसे छोड़ूं? मित्रता के रस की प्रशसा करता हैं।

उसके बाद से फिर कोई भी, उनके बीच में कुछ बोलने वाला नहीं हुआ। शास्ता ने यह धर्म-देशना कह जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का कालकण्णी, (भ्रव का) ग्रानन्द था। बाराणसी सेट्ठी तो में ही था।

#### ८४. श्रत्थस्सद्वार जातक

'ग्रारोग्यमिच्छे परमं च लाभं.." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, एक 'ग्रर्थ-कुशल' पुत्र के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती के एक अत्यन्त वैभवशाली श्रेष्ठी का एक पुत्र था, जिसकी आयु सात वर्ष की थी (श्रौर) जो अत्यन्त प्रज्ञावान् और 'श्रथं-कुशल' था। उसने एक दिन पिता के पास जाकर 'श्रथं का द्वार'—प्रश्न पूछा। वह उस प्रश्न (के उत्तर) को नहीं जानता था। उसने सोचा—"यह प्रश्न अत्यन्त सूक्ष्म हैं। सम्यक् सम्बुद्ध को छोड कर और कोई भी, ऊपर भवाग्र से लेकर, नीचे अवीची (नरक) तक के लोक में, इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता।" वह पुत्र को लें, बहुत सा माला-गन्ध-विलेपन साथ लिवा, जेतवन जाकर बुद्ध की पूजा-प्रणाम कर, एक ग्रोर बैठ, भगवान् से कहने लगा—"भन्ते। यह बालक बुद्धिमान् है। अर्थ-कुशल हैं। इस ने मुफ्ते अर्थ के द्वार के विषय में प्रश्न पूछा है। में इस प्रश्न को न जानने के कारण, आपके पास आया हूँ। अच्छा हो, यदि भगवान्, मुफ्ते इसका उत्तर दे।" बुद्ध ने 'उपासक! इस कुमार ने पहले भी मुफ्त से यह प्रश्न पूछा था, और मैंने इसे कह दिया था। उस समय यह इस प्रश्न का उत्तर जानता था, लेकिन जन्मान्तर की बात होने से अब इसे वह याद नहीं कह, उसके याचना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व महावैभवशाली श्रेप्ठी हुए। उनका एक पुत्र था, जिसकी श्रायु सात वर्ष की थी, श्रौर जो प्रज्ञावान् तथा 'ग्रर्थ-कुशल' था। उसने एक दिन पिता के पास जाकर 'तात! श्रर्थ का द्वार कौन सा है?' करके, श्रर्थ-द्वार-प्रक्त पूछा। उसके पिता ने उस प्रक्रन (के उत्तर) को कहते हुए, यह गाथा कही—

श्रारोग्यमिच्छे परमं च लाभं सीलं च वुद्धानुमतं सुतं च, धम्मानुवत्ती च श्रलीनता च श्रत्थस्स द्वारा पमुखा छळेते॥ [ ग्रारोग्यता, जो कि परम लाभ है, (सर्व प्रथम) उसकी इच्छा करे; शील (=सदाचार), ज्ञान-वृद्धों का उपदेश; (बहु) श्रुतता, धर्मानुकूल भ्राचरण, ग्रनासक्ति—यह छ ग्रर्थ (=उन्नति) के प्रमुख द्वार हैं।]

श्रारोग्यमिच्छे परमं च लाभं, 'च' निपातमात्र है। तात ! सर्व प्रथम ग्रारोग्य नामक परम लाभ की इच्छा करे! इस भ्रथं को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है- 'ग्रारोग्य कहते हैं, शरीर तथा मन दोनो का श्रारोग्य होना. ग्रनातुरता। शरीर के रोग से पीड़ित होने पर, न तो ग्रप्राप्त लाभ प्राप्त किया जा सकता है, न प्राप्त (भोग) का उपभोग किया जा सकता है। लेकिन ग्रनातुर (=स्वस्य) होने पर यह दोनो कर सकता है। चित्त के क्लेश (=विकार) से पीड़ित होने पर, न तो श्रप्राप्त ध्यान श्रादि लाभ प्राप्त किया जा सकता है, न प्राप्त घ्यान फिर समापत्ति-रूप से मीग किया जा सकता है। इसके ग्रस्वस्थ रहने पर, श्रप्राप्त लाभ प्राप्त नही होता, जो मिला है सो भी निष्प्रयोजन होता है। लेकिन इसके (श्रातुर) न होने पर, श्रप्राप्त लाभ होता है, प्राप्त लाभ सार्थक होता है। सो, श्रारोग्य परम लाभ है, सर्व प्रथम उसकी इच्छा करनी चाहिए। उन्नति का यह एक (मस्य) द्वार है। सीलं च, श्राचारशील इससे मतलब है लौकिक बरताव। बुद्धानुमतं, गुणवृद्धो की, पण्डितो की मिल, मतलब है गुणियो का, गुरुश्रों का उपदेश। सुतं च, उपयोगी श्रुत, इससे स्पष्ट किया है कि इस लोक में ग्रर्थ-निश्चित (=उपयोगी) बहुसच्चं ( बहुश्रुनता, ज्ञेय) है। अम्मान् वत्ती च, त्रिविध, सुचरित्र धर्म के अनुसार चलना, अलीनता च, चित्त की ग्रलीनता, श्रनीचता, इससे चित्त का श्रसक्चित होना, श्रेष्ठ होना, उत्तम होना स्पष्ट किया है। अत्यस्स द्वारा पमुखा छळते श्रर्थं = उन्नति, इस 'श्रर्थं' कहलाने वाली लौकिक, लोकोत्तर उन्नति के यह छ मुख्य द्वार हैं, उपाय हैं, प्रवेश-मार्ग हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व ने पुत्र के श्रर्थं-द्वार प्रश्न का उत्तर दिया। उस समय से वह, उन छ: धर्मों के श्रनुसार श्राचरण करने लगा।

किम्पक्क ] ४७६

बोधिसत्त्व भी दान ग्रादि पुण्य-कर्म करके (ग्रपने) कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह जातक का साराश निकाल दिया। उस समय का पुत्र ही यह (श्रव का) पुत्र था। महासेठ तो में ही था।

## ८४. किम्पक्क जातक

"श्रायतिदोसं नाञ्जाय.." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन मे विहरते हुए एक ग्रासक्त-चित्त भिक्षु के बारे मे कही।

# क. वर्तमान कथा

एक कुल पुत्र बुद्ध शासन में श्रत्यन्त श्रद्धा से प्रव्रजित हो, एक दिन श्रावस्ती में भिक्षा मॉगते हुए, एक श्रलकृत स्त्री को देखकर श्रासक्त हो गया। उसके श्राचार्य्य उपाध्याय उसे बुद्ध के पास लाये।

बुद्ध ने पूछा— "भिक्षु । क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?" उसके "सचमुच" कहने पर बुद्ध ने कहा 'हे भिक्षु । यह पाँच काम-गुण (=भोग) भोगने के समय सुन्दर लगते हैं। लेकिन, उनका भोगना निरय ग्रादि में उत्पत्ति का कारण होने से, वह किम्पक्कफल सदृश हैं। किम्पक्कफल, वर्ण-गन्ध तथा रस से युक्त होता हैं, लेकिन खाने पर ग्राँतो को टुकडे टुकडे कर, प्राणो का नाश कर देता हैं। पहले बहुत से ग्रादमी उसके दोष को न जान (=देख), उसके वर्ण-गन्ध तथा रस में ग्रासक्त हो उस फल को खाकर, प्राण गँवा बैठे। यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय,

बोधिसत्त्व ने सार्त्थवाह हो, पाँच सौ गाडियों के साथ पूर्व से पिश्चम को जाते हुए, एक जगल के द्वार पर पहुँच, मनुष्यो को एकत्र कर, उपदेश दिया— "इस जगल मे विष-वृक्ष हैं। मेरे बिना पूछे, कोई किसी ऐसे फल को न खाये, जिसे उसने पहले न खाया हो।"

मनुष्यों ने जगल को पार कर, उसके द्वार पर फलों से लदा हुम्रा एक किम्पक्क वृक्ष देखा। उसके टहने, शाखाएँ, पत्ते तथा फल, म्राकार, वर्ण, रस मौर गन्ध की दृष्टि से म्राम के सदृश ही थे। उनमें से कुछ (म्रादिमयो) ने वर्ण, गन्ध तथा रस की म्रोर खिच, उन्हें म्राम के फल समक्त कर खाया। कुछ जने 'सार्त्यवाह को पूछ कर खायेगे,' (करके) लिये खड़ें रहे। बोधिसत्त्व ने वहाँ पहुँच, जो फल लिये खड़ें थे, उन से वह फल फेकवा, जिन्होंने खा लिये थे, उन्हें वमन करा दवाई दी। उन में से कुछ तो निरोग हो गये, लेकिन जो बहुत पहले खा चुके थे, वे मर गये। वोधिसत्त्व सकुशल इन्छित स्थान पर पहुँच, (वहाँ) मुनाफा कमा, फिर म्रपने स्थान पर म्राकर, दान म्रादि पुण्य करके, कर्मानुसार (परलोक) गया। शास्ता ने वह कथा कह, भ्रभिसम्बुद्ध हो, यह गाथा कही—

#### श्रायतिदोसं नाञ्जाय यो कामे पतिसेवति, विपाकन्ते हनन्ति नं किम्पक्कमिव भक्खितं॥

[जो (ब्रादमी) काम-भोगों के भविष्य के दुरपरिणाम को विना ख्याल किये काम-भोगो का सेवन करता है, उस ब्रादमी को, उसके काम-भोग, फल देने के समय वैसे ही मार डालते हैं, जैसे खाये हुए किम्पकर-फल ने (मार डाला)।

श्चायितवोसं नाञ्जाय, श्रनागत (==भिविष्य) के दुष्पिरिणाम को न जान कर। यो कामे पितसेवित, जो (श्रादमी) वस्तुकामो तथा क्लेश-कामों का सेवन करता है। विपाकन्ते हनन्ति नं, वे काम-भोग उस श्रादमी को श्रपने विपाक (=फल) देने के समय श्रर्थात् श्रन्त मे, निरय श्रादि मे उत्पत्ति (तथा) नाना प्रकार के दुःखों से युक्त कर मारते हैं। कैसे ? किस्प-क्किमव भिक्ततं जैसे खाने के समय वर्ण-रस-गन्ध सम्पत्ति के कारण सीलवीमंस ] ४८१

रुचिकर किम्पक्कफलं, यदि भविष्य का दुष्परिणाम न देख कर खा लिया जाये, तो अन्त मे मार डालता है, प्राणो का नाश कर देता है, इसी प्रकार परिभोग के समय यद्यपि काम-भोग रुचिकर लगते है, तो भी विपाक देने के समय मार डालते हैं।

इस उपदेश को मेल मिलने तक पहुँचा, (ग्रायं) सत्यो को प्रकाशित किया। (ग्रायं—) सत्यो (के प्रकाशन) के ग्रन्त में उत्कण्ठित भिक्षु श्रोतापत्ति फल का लाभी हुग्रा। शेष परिषद् में से भी कुछ श्रोतापन्न हुए, कुछ सक्टदागामी, कुछ ग्रन्तागामी, कुछ ग्रह्तं हुए। बुद्ध ने भी यह धर्म-देशना कह, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय की परिषद् (ग्रब की) बुद्ध-परिषद् थी। सार्त्यंवाह (=कारवाँ का सरदार) तो में ही था।

## ८६. सीलवीमंस जातक

"सीलं किरेव कल्याणं " यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहरते समय, एक शील (=सदाचार) विचारक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही।

# क वर्तमान कथा

उसकी जीविका कोशल राजा पर निर्भर थी। वह त्रिशरण-गत, ग्रखड पचशीली तथा तीनो वेदो में पारगत था। यह शीलवान् ( —सदाचारी) हैं, (करके) राजा उसका विशेष सम्मान करता था। वह सोचने लगा— "यह राजा, ग्रन्य ब्राह्मणों की श्रपेक्षा, मेरा विशेष सम्मान करता हैं, विशेष रूप से गौरव प्रदर्शित करता हैं। क्या यह मेरा सम्मान मेरी जाति, गोत्र, कुल, प्रदेश, तथा शिल्प सम्पत्ति ( —शान) के कारण करता हैं, ग्रथवा शील-सम्पत्ति ( —सदाचार) के कारण ? ग्रच्छा, इस की परीक्षा करूँगा।"

एक दिन उसने, राजा की सेवा में जा, वापिस घर लौटते समय, एक सराफ (की दुकान) के फट्टे पर से, बिना उसे पूछे, एक कार्पापण उठा लाया। सराफ, ब्राह्मण के प्रति गौरव का भाव होने से, बिना कुछ बोले (चुप) बैठा रहा। श्रगले दिन, दो कार्षापण उठा लाया। सराफ ने वैसे ही सहन कर लिया। तीसरे दिन कार्षापणो की मुट्ठी उठा ली। 'ग्राज तुभे राजकीय-माल लूटते तीसरा दिन हो गया हैं' (करके) सराफ ने, 'में ने राजकीय-माल लूटने वाला चोर पकडा हैं'—तीन बार शोर मचाया। मनुष्य, इधर उघर से श्राकर 'बहुत देर से तू सदाचारी बना फिरता था' (करके) दो तीन प्रहार दे. राजा के पास लें गये।

राजा ने श्रफसोस करते हुए, 'ब्राह्मण । किस लिए ऐसा पाप-कर्म करता है' कह, श्राज्ञा दी, 'जाश्रो! इसको राज-दण्ड दो।'

ब्राह्मण बोला—"महाराज <sup>!</sup> में चोर नहीं हूँ।"

"तो फिर किस लिए राजकीय सामान के श्रधिकारी के फट्टे पर से कार्षापण उठाये?"

"तुम्हारे, मेरा अत्यन्त सम्मान करने पर, मेरे मन में सन्देह था कि यह जो राजा मेरा सम्मान करता है, वह मेरी जाति भ्रादि के कारण, श्रथवा शील (=सदाचार) के कारण? सो, इसकी परीक्षा करने के लिए, मैने ऐसा किया। श्रव मुभे सम्पूर्णत. विश्वास हो गया, कि तू ने जो मेरा सम्मान किया, वह (मेरे) शील के ही कारण किया, न कि जाति भ्रादि के कारण। सो, इस कारण (=बात) से, मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि लोक में शील (=सदाचार) ही उत्तम है, शील ही प्रमुख है। घर में रह कर काम-भोगों का उपभोग करते हुए मैं इस शील के (नियमो के) श्रनुसार नही रह सकता। इस लिए, मैं श्राज ही जेतवन जा कर बुद्ध के पास प्रक्रित होऊँगा। देव! मुभे प्रकृज्या (की श्राज्ञा) दें।" यह कह, राजा की स्वीकृति ले, जेतवन की श्रोर चला गया।

उसके जाति-सुहृद-वन्धुग्रों ने उसे रोकने का प्रयत्न किया; लेकिन जब वह न रोक सके, तो लौट गये।

उसने बुद्ध के पास जा, प्रब्रज्या की याचना कर, प्रब्रज्या तथा उपसम्पदा पा, कर्मस्थान ( =योगाभ्यास) में लगे रह, विदर्शना ( =क्कान) की बृद्धि से,

सीलवीमंस ] ४८३

स्रईत्व प्राप्त किया। तब बुद्ध के पास जा स्रञ्जा (=स्रईत्व) का व्याकरण (=प्रकाशन) किया—भन्ते । मेरी प्रब्रज्या का उद्देश पूरा हो गया।

उसका वह 'ग्रर्हत्व-प्रकाशन' भिक्षुसघ मे प्रगट हो गया। सो एक दिन धर्म-सभा मे बैठे भिक्षु उसकी प्रशसा कर रहे थे——'ग्राबुसो । राजा का ग्रमुक उपस्थायक ब्राह्मण, ग्रपने शील का विचार कर, राजा से पूछ, प्रब्रजित हो, ग्रर्हत्व मे प्रतिष्ठित हुग्रा।"

शास्ता ने स्राकर पूछा—"भिक्षुस्रो! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह (बातचीत)" कहने पर, (शास्ता ने) कहा—"भिक्षुस्रो! न केवल स्रभी इस ब्राह्मण ने स्रपने शील का विचार कर, प्रब्रजित हो, स्रपनी प्रतिष्ठा (= प्रह्तिंव लाभ) की, पहले भी पण्डितो ने स्रपने शील का विचार कर, प्रब्रजित हो, स्रपनी प्रतिष्ठा की है।" यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व उसके पुरोहित थे। वे दानी थे, सदाचारी थे; तथा ग्रखड-पञ्च-शीली थे। राजा, ग्रन्थ ब्राह्मणों की ग्रपेक्षा, उनका विशेष सम्मान करता था। ....सब पूर्व सदृश ही। लेकिन बोधिसत्त्व को बाँघ कर, राजा के पास ले जाने के समय, रास्ते में सँपेरे साँप का खेल करते हुए, उसे पूँछ से पकडते, गरदन पर डालते तथा गले में लपेटते थे। उन्हें देख, बोधिसत्त्व ने कहा—'तात! इसे पूँछ से मत पकडो, इसे गले में गरदन में मत लपेटो। ग्ररे, यह इस कर, प्राणों का नाश कर देगा।" सँपेरे बोले—"ब्राह्मण यह सप्, शीलवान् हैं, सदाचारी हैं, वैसा दुशील नहीं हैं। तू ग्रपनी दुशीलता ग्रनाचार के कारण 'राजकीय माल लूटने वाला चोर' (कहकर), बाँघ कर ले जाया जा रहा हैं।" वह सोचने लगा—''डसना छोडने पर, कष्ट देना छोडने पर, जब साँप भी 'शीलवान्' कहलाते हैं, तो फिर ग्रादमी का तो क्या कहना ? लोक में शील ही उत्तम हैं। उससे बढ कर ग्रीर कुछ नहीं।"

(लोग) उसे राजा के पास ले गये। राजा ने पूछा—"तात । यह क्या ?" "देव । राजकीय धन लूटने वाला चोर।" "तो इसे राज-दण्ड दो।" ब्राह्मण बोला—"महाराज<sup>।</sup> में चोर नहीं हूँ।"

"तो फिर किस लिए कार्षापण उठाये ?" पूछने पर, उक्त प्रकार से ही सब कहते हुए, कहा 'सो, में इस कारण से इस निश्चय पर पहुँचा, कि इस लोक मे शील ही उत्तम हैं, शील ही प्रमुख हैं। श्रौर तो रहने दो, यह विषैला सर्प भी, न डसने पर, न कष्ट देने पर 'शीलवान्' कहलाता हैं। इस कारण से भी शील ही उत्तम हैं, शील ही श्रेष्ठ हैं।" इस प्रकार शील की प्रशसा करते हुए, यह गाथा कही—

#### सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं, पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्झित ॥

[ शील ही कल्याण-कर हैं; लोक में शील से बढकर कुछ नहीं। देखों। यह घोर विषेला सर्प (भी) शीलवान् (हैं) करके, मारा नहीं जाता।

"सीलं किरेव ." शरीर-वाणी तथा मन से सदाचार (के नियमो) का उल्लंघन न करना, प्राचार-शील। किर, परम्परा से कहा जाता है। कल्याणं, सुन्दरतर। श्रनुत्तर, ज्येष्ठ, सब गुणो का दाता। पस्स, श्रपनी देखी बात को सामने करके कहता है। सीलवा'ति न हञ्ख्राति, घोर विपैला सर्पभी, केवल न डसने, न कष्ट देने भर से, 'शीलवान्' करके प्रशंसित होता है। न हञ्ब्राति, मारा नही जाता। इस कारण से भी, शील ही उत्तम है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व, इस गाया से, राजा को धर्मोपदेश कर, काम-भोगो को छोड, ऋषि प्रब्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, हिमवन्त मे प्रवेश कर, पाँच ग्रभिज्ञा, तथा ग्राठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, ब्रह्मलोकगामी हुए।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह जातक का साराश निकाल दिया। उस समय की राज परिषद् (ग्रब की) बुद्ध परिषद् थी। पुरोहित तो में ही था।

#### ८७. मंगल जातक

"यस्स मङ्गला समूहता" यह (गाथा) बुद्ध ने बेळुवन मे विहार करते समय, एक ऐसे ब्राह्मण के बारे मे कही, जो वस्त्र मे (ग्रच्छे-बुरे) लक्षण देखता था।

### क. वर्तमान कथा

राजगृह-वासी एक ब्राह्मण शगुनो मे विश्वास करता था। वह त्रिरत्न ( च्बुद्ध-धर्म-सघ) से अप्रसन्न तथा मिथ्या-विचार वाला था, (लेकिन) था धनी, अत्यन्त धनी, बहुत भोग-सम्पत्ति वाला। उसके सन्दूक मे रक्खे हुए वस्त्रो के जोड़े को चूहे काट गये। (जब) नहाकर, 'वस्त्र ले आग्रो' कहा, तो बताया कि उन्हें चूहे काट गये।

उसने सोचा—"यदि यह चूहो का खाया कपडो का जोड़ा, इस घर में रहेगा, तो महाविनाश होगा। यह अमाङ्गिलिक है, मनहूसीयत है, इसे लडके-लडकी, नौकर चाकरों को भी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जो कोई इसे लेगा, उसका सब कुछ विनाश हो जायगा। इसे कच्चे रुमशान में फिंकवाऊँगा। लेकिन इसे नौकर चाकरों के हाथ में नहीं दे सकता, कहीं वे लोभ के मारे इसे रख ले, और इस प्रकार विनाश को प्राप्त हो। इसे अपने पुत्र के हाथ भेजूँगा।" उसने अपने पुत्र को बुलवा, वह बात समका कर भेजा— 'लेकिन तात! तू भी इसे विना हाथ से छुए, डण्डे पर डाल कर ले जा, और कच्चे रुमशान में फेक, सिर से नहां कर, लीट आ।"

बुद्ध भी उस दिन प्रात काल ही ऐसे वन्धुस्रो को देखते हुए, जिनके (स्रार्य) मार्ग पर स्राने की सम्भावना हो, पिता-पुत्र के श्रोतापित फल प्राप्त करने की सम्भावना देख, मृगों के शिकारी के मृगों की जगह जाने की तरह,

कच्चे रमशान के द्वार पर जाकर छ वर्ग की रिश्मयों को विसर्जित करते हुए बैठे। माणवक (ग्रपने) पिता की बात मान, उस जोडे-वस्त्र को, घर में ग्रा घुसे साँप की तरह लकडी पर डालकर कच्चे रमशान के द्वार पर लाया।

बुद्ध ने पूछा---"माणवक । क्या करता है ?"

"भो गौतम । यह चूहो का खाया हुन्ना जोडा-वस्त्र (है), (यह) मनहूसीयत है, (यह) हलाहल-विष के समान है। मेरे पिता ने इस डर से कि कही दूसरा (कोई) फेकने जाकर लोभ के मारे ले न ले, मुभे (इसे फेकने) भेजा है। मैं इसे फेक कर, सिर से नहाने के लिए श्राया हूँ।!"

"ग्रच्छा! तो फेक दे।"

माणवक ने फेक दिया। शास्ता 'श्रव यह हमारे योग्य हैं' (कह् ) उसके सामने ही, उसके 'भो गौतम । यह श्रमाङ्गलिक हैं, यह मनहूमीयत हैं; इसे मत लें, इसे मत लें मना करते रहने पर भी, उठा कर वेंळुवन की श्रोर चलें गये। माणवक ने जल्दी से जाकर पिता को कहा—''तात । मैंने जिस जोडे-वस्त्र को कच्चे श्मशान में फेका, उसे मेरे मना करने पर भी श्रमण गौतम 'हमारे योग्य हैं' (कह) ले वेंळुवन चला गया।

ब्राह्मण ने सोचा—"वह जोडा वस्त्र ग्रमाङ्गिलिक है, मनहूसियत है। उसे पहनने से श्रमण गौतम भी नष्ट होगा, विहार भी नष्ट होगा। उस से हमारी निन्दा होगी। सो में श्रमण गौतम को ग्रौर दूसरे बहुत से वस्त्र दे कर, वह वस्त्र फिकवाऊँ।"

वह बहुत से वस्त्र लिवा, पुत्र सिहत वेळुवन जा, शास्ता को देख एक श्रोर खडे होकर बोला—"भो गौतम । क्या तू ने सचमुच, कच्चे श्मशान में से जोडा-वस्त्र लिया है ?"

"हाँ, ब्राह्मण<sup>।</sup> सचमुच"

"भो गौतम! वह वस्त्र जोडा ग्रमाङ्गिलिक है। उसे पहनने से तुम नष्ट होंगे, सारा विहार नष्ट होगा। यदि ग्रोढ़ना, बिछौना पर्य्याप्त न हो, तो इन वस्त्रो को लेकर, उसे फेंकवा दो।"

बुद्ध ने 'ब्राह्मण! हम प्रब्रजित हैं। कच्चे श्मशान में, गली में, कूडे में, नहाने के घाट (च्लीर्थ) पर तथा महामार्ग मे—ऐसी ही जगहो पर फेंके हुए या गिरे हुए चीथडे हमारे योग्य हैं। श्रौर तू तो, न केवल श्रभी, किन्तु पहले भी इसी विचार का था' कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे मगध देश ( = राष्ट्र ) के राजगृह नगर मे धार्मिक मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व एक उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। ज्ञान प्राप्त करने के बाद ऋषि प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो गये। अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ लाभ कर, हिमवन्त में रहते समय, एक बार हिमवन्त से निकल, राजगृह नगर में राजोद्यान में पहुँचे। वहाँ रह, दूसरे दिन भिक्षा माँगने के लिए नगर में प्रवेश किया। राजा ने उसे देख कर बुलवाया और प्रासाद में बिठा, भोजन खिला, (उससे) राजोद्यान में ही रहने का वचन लिया। बोधिसत्त्व राज-भवन में भोजन करते हुए उद्यान में रहने लगे।

उस समय राजगृह नगर मे एक ऐसा ब्राह्मण था, जो वस्त्रो मे (श्रच्छे-बुरे) लक्षण देखता था। उसके बक्से मे रक्खा हुग्रा जोडा वस्त्र...सब पूर्वोक्त सदृश ही। हाँ, माणवक के श्मशान को जाने के समय, बोधिसत्त्व पहले से ही जा कर, श्मशान द्वार पर बैठे रह, उसका फेका हुग्रा जोडा-वस्त्र लेकर उद्यान चले गये। माणवक ने जाकर पिता को कहा। पिता ने 'राजा का विश्वस्त तपस्वी नष्ट न हो जाये' सोच बोधिसत्त्व के पास जाकर कहा— तपस्वी । जिन वस्त्रो को तू ने लिया है, (उन्हे) छोड नष्ट न हो।

तपस्वी ने उत्तर दिया—रमशान मे छोडे हुए चिथडे, हमारे अनुकूल (च्योग्य) है। हम शकुन मानने वाले (च्कोतूहल मङ्गलिका) नही। फिर बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, बोधिसत्त्व, किसी ने शकुन मानने की प्रससा नहीं की। इस लिए बुद्धिमान् को शकुन मानने वाला नहीं होना चाहिए। (यह) कह, ब्राह्मण को धर्मोपदेश दिया।

ब्राह्मण ने धर्म सुन, पूर्व-विचार (=दृष्टि) त्याग बोधिसत्त्व की शरण ग्रहण की। बोधिसत्त्व भी ग्रविनष्ट-ध्यान रह, ब्रह्मलोकगामी हुग्रा। बुद्ध ने भी पूर्व-जन्म की इस कथा को ला, ग्रभिसम्बुद्ध हुए रहने की ग्रवस्था मे, ब्राह्मण को धर्मीपदेश देते हुए, यह गाथा कही—

यस्स मङ्गला समूहता उप्पाता सुपिना च लक्खणा च, स मङ्गलदोसवीतिवत्तो युगयोगाधिगतो न जातुमेति।।

जिस ग्रहंत् = क्षीणाश्रव के दृष्ट-मङ्गल, श्रुत-मङ्गल, मृत-मङ्गल—यह तीनो प्रकार के मङ्गल समूल उच्छित्र हो गये हैं। उप्पाता सृपिता च लक्खणा च, 'इस प्रकार का चन्द्रग्रहण होगा, इस प्रकार का सूर्य-ग्रहण होगा, इस प्रकार का नक्षत्र-ग्रहण होगा, इस प्रकार का तारा (=उल्का) गिरेगा, तथा इस प्रकार का नक्षत्र-ग्रहण होगा, इस प्रकार का तारा (=उल्का) गिरेगा, तथा इस प्रकार का विशा-वाह (=विशा में ग्राग लगना) होगा' यह पाँच महा-उत्पात हैं, नाना प्रकार के स्वप्न, श्रुभ-लक्षण, ग्रुभ-लक्षण, स्त्री-लक्षण, पुरुप-लक्षण, वास-लक्षण, वासी-लक्षण, ग्रास-लक्षण, वृष्य-लक्षण, ग्रायुथ-लक्षण, वस्त्र-लक्षण, इस प्रकार के लक्षण जिसके यह मिथ्या विश्वास ( दृष्टि-स्थान) समूल नष्ट हो गये हैं, वह (ग्रावमी) इन उत्पात ग्रावि से ग्रपना मङ्गल (=कल्याण) होना वा ग्रमङ्गल होना नहीं विश्वास करता। स मङ्गल वोस-वीतिवत्तो, वह क्षीणाश्रव, सब मङ्गलों के दोपो का ग्रातिक्रमण कर गया, लाँव गया। युगयोगाधिगतो न जातुमेति इति, कोध तथा उपनाह (=बद्ध-वैर), प्रक्ष', पलास' ग्रावि करके दो-दो एक साथ ग्राये हुए क्लेश (=वित्त विकार) 'युग' कहलाते हैं। काम-योग, भव-योग, दृष्टियोग ग्राविद्या-योग, यह चारों, संसार में जोतने वाले (=योजन भावतो) होने से

<sup>ै</sup> म्रक्ष---दूसरे के गुणों को नष्ट करना।

<sup>&</sup>lt;sup>र प्लास—–श्रपनी दूसरे गुणी के साथ तुलना करना ।</sup>

'योग' कहलाते हैं । वे युग तथा योग, युगयोग, उन्हे स्रधिगत करने वाला, जीतने वाला, लॉघ जाने वाला, सम्यक् स्रतिकान्त कर जाने वाला, क्षीणाश्रव भिक्षु, न जातुमेति फिर जन्म-ग्रहण करके, निश्चय से इस लोक मे नही स्राता ।

इस प्रकार बुद्ध ने इस गाथा से ब्राह्मण को धर्मोपदेश कर फिर, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। (श्रार्य-) सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त मे, वह सपुत्र ब्राह्मण श्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

बुद्ध ने जातक का साराश निकाला। उस समय (भी) यही (दोनो जने) पिता पुत्र थे। तपस्वी तो मैं ही था।

#### ८८. सारम्भ जातक

"कल्याणिमेव मुञ्चेय्य ." यह (गाथा) बुद्ध ने श्रावस्ती मे विहार करते समय गाली सम्बन्धी शिक्षा-पद (=ितयम) के बारे मे कही।

# क. वर्तमान कथा

दोनो कथाये, पूर्वोक्त निन्द विशाल जातक के समान ही हैं। लेकिन इस जातक में बोधिसत्त्व, गन्धार देश (=राष्ट्र) के तक्षशिला (नगर) में एक ब्राह्मण का सारम्भ नामक बैल हुआ।

#### ख अतीत कथा

बुद्ध ने पूर्व-जन्म की यह कथा कह, श्रिभसम्बुद्ध हुए रहने की श्रवस्था मे

१ नन्दिविशाल जातक (२८)

यह गाथा कही---

#### कल्याणिमेव मुञ्चेय्य निह मुञ्चेय्य पापिकं, मोक्खो कल्याणिया साधु मुत्वा तपति पापिकं।।

[कल्याणकर वाणी को (मुँह से) छोडे। पापी वाणी को (मुँह से) न छोड़े। कल्याण कर वाणी का छोडना श्रेयस्कर (=साधु) हैं, पापी वाणी को (मुँह से) छोडने वाला (पीछे) तपता है। ]

कल्याणिमेव मुञ्चेयय्य ." असत्य, कठोर, व्यर्थं, चुगली (की बात)
—इन चार दोषो से मुक्त, कल्याणकर, सुन्दर, दोष रिहत वाणी ही (मुंह से)
निकालं, छोडे, बोले। निह मुञ्चेय्य पापिकं, पापी, बुरी, दूसरो को श्रिय,
अरुचिकर, (वाणी) न निकाले, न बोले। मोक्खो कल्याणिया साधु, कल्याणकारी वाणी का बोलना ही, इस लोक मे अच्छा है, सुन्दर है, भद्र है। मुत्य।
तपित पापिकं, पापी, कठोर वाणी को छोडकर, निकाल कर, कह कर,
वह आदमी अताप को प्राप्त होता है, सोचता है, दु ख पाता है।

इस प्रकार बुद्ध ने यह धर्म-देशना ला, जातक का साराश निकाला। उस समय का ब्राह्मण (श्रव का) श्रानन्द था, ब्राह्मणी (श्रव की) उत्पलवर्णा (भिक्षुणी) थी, (लेकिन) सारम्भ तो में ही था।

#### ८६, कुहक जातक

"वाचाव किर ते श्रासि", यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन मे विहरते समय, एक ढोगी = पाखण्डी के बारे में कही।

### क. वर्तमान कथा

कुहक-कथा उद्दाल जातक भे ग्रायेगी।

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, एक ग्राम के ग्राश्रय मे एक कुटिल-हृदय, ढोगी जिटल तपस्वी रहता था। एक गृहस्थ (कुटुम्बी) उसके लिए, जगल मे एक पर्णशाला बनवा उसे वहाँ बसा, ग्रपने घर मे, उसकी प्रणीत-भोजन से सेवा करता था। उस (गृहस्थ) ने, उस कुटिल जिटल (=तपस्वी) को, 'यह सदाचारी हैं' विश्वास कर, चोरो के डर से, सोने के सौ सिक्के उसकी पर्णशाला मे ले जाकर, वहाँ जमीन मे गाड कर, कहा—"भन्ते! इसे देखते हैं?" तपस्वी बोला—"ग्रावुस! प्रश्रजितो को इस प्रकार कहना ग्रनुचित है। हमे पराई चीज मे लोभ का नाम नही।" "भन्ते! ग्रच्छा" कह उसकी बात पर विश्वास कर वह चला गया।

दुष्ट तपस्वी ने 'इतने से गुजारा चल सकता है' (सोच), कुछ दिन बिता कर, उस सोने को ले, रास्ते के बीच में एक जगह रख, श्राकर पर्णशाला ही में रह, फिर एक दिन उस (गृहस्थ) के घर में भोजन कर चुकने पर कहा— श्रावुसो । हमने चिर-काल तक तुम्हारा ग्राश्रय ग्रहण किया। चिरकाल तक एक ही स्थान पर रहने से मनुष्यो से ससर्ग ( = लगाव) हो जाता है। प्रव्रजितो के लिए ससर्ग ( = मोह) चित्त का मैल है। इस लिए, (ग्रब) हम जाते है।

बार बार स्राग्रह करने पर भी, उसने (स्रिधिक) ठहरना स्वीकार न किया । 'ऐसा है, तो पधारे भन्ते ।' कह, वह उसे ग्राम के द्वार तक छोड कर लौट स्राया ।

तपस्वी थोड़ी दूर जाकर 'इस गृहस्थ को, मुभे घोखा देना चांहिए' (सोच) ग्रपनी जटाग्रो के ग्रन्दर एक तिनका रख कर लौट ग्राया।

गृहस्थ ने पूछा--"भन्ते । क्यो लौट ग्राये ?"

"ग्रावुसो<sup>।</sup> तुम्हारे घर की छत में से मेरी जटाग्रो में एक तिनका

¹ उद्दाल जातक (४८७)

[ 8.8.58

गिर पडा। बिना दी हुई चीज लेना, प्रव्रजित के लिए मुनासिब नही। उस (तिनके) को लेकर स्राया हुँ।"

गृहस्थ ने 'भन्ते । छोड कर जाये' कह 'ग्रहो । श्रार्थ्य कितने सन्देहशील हैं; पराया तिनका तक नहीं लेते' (सोच) प्रसन्न हो, प्रणाम कर विदा किया।

उस समय बोधिसत्त्व ने, सामान के लिए प्रत्यन्त (=देश) को जाते हुए, उसी गृहस्थ के घर में निवास किया था। तपस्वी की बात सुन 'इस दुष्ट तपस्वी ने, प्रवश्य इस गृहम्थ का कुछ न कुछ उडाया होगा' सोच, पूछा— सौम्य! क्या तू ने इस तपस्वी के पास कुछ रक्खा है?

"सौम्य! है, सोने के सौ सिक्के।"

"तो जा, उस की खबर ले।"

उसने पर्णशाला जाकर, उसे वहाँ न देख, जल्दी से श्राकर कहा— "सौम्य । नहीं है।"

"तेरे सोने को श्रौर किसी ने नही लिया, उस कूट-नपस्वी ने ही लिया है, श्रा उसका पीछा करें, उसे पकड़ें।"

(दोनो ने) वेग से जाकर, कुटिल तपस्वी को पकड, हाथो श्रीर पैरो से पीट कर, उससे सोना मँगवा कर, लिया।

बोधिसत्त्व ने सोने को देख 'सी सिक्के ले जाते लज्जा नही श्राई, तिनके मे शक हुश्रा' कह, उसकी निन्दा कर, यह गाथा कही— '

वाचाव किर ते भ्रासि सण्हा सिखलभाणिनो, तिणमत्ते भ्रसिज्जित्थो नो च निक्खसतं हरं॥

[प्रियभाषी । तेरी वाणी भर ही मधुर थी । तृण-भर ले जाते तो तुभे शक हुग्रा, लेकिन सौ सिक्के (सोना) ले जाते नहीं।]

वाचाव किर ते ग्रासि सण्हा सिखलभाणिनो, 'प्रव्रजितो को विना दिया तिनका भी लेना नामुनासिब हैं' इस प्रकार मृदु वचन बोलते हुए की, तेरी केवल बात चिकनी थी। तिणमत्ते ग्रसिजित्थो, कुटिल तपस्वी । एक तिनके में सन्देह (—कौकुत्य) करता हुग्रा, तू उसमे ग्रासक्त (—लग्न) हुग्रा जाता म्रकतञ्जु ] ४६३

था, नो च निक्खसतं हर, लेकिन इन सौ सिक्को को ले जाते हुए तू, ग्रनासक्त निर्लग्न ही रहा ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उसकी निन्दा कर, 'हे कुटिल जटिल ( —तपस्वी) । ग्रब ऐसा मत करना' कह, उपदेश दे, स्वकर्मानुसार (परलोक) गया ।

बुद्ध ने यह धर्म देशना ला 'भिक्षुग्रो । न केवल ग्रभी यह भिक्षु पाखडी है, पहले भी पाखडी ही रहा है', कह, जातक का साराश निकाला। उस समय का कुटिल तपस्वी (ग्रब का) पाखण्डी-भिक्षु था। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

#### ६०. श्रकतञ्जु जातक

"यो पुब्बे कतकल्याणो "यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन मे विहार करते समय, श्रनाथपिण्डिक के सम्बन्ध मे कही।

# क वर्तमान कथा

प्रत्यन्त (-देश) वासी एक सेठ उसका ग्रदृष्ट मित्र था। उसने प्रयन्त देश की पैदावार से पाँच सौ गाडियाँ भरकर, ग्रपने ग्रादिमयों को कहा—"भो। जाग्रो। इस सामान को श्रावस्ती ले जाकर, हमारे मित्र वडे सेठ ग्रनाथ-पिण्डिक की उपस्थिति में बेच कर, इसके बदले में सामान ले ग्राग्रो।"

उन्होने 'ग्रच्छा' कह, उसकी बात स्वीकार कर, श्रावस्ती जा, बड़े सेठ से मिल, उसे भेट दे, वह बात कही।

बडे सेठ ने 'स्वागत है' कह, उनको निवास स्थान श्रौर खर्चा ( =सीधा) दिलवा, मित्र का कुशल समाचार पूछ (उस) सामान को बेच उसके बदले मे

सामान दिलवाया । उन्होने प्रत्यन्त देश वापिस लौट, वह हाल श्रपने सेठ को कहा ।

श्चागे चलकर, श्चनाथिपिण्डिक ने भी, उसी तरह पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ भेजीं। मनुष्य वहाँ जाकर, भेट दे प्रत्यन्त (-देश) के सेठ से मिले। उसने 'कहाँ से श्चाये ?' पूछा।

"श्रावस्ती से, तुम्हारे मित्र श्रनायपिण्डिक के पास से"।

होगा किसी श्रादमी का नाम श्रनाथिपिडक कह, उनकी हँसी की। फिर भेंट लेकर, 'तुम जाश्रो' कहा श्रौर चलता किया। न निवास-स्थान ही दिया, न खर्चा। उन्होंने श्रपने श्राप सामान बेच उसके बदले में सामान ले, श्रावस्ती श्राकर, सेठ को सब हाल कह सुनाया।

उस प्रत्यन्त-वासी (सेठ) ने फिर एक बार उसी तरह पाँच सौ गाडियाँ श्रावस्ती भेजी। मनुष्यों ने भेट लेकर बड़े सेठ से भेट की। उन्हें देख, श्रावस्ती भेजी। मनुष्यों ने भेट लेकर बड़े सेठ से भेट की। उन्हें देख, श्रावसिपिण्डक के घर के श्रादमी 'स्वामी! इनके निवास, भोजन तथा खर्चें का हम ख्याल रक्खेंगे' कह, उनकी गाडियों को नगर के बाहर, ऐसे वैमे ही स्थान पर खुलवा कर 'तुम यही रहो। तुम्हारा यागु-भात श्रीर खर्चा यही होगा' कह, जाकर नौकर चाकरों को इकट्ठा कर, श्राधीरात के समय, पाँच सौ की पाँच सौ गाडियाँ लुटवा, उनके श्रोढ़ने बिछावने भी फाड, बैलों को भगा, गाडियों को बिना पहिये की कर, जमीन पर डाल, पहियों तक को लेकर चले गये। प्रत्यन्तवासी, श्रपने वस्त्रों तक से हाथ धो, डर के मारे जल्दी से भाग कर प्रत्यन्त-देश पहुँचे। सेठ के श्रादमियों ने, बड़े सेठ को वह हाल कहा। उसने 'यह कहने योग्य बात हैं' सोच, बुद्ध के पास जाकर, वह सब हाल, श्रारम्भ से सुनाया।

बुद्ध ने 'हे गृहपति । न केवल श्रभी वह प्रत्यन्त-वासी ऐसा है, वह पहले भी ऐसा ही था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही---

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी में (राजा) **बहावत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व बाराणसी में महावैभवशाली सेठ हुन्ना। एक प्रत्यन्त-वासी सेठ उसका श्रदृष्ट मित्र था। . सारी श्रतीत-कथा, वर्तमान कथा के सदृश ही। श्रपने श्रादिमियो द्वारा 'श्राज हमने ऐसा किया' कहने पर बोधिसत्त्व ने 'जो श्रपने पर पहले किये उपकार को नही याद रखते, उनको पीछे ऐसा ही (फल) मिलता है' कह, सम्प्राप्त मनुष्यो को धर्मोपदेश देते हुए, यह गाथा कहीं—

#### यो पुब्बे कतकल्याणो कतत्थो नावबुज्भति, पच्छा किच्चे समुपन्ने कत्तारं नाधिगच्छति।।

[जो कोई उपकृत, पहले किये उपकार को याद नहीं रखता, उसको (फिर) पीछे काम पडने पर, (कोई) उपकार करने वाला नहीं मिलता।

क्षत्रियादि (वर्णों) मे यो (=जो) कोई ग्रादमी पुब्बे (=पहले) प्रथमतर दूसरे से कतकल्याणो किये उपकार वाला (=उपकृत) कतत्थो, काम समाप्त होने पर, दूसरे का ग्रपने पर किया उपकार ग्रौर ग्रर्थं न जानता है, वह पच्छा ग्रपने किच्चे समुपन्ने (=काम पड़ने पर) उस काम का कत्तारं (=करनेवाला) नाधिगच्छिति नही पाता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व, इस गाथा से धर्मोपदेश दे, दानादि पुण्यकर्म करके, कर्मानुसार (परलोक) गये। बुद्ध ने यह धर्म-देशना ला, जातक का साराश निकाला। उस समय के प्रत्यन्त वासी ही ग्रब के भी प्रत्यन्त-वासी हैं। लेकिन बाराणसी सेठ में ही था।

# पहला परिच्छेद

# १० लित्त वर्ग

### **११. लि**त्त जातक

"लित्तं परमेन तेजसा" यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय बिना सोचे विचारे उपयोग करने के सम्बन्ध में कही।

### क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुत्रों को, जो चीवर श्रादि मिलते थे, वे उन्हे प्रायः विना सोचे विचारे ही उपयोग मे लाते थे। (चीवर श्रादि) चारो प्रत्ययो को विना सोचे समभे उपयोग मे लाने के कारण, वे निरय (=नरक) तिरिश्चीन योनियो से मुक्त न होते थे। बुद्ध ने इस वात को जान, भिक्षुत्रो को श्रनेक प्रकार से धर्म-कथा कह, विना सोचे विचारे (किसी चीज) के उपयोग मे लाने के दुष्परिणाम दिखा कर कहा— "भिक्षुत्रो! एक भिक्षु के लिए, चारो प्रत्ययो के मिलने पर, उन्हें विना सोचे समभे उपयोग मे लाना श्रनुचित है। इस लिए श्रव से, सोच विचार कर, उपयोग मे लाया वरो।" (यह कह) प्रत्यवेक्षणा (=सोच विचार) की विधि (==कम) स्पष्ट करते हुए—

"भिक्षुग्रो! यहाँ भिक्षु सोच विचार कर चीवर का सेवन (==उपयोग) करता है, शीत के प्रतिघात के लिए.. " को पाँति (तिति) करके 'भिक्षुग्रो! चारो प्रत्ययों का सोच विचार कर सेवन करना उचित है। बिना सोचे

<sup>ै</sup>चीवर (=वस्त्र,) २ पिण्डपात (भोजन), ३ शयनासन (म्रोढ़न-विछावन), ४ गिलान प्रत्यय (=भेषज्य ग्रादि)।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup> इध भिक्खवे भिक्खु पटिसंखा योनिसो ... (खुद्दक पाठ) ।

विचारे उपयोग में लाना हलाहल-विष को उपयोग में लाने के सदृश है। पुराने (समय में) श्रादिमियों ने बिना सोचे विचारे उपयोग (=परिभोग) करने के दुष्परिणाम को न जान कर विष खा लिया, श्रौर उस से विपाक (=फल) मिलने के समय, महान् दु ख भोगा" कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

#### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बाराणसी, मे (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, एक महान् धनवान् कुल मे उत्पन्न होकर, श्रायु बडी होने पर जुग्रारी हो गये। एक दूसरा कुटिल जुग्रारी बोधिसत्त्व के साथ खेलते समय, जब उसकी ग्रपनी जीत होने लगती, तब तो धाँधली न करता लेकिन जब हार होती दीखती, तो गोटी को मुँह में डाल कर, गोटी खो गई (करके) खेल में धाँधली मचा चल देता।

बोधिसत्त्व ने उसका कारण जान 'ग्रच्छा । इसका उपाय करूँगा' सोच, गोटियाँ ले, उन्हें ग्रपने घर ले जाकर हलाहल विप से रग, बार बार सुखा कर, उन्हें ले, उसके पास जाकर कहा—"सौम्य! ग्रा जुग्रा खेले।"

उसन 'सौम्य ! श्रच्छा' कह, कीडा-मण्डल नैयार कर, उसके साथ खेलते हुए, श्रपनी हार होती देख एक गोटी मुँह में डाल ली। बोधिसत्त्व ने उसे ऐसा करते देख "निगल, पीछे पता लगेगा कि यह क्या है ?" कह, उसे दोप देने के लिए यह गाथा कही—

लित्तं परमेन तेजसा गिलमक्खं पुरिसो न बुज्भिति, गिल रें ! गिल पापधुत्तक ! पच्छा ते कट्क भविस्सति ॥

[बड़े तेज (बिप) से लिपटी हुई गोटी को निगराने वाला, उसे उस समय नहीं जानता । ब्रोरे ! पापी धूर्व ! निगल, निगल ! पीछे त उसका कथा फल सोगैसा । ]

लित्तं, माखी हुई, रगी हुई। परमेन तेजसा, उत्तम तंज हलाहल विष से।
गिलं, निगलते हुए। श्रक्लं, गोली (गाटी)। न बुज्भति, नहीं जानता कि
३२

यह निगलने से, मेरा क्या करेगी। गिल रे, ग्ररे निगल। गिल, फिर कहता है, जोर डालने के लिए। पच्छा ते कटुकं भविस्सति, तेरे इस गोटी को निगलने के बाद, यह विष तीक्षण होगा।

बोधिसत्त्व के कहते ही कहते, वह विष के जोर मे मूर्च्छित हो, श्राँग्वे बदल, शरीर को भूका गिर पडा।

बोधिसत्त्व 'श्रव इसे जीवनदान देना चाहिए' (सोच) दवाई मिलाकर, उल्टी की श्रौषधि दे, वमन करा, घी, गुड़, मधु, शक्कर श्रादि खिला, श्ररोगी कर, 'फिर ऐसा न करना'—यह उपदेश दे, दान श्रादि पुण्य कर्म कर, श्रपने (कर्मानुसार) परलोक गये।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को ला "भिक्षुग्रों बिना सोचे समम्में, (प्रत्ययों का) परिभोग, वैसा ही होता है, जैसे बिना सोचे समभें हलाहल (विप) का परिभोग" कह जातक का साराश निकाला।

उस समय पण्डित धूर्त में ही था। कुटिल धूर्न यहाँ नहीं कहा गया। जैसे यहाँ, वैसे ही हर जगह। जो इस समय ( ब्रुद्ध के समय) नहीं है, वह नहीं कहा गया है।

#### ६२. महासार जातक

"उक्कट्ठें सूरिमच्छिन्ति. ." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन, में विहार करते समय, श्रायुष्मान् श्रानन्द के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

एक समय कोशल-नरेश की स्त्रियों ने सोचा—"(लोक में) बुद्ध का उत्पन्न होना दुर्लभ है। वैसे ही मनुष्य-जन्म का लाभ दुर्लभ है, स्रौर फिर सम्पूर्ण- न्द्रियो वाला होना और भी दुर्लभ हैं। हम ऐसा दुर्लभ ध्रवसर पाकर भी, अपनी रुचि के अनुसार न विहार जाने पाती हैं न धर्म सुनने, न पूजा करने और न दान देने। ऐसे रहती हैं, जैसे सन्दूक में बन्द करके रक्की गई हां। मा, हम राजा को कहकर, एक ऐसे भिक्षु को बुलबाकर जो हम धर्मापदेश देन के योग्य हो, उस से धर्म सुने। उस से जो (ग्रहण) कर सकंगी, करंगी, दान आदि पुण्य-कर्म करेगी। इस प्रकार हमारा यह सुभ्रवसर सफल होगा।"

उन सब ने राजा के पास जा, श्रपना विचार कहा। राजा ने 'श्रक्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन राजा ने उद्यान कीडा खेलने की इच्छा में मानी को बुनाकर कहा—"उद्यान साफ करो।" माली ने उद्यान साफ करते हुए एक यूक्ष के नीचे बुद्ध को बैठे देख, राजा के पास जाकर कहा—"देव! उद्यान साफ है। और एक वृक्ष के नीचे भगवान् बैठे है।"

राजा, 'सौम्य ! श्रच्छा, बुद्ध के पास धर्म भी सुनंगे' (कह) सजे रथ पर चढ, उद्यान पहुँच बुद्ध के पास गया।

उस समय छत्रपाणी नामक एक अनागामी उपासक बुद्ध के पास बैठा धर्म सुन रहा था। राजा, उसे देख, कुछ देर सदिग्ध खढ़े रह, फिर 'मह ब्रा आदमी न होगा, यदि ब्रा होता, तो बुद्ध के पास बैठ कर धर्म न स्नता। सो यह अच्छा ही आदमी होगा' सोच, बुद्ध के पास जा, प्रणाम कर, एक भार बैठ गया। उपासक ने, बुद्ध का अगौरव होने के इर से, राजा के भाने पर खड़ा होना, वा प्रणाम करना, आदि कुछ नहीं किया। इसमें राजा उनके प्रति असन्तुष्ट हमा।

बुद्ध ने 'राजा श्रसन्तुष्ट हुआ' जान, उपासक की प्रशसा की--"महा राज । यह उपासक बहुश्रुत है, श्रामम ( धर्म) का जाता है, श्रोर काम-भोगो में बीतरागी है।"

राजा ने 'यह कोई ऐसा ही नहीं होंगा, जिसकी बद्ध प्रशसा वर रहें,' सोच कर कहा—"उपासक! जिस किसी चीत्र की जरूरत हो, वहता । उपासक ने 'श्रच्छा' कह, स्वीकार किया। राजा, बद्ध के पास धर्मापदश सृत, बुद्ध की प्रदक्षिणा कर चला गया।

एक दिन प्रासाद के अपर सिटका सात हुए, खड़ उसन देखा

कि प्रात:काल का भोजन करके, छतरी हाथ में लिये वह उपासक, जेतवन जा रहा है। उसने उसे बुलवा कर कहा—"उपासक! तू बहु-श्रुत है। हमारी स्त्रियाँ धर्म सुनना श्रौर सीखना चाहती हैं। श्रच्छा हो, यदि तू उन को धर्म सुनावे।"

"देव! राजा के श्रन्त पुर मे, गृहस्थो का धर्मोपदेश देना या बाँचना, मुनासिब नही; श्रायों (=भिक्षुश्रो) का ही मुनासिब है।"

राजा ने 'यह सत्य ही कहता है' (सोच), उसे भेज, स्त्रियो को बुलवाकर पूछा—''भद्रे! मैं तुम्हें धर्मोपदेश करने के लिए तथा बाँचने के लिए, बुद्ध के पास जा कर, एक भिक्षु माँगता हूँ। श्रस्सी महास्थिवरों में से किस भिक्षु को माँगूँ?" उन सब ने सलाह करके धर्म भाण्यागारिक श्रानन्द स्थिवर को ही पसन्द किया।

राजा ने बुद्ध के पास जा, प्रणाम कर, एक श्रोर बैठ कर, कहा—"भन्ते ! हमारे घर की स्त्रियाँ श्रानन्द स्थिवर से धर्म सुनना श्रीर सीखना चाहती हैं। श्रच्छा हो, यदि स्थिवर हमारे घर में उपदेश दे श्रीर बाँचें।"

बुद्ध ने 'ग्रच्छा' कह, स्वीकार कर स्थविर को श्राज्ञा दी।

उस समय से लेकर राजा की स्त्रियाँ, स्थिवर के पास धर्म सुनती श्रीर सीखती। एक दिन राजा की चूड़ामणि खो गई। राजा ने उसको खोया जान सुन, श्रमात्यों को बुला कर श्राज्ञा दी कि श्रन्त पुर के सब धादिमयों को पकड़ कर, उनसे चूडामणि निकलवाधों। श्रमात्य स्त्रियों से श्रारम्भ करके, चूड़ामणि खोजते हुए, उसके न मिलने पर, लोगों को तंग करने लगे। उस दिन श्रानन्व स्थिवर राज़भवन में गये। जैसे पहले स्त्रियाँ स्थिवर को देखते ही हुष्ट-तुष्ट हो धर्म सुनती श्रौर सीखती थी, उस दिन वैसा न कर वे सब दु खित-चित्त ही रही।

स्थिवर के 'श्राज तुम, ऐसी कैसे हो गईं ?' पूछने पर, वे बोलीं—"भन्ते ! राजा की चूड़ामणि खो गईं (करके) श्रमात्य स्त्रियों से लेकर राज-भवन के अन्दर के सभी श्रादिमयों को तंग करते हैं। नहीं जानती कि उसका क्या होगा ? सो उसी से हम दुखी हैं।"

स्थविर ने 'चिन्ता न करो' कह, उन्हें भ्राश्वासन दे, राजा के पास जा, विछे ग्रासन पर बैठ कर पृछा— "महाराज! क्या तुम्हारी मणि स्वो गई?"

"भन्ते । हाँ।"

"महाराज<sup> ।</sup> क्या उसे खोजवा सके <sup>?</sup>"

"भन्ते । श्रन्दर के सभी लोगों को पकड़, कष्ट देकर भी, नहीं खोजवा सका।"

"महाराज बिना लोगों को कष्ट दिये ही, ढूँढ निकालने का एक उपाय है।"

"भन्ते । कौन सा उपाय ?"

"महाराज<sup> ।</sup> पिण्ड-दान।"

"भन्ते । कैसा पिण्ड-दान ?"

"महाराज । जिन जिन पर सन्देह हो, उन सब को गिन कर, एक एक के हाथ में एक एक पराल (= फूस) का गोला वा मिट्टी का गोला देकर, उन्हें कहा जाना चाहिए कि प्रान काल ही उन (गोलों) को लाकर श्रमुक स्थान पर डाले। जिसने (चूडामणि) लिया होगा, वह उस में डाल कर ले श्रायेगा। यदि पहले ही दिन लाकर डाल दे, तो श्रच्छा श्रीर यदि न डालें तो दूसरे दिन, तीसरे दिन भी वैसा ही किया जाना चाहिए। इस प्रकार लोगो को कष्ट भी न होगा, श्रीर मणि भी मिल जायगी।" ऐसा कह कर स्थिवर चलें गये।

राजा ने (स्थिविर के) कथनानुसार तीन दिन उलवाये। (लांग)मणि नहीं लाये। स्थिवर ने तीसरे दिन श्राकर पूछा—"महाराज! क्या मणि डाल दी?"

"भन्ते! नही डालते।"

"तो महाराज! (प्रासाद के) महान तल्ले पर ही, किसी छित्रे हुए स्थान में पानी की भरी हुई मटकी रखवा कर, उसके पिर्वे कनात तनया कर, राजभवन के रबी-पुरणों को कहें कि, वह सब चादर प्राढ गांव कर एक एक करके, कनात के श्रन्दर घुस, हाथ धोकर ग्रायं।" यह प्याप्त मान कर, स्थितर चले गये। राजा ने वैसा ही करवाया।

मणि चुराने वाले ने सोचा—"यह असम्भव है कि पर्म भाष्याधारिक इस मुकदमें को अपने हाथ में ले कर, विना मणि निक्त गत कक रहें। अब मणि डाल देनी चाहिए।" (यह सोच) वह मणि का श्रिका कर से जा कनात के अन्दर घुस, चाटी में डाल कर निकल आया। सब के (बाहर) निकल आने पर, पानी फेकने पर, मणि मिल गई।

राजा सन्तुष्ट हुम्रा कि स्यविर के कारण, विना लोगो को कष्ट दिये ही मिण मिल गई। (महल) के म्रन्दर के म्रादमी भी प्रसन्न हुए कि स्यविर के कारण हम महादु ख से मुक्त हो गये। 'स्थिविर के प्रताप से राजा की मिल गई' (करके) स्थिवर का प्रताप सारे नगर म्रीर भिक्षु-सघ मे प्रसिद्ध हो गया। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (म्रानन्द) स्थिवर की प्रशसा करने लगे—"म्रावुसो मानन्द स्थिवर ने म्रपने बहु-श्रुतपन से, पाण्डित्य से, उपाय-कुशलता से, बिना लोगों को कष्ट होने दिये, ढग से ही राजा की मिण खोजवा दी।"

बुद्ध ने आकर पूछा— "भिक्षुग्रो! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "यह बात-चीत" कहने पर, (बुद्ध ने) "भिक्षुग्रो! न केवल श्रब श्रानन्द ही ने दूसरों के हाथ पड़ी हुई चीज, निकलवाई, पूर्व समय में भी पण्डितों ने बिना लोगों को कष्ट दियें, ढग ( == उपाय) से ही निरम्जीनों के हाथ में पड़ी हुई चीज निकलवाई थी" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख श्रतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (रजा) बहावत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व सब शिल्पों (=शास्त्रों) में सम्पूर्णता प्राप्त कर, उसी (राजा) के अमात्य हुए। एक दिन राजा ने, अनेक अनुयाइयों के साथ, उद्यान में जा (वहाँ) जगल में घूम, जलकीडा करने की इच्छा से, मज्जन-पुण्किणी में उतर, अन्तःपुर की स्त्रियों को भी पुकारा। स्त्रियाँ, अपने अपने सिर के, तथा गलें के गहनों को उतार (अपने अपने) ओढ़नों में डाल, (उन्हें) पेटियों पर रख, दासियों को सौंप, पुष्करिणीं में उतरीं।

उस बाग्र में रहने वाली, शाखा पर बैठी हुई एक बन्दरी देवी को, जेवरों को उतार, चादर में डाल पेटी पर रखते देख, उसके मुक्ताहार को पहनने की इच्छा से बैठकर देखने लगी कि दासी कब गहनो की श्रोर से लापरवाह होती है। उनकी रखवाली करती हुई दासी इघर उघर देखती हुई, बैठी ही बैठी ऊँघने लगी। बन्दरी उसे लापरवाह देख हवा के वेग से उतर, महा मुक्ताहार को (ग्रपनी) गरदन में डाल, हवा की तेजी से उछल, एक शाखा पर जा, दूसरी बन्दरियों के देख लेने के डर से, उस (हार) को एक वृक्ष की खोल में छिपा, खुशी खुशी बैठ कर, उसकी रखवाली करने लगी।

उस दासी ने भी जाग कर, मुक्ताहार को न देख, काँपते हुए ग्रीर काँड उपाय न देख जोर से चिल्लाना शुरू किया—"ग्रादमी, देवी का मुक्ताहार लं कर भाग गया।"

पहरेदारो ने जहाँ तहाँ से इकट्ठे हो, उसकी बात सुन, राजा से निवेदन किया। राजा ने कहा—''चोर को पकड़ो।'' श्रादमी बाग से निकल 'चोर को पकडो', 'चोर को पकडो' करके, इधर उधर देखने लगे।

एक उगाही करने वाले दिहाती आदमी ने, उस शब्द को सुना, तो वह कॉपता हुआ भागा। उसे देख, राजकीय आदिमियों ने 'यही चोर होगा' सोच, उसका पीछा कर, पकड, (उसे) पीटा—'अरे! दुष्ट चोर! इस प्रकार का महा-मूल्यवान् गहना (=कण्ठा) लिये जाता है।"

उसने सोचा—"यदि मैने कहा कि मेरे पास नही है, तो श्राज मेरी जान न बचेगी। (यह लोग) मुभे पीट पीट कर ही मार देगे। उसे स्वीकार कर न्यूँ।" उसने कहा—"स्वामी! हाँ, मैने लिया है।" उसे बाँध कर राजा के पास ले गये। राजा ने भी पूछा—"लिया है तु ने महा-मृत्यवान कण्टा?"

"देव<sup>।</sup> हाँ।"

''ग्रब, वह कहाँ हैं ?''

"देव मेंने कभी पहले, कोई कीमती मिजा ( -पलग) भी नहीं देखा। सेंठ ने मुभे (कह कर) मुभ से, महाम्ल्यवान् कण्ठे की चोरी कराई है। सो, मैंने वह लेकर, उसे दे दिया। (श्रव) वह जानता है।"

राजा ने सेठ को बुलवा कर पूछा—"तूने इसके हाथ में महाम्यसान् कण्ठा लिया है?"

''देव! हाँ।''

"वह कहां है ?"

"में ने प्रोहित को दे दिया।"

पुरोहित को भी ब्लबा कर, बैंगे ही पृछा । उसने भी स्वीकार कर कहा— "मैंने गन्धर्व को दिया।" उसे भी ब्लबा कर पृछा—"तू ने पुरोहित के हास से महा-मूल्यवान् कण्ठा लिया ?"

"देव! हाँ।"

"वह कहाँ हैं?"

"मैने चित्त-विकृति के कारण वर्ण-दासी (=वेश्या) को दे दिया।" उसे भी बुलवा कर पूछा—उसने कहा—"नही लिया।" उन पाँच जनो को पूछते ही पूछते सूर्य्यास्त हो गया।

'श्रव विकाल हो गया, कल देखेगे' (सोच) उन पाँचों जनो को श्रमात्यों को दे, राजा नगर को चला गया। बोधिसत्त्व ने सोचा— "यह कण्ठा श्रन्दर के श्रादिमयों में खोया गया है, श्रीर यह गृहपित बाहर का श्रादमी है। द्वार पर कड़ा पहरा है, इस लिए श्रन्दर का श्रादमी भी उगे नेकर भाग नहीं सकता। इस लिए न तो बाहर के श्रादमी ने लिया है, न श्रन्दर (घर) के। मालूम होता है उद्यान में ही घूमने वाले किसी ने उड़ाया है। इस दिद्र श्रादमी ने 'मैंने सेठ को दिया' श्रपने को बचाने के लिए कह दिया होगा, श्रीर सेठ ने भी 'मैंने पुरोहित को दिया,' इकट्ठे होकर मुक्त होगे सोच, कह दिया होगा, श्रीर पुरोहित ने भी 'मैंने गवैंग्ये (=गन्धर्व) को दिया' कारागार में गवैंग्ये के कारण सुख से रहेंगे, सोच, कह दिया होगा, श्रीर गवैंग्ये ने भी 'मैंने वेंक्या को दिया' (कारागार में) श्रनुत्किण्ठित रहेंगे, सोच, कह दिया होगा। यह पाँचों के पाँचों चोर नहीं होगे। उद्यान में बन्दर बहुत हैं। कण्ठा, एक न एक बन्दरी के हाथ लगा होगा।"

उसने राजा के पास जा कर कहा— "महाराज! चोरों को मेरे जिम्मे करें। में चोरी का पता लगाऊँगा" राजा ने 'श्रच्छा! पण्डित! पता लगा' (कह) उसको चोर सौंपे।

बोधिसत्त्व ने अपने नौकरों (=दासों) को बुलवा कर आज्ञा दी कि उन पाँचो आदिमियों को एक जगह रख, उनके चारो श्रोर पहरा लगा, जो वह एक दूसरे को कहें, (उसे) कान देकर, (सुन) मेरे पाम आकर कहे। यह कह बोधिसत्त्व चले गये। उन आदिमियों ने वैसा ही किया।

तब, उन मनुष्यों के इकट्ठे होकर बैठने के समय, सेट ने उस गृहपित से पूछा— "श्ररे दुष्ट गृहपित ! तू ने मुफ्ते, या मैंने तुफ्ते इस से पहले कहाँ देखा ? तू ने मुफ्ते कण्ठा कब दिया ?" "स्वामी ! मैं महा-मूल्यवान् वृक्ष के पाँवों के

मिंजे (=पलंग) तक को नहीं जानता। श्राप के कारण में छूट जाऊँगा। (सोच) मैंने ऐसा कहा। स्वामी! क्रोध न करें।" पुरोहित ने भी मेठ से पूछा—सेठ जो तुक्ते इसने नहीं दिया, वह तूने मुक्ते कैसे दिया?

"हम दोनो बडे श्रादमी हैं, हम दोनो के इकट्ठे होने से काम जल्दी होगा, सोच कहा।" गवैय्ये ने भी पुरोहित से पूछा—श्राह्मण १ तूने मुक्ते कण्ठा कब दिया?

"मैं, तेरे कारण, रहने की जगह सुख से रहूँगा, सोच, कह दिया।" वर्ण-दासी (चवेदया) ने भी गन्धर्व (च्यावेदये) से पूछा—"श्ररे! दुष्ट गन्धर्व! मैं कब तेरे पास गई, या कब तू मेरे पास श्राया? तूने मुक्ते कण्ठा कब दिया?" "भगिनि! ऋद्ध क्यो होती हैं? 'हमारे पाँचो के इकट्ठे रहने से गृहस्थी हो जायगी, श्रनुत्कण्ठित हो, सुख से रहेंगे' सोच, कह दिया।"

बोधिसत्त्व ने श्रपने नियोजित श्रादिमयो से यह वात चीत मुन, वह श्रादिमी चोर नहीं हैं, यह निश्चय पूर्वक जान 'वन्दरी का लिया हुश्रा कण्ठा उस से ढग से गिरवाऊँगा' सोच, लाल रग की ऊन की बहुत सी कण्ठियाँ बनवा, उद्यान की बन्दरियो को पकडवा, वे कण्ठियाँ, उनके हाथ, पैर गरदन श्रादि में पहनवा, उन्हे छोड दिया। वह बन्दरी कण्ठे की रखवाली करनी हुई, उद्यान में ही बैठी रही।

बोधिसत्त्व ने भ्रादिमियों को भ्राज्ञा दी—"तुम बाग़ में जाकर, सब बन्दिरियों की परीक्षा करों। जिस के पास वह कण्ठा देखों, उसे शास दिखा कर, उस से वह कण्ठा लें लों।" उन बन्दिरियों ने भी, 'हमें कठियाँ मिली' सोच प्रसन्न हो, उद्यान में भूमते घूमते उस बन्दिरी के पास जाकर कहा—"देखों! हमारे जेवर।" वह ईपीं को सहन न कर सकने के कारण 'इस लाल रम के धामें के जेवरों से क्या ?' कह, (अपना) मक्ताहार पहन कर निकरीं।

जन श्रादिमियों ने जमे देख, जम में कण्ठा छन्त्रा, वाधिमन्त्र की लाकर दिया। जसने राजा के पास ते जाकर, दिया कर कहा - "दा! यह है तुम्हारा कण्ठा। वह पाँची श्राटमी निर्धि है। इसे, उथान की बन्दरी ने निया था।"

"लेकिन, हे पण्डित । तूने कैम जाना कि यह अन्दरी के **हाथ लग गया,** (श्रीर फिर) कैम तू ने लिया ?"

उसने सब कह सुनाया।

राजा ने सन्तुष्ट चित्त हो, 'सग्राम-भूमि ग्रादि मे शूर वीरों ग्रादि की ग्रावश्यकता पडती हैं' कहते हुए, बोधिसत्त्व की प्रशसा स्वरूप यह गाथा कही—

#### उक्कट्ठे सूरमिच्छन्ति मन्तीसु श्रकुतूहलं, पियञ्च श्रम्भपानम्हि श्रत्थे जाते च पडितं।।

[ सग्राम में शूर (श्रादमी) मिले, ऐसी इच्छा होती हैं, सलाह करने में श्रकुतूहल (=जो बात प्रगट न करे, ऐसा) श्रादमी मिले, ऐसी इच्छा होती हैं, खाने पीने की सामग्री रहने पर, प्रिय ( -सम्बन्धी ) श्रादमी मिले, ऐसी इच्छा होती हैं, श्रौर कोई समस्या ग्रा पड़ने पर, पण्डित ( वृद्धिमान्) ग्रादमी मिले, ऐसी इच्छा होती हैं। ]

उक्कट्ठे, काम थ्रा पड़ने पर ( ==उपकट्ठे) दोनो श्रोर से कट्ठ होने पर, सग्राम में, सम्प्रहार होते रहने पर। सूरमिच्छिन्ति, माथे पर विजली गिर पडने पर भी न भागने वाले शूर की इच्छा करते हैं, उस समय इस प्रकार के सग्राम योघा की श्रावश्यकता पडती हैं। मन्तीसु श्रकुत्हलं, कर्तव्याकर्तव्य के श्रा पड़ने पर, मित्रियो में जो श्रकुत्हलं मृँह न खोलने वाला ==बात न प्रगट कर देने वाला हो, उसकी इच्छा करते हैं, वैसे की उस समय पर श्रावश्यकता पडती हैं। पियञ्च श्रक्षपानिस्ह, मधुर खाने पीने की चीज पास होने पर, साथ खाने के लिए प्रिय श्रादमी की इच्छा करते हैं, वैसे की उस समय श्रावश्यकता पड़ती है। श्रत्थे जाते च पिण्डतं, गम्भीर श्रर्थं गम्भीर धर्मं ( गमरया) किसी भी बात वा प्रश्न के उत्पन्न होने पर पिण्डत, विचक्षण ( = वृद्धिमान्) श्रादमी की इच्छा करते हैं, वैसे समय पर उसी की श्रावश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार राजा, बोधिसत्त्व की प्रशासा कर, स्तुति कर, जोर की वर्षा बरसाने वाले बादल की तरह, सात (प्रकार के) रत्नो से पूजा कर, उसके उपदेशानुसार आचरण कर, दान आदि पुण्य कर्म करके, कर्मानुमार (परलोक) गया।

बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार गये। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, स्थितिर की प्रशसा कर, जातक का साराश निकाला। उस समय, राजा (ग्रिव का) श्रानन्द था। बुद्धिमान् श्रमात्य तो मैं ही था।

### **६३. विस्सासमोजन जातक**

"न विस्सिसे श्रविस्सित्थे" यह (गाथा) बुद्ध ने जैनवन में विहार करत समय, विश्वस्त-भोजन के बारे में कही।

# क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु प्रायः 'यह हमें माता ने दिया है, यह पिता ने दिया है, यह बहन ने, चाची ने, चाचा ने, मामा ने (नथा) मामी ने दिया हैं' (करके) रिश्तेदारों के दिये हुए चारों प्रत्ययों म विश्वयत होन के कारण, उन्हें बिना सोचे विचारे ही उपयोग में लाते थे। शास्ता ने, 'मुक्ते भिक्षुग्रों को उपदेश करना उचित हैं' गोच, भिक्षुग्रों को एक व करवा कहा— 'भिक्षुग्रों | भिक्षु को चाहिए कि वह चारों प्रत्यया में नात वह पर्दाय के दिये हो, चाहे वे-रिश्तेदार के—मीच विचार कर ही उपयोग म नाव। बिना मोचे विचारे उपयोग करने वाला भिक्षु मरन पर यक्षयानि वा प्रत्योगि से नहीं छूटता। बिना सोचे विचारे करना, वेगा ही है, केमा विषय परिभोग करना। बिग; चाह वह विश्वारों ( किनदार) न दिया हो, चाहे ग्रविश्वारों ने, वह मार ही अनना है। पर्व समय म मा. विश्वयत का दिया विष सा कर प्राण ग्रवाया।' यह नह, उनक गानना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. श्रतीत कथा

पूर्वं समय मे बाराणसी, में (राजा) ब्रह्मवत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) महाधनवान् सेठ हुए। उनका एक ग्वाला (=गोपालक) घनी खेती के दिनों में गौस्रों को ले, स्रारण्य में जा, वहाँ मचान (=गोपिल्लक) बनाकर, गौस्रों की रखवाली करता हुस्रा रहने लगा। समय समय पर, वह सेठ के लिए गोरस (=दूध-घी) लाया करता था। उसके मचान से थोडी ही दूर पर एक सिंह श्राकर रहा करता था। सिंह के शास से कुम्हलाने (=डरने) के कारण, गौस्रों का दूध कम हो गया। उसके एक दिन घी लेकर श्राने पर, सेठ ने पूछा—"क्यों सौम्य! गोपालक! घी कम (क्यों) है? उसने कारण कहा। "सौम्य! क्या कोई ऐसा है, जिसपर वह सिंह श्रासकत हो?"

"स्वामी ! हाँ ! उसका एक हरिणी ( =मृगमाता) के साथ संसर्गे हैं।" "क्या उसे पकड़ा जा सकता है  $^{?}$ "

"हाँ! स्वामी! (पकड़ा) जा सकता है।" "तो उसे पकड कर उसके सिर से पैरों तक के बालों को जहर से माख ( = रंग) कर, उन्हें सुला कर, दो तीन दिन गुजार कर, उस हरिणी को छोड़ देना। वह (सिह) स्नेह के मारे उसके शरीर को चाटने से मर जायगा। तब उसका चमड़ा नालून, दाढ़ें और चर्बी, यहाँ लेकर श्राना।" यह कह, उसे हलाहल विष देकर भेजा। उम ग्वाले ने जाल फेक कर, ढग से उस हरिणी को पकड़ कर, वैसा ही किया। सिंह, उसे देखते ही श्रत्यन्त स्नेह से उसके शरीर को चाट कर मर गया। ग्वाला भी चर्म श्रादि ले कर, बोधसत्त्व के पास पहुँचा। बोधसत्त्व ने उस वृत्तान्त को जान (कहा) दूसरों से स्नेह नहीं करना चाहिए। इस प्रकार का बलवान् सिंह मृगराज भी विकार-युक्त चित्त से ससर्ग करने के लिए मृगमाता का शरीर चाटते हुए विष चाट कर मर गया। यह कह, उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

न विस्ससे श्रविस्सत्ये विस्सत्येपि न विस्ससे, विस्सासा भयमन्वेति सीहंव मिगमातुका।।

[ ग्रविश्वास करने योग्य में विश्वास न करे। विश्वास करने योग्य में

भी विश्वास न करे। विश्वास करने से भय उत्पन्न होता है जैसे मृगमाता से सिंह को हुआ। ]

जो पहले मित्र रहा हो लेकिन श्रव ग्रविश्वसनीय हो उस श्रविस्सत्थे (== ग्रविश्वसनीय मे), ग्रौर जिस से पहले भी भय नही रहा तथा जो श्रव भी विश्वसनीन है उसका भी विश्वास न करे। किस कारण से? विस्सासा भयमन्वेति; मित्र तथा ग्रमित्र किसी मे भी विश्वास किया जाए, उस से भय ही पैदा होता है। कैसे ? सीहंव मिगमानुका जैसे मित्रता के कारण मृग-माता का विश्वास करने से सिह को भय ही उत्पन्न हुन्ना; श्रथवा विश्वास के कारण मृग-माता सिह के पास गई।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश दे दानादि पुण्य कर कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का साराश निकाल दिया । उस समय महासेठ में ही था ।

# ६४. लोमहंस जातक

सो तत्तो सो सीनो ं . "यह (गाया) गारता ने वैशाली के समीप पाटि-काराम में विहार करते हुए सुनक्षत्र के बारे में कही।

<sup>ै</sup> मूल में सीतो है, जो कि सिहल प्रक्षरों में 'त' और 'मं की समानता के कारण प्रमाद वश प्राया प्रतीत होता है। देखें मिक्सिम निकाय, १२ सूत्र।

### क. वर्तमान कथा

एक समय सुनक्षत्र (नामक) भिक्षु शास्ता का उपस्थायक बन पात्र चीवर ले (शास्ता के साथ साथ) घूमता हुग्रा कोर क्षत्रिय के धर्म को पसन्द कर बुद्ध का पात्र चीवर (उन्हें) सौप कोर क्षत्रिय के पास रहने लगा। फिर उसके कालकञ्जक ग्रमुर-योनि में पैदा होने के समय सुनक्षत्र गृहस्य होकर वैज्ञाली की तीनों प्राकारों के ग्रन्दर घूमता हुग्रा शास्ता की यह कह कर निन्दा करता था कि श्रमण गौतम के पास मनुष्योत्तर कोई बात नहीं, विशेष ग्रायं-शान नहीं, श्रमण गौतम तर्क सिद्ध धर्मोपदेश करता है, विचार-सिद्ध तथा ग्रात्मानुभव के ग्राधार पर किन्तु जिन दुक्तों के क्षय करने के उद्देश्य से धर्मोपदेश दिया जाता है, धर्मानुसार चलने वाले को वह उन दुक्तों के एकान्त क्षय के उद्देश्य तक ले जाता है।

श्रायुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षा के लिए घूमते समय उसे उस प्रकार निन्दा करते हुए सुन भिक्षाटन से लौट कर भगवान् में निवेदन किया। भगवान् ने कहा--"सारिपुत्र ! कोधी मुर्ख सुनक्षत्र ने कोध के मारे ऐसा कहा है। कोध के वशीभृत हो कर वह 'धर्मानुसार चलने वाले को दुक्क क्षय तक ले जाता है' कहते हुए भी वह श्रनजाने में मेरी प्रशसा ही करता है। वह मुर्ख मेरे गुणों को नहीं जानता। सारिपुत्र ! मुभे छ ग्रभिज्ञा प्राप्त हैं। यह भी मन्त्योत्तर धर्म है=दस बल हैं। चार वैशारय-जान हैं। चार प्रकार का योति-परिच्छेदक ज्ञान है। पाँच प्रकार का गति-परिच्छेदक ज्ञान है। यह भी मेरा मनुष्योत्तर धर्म है। इस प्रकार मनुष्योत्तर-धर्मों से युक्त मुक्ते यदि कोई यु कहे कि श्रमण गौतम मनुष्योत्तर-धर्म प्राप्त नहीं हैं, तो वह यदि उस कथन को न छोड दे, उस विचार को न छोड दे, उस मत को न छोड दे, तो वह ऐसा ही होगा जैसे नरक मे उठा लाकर डाल दिया हो। इस प्रकार श्रपने में विद्यमान मनुष्योत्तर-धर्म की प्रशसा करते हुए कहा--- 'सारिपुत्र! सुनक्षत्र कोर क्षत्रिय की दुष्कर किया तथा मिथ्या-तप से प्रसन्न हो उसकी स्रोर स्राकृत्ट हुग्रा है। मिथ्या-तप से प्रसन्न होने वाले को, मिथ्या तप से ग्राकुन्ट होने वाले को भी मेरी ही स्रोर श्राकृष्ट होना चाहिए। क्योंकि श्रव से इकानवे कल्प पहले 'इसमें कुछ सार है वा नहीं ?'' देखने की इच्छा से मैंने बाहरी मिथ्यातपो की परीक्षा करते हुए चारो श्रङ्को से युक्त क्रत्यचर्य्य-वास किया। उस समय में तपस्वियो में परम तपस्वी, रुक्ष जीवन व्यतीत करने वालो में परम् रूणायान् तथा एकान्त-वासियों में परम् एकान्त-सेवी था। सारिपुत्र स्थविर के प्रार्थना करने पर बुद्ध ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

#### ख. श्रतीत कथा

"डकानवे कल्प पूर्व बोधिसत्त्व 'बाहरी तप की परीक्षा करूँगा' सोच आजीविकों की प्रबच्या के अनुसार प्रव्राजित होकर निर्वस्त्र रहा, धूल लपेट रहा। एकान्त प्रिय रहा, एकान्त-वासी—आदिमियों को देख कर मृग की तरह भाग जाता। महाविकट भोजन खाने वाला हुआ। बछडे का गोबर आदि खाया। अप्रमाद-युक्त विहार करने के लिए जगल में, एक भयानक बन-खंड में रहा। वहाँ रहते हुए, हिम गिरने के समय बीच के आठ दिनों में रात को बन-खंड से निकल खुले आकाश के नीचे विचर मर्य्य के उदय होने पर बन-खंड में प्रवेश करता था। जिस प्रकार रात को खुले आकाश के नीचे श्रोस में भीगता था, उसी प्रकार दिन में बन-खंड से पिघल कर गिरती हुई बून्दों से भीगता था। इस प्रकार रात दिन मर्दी का दुख सहता। लेकिन गर्मी के अन्तिम महीने में दिन में खुले में घूमकर रात को वन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में घूमकर रात को वन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में घूम कर रात को वन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में घूम कर रात को वन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में घूम कर रात को वन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में घूम कर रात को वन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में घूम कर रात को वन-खंड में वाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में घूम के जता, उसी तरह रात को वायु रहित बन-खंड में जलता। शरीर से पसीने की धार बहती। तब यह अश्रुत-पूर्व गाथा सूफी—

#### सोतत्तो सोसीनो एको भिसनके बने। नग्गो न चग्गीमासीनो एसनापमुतो मुनि।।

[वह तप्ता था। वह श्रत्यन्त भीगा था। वह भयानक बन म रहना था। वह नग्न रहना था (श्रीर) वह श्राग के पास नहीं बैठना था। इस प्रकार मुनि (सन्य की) खोज में लगा हुश्रा था]

<sup>&</sup>lt;sup>¹</sup> गर्राालरनाद सुत्त (मजिभम निकाय)

सोतत्तो, सूर्यं ताप से मुतप्त । सोसीनो, श्रोस के पानी से भीगा, श्रच्छी प्रकार भीगा हुग्रा। एको भिसनके वने, जहाँ प्रवेश करने पर प्रायः लोगो के रोम खडे हो जाते हैं, इस प्रकार के भयानक बन में श्रकेला श्रद्धितीय ही प्रविष्ट हुग्रा। नग्गो नचिग्गमासीनो, उस प्रकार शीत से पीडित होते हुए भी न श्रोढने बिछाने का वस्त्र लिया श्रीर न श्राग के ही पास बैठा। एसनापमुतो, उस श्रवहाचर्यं को भी ब्रह्मचर्यं मान यही श्रेष्ठ-जीवन है, यही खोज है, यही गवेषणा है, यही बह्मलोक का मार्ग है—इस प्रकार ब्रह्मचर्यं की खोज में लगा था। मुनि, यह मुनि मौन का प्रयत्न कर रहा है, इस लिए लोगों द्वारा श्रादृत हुग्रा।

५१२

इस प्रकार चार श्रंगो से युक्त ब्रह्मचर्यं का श्राचरण करके बोधिसत्त्व मरने के समय नरक का दृश्य दिखाई देने पर 'यह ब्रत घारण निरशंक है' जान उसी क्षण उस मत को छोड सम्यक् दृष्टि ग्रहण कर देव-लोक मे उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का सारांश निकाल दिया। मैं ही उस समय में वह श्राजीवक था।

#### **६५. महासुद्**स्सन जातक

"ग्रनिच्चा वत सङ्कारा..." यह (गाथा) शास्ता ने परिनिर्वाण शय्या पर लेटे समय ग्रानन्द स्थिवर के "भन्ते ! भगवान् इस छोटे से नगर में परिनिर्वाण को प्राप्त न हो" इत्यादि वचनों के सम्बन्ध में कही।

### क. वर्तमान कथा

तथागत के जेतवन में विहार करने के समय सारिपुत्र स्थविर कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन नालक ग्राम में उत्पन्न होने के कोठे में ही परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। महामौद्गल्यायन भी कार्तिक महीने में ही कृष्ण पक्ष की श्रमावस्या को। इस प्रकार दोनो प्रधान शिप्यो के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर 'में भी कुसीनगर में परिनिर्वाण प्राप्त होऊँगा' (सोच) भगवान् कम में चारिका करते हुए वहाँ (कुसीनगर) पहुँच जोडे शाल वृक्षों के बीच उत्तर दिशा की श्रोर बिछी शय्या पर फिर न उठने का सकल्प करके लेटे।

श्रायुष्मान श्रानन्द स्थिवर ने कहा—"भन्ते । भगवान् इस क्षुद्व नगर में, इस विसम नगर में, इस जगली नगर में, इस शाखा नगर में निर्वाण को प्राप्त न होवे। भगवान् दूसरे चम्पा राजगृह" श्रादि बडे नगरों में से किसी एक नगर में परिनिर्वाण प्राप्त करे।"

भगवान् वोले—"श्रानन्द! इसे क्षुद्र नगर, जगली नगर, शाखा नगर मत कहो। में पहले सुदर्शन चक्रवर्ती राजा होने के समय इसी नगर में रहा हूँ। उस समय यह बारह योजन की रत्नो से सुसज्जित चार दीवारी से घरा हुआ। महानगर था।" यह कह स्थिवर के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कहने हुए महासुदर्शन सूक्त कहा।

#### ख. श्रतीत कथा

उस समय महासुदस्सन नाम का राजा सुधर्म प्रासाद से उतर कर नजदीक ही सात रत्नो से युक्त ताडवन में विछी योग्य शय्या पर दाहिनी करवट में लेटा था। उसे फिर न उठने के सकल्प से लेटा देख सुभद्रा देवी ने कहा—"देव! यह तेरे चौरासी हजार नगर हैं, जिन में कुशाबती राजधानी प्रमृख है। इन को प्रेम करो।" महासुदर्शन ने उत्तर दिया—"देवि! यह मन कहों! मुभे ऐसा उपदेश दो कि इन में प्रेम मन करो, इनकी श्रपेक्षा मत करों।" देवी ने पृछा "क्यो ?" "श्राज मेरा मृत्य-दिवम है।"

वह देवी रोती हुई, भ्राँखे पोछती हुई बडी कठिनाई में वैंग कठ कर

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, बाराणसी । (महा परि-निर्वाण सुत्त, बीर्घनिकाय) ।

<sup>&</sup>lt;sup>२</sup>महासुदस्सन सुत्त (दीर्घ निकाय १७)

रोने पीटने लगी। बाकी चौरासी हजार स्त्रियाँ भी रोटने पीटने लगी। श्रमात्य श्रादि में कोई एक भी न सहन कर सका। सभी रोने लगे।

बोधिसत्त्व ने रोका—"भणे । शब्द मत करो।" फिर देवी को सम्बोधन कर कहा—"देवी । तू मत रो। देवी । तू मत पीट। तिल के फल जितना भी सस्कार नित्य नहीं हैं। सभी सस्कार ग्रनित्य हैं। सभी सस्कार नाश होने वाले हैं।" इस प्रकार देवी को उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

> ग्रनिच्चा वत सङ्खारा उप्पादवयधम्मिनो , उप्पज्जित्वा निरुक्भन्ति तेसं वूपसमो सुखो ॥

[सस्कार श्रनित्य हैं। उत्पन्न होना, निरोध होना उनका धर्म है। वे उत्पन्न हो कर निरोध को प्राप्त होते हैं। उनका उपशमन सुख है।]

श्रनिच्चा वत सङ्कारा, भद्रे! सुभद्रा देवी । जितने भी किन्ही भी प्रत्ययों से बने हुए स्कन्ध श्रायतन श्रादि सस्कार है, वे सब श्रनित्य ही हैं। इन में रूप ग्रनित्य है, (चक्षु-) विज्ञान ग्रनित्य है, चक्ष ग्रनित्य है, गय (धर्म =ग्रस्तित्व) ग्रनित्य हैं। जितने भी सविज्ञाण, ग्रविज्ञाण रत्न है, वह सव श्रनित्य है। इस लिए 'सभी सस्कार श्रनित्य हैं', यही ग्रहण कर। वयो उप्पाद वय धिम्मनो, सभी उत्पन्न होने वाले हैं, सभी वय (खर्च) होने वाले हैं, सभी बनने वाले हैं, सभी बिगडने वाले है, इस लिए (वे) ग्रनित्य हैं, यही जानना चाहिए। क्योंकि श्रनित्य है इसलिए 'उप्पिजित्वा निरूक्भिन्त' उत्पन्न होकर. स्थिति को प्राप्त होकर भी निरोध को प्राप्त होने हैं। यह सभी बनने पर उनाम हुए कहलाते है, दूदने पर निरुद्ध हुए कत्लाने हैं। उन के उत्पन्न होने पर 'स्विति' होती है, 'स्थिति' होने पर 'भञ्ज' होता है; जो उत्पन्न न हो उमकी 'स्थिनि' नहीं, जिसकी 'स्थिति' है उसका मंग न हो ऐसा नहीं। इस प्रकार गभी सस्कार तीन नक्षणो वाले (उत्पत्ति, स्थिति, सङ्ग) होकर निरोध को प्राप्त होते हैं। इसलिए यह सभी भ्रनित्य हैं, क्षणिक हैं, परिवर्तनशील हैं, भ्रश्नव हैं, भङ्ग होने वाले हैं, ग्रस्थिर हैं, कंपनशील है . . . . गूछ देर के लिए है, निस्सार है, 'कुछ ही देर के लिए' इस श्रर्थ में माया के समान हैं, मरीचि के समान हैं, फेण के समान हैं। भद्रे । सुभद्रा देवी। इनको तू क्यो 'सुख' समभती है। इस प्रकार सीख कि तेसं व्रपसमी सुखो, सब संसार चक्र का उपशमन होने से सब के उपशमन का अर्थ है निर्वाण। वही असल में केवल एक सुख है। और सुख नहीं।

सो महासुदर्शन ग्रमृत-महा-निर्वाण सम्बन्धी उत्कृष्ट देशना कर बाकी जन-समूह को भी 'दान दो सदाचारी बनो, उपोसथ(- = व्रत) करो' उपदेश दे देवलोक को गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का साराश निकाल दिया। उस समय की सुभद्रादेवी श्रव राहुलमाता हुई। प्रधान श्रमास्य राहुल था। शेप परिषद बुद्ध-परिषद। लेकिन महासुदस्सन में ही था।

### **६६.** तेलपत्त जातक

"समितित्तिकं अनवसेमकं . " यह (गाथा) शास्ता नं सुम्भ राष्ट्र म सेतक नामक निगम के पास एक बन-खण्ड में विनर्श हुए जनपदकायाणी सूत्र के बारे में कही।

### क. वर्तमान कथा

उस सूत्र में भगवान् ने "भिक्षुग्री! जैंगे जनार के वाणि, जनार कल्याणि नाम सुनकर जन-समूह इकट्ठा हो। बहु जन का वाणि नान गाने में बहुत दक्ष हो। 'जन-पद कल्याणि नान कि है, का का वाण नान के सुनकर श्रीर भी प्रमन्न होकर जन-समूह उम्ह श्राच का नव एक पुरुष श्राए, जो जीना चाहना हो, मरना न चाहना हो, स्मान नाहना हो। उस श्रादमी को एम कि —— ह पुरुष मह तन का लबालब भरा हुशा पात्र है। इस जनसमह श्रीर का का का का का का स्वाच से होकर ले चली। नुम्हारे पीछे पीछे एक श्रादमी ननवार उठाए चलेगा। जहाँ जरा

सा भी तेल गिरेगा, वही तेरा सिर काट डालेगे।' 'तो भिक्षुग्रो। क्या समभते हो, वह ग्रादमी उस तेल के पात्र को, लापरवाही से, प्रमाद-पूर्वक ले चलेगा?' 'नहीं भन्ते।'

'भिक्षुत्रो! यह मैंने अर्थ समकाने के लिए उपमा दी है। भावार्थ यह है। तेल से लवालव भरा हुआ पात्र, भिक्षुत्रो, कायानुस्मृति का दूसरा नाम है। इस लिए भिक्षुत्रो । यही सीखना चाहिए कि हमारी कायानुस्मृति की भावना अञ्छी प्रकार बढ़ेगी।' इस प्रकार शास्ता ने जनपदकल्याणि सूत्र' की उसके शब्दो तथा अर्थों के साथ व्याख्या की।

जनपदकल्याणि का मतलब है जनपद भर में कल्याणि -= उत्तम-छ: शरीर-दोपो से मुक्त ग्रौर पाँच उत्तम-बानो से युक्त । वह न ग्रधिक लम्बी, न ग्रधिक छोटी, न ग्रधिक पतली न ग्रधिक मोटी, न ग्रधिक काली, न ग्रत्य-धिक सफेद-मानुपी वर्णों से बढ़ कर लेकिन देवी वर्ण तक नहीं पहुँची हुई। इस लिए छ शरीर दोपो से मुक्त । उनम-चमडी, उनम-मास, उत्तम नसें. उत्तम हड्डियाँ तथा उत्तम-प्रायु (तहण) इन पाँच उत्तम बानों से युक्त होने के कारण पाँच उत्तम बातो से युक्त कही गई। उसे बाहरी चमक की जरूरत न थी। अपने शरीर की चमक से ही बाग्ह हाथ की जगह को प्रकाशित करती थी। वह पियंगु-रंग की वा सोने के रंग की थी। यह उसकी चमडी की उत्तमता रही। उसके हाथ-पैर तथा मुँह लाख से चित्रित की तरह वा लाल मूँगे या लाल कम्बल की तरह थे। यह उसके मांस की उत्तमता रही। बीसो नालुनो तक पहुँची हुई, मास के माथ जहाँ जहाँ लगी हुई वहाँ वहाँ लाख के रस से भरी हुई सी, जहाँ जहाँ मास से मुक्त वहाँ वहाँ दूध की धार के समान उसकी नर्से थी: यह उस की नसो की उत्तमता रही। बत्तीस दौन चिकनी सफेद वज्र पंक्ति की तरह चमकते थे। यह उसकी हर्डियो की उत्तमता रही। बीस वर्ष की होने पर भी सोलह वर्ष की सी ही प्रतीत होती थी। यह उसकी श्रायु की उत्तमता रही। परमपासाविनि-पगवन = पसव = ढग । जिसका परम ( = उत्तम) ढग है सो परमपासाधिनि । नृत्य,

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup> सतिपट्ठान संयुक्त (संयुक्त निकाय)

गीत मे उत्तम ढग श्रर्थात् उसका नाच, उसका गाना श्रेष्ठ ही था। श्रय परिसो भ्रागच्छेय्य---ग्रपनी मरजी से नहीं भ्राए। इस का मतलब है कि जनता के बीच में जनपदकल्याणि के नाचते हुए लोगों के 'साधु, साधु' कह कर चिल्लाने, ग्रगुलियाँ चटखाने, चोलियाँ उछालने का समाचार सुनकर राजा ने जेलखाने से एक ग्रादमी को मँगवाया। उसकी बेडियाँ कटवा, तेल से लबालब भरा पात्र उसके हाथ मे दे, एक श्रादमी को जिसके हाथ में तलवार थी श्राज्ञा दी 'इसे जहाँ जनपदकल्याणि का नाच हो रहा है वहाँ ले जाश्रो। यदि ला परवाही के कारण यह एक बुँद तेल भी गिरा दे, तो वही इसका सिर काट दो।' वह श्रादमी तलवार उठाकर उसको धमकाता हुन्ना वहाँ ले गया। उसने मरने के भय से भयभीत हो जीवित रहने की इच्छा के कारण, प्रसाव-धानी से उसे भूल, एक बार भी आँख खोल कर जनपदकल्याणि को नहीं देखा। इस प्रकार यह भूतपूर्व कथा है। सुत्र में तो यह संक्षेप में श्राई है। उपमा स्तो म्यायं, यहाँ तेलपात्र की कायानुस्मृति से उपमा दी ही गई है। इसमें राजा को कर्म की तरह समभना चाहिए। तलवार की तरह चित्त की कल्पता। तल-वार उठाए श्रादमी की तरह मार। तेल पात्र हाथ में लिए हुए श्रादमी की तरह कायानुस्मृति की भावना करने वाला विदर्शना-भावना में रत योगाभ्यासी ।

सो इस प्रकार यह सूत्र लाकर भगवान् ने कायानुस्मृति, की भावना करने वाले मनुष्य के लिए हाथ में तेलपात्र लिए रहने वाले श्रादमी की तरह सावधान रह कर कायानुस्मृति, की भावना करने की श्रावश्यकता बताई। भिक्षुश्रों ने इस सूत्र श्रोर उसके श्रर्थ को सुनकर यू कहा—"भन्ते! उस श्रादमी ने बहुत बडी बात की जो विना उस तरह की जनपदकल्याणि, को देखे तेलपात्र को लेकर चला गया।"

"भिक्षुत्रों, उस श्रादमी ने बहुत कठिन काम नहीं किया, यह तो श्रासान ही था। क्यों? क्योंकि उसे तलवार उठाए एक श्रादमी धमकाता हुआ ले

<sup>&</sup>lt;sup>र</sup>वाह, वाह या हुर्रा हुर्रा की तरह प्रसन्नता सू**वक घोव**।

जा रहा था। लेकिन पूर्व समय में पिण्डित लोगो ने स्रप्रमाद से स्मृति को न भूल कर, बनाए हुए दिव्यरूप को भी इन्द्रियों को चचल करके बिना देखें जाकर राज्य प्राप्त किए। यह कठिन कार्य्य था" कह पूर्व समय की बात कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा बह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस राजा के सौ पुत्रों में सब से छोटे होकर पैदा हुए। कम से बढते बढते बालिंग हो गए। उस गमय राजा के घर में प्रत्येक-बुद्ध भोजन किया करते थे। बोधिसत्त्व उनकी सेवा में रहते। एक दिन बोधिसत्त्व ने सोचा—"मेरे भाई बहुत हैं। मुभे इस नगर में अपने कुल का राज्य मिलेगा वा नहीं?" फिर उसे विचार हुआ कि यह बात प्रत्येक बुद्धों से पूछ कर जानूँगा।

दूसरे दिन प्रत्येक बुद्धों के श्राने पर उसने धर्म कर हैं ले, पानी छान, पाँव धो, तेल लगा, उनके भोजन कर चुकने पर, प्रणाम कर एक श्रोर बैठ वह बात पूछी। उन्होंने कहा—"कुमार! तुभे इस नगर में राज्य नहीं मिलेगा। लेकिन यहाँ से एक सौ वीस योजन की दूरी पर गन्धार, राष्ट्र में ताकिंगिया (किन यहाँ से एक सौ वीस योजन की दूरी पर गन्धार, राष्ट्र में ताकिंगिया (किन यहाँ से एक सौ वीस योजन की दूरी पर गन्धार, राष्ट्र में ताकिंगिया (किन साल करेगा। लेकिन रास्ते में बड़े भारी जंगन में में जाने में खनरा है। उस जगल को छोड़ कर जाने से सौ योजन चलना होगा, सीधे (जगल में से) जाने से पचास योजन। वह जंगल प्रमनुष्य-कारनार है। उसमें रास्ते में यिक्षणियाँ ग्राम श्रीर शालाये बनाकर, ऊपर सुनहरे तारों से सजं हुए में दुवे, उनके नीचे कीमती पलंग विछवा, नाना प्रकार की रेशमी कनाते लगवा, श्रपने श्राप को दिव्य श्रवकारों से सजाकर रहती हैं। जाते हुए श्रादमी को देखकर वह उसे मधुर वाणी से श्रामन्तिन करनी हैं 'श्राप थके हुए मालूम देते हैं। यहाँ श्राकर, थोड़ा विश्राम करके, पानी पीकर जाएँ।' श्रादमी के श्राने पर, उसे श्रासन दे, श्रपने हास-विलास से मुष्धकर, श्रपने साथ रमण करने पर

<sup>&#</sup>x27;पानी छानने का बर्तन।

वहीं उसे खून निचुडते हुए खाकर मार डालती हैं। जिसका रूप के प्रित आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती हैं। जिसका शब्द के प्रित आकर्षण होता है, उसे मधूर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रित उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रित उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रित आकर्षण होता है उसे दोनों श्रोर लाल रंग के तिकयो वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती हैं। यदि इन्द्रियों को बिना चचल किए, उनकी श्रोर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवे दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"भन्ते । वे रहे । श्रव में श्रापका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी श्रोर देखूँगा ?" फिर प्रत्येक-बुद्धों से परित्राण-धर्मदेशना, कहलवा परित्त की वालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक-बुद्धों, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में जाकर श्रपने ग्रादिमयों को कहा—"में तक्षशिला में राज्य पाने जा रहा हुँ। तुम यही रहो।"

उसके ब्रादिमयों में से पाँच ने कहा-"हम भी जाएंगे।"

"तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप श्रादि से श्राकिंग्त होने वाले श्रादिमयों को इस इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँमा लेती है। वडा खतरा है। में तो श्रपने बल को देख कर जा रहा हैं।"

"देव । क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमे जो रूप श्रन्छे लगेगे हम उधर देलेगे। हम भी श्राप की तरह ही चलेंगे।"

"तो अप्रमादी होकर रहना" कह बोधिसन्त्र उन पाँच आदिमियो को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ ग्राम ग्रादि बनाकर बैठी थी। उनमे जा क्या के प्रति ग्राक-पित होने वाला ग्रादमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर म्रम्भ हो थोडा रुका।

बोबिसत्त्व ने पूछा—"भो । क्यो ? थोड़ा रुक क्यो गए हो ?" "देव । मेरे पांव दरद करते हैं। थोड़ी दर शाला म बैठ कर स्नाता हूँ।"

<sup>&</sup>lt;sup>र</sup> कुछ विशेष मूत्रो का पाठ, जो स्रापत्ति में रक्षक होता है।

"भो । यह यक्षिणियाँ हैं। इनकी इच्छा मत करो।" "जो होना है सो हो, देव । में तो श्रव चल नही सकता हैं।"

"श्रच्छा तो पता लगेगा" कह बोधिसत्त्व बाकी चारो को लेकर चल विए।

रूप पर श्राकिषत हुश्रा वह श्रादमी उनके पास गया। यक्षिणियो ने उसे श्रपने साथ रमण करने पर उसी तरह मार कर श्रागे जाकर दूसरी शाला बनाई।

उस शाला में वह नाना प्रकार के बाजों को लेकर गाती हुई बैठी। वहाँ शब्द के प्रति श्राकर्षित होने वाला रका। उसे भी खाकर श्रागे जाकर नाना प्रकार के सुगन्धि में पूर्ण भाजनों की दूकान लगा कर बैठीं। वहाँ सुगन्धि के प्रति श्राकर्षित होने वाला रका। उसे भी खाकर श्रागे जा नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों से बत्तेंनों को भर भोजन की दूकान लगाकर बैठी। वहाँ रस के प्रति श्राकर्षित होने वाला रका। उसे भी खाकर श्रागे जा दिव्य पलंग बिछा कर बैठी। वहाँ स्पर्श के प्रति श्राकर्षित होने वाला रका। उसे भी खा गईं। बोधिसत्त्व श्रकेले रह गये।

तब एक यक्षिणी ने सोचा---'यह बड़ा करारा ग्रादमी है। मैं इसे खाकर ही लौटुँगी।'' वह बोधिसत्त्व के पीछे पीछे चली।

जंगल के अगले हिस्से में, जंगल मे काम करने वाले आदिमियों ने यक्षिणी को देख कर पूछा ''यह तेरे आगे आगे जाने वाला तेरा क्या लगता है ?"

"आयें! यह मेरे प्रिय हैं।"

लोगों ने बोधिसत्त्व से कहा—"भो! यह सुकुमार, फूलों की माला सद्ग, सुन्दर बालिका अपने घर को छोड़कर तुम्हारा ही प्राश्रय देख निकली। इसे बिना थकाये साथ साथ लेकर क्यों नहीं जाते?"

"भार्यों । यह मेरी भार्या नहीं है। यह यक्षिणी है। यह मेरे पाँच श्रादिमियों को स्ना गई।"

"श्राय्यों! जब पुरुष कुद्ध होते हैं, तो श्रपनी भार्य्या को यक्षिणी भी बनाते हैं, प्रेतिनी भी बनाते हैं।"

उसने चलते चलते गिभणी की शकल बना और फिर पुत्र की माँ होने का सारंग-ढंग कर गोद में पुत्र को लिए लिए वोधिसत्व का अनुगमन किया। जो देखता वही पहले की तरह से पूछता। बोधिसत्व भी उसी तरह उत्तर देते हुए तक्षशिला पहुँचे।

वह यक्षिणी पुत्र को अन्तर्ध्यान कर अकेली ही पीछे पीछे चली।

बोधिसत्त्व नगर-द्वार में प्रवेश कर एक शाला में बैठे। वह बोधिसत्त्व के तेज के कारण प्रविष्ट न हो सकी और दिख्य रूप बना आला के द्वार पर ठहरी।

उस समय तक्षित्राला से निकलकर उद्यान जाते हुए राजा ने उसे देख, उस पर श्रनुरक्त हो एक श्रादमी को भेजा कि देखें कि उसका कोई स्वामी है वा नहीं ? उसने पास जाकर पूछा—"तेरा कोई स्वामी है ?"

"हाँ, श्रार्य ! यह शाला में बैठे हुए मेरे स्वामी हैं।"

बोधिसत्त्व ने कहा, "यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह यक्षिणी है। यह मेरे पाँच ग्रादिमयों को खा गई।" उसने कहा—"पुरुष जब ऋद हो जाते हैं, तब जो चाहते हैं बोलते हैं।"

राज-पुरुष ने दोनो की बात राजा से निवेदन की। राजा ने 'जिसका कोई स्वामी नहीं, वह वस्तु राजा की होती है' कह यक्षिणी को बुलवा उसे एक हाथी की पीठ पर चढ़वा, नगर की प्रदक्षिणा कर, महल में जा पट-रानी बनाया।

शाम को स्नान और सुगन्धित लेपों के अनन्तर भोजन कर राजा सुन्दर पलंग पर लेटा। वह यक्षिणी भी अपने अनुकूल आहार खा, सज कर राजा के साथ पलंग पर लेटी। लेकिन जब राजा रित-सुख अनुभव करने लगा, तो वह एक तरफ पलट कर रोने लगी।

राजा ने पूछा-"भद्रे रोती क्यों है?"

"देव! तुम मुक्ते रास्ते में देखकर ले आए। तुम्हारे घर में बहुत स्त्रियाँ हैं। वे सपत्लीक स्त्रियाँ जब बात चलने पर मुक्ते कहेगी 'तेरे माता, तेरे पिता, तेरे गोत्र, ता तेरी जाति को कौन जानता है ? त् रास्ते म देखकर ले भाई गई हैं तो में सीस पकड़ कर दवा दी गई की तरह शिमदा हो जाऊँगी। मिंद तुम मुक्ते सारे राष्ट्र का ऐश्वर्य और हुक्मन दे दो, तो कार्ड मेरे विस्त को दुसी करके ऐसी बात न कह सकेगा।"

"भद्रे<sup>।</sup> सारे राष्ट्र के निवासियो पर मेरा कुछ प्रशिकार नहीं। मैं

उनका स्वामी नहीं। हाँ, जो राजाज्ञा के विरुद्ध नहीं करना चाहिए ऐसा कोई काम करते हैं, उन्हीं का मैं स्वामी हूँ। इसलिए में तुभें सारे राष्ट्र का ऐश्वर्य श्रौर हुकूमत नहीं दे सकता।"

"श्रच्छा देव । यदि राष्ट्र वा नगर का शासन मुफे नहीं सौप सकते, तो जो घर के श्रन्दर के लोग है, घर के श्रन्दर रहने वाले हैं वे लोग मेरी हुकू-मत मे रहें, ऐसी श्राज्ञा दे।"

उसके दिव्य स्पर्श-सुख में बँधे हुए राजा की सामर्थ्य नहीं हुई कि श्रस्वी-कार कर सके। उसने कहा—"भद्रे! श्रच्छा! में घर के श्रन्दर रहने वालो को तेरे श्रधीन करता हुँ। तू उनपर हकूमत कर।"

वह "ग्रच्छा" कह राजा के सो जाने पर यक्ष-नगर गई। वहाँ से यक्षों को बुला लाई। ग्रपने राजा को मार कर हर्डी मात्र बाकी छोड़ सब नसें, चमडा, मास तथा रक्त ला गई। बाकी यक्षों ने प्रधान द्वार के श्रन्दर जितने भी थे—मुगें ग्रीर क्ते तक—सब हो गा। र हर्डियों ही हिड्डियां बाकी छोडीं।

श्रगले दिन लोगों ने दरवाजों को यह देश हुट्याजियों से दरवाजों को तोड, श्रन्दर घुस कर सारे घर को हड्डियों से भरा हुग्रा पाकर कहा—"वह श्रादमी ठीक ही कहता था कि यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह यक्षिणी है। राजा ने बिना कुछ जाने ही उसे घर में रख श्रपनी भार्य्या बना लिया। वह यक्षों को बुलाकर सबको खाकर चली गई होगी।"

बोधिसत्त्व ने उस दिन उस शाला में परित्त-बालुका सिर पर रख परित्त-सूत्र से अपने आपको घेर खड्डा लिए खडे ही खडे सूर्य्य उगा दिया।

श्रादिमियों ने सारे राज-महल को शुद्ध कर, गोवर से लीप भीर उसके ऊपर सुगन्धित लेप कर फूल बिखेर, पुण्पमानाएँ टाँग, भूप दे, नई मालाएँ बाँब सलाह की—"भो! जिस श्रादमी ने दिव्य रूप भारण करके पीछे पीछे श्राती हुई यक्षिणी को इन्द्रियों को चचल कर देखा तक नहीं, वह बहुत ही महान् घृतिमान् तथा ज्ञानवान् प्राणी है। उस तरह के श्रादमी के राजा बनने पर सारा राष्ट्र सुखी होगा। उसे राजा बनाएँ।"

तब सब श्रमात्यों तथा नगर-निवासियों ने एक राय हो बोधिसत्य के पास जा कहा—''देव श्राप इस राज्य को सँभालें।'' फिर उन्हें नगर में ले जा रत्नो के ढेर मे विठा, श्रभिषेक कर तक्षशिला का राजा बनाया। वह

चार ग्रगित-गामी कर्मों को छोड, दस राज-धर्मों के विरुद्ध श्राचरण न कर धर्मानुसार राज्य करता हुग्रा दानादि पृण्य-कर्म कर हर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह बुद्ध होने पर यह गाथा कही-

समितित्तिकं ग्रनवसेसकं तेलपत्तं यथा परिहरेग्य , एवं सचित्तमनुरक्खे पत्थयानो दिसं ग्रगतपुब्बं ॥

[जिस प्रकार किनारे तक लवालव भरे हुए तेल के पात्र को ले चले, उगी प्रकार निर्वाण की इच्छा करने वाले को चाहिए कि अपने चित्त की रक्षा करे।]

समितित्तकं—िकनारे तक भरा हुआ। श्रनवसेमक, लवालब भरा हुआ। छानने के लिए कुछ वाकी न रख। तेलपत्तं—िनल का नेल डाला हुआ पात्र परिहरेस्य, हरण करे, लेकर जाए। एवं सिचत्तमनुरक्ये, उस तेल भरे पात्र की तरह अपने चित्त को कायानुस्मृति तथा सम्प्रयुक्तानुस्मृति क बीच मे रख मुहूर्त भर के लिए भी बाहर (किनी दूसरे विषय की भ्रोर) न जाने दे। उस तरह योगाभ्यासी पण्डित को चाहिए कि वह (अपने चित्त की) रक्षा करे, सँभाल कर रक्ये। क्यों? इसीलिए कि—

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो , चित्तस्स दमयो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥

[किठनाई से निग्रह किये जा सकते वाले, तिन्यामी, जहाँ चाहे यहाँ चले जाने वाले चित्त का दमन करना श्रद्धा है। दमन किया गया निन सुख देने वाला होता है।]

इसलिए---

सुदुद्दसं सुनिपुण यत्यकामनिपानिन , चित्त रक्लेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुसावहं ॥

[बुद्धिमान् मनुष्य दुष्करता से दिखाई देने वाले, **प्रत्यन्त चालाक, जहाँ** 

चाहे वहाँ जाने वाले चित्त की रक्षा करे। सँभाल कर रक्ता गया चित्त सुख देने वाला होता हैं।]

यही---

दूरङ्गमं एकचरं श्रसरीरं गुहासयं, ये चित्तं सञ्जमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥

[जो दूरगामी, श्रकेले विचरने वाले, निराकार, गुह्याशय चित्त का संयम करेंगे, वे ही मार के बन्धन से मुक्त होंगे। ]

लेकिन दूसरे-

ग्रनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं ग्रविजानतो , परिप्सवपसावस्स पञ्जा न परिप्रति ॥

[जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सद्धमं को जानता नहीं, जिसका चित्त प्रसन्न नहीं वह कभी प्रज्ञावान् नहीं हो सकता।

लेकिन जिसका कर्मस्थान स्थिर है-

भनवस्मुतिषत्तस्स श्रनन्वाहतचेतसो , पुरुषपापपहीनस्स नस्य जागरतो भयं ॥

[जिसका चित्त ग्रासिक्त-रहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पाप-पुष्य से परे है, उस जागरूक पुरुष के लिए भय नहीं।]

इसलिए--

फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्कं दुफ्रिवारयं, उजुंकरोति मेघावी उसकारो व तेजनं॥

[चित्त चंचल है, चपल है, दुर्-रक्ष्य है, दुर्-निवार्य है। मेधावी-पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनानेवाला बाण को।]

इस प्रकार सीघा करते हुए अपने चित्त की रक्षा करे। पत्थयानो दिसं अगतपुब्धं, इस कायानुस्मृति कर्मस्थान को आरम्भ करके बिना सिरे के ससार में अगतपूर्वं दिशा की प्रार्थना करते हुए, उसे चाहते हुए अपने चित्त की रक्षा करे। लेकिन यह अगतपूर्वं ( --- जहाँ पहले नहीं गये) दिशा कीन सी दिशा है—

मातापिता दिसापुब्बा ग्राचरिया दिस्तिणा दिसा पुत्तदारा दिसा पच्छा मित्ता मच्चा च उत्तरा दासकम्मकरा हेट्ठा उद्धं समणबाह्मणा, एता दिसा नमस्सेय्य ग्रलमत्थो कुले गिही।।

[माता पिता पूर्व-दिशा हैं, श्राचार्य दक्षिण दिशा। पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा है, मित्र-श्रमात्य उत्तर दिशा। दास-कर्मकर नीचे की दिशा हैं, श्रमण- ब्राह्मण ऊपर की दिशा। हैसियत वाला गृहस्थ श्रपने कुल में इन दिशाश्रो को नमस्कार करें।]

यहाँ तो पुत्र स्त्री आदि दिशाएँ कही गई।

दिसा चतस्सो विदिसा चतस्सो, उद्धं प्रघो दसदिसा इमायो।। कतमं दिसं तिट्ठति नागराजा, यमदसा सुपिने छब्बिसाणं।।

[चार दिशाएँ, चार अनु-दिशाएँ, ऊपर और नीचे इस प्रकार यह दस दिशाएँ है। वह छ दाँतो वाला नागराजा किस दिशा मे रहता है ?]
यहाँ पूर्व आदि दिशाओं को दिशा कहा गया है।

ग्रगारिनो ग्रन्नदपाणवत्थदा ग्रन्हायिका नम्पि विसं ववन्ति, एसा विसा परमा सेतकेतु ! यं पत्वा दुक्खी सुखिनो भवन्ति ।।

[भोजन और वस्त्र देने वाले निमन्त्रण देने वाले गृहस्थों को भी 'दिशा' कहते हैं। लेकिन हे सेतकेतु । वही दिशा परम दिशा है जिस प्राप्त कर दुखी सुखी हो जाते हैं।]

यहाँ 'निर्वाण' को दिशा कहा गया है। यहाँ भी निर्वाण से ही मतलब है। वह क्षय तथा विराग में दिखाई देनी है (दिस्मित) इमीलिए दिशा कहा है। इस बिना सिरे के ससार में कोई मूर्ख पृथक-जन स्वप्न में मी कभी उधर नहीं गया, इसलिए अगत-पूर्व दिशा कहा। उसकी इच्छा करने वाले को कायान्स्मृति का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार शास्ता ने भ्रपने उपदेश को निर्वाण पर समाप्त कर जातक का साराश निकाला।

उस समय की राज परिषद भ्रव की बुद्ध परिषद थी। राज्य-प्राप्त कुमार तो में ही था।

### ६७. नामसिद्धि जातक

जीवकञ्च मतं विस्वा, यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन मे विहार करते हुए एक नाम-सिद्धि भिक्षु के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

एक तरुण का नाम ही था पापक। वह श्रद्धा में नृ -्यामन में प्रप्रितित हो गया। भिक्षु उसे बुलाते— "श्रायुष्मान् पापक श्राश्रो, श्रायुष्मान् पापक ठहरो।" वह सोचने लगा— "दुनिया में 'पापक' नाम बहुत खराब है, मनहूम है। में दूसरा श्रच्छा रखवाऊँगा।"

उसने श्राचार्य्य उपाध्यायों के पास जाकर कहा---"भन्ते! मेरा नाम श्रमाङ्गिलिक है। मुभ्ने दूसरा नाम दे।"

उन्होंने कहा—श्रायुष्मान् ! नाम प्रजाश-मात्र है। बुलाने भर को है। नाम से कोई धर्थ-सिद्धि नही होती। जो नाम है उसी में मंतुष्ट रह।

उसने बार बार श्राग्रह किया। भिक्षु सघ में सभी जान गए कि इसे श्रच्छे नाम का श्राग्रह है।

तव एक दिन धर्मसभा में बैठे भिक्षुन्नों ने बात-चीत चलाई 'प्राप्तानां ! श्रमुक भिक्षु नाम में सिद्धि समभता है ग्रोर श्रच्छा नाम ढेढता है।'

तब शास्ता ने धर्म-सभा में श्राकर पूछा—''भिक्षुग्रो, वैठे क्या बानचीत कर रहे थे ?"

"यह वातचीत।"

"भिक्षुत्रो, वह केवल अभी नाम गिद्धिक नहीं है, वह पहले भी नाम मे ही सिद्धि समभता रहा है।"—यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

### ख. ऋतीत कथा

पूर्व समय मे तक्षशिला में बोधिमत्य आयन्त विस्थात आचार्य हुए। ये पाँच सौ शिष्यो को मन्त्र (==वेद) पहातं थे। उनके एक थिएय का नाम था 'पापक'। उसे लोग बुलाते, 'पापक! आ। पापक! आ।"

उसने सोचा—मेरा नाम ग्रमाङ्गालिक है। में दूसरा नाम रन ॥ऊँग। वह श्राचार्य्य के पास जाकर बोला, "ग्राचार्य्य! मेरा नाम ग्रमाङ्गालिक है। मुक्ते दूसरा नाम दे।"

श्राचार्य ने कहा, "तात । जा, देश में धम कर जा तुके मच्छा लगे, ऐसा एक माङ्गलिक नाम हैंड कर ला। आने पर तेरा नाम बदल हैंगा।"

वह 'श्रच्छा' कह, रास्ते के लिए लुगकी ले निकल, एक गाँव से दूसरे गाँव घूमता हुआ, एक नगर म पहुँचा।

वहाँ, 'जीवक' नाम का एक प्रास्थी मर गया था। उस उसक रिझ्ने-दार जलाने के लिए ले जा रहे थे। उसन रंग कर पृथ्य दिसका नया नाम रहा?

"इसका नाम 'जीवक' था।"

"क्या 'जीवक' भी गरना है ?"

''जीवक' भी मरता है, श्रीर 'सर्वस्वक' भी । नाम अस्प्कारन भर का होता है । मालूम होता है कि त मर्प है ।''

यह बात सुन, बट नाम के पी। १६ क्याना को नवर म गया। करा एक दासी का उभके मानिक नाम करके सक्तर्यां ने जा करके कारण करता है पर बिटा कर रस्ता संपार के काल करका का नाम का **'घनपासी'।** 

<sup>े</sup>पूर्व समय म वागियां का रावकर उनने 'मन्नवूरी' करवाते थे। भृति शब्द का यहां यहां अर्थ है।

उसने गली में से गुजरते हुए उसे पिटते देख कर पूछा । ''इसे क्यों पीट रहे हैं' ?'' ''यह मजदूरी नहीं ला कर दे सक रहीं हैं।''

"इसका नाम क्या है ?"

"इसका नाम है धनपाली?"

"नाम से धनपाली है, तो भी मजदूरी मात्र भी (कमाकर) नहीं (ला) दे सकती है ?"

"धनपाली भी दरिद्र होती है ग्रथनपाली भी। नाम बुलाने भर को होता है। मालूम होता है तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति कुछ श्रौर उदासीन हो नगर से निकला। रास्ते मे उसने एक श्रादमी को देखा जो रास्ता भटक गया था। उसने पूछा "तुम क्या करते घूम रहे हो?"

"स्वामी! मै रास्ता भूल गया हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"पन्यक"।

"पन्थक भी रास्ता भूलते हैं?"

"पन्थक भी भूलते हैं, श्रपन्थक भी भूलते हैं। नाम पुकारने भर के लिए है। मालूम होता है तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति विलकुल उदासीन हो बोधिसत्त्व के पास गया। बोधि-सत्त्व ने पूछा—"क्यों तात । श्रपनी रुचि का नाम हूँ ह लाये ?"

"श्राचार्यं! जीवक भी मरते हैं श्रजीवक भी। धनपाली भी दिरद्र होती हैं श्रधनपाली भी। पत्थक भी रास्ता भूलते हैं, श्रपन्थक भी। नाम बुलाने भर को होता है। नाम से सिद्धि नहीं है। कर्म से ही सिद्धि होनी है, मुक्ते दूसरे नाम की जरूरत नहीं है। मेरा जो नाम है, वही रहे।"

बोधिसत्त्व ने उसके देखें और किए को मिलाकर यह गाथा कही— जीवकञ्च मतं दिस्त्रा धनपालिञ्च दुग्गतं, पन्थकञ्च वने मूळ्हं पापको पुनरागतो ॥

[जीवक को मरा देख, धनपाली को दरिद्र देख, पन्थक को जगल में भटकता देख, 'पापक' फिर लौट श्राया।]

पुनरागतो—इन तीन बातों को देख कर पुनः लौट आया। 'र' सन्धि के कारण है।

शास्ता ने यह पूर्व जन्म की कथा सुना 'भिक्षुम्रो, यह केवल इसी जन्म में नामसिद्धिक नहीं है, पहले भी नामसिद्धिक ही रहा है' कह जातक को मिलाया।

उस समय का नामसिद्धिक अब का नामसिद्धिक ही है। आचार्य की परिषद अब की बुद्ध-परिपद। आचार्य तो मैं ही था।

## ६८. कूटवािगाज जातक

साधु खो पण्डितो नाम, यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ठग बनिये के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दो जने साभे में व्यापार करते थे। वे गाड़ियों में सामान लेकर दीहात गए ग्रीर वहां से नफा कमाकर लीटे। उनमें से ठग बिलए में सोचा—"यह (बिलया) बहुत दिन तक भोजन ग्रीर शय्या के ठीक ठीक न मिलने से कप्ट पाता रहा है। ग्रव घर में नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन पेट भर खा ग्रजीण से मरेगा। इसलिए में सब सामान के तीन हिस्से कर एक उसके बच्चों को दूँगा। दो हिस्से स्वयं लुँगा!"

वह 'श्राज बाँटता हूँ, कल बाँटता हूँ' करता हुश्रा सामान का बटवारा नहीं करना चाहता था। पंडित बनिये ने उस श्रनिच्छुक बनिए पर जोर डाल उससे बटवारा कराया। तब वह बिहार गया। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर

कुगल क्षेप गुछे जाने पर शास्ता ने कहा—''तूने देर की । चिरकाल से श्राकर भी बुद्ध की सेवा में इतनी देर से उपस्थित हुग्रा।''

उसने वह सब बान बुद्ध से निवेदन की।

जार त योगो—"उपासक । यह विनया केवल सभी ठम बनिया नहीं है। यह पहले भी ठम बनिया ही था। प्रव उसने तुभे ठमने की उच्छा की। पूर्व समय में भी पंडितों को ठमने का प्रयत्न किया।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा बह्मदत्त के राज्य करने समय बोधिसत्त्व बाराणसी में बनिए के कुल में पैदा हुए। नाम रखने के दिन उसका नाम 'पण्डित' रखवा गया। श्राय बढने पर वह एक दूसरे बनिए के साथ साफे में व्यापार करने लगा। उस (दूसरे बनिए) का नाम श्रविपण्डित था। वे बाराणसी से पाच सो गावियों पर सामान लाद दीठा। में गा, व्यापार कर नफा कमा हर बाराणसी लीटे।

उनके सामान का बटबारा करते समय स्रतिपंति ने कहा—"मभं दो हिस्से मिलने चाहिए। क्यों ? तू पंतित हैं। में स्रतिपण्टित। पंति को एक हिस्सा मिलना चाहिए। स्रतिपत्ति को दो।"

"क्या हम दोनो की पूँजी (भण्ड-मूल) और बैल श्रादि बरावर बराबर नहीं रहे हैं, फिर तुभे दो हिस्से क्या मिलने चाहिए?"

"श्रतिपंडित होने के कारण।" इस प्रकार उन दोनों ने बात बढ़ाकर फगडा (शुरू) किया। तब श्रतिपण्डित, ने 'एक उपाय है' सीन कर प्रपने पिता को एक सोराले वृक्ष में रख कर कहा—"हमारे दोनों के श्रानं पर, तू कहना कि श्रतिपडित को दो हिस्से मिलने चाहिए।"

यह कह बोधिसत्त्व के पास जा कर कहा—"सौम्य ! मुक्ते दो हिस्सा मिलना उचित है, वा ध्रनुचित, इस बात को यह वृक्ष-देवता जानता है। आ, उससे पूछे।" (फिर) उसे वहाँ ले जाकर कहा—'ध्रार्य ! वृक्ष-देवता ! हमारे भगड़े का निर्णय भ्राप करे।'

उसके पिता ने स्वर बदल कर कहा-"तो (भगड़ा) कहो।"

"श्रार्यं । यह पंडित है, मैं 'प्रतिपडित' हूँ । हमने साभा व्यापार किया है । सो किसे क्या मिलना चाहिए  $^{?}$ "

"पडित को एक हिस्सा, श्रतिपंडित को दो हिस्से।"

बोधिसत्त्व ने भगडे का यह फैसला सुन कर, "यहाँ देवता है कि श्रदेवता, जानना चाहिए" (सोच) पुप्राल (घारा) ला, वृक्ष के खोखले मे भर श्राग लगा दी। श्रति-पडित के पिना ने श्राग लगनी शुरू होने पर श्रध-जले शरीर से (वृक्ष) के ऊपर चढ़ शाखा पकड़, लटकते हुए, पृथ्वी पर गिर कर यह गाथा कही—

### साधु खो पण्डितो नाम नत्वेव झतिपण्डितो, श्रतिपण्डितेन पुलेन मनम्हि उपकृलितो

[ 'पंडित' श्रच्छा है, 'श्रति-पंडित' श्रच्छा नही। (इस) 'श्रति-पंडित' पुत्र ने मुफ्ते, क्षण भर में जला ही दिया था। ]

साधु खो पण्डितो नाम, इस लोक में पाण्डित्य से युक्त, कारण श्रकारण का ज्ञाता श्रादमी श्रच्छा है, शोभा देता है। श्रातिपण्डितो, नाम मात्र से श्रिति-पडित, कुटिल श्रादमी श्रच्छा नही। मनिम्ह उपक्लितो, (मतलब) थोडे में श्रीर जल गया होता, श्रधजला ही छटा हूँ।

उन दोनो ने बीच में से बाँट कर, बराबर बराबर का हिस्सा लिया। (फिर) यथा-कर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने 'पहले भी यह कुटिल-व्यापारी ही था' कह इस पूर्वजन्म की कथा को ला, जातक का साराश निकाल दिया।

उस समय का कुटिल-व्यापारी, श्रवका गृटिल-व्यापारी था। बुद्धिमान व्यापारी तो मैं ही था।

# ६६. परोसः इस्स जातक

"परोसहस्सम्पि समागतान" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक श्रज्ञ (पृथक्-जन) द्वारा पृद्धे गये प्रश्न के उत्तर में कही।

# क. वर्तमान कथा

(इसकी) कथा ( वस्तु) सरभङ्ग जातक में आयेगी।

एक बार धर्मसभा में एकत्र बैठे हुए भिक्षु 'श्रावुसां । बुद्ध के सक्षिप्त उपदेश को धर्म सेनापित सारिपुत्र ने विस्तार में कहा' करके (सारिपुत) स्थिवर की प्रशसा कर रहे थे। शास्ता ने श्राकर पूछा— "भिक्षुश्रो! इस वक्त बैठे क्या वात कर रहे थे?" उनके "यह (बात)" कहने पर, शास्ता ने, 'भिक्षुश्रो! न केवल श्रभी सारिपुत्र, मेरे मिक्षप्त कथन की विस्तार में व्याख्या करता है, उसने पहले भी की थीं, कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

## ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मबत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) उदीच्य ब्राह्मण-कृत में उत्पन्न हुन्ना था। उसने तक्षिक्तला में सभी शिल्पों (विद्याश्रो) को सीखा, फिर िपा मंगों को ह्येष, ऋषि प्रक्रज्या के श्रनुसार प्रक्रजित हो, पाँच श्रमिज्ञा श्रीर श्राष्ट्र रामानियों का प्राप्त कर, हिमालय में रहने लगा। पाँच सौ तपस्वी, इसके श्रनुयायी थे; उसका प्रधान-शिष्य, वर्षाकाल में, श्राष्ट्रे (ढाई सौ) ऋषि-गण को लेकर, लोणम्बल (निमक-खटाई) लाने के लिए यस्ती (मनुष्य पथ) में चला श्राया।

<sup>&</sup>lt;sup>१</sup>सरभङ्ग जातक (५२२)

उस समय बोधिसत्त्व का य्रन्तिम-सपय समीप भ्रा गया था। उसके (वाकी) शिष्यो ने 'श्रिधिगम'' पूछा—''श्रापने कीनसा गुण प्राप्त किया ?'' 'कुछ नहीं कह ग्राभास्वर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुग्रा। (श्रम्प-)ध्यान लाभी होने पर भी, बोधिसत्व, (श्ररूप-लोक) उनके ग्रनुकुल न होने से श्रम्प-लोक में उत्पन्न नहीं होते।

शिष्यो ने 'श्राचार्य को 'श्रधिगम' नहीं हैं, सोच दाह करने के समय (वि-शेप) सत्कार नहीं किया। प्रधान शिष्य ने लौटकर पूछा— "श्राचार्य कहाँ हैं?" "काल कर गये।"

यह सुन उसने कहा—"क्या ग्राचार्य से 'ग्रधिगम' पूछा ?" "हाँ ! पूछा।"

"(म्राचार्य ने) क्या कहा?"

"उन्होंने यहा 'कुछ नहीं,' सो हमने उनका (विशेष) सत्कार नहीं किया।" प्रधान शिष्य ने कहा— "तुमने श्राचार्य के श्रथं को नहीं समका, श्राचार्य श्रा- किञ्चञ्चायतन ध्यान के लाभी थे।" उन्होंने उसके बार बार कहने पर भी विश्वास न किया। बोधिसत्त्व ने, यह बात मालूम होने पर 'यह श्रन्थे-मूर्ख, मेरे प्रधान शिष्य के कहने का विश्वास नहीं करने, उन्हें यह बात प्रगट कहना। (सोच) ब्रह्मलोक से श्राकर, श्राश्रम के ऊपर बड़ी शान से, श्राकाश में खड़ें हो, (श्रपने) शिष्य की बृद्धि की प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

परोसहस्सम्पि समागतानं कन्देय्युं ते वस्ससतं श्रपञ्जा, एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्जो, यो भासितस्स विजानाति श्रत्य॥

[स्तस्यापित भी सप्रशायान (श्रादमी) श्राप्तर मैनाडो वर्ष विल्लाने रहे, उन सबसे (वह) एक ही प्रजायान् श्रन्छा है, जो भाषित (कहे) के श्रर्थ को समभता है।]

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> ध्यान-विशेष की पाप्ति-ग्रप्राप्ति विषयक प्रश्न ।

परोसहस्सम्पि, सहस्राधिक, सम्रागतानं, इकट्ठे हुए हुग्रों का, कही बात के ग्रर्थ को न समक्त सकने वाले मूर्खों का । करवेय्य ते वस्ससतं ग्रपञ्जा, वे, इस प्रकार ग्राये हुए, इन मूर्ख तपस्वियों की तरह, सौ वर्ष तक भी, हजार वर्ष तक भी चिल्लाने रहे, पीटते रहे, वे दिन्ताने हुए भी इस ग्रर्थ ( मनज्य) को नती जान मजेगे । एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्जो, इस प्रकार के सहस्राधिक मूर्खों की ग्रपेक्षा पडित ग्रादमी ग्रकेला ही श्रेष्ठ है, श्रेष्ठ-तर है । कैसा प्रज्ञावान् ? यो भासितस्स विजानाति ग्रत्थं, जो भाषित का ग्रर्थ जानता है, जैसे यह प्रधान शिष्य ।

इस प्रकार महासत्त्व ( वोशिगत्त्व), श्राकाश में खडें ही खडें, धर्मोपदंश दे, तपस्वी के गुण का बोध ( जानारी) करवा, ब्रह्मलोक को चले गयं। वे तपस्वी भी जीवन के श्रन्त में ब्रह्मलोकगामी ही हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का साराश निकाला । उस समय का प्रधान शिष्य (श्रव का) सारिपुत्र ही था । लेकिन महा-ब्रह्मा में ही था ।

#### १०० असातरूप जातक

"ग्रसातं सातरूपेन" यह (गाथा) शास्ता ने (शाक्य देश के) कुण्डिय नगर के पास, कुण्डिधान वन में विहार करते समय, कोलिय राज-कुमारी उपासिका सुप्पवासा के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

उस समय वह सात-वर्ष तक भ्रपनी कोख मे गर्भ-धारण कर, एक सप्ताह से गर्भ विगड़ जाने के कारण (दुखी थी)। उसकी प्रत्यत वेदना हो रही थी। लेकिन वैसी पीड़ा होने पर भी 'वह भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध हैं, वे इस प्रकार के दुःख के नाशार्थ धर्मोपदेश देते हैं, उन भगवान् का श्रावक सघ सुप्रतिपन्न हैं, जो इस प्रकार के दुःख के नाश के लिए प्रयत्नशील हैं, निर्वाण (ही) सुख है जहाँ इस प्रकार का दुःख नही हैं—इन तीन विचारो पर विचार कर, दुःख को सहती रही। फिर उसने श्रपने स्वामी को बुला, शास्ता के पास भेजा नाकि वह (शास्ता से) उसका प्रणाम श्रीर हाल कहे।

शास्ता ने उसका प्रणाम करना सुनने ही कहा—"कोलिय-कुमारी सुष्य-वासा, सुखी हो। (स्वय) सुखी हो, वह श्ररोगी पुत्र को जन्म दे।"

भगवान् के (मुँह से) वचन (निकलने) के साथ ही, कोलिय-कुमारी सुप्पवासा सुखी हो गई श्रौर उसने स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया। उसके स्वामी ने घर जाकर उसे प्रसूता देख, कहा 'भो श्राश्चर्य हैं। श्रत्यन्त श्राश्चर्य हैं। तथागत के प्रताप से श्रत्यन्त श्राश्चर्य कर, श्रद्भुत तथा विचित्र बात हुई।

सुष्पवासा ने पुत्र को जन्म दे (ग्रपने स्वामी को) फिर शास्ता के पास भेजा ताकि वह बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसघ को एक सप्ताह के दान का निमन्त्रण दे श्राये।

उस समय महामौद्गल्यायन के उपस्थायक (--सेवक) ने बुद्ध-प्रमुख सय को निमितित किया हुग्रा था। शास्ता ने मुपवासा के लिए दान देने की जगह निकालने को, स्थिवर को उस (उपस्थायक) के पास भेज, उसे सूनना दिलया, मुप्पवासा का दान ग्रपने ग्रौर सघ के लिए स्वीकार किया। मुप्पवासा ने सातवे दिन सीवली-कुमार पुत्र को सजाकर उससे शास्ता ग्रौर भिक्षु-सघ को प्रणाम कराया। उसे कम से सारिपुत्र स्थिवर के पास ले जाने पर सारिपुत्र स्थिवर ने उससे कुशत-समाचार पूछा—"क्यों सीवली! ग्रच्छी तरह से तो हो ?" उसने 'भन्ते! मुक्ते मुख कहां? में सात वर्ष तक लोठ-कुम्भि (नरक) में रहा' कह स्थिवर के साथ इस प्रकार बातचीत की।

उसकी बानचीन सुन 'मरा सात दिन का जाया ( पुत्र) अनुबुद्ध, धर्म-मेनापित के साथ मन्त्रणा ( बानची ा) करना है' सोच (सुप्पवासा) अत्यंत प्रमन्न हुई। शास्ता ने पूछा—"मुप्पवासे । श्रीर भी इस प्रकार के पुत्रो की उच्छा है?" "भन्ते । यदि इस प्रकार के श्रीर सात पुत्र मिले, तो सातो को चाहूँगी।" शास्ता उदान कह, (दान का) श्रनुमोदन कर चले गये। सीवली-कुमार सात ही वर्ष की श्रायु मे शासन में अत्यत अज्ञान् के प्रक्रजित हुआ, (बीस) वर्ष पूरे होने पर, उपसम्पदा प्राप्तकर, पुण्यवान् (चीवर श्रादि) पाने वालो में श्रग्र हुआ श्रीर पृथ्वी को उन्नादित कर, श्रहंत्पद प्राप्त कर, पुण्यवानों में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुग्रो ने बानचीन चलाई—"ग्राबुसां। सीवली स्थिवर इस प्रकार के महापुष्प सन् हैं। उनकी इच्छा सम्पूर्ण हुई है। वह ग्रन्तिम देह-धारी हैं! (लेकिन फिर भी) वह सान वर्ष तक लोह-कृम्भि नरक में रहे, सप्ताह तक गर्म के बिगाड में रहे, जिसने, ग्रहो! माता-पुत्र ने ग्रत्यंत दुःख पाया। ऐसा उन्होंने क्या (पाप-) कर्म किया था?"

शास्ता ने वहाँ जाकर पूछा—"भिक्षुत्रो ! उस समय बैठे गया बातचीत कर रहे थे?"

"यह (बात)" कहने पर शास्ता ने "भिक्षमी ! सीवली, का महापुण्य-वान् होना, सात वर्ष तक लोह-कुम्भि नरक में रहना, सप्ताह भर तक गर्भ का बिगाड रहना, यह उसके श्रपने किये कर्म का ही फल है; श्रीर सुप्पबाता, का भी सात वर्ष तक गर्भ ढोये फिरने का दुल, तथा सान दिन तक गर्भ के बिगडे रहने का दु.ल, उसके श्रपने किये कर्म का ही फल हैं कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. श्रतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी, में (राजा) ब्रह्मदत्त, के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उसकी पटरानी की कोत्व में जनम ग्रहण किया । स्याने हो तक्षशिला, में सब शिल्पो को सीखा, ग्रीर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त कर वह धर्मानुकूल राज्य करने लगा । उस समय कोराल-गरेन ने बड़ी भारी सेना के साथ ग्रा, बाराणसी को जीत, राजा को मार डाला ग्रीर उसकी ही पटरानी को अपनी पट-रानी बनाया । बाराणसी राजा के पृत्र ने, पिता के मरने के समय, चीर-ररनाजे से भाग, सेना एकत कर, बाराणसी,

पहुँच, (उससे) थोडी दूर पर बैठ, राजा के पास सन्देश भेजा कि चाहे युद्ध दो अथवा राज्य? उसने प्रत्युत्तर भेजा—युद्ध दूँगा। राजा की माता ने उस खबर को सुन सन्देश भेजा—"युद्ध करने की प्रावश्यकना नहीं। सब रास्तों को रोक कर, चारों श्रोर से बाराणसी नगर को घेर लो। उससे लकडी, पानी, श्रनाज (--भात) की कमी होने से मनुष्य तंग श्रा जायेंगं। (फिर) तू विना युद्ध के भी नगर को ले सकेगा।"

उसने माता का सन्देश पा, रास्तों को रोक कर, सात दिन तक नगर को घेरे रक्खा। नगर-निवासियों ने रास्ता न पाने पर, सातवें दिन, उस राजा का सिर ले जाकर कुमार को दिया। कुमार ने नगर में प्रवेश कर, राज्य ग्रहण किया। श्रायु समाप्ति होने पर वह कर्मानुगार (परलोक) सिधारा। उस समय के सात दिन तक (लोगों का) रास्ता बंद कर, नगर को घेर कर जीतने के कर्म-फल स्वरूप, वह इस समय, सात वर्षों तक लोह-कुम्भि नरक में रह कर, सात दिन तक गर्भ के विगाड में रहा। लेकिन जो पदुमुत्तर (पद्मोन्तर बुद्ध) के समय, महादान देकर में (प्रत्यय) लाभियों में श्रव्यल नम्बर होऊँ करके, उनके चरणां में प्रार्थना( वलवती उन्ह्या)की, श्रीर जो, विपस्सी, बुद्ध के समय, नगर निवासियों सहित सहस्र के मूल्य का गुड-दिह दे कर, प्रार्थना की, उनके प्रताप से, यह (वस्तु) लाभियों में प्रथम हुग्रा। जास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा ला, बुद्ध हुए रहने पर यह गाथा कही—

श्रसात सातरूपेन पियरूपेन श्रप्पियं, दुक्खं सुखस्स रूपेन पमत्तमनिवराति ॥

[ ग्रसात ( ग्रमधुर) मधुर स्वरूप; श्रप्रिय प्रिय स्वरूप, दु.ख सुख स्व-रूप होकर(, प्रमादी ग्रादमी को जीत लेता है। ]

श्रसातं सातरूपेन, श्रमधुर ही, मधुर में जो कि उन्टा है। पमत्तमितवत्ति, श्रमधुर, श्रप्रिय, दुःष—इन तीनों को इस मधुर-राग्य श्रादि श्राकार से, समृति की श्रस्थिरता के कारण, प्रमादी (श्राक्सी) श्रादमी की लाँच जाते हैं, जीत लेते हैं, नीचा दिखा देने हैं।

यह जो भगवान् ने कहा, सो यह, "माना-पुत्र के इस गर्भ-भारण या गर्भ-निवास नामक प्रतिकूल वेदना से पहले नगर को रोकने स्नादि की अनुकूल (वेदना) के दब जाने के सम्बन्ध में, श्रीर यह जो उपासिका ने उस स्रसात (—प्रतिकूल), श्रप्रिय, दुख, (स्वरूप) प्रेग-प्रमृन्मत पुत्र (के पाने की वेदना) के, श्रनुकूल-वेदना से दब जाने पर कहा, मो उसके सम्बन्ध मे—इस प्रकार—दन सब के सम्बन्ध में कहा; ऐसा जानना चाहिए।

शास्ता ने इस धर्म देशना को ला, जातक का साराश निकाल दिया। उस समय नगर को रोक कर राज्य प्राप्त करने वाला कुमार (भव का) सीवली था। माता, सुप्पवासा थी। लेकिन पिता बाराणगी-राजा तो मैं ही था।

## सहायक प्रन्थों की सूची

- जातक पालि (सिंहल लिपि) सात खड; प्रकाशक, तिपिटक पब्लिकेयन प्रेस, कोलम्बु।
- २. जातक (रोमन लिपि) वी० फोसबोल द्वारा सम्पादित—सात खड, प्रकाशक, ट्रबनेर एण्ड कम्पनी, लन्दन ।
- ३. जातक (बङ्गला)—छः खंड, ग्रनुवादक श्री ईशान् चन्द्र घोष ।
- ४. जातक (श्रंग्रेजी)--छ. खड, सम्पादक ई० बी० कीवेल।
- ५. जातक (स्यामी लिपि)—दो खड।
- ६. पन् सिय पणस जातक पोत् (सिंहल) पाँच सौ पचास जातक ग्रन्थ।
- जातक गाया सन्नय (सिंहल)—जातक गायाश्रों पर टीका।
   श्राचार्य्य बहेगम धर्मरत्न कृत।
- महावंस (हिन्दो) अमुद्रित—यनुवादक, श्रानन्द कौसल्यायन ।
- **६. दीघनिकाय** (हिन्दी)—अनुवादक, रा० सांकृत्यायन तथा ज० काश्पय।
- १०. मिष्किम निकाय (हिन्दी) --- अनुवादक, राहुल साकृत्यायन ।
- ११. विनय पिटक (हिन्दी) --- श्रनुवादक, राहुल साकृत्यायन।
- १२- विसुद्धिमग्गो—सम्पादक, धर्मानन्द कोसम्बी; प्रकाशक, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।
- १३. अभिधर्मकोश (वसुवन्धु प्रणीत.)—राहुल साक्तत्यायन विरचितया टीकया सहित; प्रकाशक, काशी विद्यापीठ, बनारस।
- १४. मिलिन्द-प्रश्न (हिन्दी)—प्रनुपादक, जगदीश काश्यप; प्रकाशक भिक्षु ऊ० कित्तिम रथविर, सारनाथ।
- १५. भगवान् बुद्ध (मराठी) लेखक, धर्मानन्द कोसम्बी; सुविचार प्रकाशन मडल, पणे।

#### [ 480 ]

- १६. जातक माला (ग्रंग्रेजी)—गंस्यत से जे० एस० स्पेग्रर द्वारा श्रनूदित।
- १७. भरहुत शिलालेख (श्रंग्रेजी)—ব-সা एण्ड सिंह, कलकना युनिवर्सिटी प्रेस ।
- १८. ए गाइउ टु साँची (श्रंग्रेजी)—गान मार्गल, गवर्नमट प्रिटिग इण्डिया।
- १६. ए गाइड टु टैक्सिला (अंब्रेडी)—नान मार्शल, गवर्नमंट प्रिटिय इण्डिया ।
- २०. बुद्धिस्ट वर्षं स्टोरीज(अंग्रेजी)—रीज डेनिड्स, ब्राडवं गृन्सोशन सीरीज।
- २१. प्रि-बुद्धिस्ट इण्डिया (श्रंग्रेजी)—र्गत लाल महता, ग्राम्बे एक्जा-मिनर प्रेस ।
- २२. भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ खण्ड)—अव क्षेत्र विकास द्वार, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग ।
- २३- भारतभूमि और उसके निवासी—- गयनन्त्र विश्ववास), रतनाश्रम, श्रागरा।
- २४. जातक टेल्क (श्रंग्रेजी)—एक टी० फ़ैनिस, र्रं० जं० थामस, कैम्ब्रेज युनिवर्सिटी प्रेस ।
- २४. माडर्न रिक्यू (भंग्रेजी)--प्रात्तवर, नवम्बर (१६१०)।
- २६. भारतीय सूर्तिकला—रायकुण्ण दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
- २७. भारतीय चित्रकला—रायग्रुष्ण दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
- २८. इण्डियाज पास्ट (ग्रंग्रेखी)—डी० मैकडानल ।
- २६. डिक्शनरी ग्रॉफ पालि प्रोपर नेम्ब (श्रग्नेजी)--मलल सेकर।
- ३०. बुद्धिस्ट ग्रार्ट-ए० फुशेर, लंदन १६१७.
- ३१. अन्य कई प्रन्य जिनका ययास्यान उल्लेख हो गया है।